गई है। परन्तु उसके भाई और लाखी के त्यागों के खँडहल नहीं हो सकते।

गुजरात का महमूद बवर्रा नित्य जितना कलेवा और भोजन करता था यह फ़ारसी की तारीख 'मीराते सिकन्दरी' में दर्ज है। इलियट और डासन ने इसका अनुवाद किया है। मालवा-सुल्तान नसीरुद्दीन की पन्द्रह हजार बेगमें थीं—राज्य इसने पाया था वासनाओं की तृप्ती के लिये अपने बाप को जहर देकर। जब लगभग १०० वर्ष पीछे मुगल बादशाह जहांगीर मालवा की राजधानी मांडू गया और उसने नसीरुद्दीन के करिश्मों का हाल सुना तब उसको इतना क्रोध आया कि नसीरुद्दीन की क़बर उखड़वा डाली और उसकी हड्डियों को जलवा दिया। नापाक था, नापाक था वह!! जहांगीर ने कहा था। उसकी क़बर को जहांगीर न भी उखड़वाता तो भी आज वह बेपता, बेनिशान खँडहल होती। मानसिंह और मृगनयनी की, लाखी और अटल की स्मृति का खँडहल तो कभी होगा ही नहीं।

उपन्यास में आये हुए सभी चरित्र—थोड़ों को छोड़कर—ऐतिहासिक हैं। विजयजङ्गम लिङ्गायत था। ग्वालियर के क़िले के भीतर जैसे तैलंग मन्दिर (उसका नाम तेली का मन्दिर ग़लत है) बना, उसी प्रकार कर्नाटक से विजय ग्वालियर में प्रादुर्भूत हुआ। लिङ्गायत सम्प्रदाय का बासवपुराण दक्षिण में बारहवीं शताब्दि में लिखा गया था। इस सम्प्रदाय में वर्णभेद का तिरस्कार किया गया है। श्रम—कायक—को जो महत्व और गौरव बासव ने दिया है उसको देखकर दंग रह जाना पड़ता है। संसार के किसी भी देश में उस समय श्रम और श्रमिकों को गौरव नहीं दिया गया था। इसका श्रेय लिङ्गायत सम्प्रदाय के अधिष्ठाता को ही है। साथ ही अहिंसा और सदाचार, मादक वस्तु-निरोध पर जो जोर दिया गया है, उससे जान पड़ता है जैसे अधिष्ठाता का जन्म बीसवीं शताब्दि में हुआ हो। अधिष्ठाता ब्राह्मण थे और उनकी बहिन एक क्षत्रिय नरेश को ब्याही गई थी—वह भी बारहवीं शताब्दि में।

विजयजङ्गम लिङ्गायत मानसिंह तोमर का मित्र था। मानसिंह ने इससे भी कुछ पाया तो कोई आश्चर्य नहीं।

जातपांत ने भारत में रक्षात्मक कार्य भी किया और आज भी शायद कुछ कर रही हो; परन्तु इसका विनाशात्मक काम भी कुछ कम नहीं हुआ है। अप्रैल सन् १९५० में छपी एक घटना है। टेहरी (अल्मोड़ा) के एक गाँव में एक लुहार ने १२ वर्ष हुये दूसरी जाति की लड़की के साथ विवाह कर लिया। बारह वर्ष तक यह लुहार जातपाँत से बाहर रहा। कहीं अब, अप्रैल में गाँव की नई पन्चायत ने उसको बहाल किया! फिर पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दि में लाखी और अटल के सिर पर क्या क्या न बीती होगी, उसकी कल्पना ही की जा सकती है।

लाखी और अटल की कथा के साथ नटों का सम्बन्ध है। नटों और नरवर के प्रसङ्ग में एक दोहा प्रचलित है:—

नरवर चढ़े न बेड़नी, बूँदी छपे न छींट,
गुदनौटा भोजन नहीं, इरच पके न ईंट।

किम्वदन्ती है कि किसी ने एक नटिनी (बेड़िनी) को नरवर किले से बाहर रस्से पर टँगे टँगे जाकर जो क़िले के बाहर एक पेड़ से बँधा हुआ था, चिट्ठी ले जाने के लिये कहा और वचन दिया कि यदि चिट्ठी बाहर पहुँचा दी तो नरवर का आधा राज्य दे दिया जायगा। नटिनी रस्से के सहारे क़िले से बाहर हो गई। जब उसी सहारे वापिस आ रही थी, तब वचन देने वाले ने रस्से को काट दिया और नटिनी नीचे खड्ड में गिरकर चकनाचूर हो गई।

मैंने इस किम्वदन्ती का दूसरे प्रकार से उपयोग किया है।

मृगनयनी ने अपने ब्याह से पहले राजा मानसिंह से जो वचन लिये थे, उनमें से एक यह भी था कि राजा राई गाँव से ग्वालियर क़िले तक साँक नदी की नहर ले जायेंगे। राजा ने यह नहर बनवाई उसके चिह्न अब भी वर्तमान हैं।

एक किम्वदन्ती है कि मानसिंह के दो सौ रानियां थीं। ग्वालियर क़िले के गाईड ने मुझको दूसरी किम्वदन्ती का पता दिया कि "राजा मानसिंह के एट (आठ) रानियां थीं।" मैंने गाईड के शब्दों को ज्यों का त्यों उद्धृत कर दिया है। 'एट' उन्हीं का है। न लिखता तो कहते मेरा अपमान किया, अंग्रेज़ी का एक शब्द ही बोला था, उसको भी छोड़ दिया !

मैंने गाईड की कही हुई बात को ही उपन्यास में मान्यता दी है।

गाईड और गूजरों ने बतलाया कि मृगनयनी के दो पुत्र हुये थे—एक का नाम राजे, दूसरे का वाले। मानसिंह के बड़ी रानी से एक पुत्र विक्रमादित्य था जो मानसिंह के पीछे राजा हुआ। गाईड और गूजरों ने बतलाया कि राजे और वाले ईर्षावश मारे जाने वाले ही थे कि उन्होंने आत्मवध कर लिया। मुझको यह परम्परा मान्य नहीं है। गूजरों की ही एक दूसरी परम्परा है कि मृगनयनी ने अपने पुत्रों को राज्य न दिलवाकर विक्रमादित्य को राज्य दिलवाया। मुझको यही मान्य है।

उस बीहड़, भयंकर युग में मानसिंह को तुर्क पठान आक्रमणकारियों से निरन्तर लड़ना पड़ा; परन्तु उसके मन में मुसलमानों के प्रति कोई द्वेष नहीं रहा। उसने सिकन्दर के भाई जलालुद्दीन के साथ आये हुये अनेक मुसलमानों को ग्वालियर में शरण और रक्षा प्रदान की और ललित-कलाओं के लिये मानसिंह और मृगनयनी ने जो कुछ किया वह भारत के इतिहास में अमर रहेगा।

बोधन ब्राह्मण ऐतिहासिक व्यक्ति है। उसके मारने वालों की बर्बरता का मैंने बहुत थोड़ा वर्णन किया है—करना पड़ा।

कथावस्तु के संग्रह में महामान्या महारानी साहब ग्वालियर, मध्य-भारत के मन्त्रिमंडल—विशेषतः मेरे मित्र श्री श्यामलाल जी पाण्डवीय और ग्वालियर के पुरातत्व विभाग ने मेरी सहायता की है। मैं उनका

बहुत कृतज्ञ हूँ। ग्वालियर पुरातत्व विभाग के डाइरेक्टर डाक्टर पाटील का भी मैं आभारी हूँ जिनके सौजन्य से मुझको वे चित्र मिले जो इस उपन्यास में छापे गये हैं। उनके प्रकाशन का उन्होंने मुझको अधिकार दिया इसके लिये अनेक धन्यवाद।

पाठक चाहेंगे कि मैं तोमरों, ग्वालियर और नरवर के क़िलों और उनके भीतर स्थित इमारतों का वर्णन, परिचय में करूँ। कुछ पाठक चाहेंगे कि मैं तत्कालीन आर्थिक स्थिति समझने के लिये आंकड़े दूँ; परन्तु अनेक पाठक कहानी चाहेंगे इसलिये अब कहानी—वाक़ी फिर कभी।

झांसी।
१४-७-१९५०

वृन्दावनलाल वर्मा

मृगनयनी

[१]

आसपास और दूर-दूर तक के गांव उजड़ चुके थे। खेती का नाम-निशान तक न बचा था। बीच-बीच में जङ्गल भी काट डाला गया था, पर कटे हुये पेड़ों की जड़ों से नई शाखें फूट निकलीं थीं और भूमि इन शाखों से ढक गई थी।

गाँव उजड़े और उनके बहुत से निवासी या तो आक्रमणकारियों की तलवार के घाट उतर गये या भूखों-प्यासों मर गये। जो बचे वे तितर-बितर हो गये। ग्वालियर पर पन्द्रहवीं शताब्दि में अनेक आक्रमण हुये। उतने ही बार गाँव निर्जन हुये। पुराने कुछ-कुछ आबाद हुये। जङ्गलों में नदियों-नालों के किनारे थोड़े से नये बसे। भस्म हो जाने और भस्म में से नये पौधों के उगने का क्रम बना रहा।

बहलोल लोदी ने, फिर उसके उतराधिकारी सिकन्दर ने सब तरह के उपाय किये परन्तु ग्वालियर का क़िला हाथ न लगा। सोचा था राजा मानसिंह युवक है, अनुभवहीन; इसलिये ग्वालियर की ईंट से ईंट

(२)

पांच दिन, रङ्गपंचमी तक, होली मनाने की प्रथा थी। किसी युग में एक महीने तक मनाई जाती थी। जीवन के बोझों ने एक महीने से घटाकर पांच दिन में सीमित कर दिया। अब एक दिन भी दूभर था।

सवेरा होते ही कुछ लोगों ने हल्दी की थोड़ी सी गांठों को बांटकर रङ्ग तैयार किया और झींकते-झींकते होली खेल ली। जिनकी गांठ में रंग नहीं था उन्होंने रास्ते की धूल बटोरी और पानी में घोली। पिछली विपदाओं को भूलकर कम से कम कुछ घंटों के लिए मतवाले हो जाने की ठान ली। इनमें संख्या स्त्रियों की अधिक थी।

घूंघट डाले हुए, घूंघट के ही भीतर अट्टहास करती हुई स्त्रियों ने एक दूसरे पर मटीला पानी और कीचड़ उछाला। नाते में जो पुरुष देवर लगते थे उनको दौड़धूप में हराया और तब मानीं जब कीचड़ से उनको सराबोर कर दिया।

गांव की लड़कियों पर कोई पुरुष रङ्ग या कीचड़ नहीं डाल रहा था। ननद और भावज के परस्पर नाते वाली स्त्रियां अवश्य धूल और कीचड़ को एक दूसरे पर उछाल रही थीं। भगवान ने मुश्किलों से यह दिन दिखलाया, फिर कसर क्यों लगाई जाय ? रङ्ग हो तो रङ्ग—गुलाल तो थी ही नहीं—नहीं तो धूल, रङ्ग और गुलाल, दोनों का काम सजाने के लिए तैयार थी ही।

फिर से बसे हुए इस गांव में एक लड़की अपनी मां के साथ एक उजड़े हुये गांव से, कुछ दिन पहले आ गई थी। परन्तु गांव में लड़की की तरह रहने के कारण उस पर कोई पुरुष रङ्ग या कीचड़ नहीं फेंक रहा था।

'तुम अभी तक साफ़ समूची बची खड़ी हो, लाखी।' एक झोपड़े के द्वार पर टटिया की ओट में खड़ी हुई हँसती-मुस्कराती हुई लड़की से मिट्टी

दूसरी हँसती हुई लड़की

थी, वह ईर्षा की

आ देखकर अपने

सा दे रही थी।

गी। जिसने

निवारण

और

र।



महाराजा मानसिंह—अपनी राज सभा में

की काली-कलूटी मटकिया में मिट्टी घोले हुये दूसरी हँसती हुई लड़की ने रास्ते में दौड़ लगाते हुये कहा।

जिसको लाखी के सम्बोधन से चिनौती दी गई थी, वह ईर्षा की कसक से, अन्य स्त्रियों को धूल और कीचड़ में सना हुआ देखकर अपने ऊपर आक्रमण किये जाने के लिये, मुस्कानों से न्योता सा दे रही थी। टटिया को अधखुला छोड़कर लाखी भीतर की ओर भागी। जिसने सम्बोधन किया था वह झपट कर भीतर धँस गई।

'ऊँ···ऊँ···निन्नी, हमारे कपड़े मैले मत करो।' लाखी ने निवारण करते हुये आमन्त्रण दिया।

'बाहर निकलो, बाहर, तुमको सिर से पैर तक न रंग दिया और नचा न दिया तो मेरा नाम निन्नी नहीं!' मटकिया वाले ने ललकारा।

'अरे रे रे रे रे!!!' लाखी ने हँसते हुये होठों पर-दोनों पर-दोनों हाथ रख लिये और आंखें मूंद लीं। उछल-उछल कर और अट्टहास करते हुये निन्नी ने उसको कीचड़ से सान दिया।

'अब मेरी बारी है।' पास पड़े हुये गोबर को झपटकर लाखी ने उठाया और निन्नी की ओर बढ़ी।

वे दोनों समवयस्क थीं—आयु लगभग पन्द्रह-सोलह वर्ष। परन्तु निन्नी बलिष्ठ और पुष्ट काया की, लाखी दुबली और छरेरी। निन्नी गोबर के सत्कार से डरना नहीं चाहती थी।

'आओ, आओ, इसी की कमी रह गई है सो पोते देती हूँ।' निन्नी ने हँसते हुये कहा।

लाखी सहमी नहीं। निन्नी से जा चिपटी। निन्नी ने लाखी के गोबर वाले हाथ को अपने एक हाथ की मुट्ठी में पकड़ लिया और दूसरे से गोबर को छीनकर उसके माथे और एक गाल पर मल दिया।

'अरी री री! तुमने तो मेरी कलाई ही तोड़ दी।' लाखी ने हँसी में से कराहा।

निन्नी ने सोचा कुछ ज्यादती हो गई। लाखी को छोड़ दिया और मुस्कराती हुई तनकर खड़ी हो गई।

बोली, 'अच्छा, अच्छा, बुरा न मानो। तुम मुझे लगा दो जहाँ तुम्हारा जी चाहे।'

'ऐसे नहीं। तुमको हराकर लगाऊँगी तब तो बात है।' लाखी ने गोबर वाली मुट्ठी को तानकर कहा।

निन्नी हार नहीं सकती थी परन्तु वह हारना चाहती थी। भागने के बहाने एक-दो डग हटी। लाखी उस पर झपटी। निन्नी ढीली पड़ गई। लाखी ने लिपट कर उसके माथे और दोनों गालों पर गोबर पोत दिया।

'ब्याज समेत पा लिया', लाखी खिलखिलाती हुई बोली, 'तुम्हारे गोरे गालों पर कैसा बैठा है! अहा हा हा!! डिठौना सा लग गया!!! अब किसी की नजर नहीं लग पावेगी!!!!'

'तुम्हारे एक गाल पर लगने से रह गया है, तो तुमको किसी की दीठ लग जावेगी!'

'हूँ! तो लगादो, नहीं तो अपने हाथ से लगाये लेती हूँ।'

'बाहर चलो, कोई न कोई लगा देगा।'

'कोई कैसे लगा देगा? जो तुमको लगा सकता है वही तो मुझको लगा सकेगा।'

'भावजें हैं बाहर और कुछ बहिनें।'

'तुम्हारी है कोई ननद?'

'अरी हिप्ट!'

लाखी हँस पड़ी। निन्नी की बड़ी-बड़ी आंखों में बनावटी रोप और होठों पर मुस्कान की फड़कन थी। लाखी की भी, उतनी बड़ी तो नहीं परन्तु काफ़ी बड़ी आँखें थीं। उनमें से हँसी झर रही थी।

'तुम्हारा ब्याह नहीं हुआ?' लाखी ने पूछा।

'हम गूजरों में छुटपन में व्याह नहीं होता', निन्नी ने उत्तर दिया और उससे प्रश्न किया, 'और तुम्हारा ?'

लाखी ने नाहीं की, 'हम अहीरों में भी छुटपन में व्याह बहुत कम होते हैं और फिर आये दिन की आफतों में याह-व्याह की किसको सूझती है ?'

झोपड़ी के बाहर होली का हुल्लड़ मच उठा था। जिन्होंने सोचा था होली दो तीन घण्टे ही खेलेंगे उन्होंने अनजाने ही उसकी अवधि बढ़ा ली।

निन्नी ने बाहर निकल पड़ने का आग्रह किया। लाखी तो चाहती ही थी। निन्नी ने आंगन में से डबले में धूल भरी और एक पुराने घड़े में से पानी उड़ेल कर अगले आक्रमणों के लिये सामग्री संजोली। लाखी ने थोड़ा सा गोबर हाथ में ले लिया। दोनों बाहर निकल पड़ीं।

ओट ले-लेकर पुरुष भाग रहे थे। सम्भाले हुए घूंघटों को खोल-खोलकर स्त्रियां हंसती हुईं कीचड़ के लड्डू बना-बनाकर पुरुषों पर फेंक रही थीं। पुरुष नाच-नाचकर, फिरकियां खा-खाकर, उन लड्डुओं को पीठ पर झेल-झेल ले रहे थे।

एक स्त्री ने व्यङ्ग किया, 'बड़े पुरुष बने फिरते हो, पीठ दिखा दे रहे हो !!'

उस पुरुष ने अकड़कर कहा, 'तो लो, हम छाती पर तुम्हारे वार को लेंगे।' और आंखों पर हाथ रखकर सामने खड़ा हो गया। उसके मुंह पर काफी गोबर और कीचड़ पुत चुका था। पहिचान में आना कठिन था।

स्त्री ने छाती को ताक कर लड्डू फेंका। निशाना खाली गया।

'उई ! उई !! उई !!! उई !!!!' पुरुष ने उसकी असफलता पर ठठोली की।

स्त्री ने दूसरा लडडू कुछ निकट जाकर फेंका। वह छाती पर जाकर बिगस गया और लिपट गया।

'आह रे !' पुरुष ने आहत होने का बहाना किया।

'अभी क्या हुआ है, अटल लाला !' स्त्री बोली, 'अभी तो मेरी मटकिया में और कई हथियार हैं।'

आंखों पर से हाथ हटाकर पुरुष ने कहा, 'अरी भौजी, तुम्हारे हथियारों का क्या कोई ठिकाना है !'

लाखी निन्नी के पीछे थी। धीरे से बोली, 'निन्नी, यह तुम्हारे भाई अटल हैं ! कीचड़ और गिलाव में कितने सन गये हैं !! पहिचान में ही नहीं आते !!!'

अटल की दृष्टि लाखी के सुन्दर गेहुँए चेहरे पर गई। माथे पर गोबर का उल्टा–पुल्टा तिलक सा लगा था और एक गाल पर छवा था। दूसरे गाल पर क्यों नहीं पुता इसको देखने के लिये अटल ने लाखी पर फिर आंख फेरी।

'उधर क्या देखते हो लाला, यह लो !' एक स्त्री ने कीचड़ का लड्डू फस्स से उसकी छाती पर रेल दिया।

अटल ने एक स्त्री के पीछे अपनी बहिन निन्नी को पहिचान लिया और वहां से भाग गया। कुछ स्त्रियां 'अपने हथियार सम्भाले हुए' उसके पीछे दौड़ीं। कुछ और पुरुष पीठ दिखलाते भागे, वे अटल को छोड़कर इनके पीछे पड़ गईं। निन्नी और लाखी पीछे रह गईं। वे भी कीचड़ और गोबर के अस्त्र–शस्त्र साधे हुए थीं और चाहती थीं कि किसी पुरुष की छाती, पीठ, सिर या कंधे को लक्ष्य बनावें; परन्तु गांव की लड़कियां होने के कारण अपने को अशक्त पाती थीं।

'तुम भी किसी पुरुष पर चला दो।' लाखी से न रहा गया।

'चला दो मेरे भाई पर ! यही है न तुम्हारे मन में ?' निन्नी ने चुटकी काटी।

'हूँ···ऊँ !' लाखी ने मुंह बिगाड़ कर कहा।

'अकेले में मिल जाय तो मुंह पर गोबर का लड्डू मारूँ' उसने सोचा।

निन्नी हँसकर बोली, 'अच्छा जाने दो। मन्दिर की तरफ चलो। वहां रसिये गाये जायेंगे।'

'कौन गायगा?'

'हम तुम सब।'

'बाबाजी भी गायेंगे?'

'क्यों नहीं गायेंगे वह एक गीत गाते हैं। उसका रसिया मैं गा दूंगी। तुम गा सकती हो?'

'हां ऐसे ही। कितनी देर होंगे रसिये? मां गाय को चराकर आती होगी। चून पीसना है, फिर रोटी बनानी है।'

'सो तो घर घर में यही होने को है। होली तो नित्य-नित्य आती नहीं। चलो, थोड़ी देर भूखे ही सही।'

वे दोनों एक हुल्लड़ की ओर बढ़ीं। हुल्लड़ मोड़ पर था।

'बहलोल भागा! सिकन्दर भागा!!' कहते हुये कुछ लोग अटल के पीछे-पीछे दौड़ रहे थे। अटल दिल्ली के बादशाह का अभिनय करता हुआ अकड़ के साथ कूदता-फांदता जा रहा था। बीच-बीच में धूल और छोटे छोटे कंकड़ और सूखे गोबर के टुकड़े पछियाने वालों पर फेंकता जा रहा था। दिल्ली वाले को वैसे नहीं मार पाया था तो यों सही।

कुछ समय के उपरान्त यह भीड़ मंदिर के खंडहल के पास पहुँची। फूल से छाये हुये खंडहल के बाहर अधेड़ अवस्था वाला हँसता हुआ पुजारी निकला।

चिल्लाया, 'बोलो रे हरि माधव की जय! राधाकृष्ण की जय!!'

भीड़ ने दुहराया।

'आह रे !' पुरुष ने आहत होने का बहाना किया।

'अभी क्या हुआ है, अटल लाला !' स्त्री बोली, 'अभी तो मेरी मटकिया में और कई हथियार हैं।'

आंखों पर से हाथ हटाकर पुरुष ने कहा, 'अरी भौजी, तुम्हारे हथियारों का क्या कोई ठिकाना है !'

लाखी निन्नी के पीछे थी। धीरे से बोली, 'निन्नी, यह तुम्हारे भाई अटल हैं ! कीचड़ और गिलाव में कितने सन गये हैं !! पहिचान में ही नहीं आते !!!'

अटल की दृष्टि लाखी के सुन्दर गेहुंए चेहरे पर गई। माथे पर गोबर का उल्टा-पुल्टा तिलक सा लगा था और एक गाल पर छवा था। दूसरे गाल पर क्यों नहीं पुता इसको देखने के लिये अटल ने लाखी पर फिर आंख फेरी।

'उधर क्या देखते हो लाला, यह लो !' एक स्त्री ने कीचड़ का लड्डू फस्स से उसकी छाती पर रेल दिया।

अटल ने एक स्त्री के पीछे अपनी बहिन निन्नी को पहिचान लिया और वहां से भाग गया। कुछ स्त्रियां 'अपने हथियार सम्भाले हुए' उसके पीछे दौड़ीं। कुछ और पुरुष पीठ दिखलाते भागे, वे अटल को छोड़कर इनके पीछे पड़ गईं। निन्नी और लाखी पीछे रह गईं। वे भी कीचड़ और गोबर के अस्त्र-शस्त्र साधे हुए थीं और चाहती थीं कि किसी पुरुष की छाती, पीठ, सिर या कंधे को लक्ष्य बनावें; परन्तु गांव की लड़कियां होने के कारण अपने को अशक्त पाती थीं।

'तुम भी किसी पुरुष पर चला दो।' लाखी से न रहा गया।

'चला दो मेरे भाई पर ! यही है न तुम्हारे मन में ?' निन्नी ने चुटकी काटी।

'हूँ··ऊँ !' लाखी ने मुंह बिगाड़ कर कहा।

'अकेले में मिल जाय तो मुंह पर गोवर का लड्डू मारूँ' उसने सोचा।

निन्नी हँसकर बोली, 'अच्छा जाने दो। मन्दिर की तरफ चलो। वहां रसिये गाये जायेंगे।'

'कौन गायगा ?'

'हम तुम सब।'

'बाबाजी भी गायेंगे ?'

'क्यों नहीं गायेंगे वह एक गीत गाते हैं। उसका रसिया मैं गा दूंगी। तुम गा सकती हो ?'

'हां ऐसे ही। कितनी देर होंगे रसिये ? मां गाय को चराकर आती होगी। चून पीसना है, फिर रोटी बनानी है।'

'सो तो घर घर में यही होने को है। होली तो नित्य-नित्य आती नहीं। चलो, थोड़ी देर भूखे ही सही।'

वे दोनों एक हुल्लड़ की ओर बढ़ीं। हुल्लड़ मोड़ पर था।

'बहलोल भागा ! सिकन्दर भागा !!' कहते हुये कुछ लोग अटल के पीछे-पीछे दौड़ रहे थे। अटल दिल्ली के बादशाह का अभिनय करता हुआ अकड़ के साथ कूदता-फांदता जा रहा था। बीच-बीच में धूल और छोटे छोटे कंकड़ और सूखे गोबर के टुकड़े पछियाने वालों पर फेंकता जा रहा था। दिल्ली वाले को वैसे नहीं मार पाया था तो यों सही।

कुछ समय के उपरान्त यह भीड़ मंदिर के खंडहल के पास पहुँची। फूल से छाये हुये खंडहल के बाहर अधेड़ अवस्था वाला हँसता हुआ पुजारी निकला।

चिल्लाया, 'बोलो रे हरि माधव की जय ! राधाकृष्ण की जय !!'

भीड़ ने दुहराया।

पुजारी बोला, 'मेरे पास थोड़ा सा लाल रत्न है। बरसों से सेंत रक्खा था। नहा-धोकर आओ। माधव के प्रसाद-रूप थोड़े थोड़े छींटे सबको मिलेंगे।'

'और मिठाई' पीछे से एक ने कहा।

पुजारी हँस पड़ा,—'यह सिकन्दर बोला!'

जिसने मिष्ठान की मांग पेश की थी वह हँसता हुआ आगे आया।

'सिकन्दर तो भाग गया! उन लोगों ने भगा दिया। मैं तो अटल हूँ।' उसने बतलाया।

'हां, हां अटल, अटल गूजर, जो अपने गैयों के साथ साथ राजकुल की खेती को भी रखावै। कैसे भूलूं? नहा-धोकर आ जाओ। भजन गाओ और कुछ मीठा पाओ।'

पुजारी मन ही मन डर रहा था कोई गोबर, कीचड़ या मिट्टी का लड्डू उस पर न ठोक दे। उन सबों को वहाँ से टालना चाहता था।

धीरे से लाखी ने निन्नी से अनुरोध किया, 'हुमक कर एक लड्डू न तोड़ दो बाबाजी के पेट पर।'

निन्नी धीरे से हँसी। चिउँटी लेकर निषेध किया, 'अरी नहीं। ये सब कहेंगी, बड़ी फूहड़ है।'

वे सब वहां से टल गये परन्तु सीधे नहाने के लिये नहीं गये। बहुत दिनों का बँधा-रुँधा हुआ मन फूट-फूट कर बह-बह पड़ रहा था। जाते जाते भी कुछ न कुछ उपद्रव करते जा रहे थे। अन्त में स्त्री पुरुषों की दो टोलियां बन गईं। वे सब गाते-गाते नदी पर पहुँच गये। दोनों दल दो घाटों पर जा पहुँचे। दोनों के बीच में नदी की मोड़ और एक छोटी सी टेकड़ी थी।

नहाने-धोने के समय लाखी ने देखा निन्नी की गोरी देह बहुत पुष्ट है। ऐसा क्या खाती होगी, लाखी सोचने लगी।

इसके उपरान्त स्त्री–पुरुष मन्दिर पहुँचे। पुजारी ने एक वर्तन में थोड़ा-सा लाल रङ्ग घोल रक्खा था। सबके ऊपर थोड़ा-थोड़ा छिड़का। लाखी और निन्नी पर भी थोड़े से छींटे पड़े। उनको अच्छा लगा परन्तु नाक भौंह सिकोड़ी।

पुजारी ने हँसकर कहा, 'राधाकृष्ण का प्रसाद है। इसके सब अधिकारी हैं।'

अटल बोला, 'प्रसाद कहां है ? मिठाई दीजिये बाबाजी, मिठाई।'

पुजारी मन्दिर—या झोपड़े—में से ज्वार के फूले और गुड़ ले आया। सबको थोड़ा-थोड़ा सा बांटा।

पुजारी ने आग्रह किया,—'अब राधावल्लभ के सामने एक रसिया और नृत्य हो जाय।'

एक अधेड़ स्त्री बोली, 'चून पीसना है, रोटी बनाना है। दोपहर चढ़ आया है, महाराज।'

परन्तु अन्य स्त्रियों को इसकी परवाह नहीं थी।

निन्नी ने आग्रह का साथ दिया,—'बाबाजी भजन गाया करते हैं उनी का रसिया गा दो और फिर घर चलो।'

अटल ने भी समर्थन किया।

स्त्रियां गाने लगीं। कई भोंड़े स्वरों में निन्नी का स्वाभाविक मधुर कण्ठ अलग सुनाई पड़ रहा था। गीत तीन कड़ी का ही था। स्त्रियां एक कड़ी को गाकर चुप हो जाती थीं तो पुरुष लय को पकड़ लेते थे।

जाग परी मैं पिय के जगाये,
भाग जगे पिय मोरे घर आये,
उन नैनन में नींद कहां है जिन नैनन में आप समाये।

गाते-गाते कुछ स्त्रियां नाचने लगीं। निन्नी और लाखी ने नहीं नाचा वे केवल गाती रहीं। कुछ पुरुष भी नाचे। जब अटल नृत्य कर रहा था

तब वह आंख चुरा-चुरा कर लाखी की ओर देखता था। और किसी ने देख पाया हो या न देख पाया हो, पुजारी ने एकाध बार देख लिया। परन्तु वह रुष्ट नहीं हुआ।

गाते-गाते और नाचते-नाचते दो घड़ियां बीत गईं। दिन और चढ़ आया। मन्दिर के सामने के बरगद के विशाल पेड़ को आक्रमणकारियों ने नहीं काटा था, इसलिये उसकी छाया में आमोद-प्रमोद चलता रहा। किसी को भी चढ़ता हुआ दिन नहीं अखरा। परन्तु थोड़े से ज्वार के फूलों और, और भी थोड़े गुड़ से अधिक समय तक विनोद नहीं चल सकता था, इसलिये वे सब अपने-अपने घरों को जाने के लिये हुए।

पुजारी मोद–मग्न था। बोला, 'भगवान ने हम थोड़े से लोगों को यह शुभ दिन दिखलाया। सदा खेती–पाती हरियानी रहे, पशु और दूध–घी बढ़े। एक दिन आवे जब तुम सब सोने चांदी से भरपूर हो जाओ और अपने मन्दिर को जैसे का तैसा बनवालो। फिर यहां भजन हों, नृत्य हों, रास लीलायें हों। बार-बार इसी तरह होलियां आया करें और इससे बढ़कर प्रसाद बंटे।'

स्त्री–पुरुष अपनी पुरानी व्यथाओं को भूलकर आने वाली व्यथाओं का सामना करने के लिये चले गये।

[३]

सन्ध्या होते ही गांव वालों को अपनी अपनी थोड़ी सी खेती के रखाने की चिन्ता लगी। सब के सब खेत एक ही जगह न थे, कोई कहीं और कोई कहीं। कुछ पास पास भी थे परन्तु अधिकांश अलग-अलग। बीच बीच में पहाड़ियां और जङ्गल। बहुत सी अच्छी भूमि पड़ती पड़ गई थी; जान पड़ता था जैसे छोटा सा जङ्गल वह भी हो।

अटल हट्टा–कट्टा युवक था। आंखें भीग चुकी थीं। सिर के बाल लम्बे थे, इसलिये सारी आकृति में भीमता आ गई थी। कई साल के कठोर जङ्गली जीवन ने उसके लम्बे चेहरे की लम्बी नाक को कुछ और लम्बा कर दिया था। अपनी बहिन निन्नी को सुखपूर्वक और सुरक्षित रखने में उसने कोई कसर नहीं लगाई थी। मां बाप मार डाले गये थे, घर में अब केवल वे ही दो बचे थे।

होली की दिन भर की थकावट ने अटल को निश्चेष्ट कर दिया। खेत की रखवाली के लिये जाना था। अपने अलसाये हुये मन को वह बहिन से नहीं छिपा पा रहा था।

निन्नी ने कहा, 'मैं जाती हूँ खेत के मचान पर, तुम घर पर सो जाओ।'

'वाह ! वाह !! तुम भी तो थक गई होगी ?'

'मैं तो नहीं थकी। खेत को रखा लूँगी। चिन्ता मत करो।'

'और जो कल भी थक गया तो कल रात भी जागती रहोगी खेत पर क्या ?'

'हां हां जागती रहूँगी। पर कल थकोगे ही क्यों ?'

'कल दोज है। कल भी त्योहार मनायेंगे।'

'मैं भी मनाऊँगी और रात भर जाग लूँगी।

'जङ्गली भैंसे, साबर, चीतल, सुअर आयेंगे और खेती को मिटाकर जायेंगे। एक झपकी आई और मैदान साफ!'

'और तुम रात भर जागते ही रहोगे ?'

'यही तो एक दुविधा की बात है ।'

'कोई दुविधा नहीं। कमान, तरकस भरे तीर और तलवार लिये जाती हूं। तुम भी चलो। बारी बारी से जागें और सोवेंगे।'

'यह ठीक है। चलो।'

वे दोनों हथियार लेकर खेत पर चले गये। रात होते ही अटल मचान पर सो गया। निन्नी बग़ल में तीर कमान और तलवार रक्खे हुये बैठी रही।

चन्द्रमा का उदय हो आया था, अब चांदनी छिटक चली। पास के और दूर के खेतों से रखवालों की हा–हा हू–हू सुनाई पड़ने लगी। ठंडी हवा डैने से मारकर सरसराने लगी। निन्नी ने अपनी मोटी चादर लपेटी और अटल के पैताने रक्खी हुई दूसरी चादर उसको उढ़ा दी। निन्नी हा–हा हू–हू का शोर नहीं कर रही थी।

चुपचाप बैठी हुई खेत के कोनों पर आंख पसारे थी। पवन के झोकों के कारण कभी–कभी मेंढ़ के छोटे–छोटे झाड़–झकूटे हिल जाते थे तो उसको किसी वन्य पशु के आ जाने की शंका हो जाती थी। तुरंत कमान पर तीर चढ़ा लेती थी।

दो पहर रात गये आसपास के खेतों की हा–हा हू–हू कम हो गई और दूर के खेतों की बहुत क्षीण। चांदनी छिटक आई कि दूर का भी स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगा। जिन झकूटों का निन्नी को कई बार जङ्गली पशु होने का भ्रम हुआ था, अब वे शंका का कारण न रहे। परंतु बीच-बीच में आंख झपकने लगी। झपकियों के बीच में अधमुंदी आंख से जग पड़ने पर कभी सुअर और कभी जङ्गली भैंसा हवा के सर्राटे के साथ दिखलाई पड़-पड़ जाता था। यह आया, वह आया और गया! मन को भासने लगता। हाथ तीर–कमान पर जाता।

यदि मैं थोड़ा सा सो लूं? भैया को जगादूं? उसने सोचा। नहीं, दिन भर के थके हैं और मैं कुछ वैसी थकी नहीं हूं। यदि अकेली ही आई होती तो क्या इस तरह की झपकियां ले-लेकर खेत की रखवाली करती? जब ग्वालियर को दिल्ली का सुलतान घेरे हुये था और जङ्गल पहाड़ के किसी बड़े पेड़ पर रात काटते थे, तब ये झपकियां क्यों नहीं आती थीं? उसने अपने मन से पूछा और झटके के साथ झपकियों को भगा दिया। अङ्गड़ाई ली, आंखें मीड़ीं, इधर-उधर देखा कि कोई जङ्गली जानवर तो नहीं आ घुसे हैं खेत में, और सजग, सावधान होकर बैठ गई। अब कदापि नींद नहीं आने पावेगी। उसने निश्चय किया। सोचा, धीरे-धीरे कुछ गाऊं। दिन वाला गीत याद आ गया और वह गाने लगी—

जाग परी मैं पिय के जगाये....

उसको स्वयं अपने गाने का ढङ्ग और अपना स्वर बहुत भाया। गीत समाप्त नहीं हो पाया था कि उसको लगा जैसे कोई बड़ा जानवर खेत में आ गया हो। गायन को समाप्त करके खेत के कोने-कोने को आंख से टटोलने लगी। कोरा भ्रम था, उसने निर्धार किया।

खेत से थोड़ी ही दूर नदी बह रही थी। उसके एक सिरे का पानी बहता हुआ दिखलाई पड़ रहा था। चन्द्रमा की रिपटती हुई झिल-मिल जान पड़ती थी, मानो चांदी की चादरों के आवरों पर आवरे चिलचिला रहे हों। छोटी-छोटी सी आड़ी-सीधी लहरें उठ-उठ कर इन आवरों को पहन-पहन लेती थीं। सम्पूर्ण लहरों का समूह चाँदी की उन चादरों को ओढ़ लेने की होड़ सी लगा रहा था। पवन के आने-जाने वाले झक-झोरे इन आवरों को और भी चंचल कर रहे थे। लहरों की कलकल झोकों पर नाचती-खलती हुई खेत के पौधों की झूम पर उतर-उतर पड़ रही थी। चन्द्रिका खेत के हरे पौधों की अधपकी बालों को अपनी कोमल उङ्गलियों से खिला सा रही थी। हरी पत्तियों पर जमे हुये ओसकण चमक-चमक कर बिखर-बिखर जा रहे थे। निकटवर्ती जङ्गल

के लम्बकाय वृक्षों के बड़े-बड़े पल्लवों को थरथरा-थरथराकर पवन मानो किसी दूर देश को चला जा रहा था। कभी सनसनाहट और कभी सड़सड़ाहट। इन्हीं ध्वनियों में होकर नाहर से डरे हुये सांभरों और चीतलों की कभी तीक्ष्ण और कभी मन्द पुकारें। निन्नी ने सोचा, जानवर दूर हैं, परन्तु उसने मन पर इस आश्वासन को टिकने नहीं दिया। भैंसे और सुअर तो चुपचाप ही आवेंगे। वह और भी सचेत हुई।

मचान ऊपर से ढका हुआ था और चारों तरफ़ से खुला हुआ। निन्नी ने चन्द्रमा को देखने के लिये मचान के बाहर सिर निकाला और ऊपर की ओर आँखें कीं। लम्बी-लम्बी बरौनियों ने भौंहों को छू लिया। आंखें इतनी बड़ी कि उनको वास्तव में हिरन के छौने की आंख कहा जा सकता था। निन्नी ने सोचा आधी रात हो चुकी है। सिर मचान के भीतर कर लिया, भाई की ओर देखा। वह गाढ़ी नींद सो रहा था। कभी-कभी खुर्राटे भी भर लेता था जो नदी के कलकल से टकरा जाते थे। निन्नी चाहती थी अटल निश्शब्द सोता रहे, क्योंकि आँख का उतना भरोसा न करके कान बहुत अधिक ध्यान के साथ लगाये हुये थी—कहीं कोई बनैला पशु न आ रहा हो।

पवन धीरे-धीरे मन्द पड़ा। अटल के खुर्राटे विलीन हो गये। नदी की लहरों के अवगुण्ठन छोटे पड़ गये और चांदी की चादरें सी तनने लगीं। खेत के पौधों की झूम हलकी पड़ गई जैसे सो गये हों। निकटवर्ती बड़े पेड़ों की खरखराहट भी निरन्तर न रही।

एक दिशा में उन रजत लहरों के उस पार छोटी-छोटी पहाड़ियों के ऊपर एक ऊँची पहाड़ी सिर उठाकर धूमिल नेत्रों में चांदनी को भर सा लेना चाहती थी; ऊँची पहाड़ी का शिखर धुयें का स्थिर पुन्ज सा जान पड़ता था। नदी के इस पार दूसरी दिशा में, विशाल वृक्षों की सेज के पीछे एक ऊँचा पहाड़ चन्द्रमा को मानो नीचे उतर आने के लिये आवाहन-सा दे रहा था। बीच-बीच में पतोखी टीं-टीं चीं-चीं कर देती थी जिससे

न तो चाँदनी विचलित हो रही थी और न पर्वत के ऊँचे शिखर का ध्यान ही। निन्नी की दृष्टि कभी खेत की ऊँघती हुई बालों पर, कभी नदी की चमकती हुई चंचल ऊर्मियों पर, कभी दूरवर्ती धूमिल पहाड़ पर और कभी निकटवर्ती पहाड़ के शिखर पर जा रही थी।

जहाँ भी रहूँ इस प्यारी नदी की दमकती हुई कल्लोलिनी धार को अपने पास में रक्खूँ। बाहर जाऊँ तो क्या इसको बांधकर, समेटकर नहीं ले जाया जा सकता? ऊँघती लहराती बालों को किसी कागज़ पर उतार लिया जाय। पहाड़ों की ऊँचाइयों को एक स्थल पर क्यों न इकट्ठा कर लूं? बड़े-बड़े पेड़ों के वन्दनवार बना लिये जायं और डालियों-पत्तों के साजों के झरोखे। उनमें से चाँदी की कड़ियों वाली लहरों को नाचता हुआ देखा जाय और फिर गाऊँ,—जाग परी मैं पिय के जगाये—लहरें चांदी और मोतियों के हार से पहने हुये इठलाती हुई नाचती रहेंगी, वन्दनवार सदा हरे रहेंगे, पत्तों की झिलमिलियाँ निरन्तर चांदनी की भीगी हुई चमक और फूलों की महक से लदी रहेंगी। उसने सोचा। साथ ही स्मरण हो आया—यदि सिकन्दर या उस सरीखा कोई आ गया तो इनको फिर रौंद डालेगा। जिस भाँति वनैले पशुओं से खेती की रक्षा तीरकमान द्वारा होती है क्या उसी भांति इस नदी और उस जंगल पहाड़ की रक्षा उसी तीर कमान से नहीं हो सकती? परन्तु किसानों को यह सब सर्वनाश के लिये छोड़कर गिरि-कन्दराओं की शरण लेनी पड़ती है। राजा लोग अपने थोड़े से भाई बान्धवों को किसी गढ़ में बन्द करके लड़ते-लड़ते मर जाते हैं और उनकी स्त्रियाँ चिता में जलकर भस्म हो जाती हैं! क्या ये स्त्रियां तीर कमान चलाना नहीं जानती होंगी? क्या इनके खेत नहीं होंगे जिनकी रखवाली करने के लिये उनको मचान पर तीर कमान और तलवार लेकर बैठना पड़ता हो? उनके खेत नहीं होंगे क्योंकि रानियाँ तो पर्दे में मुंह छिपाये बैठी रहती हैं। सुनती तो यही आई हूँ परन्तु क्या उनके हाथ पैर इतने निकम्मे होते होंगे कि अपने ऊपर आँख और हाथ डालने वाले पुरुष को घूंसे से धरती न सुंघा सकें!

कैसी स्त्रियां होंगी ये ! खाने को इतना और ऐसा अच्छा मिलते हुये भी मन उनके ऐसे मरियल !! चिता में जलकर मरें स्त्रियों पर हाथ डालने वाले !!! मैं तो कभी इस तरह नहीं मरने की।

निन्नी ने सहसा दांत भींचे।

उसको अपने विकार पर आश्चर्य हुआ। मुस्कराई और खेत के ऊँघते हुये पौधों पर दृष्टि फेरती हुई नदी की ऊर्मियों का चाँदनी के साथ खेल देखने लगी।

हवा और भी ठण्डी हो गई। पहाड़ की ऊँचाइयों, जङ्गल के विशाल वृक्षों के वन्दनवारों, बड़े-बड़े हरे पल्लवों के झरोखों, इन चमकीली-चँदीली लहरों और पतोखी की उन बोलियों को कैसे एक ही स्थल पर इकट्ठा किया जाय ? वह अधमुँदी आँखों सोचने लगी। अच्छा, बहुत सी मिट्टी को सानकर उससे नदी, प्रवाह, पहाड़, वृक्ष, पल्लव, गेहूँ चने के लहराते हुये खेत बना लिये जायंगे। मिट्टी के एक भवन में यह सब आ जायगा। और उस पतोखी की बोली ? मैं गाऊँगी—जाग परी जब··· परन्तु विकल्प आगे न बढ़ा। झीम आई और माथा झूम गया, मचान के ढक्कन से धीरे से जाकर टिक गया।

आधी घड़ी के उपरान्त उसको भासित हुआ मानो नदी की लहरों की कलकल से अटल के खुर्राटे जा टकराये हों। हड़बड़ाकर आँख खोली। देखा तो खेत के बीच में एक बड़ा सुअर चड़ाकों के साथ अन्न का संहार कर रहा है।

निन्नी ने तीर-कमान सम्भालकर आसन जमाई। साँस साधकर लक्ष्य बाँधा। तीर एक सर्र के साथ सुअर के एक बाजू को फोड़ कर गर्दन के पार आधा निकल गया। सुअर हुड़-हुड़ करके वहीं चक्कर खाने लगा। अटल जाग पड़ा। निन्नी ने कमान की छोर पर दूसरा तीर साध लिया था। कुछ क्षण उपरान्त सुअर समाप्त हो गया।

अटल बोला, 'ऐसा अच्छा निशाना तो मैं भी नहीं ले सकता हूँ।'

हूँ ऊँ ! तुमसे ही तो सीखा है।' निन्नी ने कहा।

ऐसे लक्ष्य निन्नी ने कई बार वेधे थे। अटल स्वयं अच्छा निशानेबाज था परंतु वह निन्नी को इसी तरह उत्साहित किया करता था। और फिर इतनी देर तक सोते रहने का प्रायश्चित भी तो करना था।

अटल ने अनुरोध किया, 'बेटी, तुम सो जाओ। मैंने जी भरकर सो लिया है।'

निन्नी यही चाहती थी। अटल रखवाली के लिये बैठ गया और निन्नी सो गई। सुअर को दूसरे जानवरों के लिये बिजूका बनने के लिये वहीं पड़ा रहने दिया।

[४]

दूसरे ही दिन दोज थी। हरे भरे युग में दोज के दिन पूजा, पकवान, रङ्ग, गुलाल, अबीर और नाच-गान वाली होली मनाई जाती थी। परंतु राई गांव में दोज के दिन के लिये भी सिवाय पूजा और गाने नाचनें के और कुछ न था; पूजा पुजारी के जिम्मे और उछल-कूद साधारण जनता की—मानो बँटवारा कर लिया हो।

पुजारी के सिवाय बाकी लोगों के लिये निन्नी का बेधा हुआ बनैला बड़ा सुअर था। जिन लोगों के मन में दोज के मनाने की साध क्षीण थी वे भी धूल-धक्कड़ और गोबर कीच-गिलाव की मौज में मस्त हो गये।

दोज के दिन फिर लाखी और निन्नी की जोड़ी बन गई। अटल और भी अधिक बहुरुपियेपन पर चढ़ गया। नर-नारी हँस रहे थे और गोबर-कीचड़ फेंकने में कसर नहीं लगा रहे थे।

'लाखी, आज तो तुम्हारे सारे सांवले-सलोनें शरीर को गोबर से लपेटूँगी।' निन्नी ने झपट कर लाखी को पकड़ते हुये कहा।

वह उससे चिमट कर बोली, 'लपेटो, अपने सारे अङ्गों को तुम्हारे अङ्गों से रगड़ दूंगी सो गोबर में आधा साझा हो जायगा।'

'अच्छा तो लो।'

'हां, होने दो। ह! ह!! ह!!! ह!!!!'

'ह! ह!! ह!!! ह!!!! ह!!!!!'

दोनों एक दूसर से उलझ गई और देर तक उलझी रहीं। उनको इस बात की परवाह नहीं थी कि ऊपर से कमर तक उघाड़ी हो गई हैं। बाहर हुल्लड़ की आहट पाकर दोनों अलग हो गई। दोनों कीचड़ और गोबर में सन गई थी। दोनों के माथे, गालों और दूसरे अङ्गों पर गोबर की आढ़ी-टढ़ी चित्रकारी बन गई थी। दोनों एक दूसरे को देखकर बल खाते हुए हँस रहीं थी। दोनों ने अपने-अपने वस्त्र संभाले।

निन्नी ने कहा, 'तुम बहुत तगड़ी हो, हाथ ऐसे हैं जैसे महुये की डालें,पर मैं भी किसी तरह पार पा ही गई। हौंस हो तो फिर आओ।'

'मेरी बाहें यदि महुये के पेड़ की डालें हैं तो तुम्हारी सांप की रस्सी जैसी हैं। हे भगवान् कैसी कस जाती हैं! अच्छा, अब चलो, दूसरों को छकावें।'

'डर के मारे कोई भी स्त्री तुम्हारा सामना नहीं करेगी। किसी पुरुष को न डाँटो?'

'अरी ढिष्ट! गाँव की लड़की हैं न। ऐसा नहीं हो सकता। तुम इस गाँव की लड़की नहीं हो, हमारे भाई पर खेल लो न होली!'

'वाह! बड़ी वैसी हो!! क्या कहेंगे गाँव के लोग?'

'अच्छा तो कुछ और सही।'

'पुजारी को छकाना चाहिये, बड़ा रसिया जान पड़ता है।'

'कैसे? लगता है, तुमने कुछ भाँपा है।'

'जब कल गाना–नाचना हो रहा था, तब वह मेरी और तुम्हारी तरफ़ बार-बार देख रहा था। कभी-कभी भीग-भीगकर रीझ-रीझकर।'

'मेरी तरफ़! मैंने नहीं परख पाया।'

'परख लेती तो क्या करती?'

'हाँ, करती तो कुछ नहीं। बनेला पशु तो है नहीं जो उस पर तीर छोड़ देती।'

'आज लखना कि देखता है या नहीं तुम्हारी ओर।'

'अच्छा, पर अभी तो देर है। तब तक एक और खेल खेलें। मिट्टी के गोंदे बनाकर एक भवन बनावें। ऊँचे पहाड़ों की टुङ्गी जैसे गोल शिखर, उन पर कँगूरे। द्वारों पर बड़े-बड़े पेड़ों के तनों जैसे खम्भे और बेड़रियों पर फूल–पत्ते, मोर, नीलकण्ठ और पतोखियां, पत्तों के झरोखों

जैसी झिलमिली, पास में गेहूँ चने के खेत और उनके नीचे से राई नदी.........।'

'इतना सब बनाने के लिये तो कई बरस चाहिये।'

'अरी खिलौना ही तो है, आओ बनावें–छोटा बनायेंगी, जितनी मट्टी अपने पास है उतनी से ही।'

दोनों इस प्रकार का खिलौना बनाने पर पिल पड़ीं। घण्टे दो घण्टे इस खेल में बीधी रहीं, तब तक गांव वालों का हुल्लड़ समाप्त हो गया। वे सब नदी में स्नान करने के लिये चलने को हुये। उसके उपरान्त मन्दिर जाना था। फिर रात के शिकार की पगत होनी थी।

अटल लाखी के आँगन में आया।

खिलौने को देखकर बोला, 'ये क्या भट्टने से बनाये हैं? नहा लो मन्दिर चलना है।'

लाखी अटल की ओर आँख फेरकर निन्नी को देखती हुई मुस्कराने लगी।

निन्नी ने पीठ फेरे हुये कहा, 'हमको यह भवन बना लेने दो पहले।'

अटल ने व्यंग किया, 'ओ हो हो! महल बना रही हैं मिट्टी के लौंदों का!! रहने के लिये फूस की एक अच्छी मड़ैया तो बनालें पहले।'

निन्नी ने हठ किया, 'इसको बनालूँ तो वह भी बन जायगी।'

अटल लाखी को देखता जाता था और निन्नी से चलने का हठ कर रहा था। अन्त में निन्नी को मानना पड़ा। वे दोनों नहाने के लिये उसके साथ चली गईं।

नहा–धोकर गाँव के नर–नारी मन्दिर पहुँचे।

पुजारी ने थोड़ा सा लाल रंग पहले ही घोल रक्खा था। सब लोगों ने दोज की पूजा की—नई लाई हुई छोटी सी मूर्ति को प्रणाम किया। पुजारी ने घी की दो चार बूँदों से होम किया और फिर से प्रसादरूप

लाल रंग के थोड़े से छींटे सब के ऊपर छिटके। निन्नी के ऊपर छींटे डालने में उसका हाथ झिझका। उसकी कसर को लाखी पर पूरा कर दिया। दो एक छींटे उसके गालों पर जा पड़े। पुजारी ने अपने बेसुरे गले से एक होली गाई :—

उरझो ना श्याम कही मानो,
फट जैहै चुनरिया जिन तानो।
कंस राजा को राज बुरो है,
गोकल की गुजरिया मत जानो।
उरझो ना श्याम कही मानो।

इस होली को नर—नारियों ने अलग—अलग गाया। निन्नी का मधुर कण्ठ फिर सब से ऊपर अलग रहा। गाने के समय पुजारी की आँख जैसे ही निन्नी पर जाती उसको निन्नी के हाथ में तीर-कमठा और बिंधा हुआ मृत सुअर नज़र आता। 'विकट है यह लड़की' वह सोचता।

जब स्त्रियां नाचने लगीं और बारी-बारी से पुरुष, तब पुजारी लाखी को कभी क्षणार्द्ध के लिये सीधे और कभी कनखियों देखता। लाखी की आँख छिप—लुककर, बरबस सी अटल की ओर जा रही थी, इसलिये उसने पुजारी की दृष्टि को एकाधबार ही पकड़ पाया। निन्नी अपने गायन और दूसरों के नृत्य पर इतनी ध्यान-मग्न थी कि उसने केवल कभी-कभी ही यह जानने की चेष्टा की कि पुजारी की आँख कहाँ घूम रही है। उसने पुजारी को अपनी ओर देखते हुये नहीं पाया।

गायन और नृत्य की समाप्ति पर पुजारी ने गुड़ और ज्वार के थोड़े से फूले प्रसाद में बांटे।

'निन्नी के लक्ष्यवेध का करतब ग्वालियर के राजा को दिखलाया जाय'—पुजारी ने उसको प्रसाद देते हुये कहा,—'राजा और उनके सामन्त दांतों तले उँगली दबा लेंगे।'

बिना किसी संकोच या बनावट के निन्नी बोली, 'क्यों मैंने कौन सा ऐसा पहाड़ तोड़ गिराया है ? मेरे दाऊ ने तो नाहर और अरने भैंसे एक-एक तीर से ही मार गिराये हैं।'

अटल ने निन्नी को उत्साह दिया,—'बाबाजी, इसने भी नाहर और अरने भैंसे एक ही एक तीर से मार गिराये हैं। इसका काम राजा मानसिंह देखेंगे तो बड़े प्रसन्न होंगे।

मैं ले चलूँगा ग्वालियर-नरेश के सामने। राजा, मुझको अच्छी तरह जानते हैं। ग्वालियर में बड़े-बड़े मन्दिर हैं और–' पुजारी ने बात पूरी नहीं कर पाई।

निन्नी ने हँसते हुये टोका,-'मुझको नहीं जाना ग्वालियर-वुआलियर किसी राजा-आजा के सामने।'

सब लोग हँस पड़े।

अटल ने कहा,—'ग्वालियर बहुत बड़ा नगर है।

लाखी'—वह उपेक्षा के साथ बोली—'थोड़ी सी झोपड़ियों का हमारा यह गाँव, साँक नदी और ये जङ्गल-पहाड़ बहुत अच्छे।'

पुजारी हँसा,—'हाँ, हाँ, ग्वालियर नगर में सुअर, रोझ, नाहर अरने भैंसे कहाँ रक्खे हैं निन्नी के लिये !'

निन्नी इस बात के भीतर अपनी प्रशंसा को अवगत करके अभिमान से फूल गई।

उसके मुँह से निकला, 'लाखी, तुम भी तीर-तलवार चलाना सीख लो। मैं सिखलाऊँगी, भैया सिखलायेंगे। तुम भी जङ्गली जानवरों को मारना।'

लाखी ने अटल को कनखियों देखा और पास खड़ी हुई स्त्रियों को देखती हुई मुस्कराने लगी। स्त्रियां निन्नी की ओर मुँह बिदका कर हँस रहीं जैसे कहतीं हों स्त्रियों का तीर-कमान चलाना कितना भद्दा काम है!

निन्नी ने सहमकर सिर नीचा कर लिया। अटल ने लाखी की कनखीली चितवन को देख लिया था। वह किसी न किसी मिस उसको जी भरकर देख लेना चाहता था। जब वह हँसती थी उसके गालों में गड्ढे पड़ जाते थे। एक गड्ढे पर दो तीन लाल छींटे उभर-उभर कर उस हँसी को रंग से रचा सा देते थे। अटल उस रचावट को देखना चाहता था परन्तु देख नहीं पा रहा था।

वे सब हँसते-हँसते वहां से चल पड़े। उस थोड़े से प्रसाद को रास्ते में ही चबाते चले आ रहे थे। एकाध बार मुड़कर लाखी ने देखा तो उसकी आंख अटल की आंख से मिल गई।

घर पहुँचकर लाखी ने सोचा. यदि मैं तीर चलाना सीख लूँ तो कुछ बुरा तो करूँगी ही नहीं, निन्नी भी तो लड़की ही है; गूजर-कन्या सीख सकती है तो अहीर-कन्या किससे कम है? मैं बहुत जल्दी सीखूंगी। निन्नी से सीखूंगी—अटक पड़ी तो अटल से भी। इसमें कुछ भी घट नहीं है। सीख लेने पर मैं ग्वालियर के राजा के सामने लक्ष्यवेध भी दिखलाऊँगी। राजा खा थोड़े ही जायगा। निन्नी लजाती है, पर मैं नहीं लजाऊँगी। ग्वालियर देखूंगी, बड़ा नगर है, बड़े-बड़े चौक और चौहट्टे होंगे, मन्दिर और मूर्तियां, चटकदार कपड़े पहिने हुये नर-नारी।

लाखी के खेती नहीं थी। पहिले बहुत से पशु थे परन्तु आक्रमण काल में एक गाय को छोड़कर बाकी सब या तो मार डाले गये या मर गये। बाप मारा गया और सयाना भाई भी। अब मां-बेटी गाय के दूध और दूसरों की मजदूरी पर जीवन-निर्वाह कर रही थीं। मां जंगल में से कभी-कभी कुछ फल-मूल भी ले आती थी।

लाखी निन्नी से तीर चलाना सीखने लगी। मां उसको बहुत प्यार करती थी। सीखने में कोई अड़चन नहीं डाली। अटल ने भी सिखलाया।

बीस-पच्चीस दिन के बाद खेती पक गई और फ़सल काटकर घने जंगल के भीतर छिपे हुये खलियानों में रख ली गई। लोगों का अधिकांश

समय वहीं वीतने लगा। जंगली जानवरों से रक्षा, आग और तीर-कमान से होती रहती थी। पुजारी भी वहीं रमने लगा। अनाज के गाहे जाने पर उसको भी मन्दिर के नाते कुछ अंश मिलना था। वदले में वह पुराणों की गाथायें कुछ अपना निमक-मिर्च मिलाकर सुनाया करता था। रात को आग के आस-पास कभी भजन से और कभी राय से।

अनाज गाह लेने के वाद ग्वालियर से राज्य की उगाही के लिये संहर्ता आये और पुरानी परम्परा के अनुसार उपज का छटवां अंश ले गये। उगाही में उन्होंने कोई क्रूरता नहीं की। वाक़ी अनाज को किसानों ने छिपा-लुकाकर रख लिया।

लाखी और उसकी मां को कटाई, मज़दूरी में थोड़ा सा अनाज मिल गया; परन्तु वह दूसरी फ़सल तक के लिये पर्याप्त न था। फ़सल कटने के उपरांत गांव में कोई और मज़दूरी नहीं थी। जीवन-यापन के लिये लाखी ने तीर-कमान के अभ्यास को और भी वढ़ा दिया परन्तु लोहे के तीर या उनके फल दुष्प्राप्य थे इसलिये बांस के तीरों की नुकीली नोकों से काम चलाया। कोई वड़ा जानवर न मार पायें तो पेट पालने के लिये चिड़ियां और नदी की मछलियाँ ही सही।

आखेट के लिये वह निन्नी और अटल के साथ जङ्गल में जाने लगी। निन्नी एक दिन कुछ अन्तर पर एक दिशा में अलग पड़ गई; केवल लाखी और अटल साथ रह गये।

अटल उसको जी भरकर देख लेना चाहता था। कई वार चाहा था परन्तु एक वार भी सफल न हुआ। वे दोनों एक पेड़ के नीचे किसी जानवर की आहट लेकर खड़े हो गये। आहट की दिशा में आंखें गड़ा-कर देखने लगे।

अटल ने मुड़कर लाखी की ओर ज़रा सा देखा। उसने आंखों के सङ्केत से प्रश्न किया। अटल ने एक निश्वास को दवाया। लाखी ने फिर प्रश्नसूचक दृष्टि की। उसके लम्बे केशों की एक लट कान पर से

होठों की ओर आ गई थी। सिर का ज़रा सा झटका देकर उसको पीछे किया।

अटल ने कुछ स्थिरता के साथ उसकी ओर देखा। लाखी ने आँख नीची नहीं की।

धीरे से पूछा, 'क्या बात है ?'

'क्या कहूँ ? कैसे कहूँ ? बक नहीं फटता !'

'फिर भी ?'

'मैं तुमको बहुत चाहता हूँ। बहुत प्यार करता हूँ।'

'मैं जानती हूँ।'

लाखी ने आंखें नीची करलीं। अटल ने उसके कन्धे को एक बाँह में भर लिया।

'हम तुम एक होकर सदा साथ रहना चाहते हैं। कभी अलग नहीं होंगे।' अटल ने काँपते हुए स्वर में कहा।

'कैसे हो सकता है ऐसा ? हमारी तुम्हारी जात-पाँत अलग-अलग है।'

'तुम मुझको चाहती हो या नहीं ? पहले यह बात बतलाओ।'

'मैं क्या कह सकती हूँ ? तुमको कैसा जान पड़ता है ?'

'मुझको जान पड़ता है कि हम–तुम एक हो जायंगे।'

'परन्तु जात–पांत ?'

'पहले हुआ है। हमारी–तुम्हारी जाति में ब्याह–सम्बन्ध हुये हैं। पुजारी बाबा पुरान की कथाओं में सुनाते रहते हैं।'

'मेरी मां और तुम्हारी बहिन मान लेंगी ?'

'भरोसा तो है।'

'और गांव वाले ? पंच और मुखिया ?'

'अच्छा, उन्होंने न माना तो ?'

'न माना तो मैं क्या कर सकती हूँ ?'

'फिर भी हम लोग एक हो सकते हैं और एक होकर रहेंगे। मैंने प्रण कर लिया है।'

'निन्नी कभी-कभी ठठोली कर बैठती है। वह मेरे चाव को पहिचान गई है। कुछ गांव वाले भी स्यात् जानते हों।'

'तुम्हारा मन पक्का है।'

'मेरे मन से नहीं, अपने मन से पूछो।'

'बस, अब और कुछ नहीं पूछना है।'

अटल लाखी को कुछ क्षण अपनी बांह में कसे रहा। जिस दिशा से आहट आई थी उस दिशा से एक नर-मोर भागता हुआ आ रहा था। लाखी तुरन्त अटल की बाँह से अलग हुई। कमान पर बाँस का एक पैना तीर चढ़ाकर छोड़ दिया। मोर चीख के साथ वहीं गिर पड़ा। लाखी ने दूसरे तीर से उसकी पीड़ा को तुरन्त समाप्त कर दिया।

अटल के मुँह से निकला, 'वाह ! वाह !!'

उसी क्षण एक झाड़ी के पीछे से तेंदुआ उछल कर ओट के लिये भागा। अटल ने उस पर तीर छोड़ा परन्तु वह तेंदुआ को नहीं लगा। तेंदुआ भाग गया। उन दोनों ने पेड़ की आड़ छोड़ दी। मोर के पास गये। पीछे से निन्नी आ गई। उसने मृत मोर को देख लिया परन्तु भागते हुये तेंदुआ को नहीं देख पाया था।

अटल ने ऊँचे स्वर में कहा, 'देखो निन्नी, लाखी ने कैसा अच्छा निशाना लगाया है।'

निन्नी ने समर्थन किया, 'वह तुम्हारी गुरू निकलेगी, दाऊ।'

अटल हँस पड़ा। लाखी भी खिलखिला पड़ी।

अटल बोला, 'मैंने तेंदुआ पर तीर चलाया था, पर मेरा निशाना खाली गया।'

'क्योंकि तेंदुआ से तो हम लोगों का पेट भरता नहीं। इस मोर से दो दिन का काम चल जायगा।' लाखी ने कहा।

अटल अपने चूके हुये तीर को ढूंढ़ लाया। मोर को उठाकर वे सब घर की ओर चलने लगे। निन्नी के हाथ कुछ नहीं लगा था। लाखी को प्रसन्न देखकर वह कुढ़ रही थी।

बोली, 'मैं होती तो तेंदुआ को यों ही न निकल जाने देती और मोर को न मारती।'

अटल ने इस व्यंग के भीतर छिपी हुई कुढ़न को पहचान लिया परन्तु उसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। लाखी की प्रसन्नता में कोई कमी नहीं आई।

निन्नी कहती रही, 'तीर खो जाता तो और भी अच्छा होता।'

अटल ने और भी चिढ़ाया, 'तुम्हारा तीर तेंदुआ के पेट को छेदता, तुम लपक कर चढ़ती पेड़ पर और तेंदुआ तीर को लिये हुये चल देता किसी पहाड़ की गुफा में। तेंदुआ और तीर की तपस्या का फल कभी किसी को न मिल पाता।'

'भाग तो जाता तेंदुआ तीर को चुराकर! गर्दन में न देती जो तीर के साथ वहीं सो जाता!!' निन्नी ने तिनक कर कहा।

'अच्छा, अच्छा, बहुत अच्छा। फिर कभी सही।' अटल बोला।

लाखी ने निन्नी को फुसलाते हुये कहा, 'पेट भरने के लिये मोर मिल गया और निशाने के लिये तीर, यह क्या कम है?'

[५]

राज्य के सिपाहियों की उगाही के बाद पुजारी की उगाही सहज ही नहीं हो गई। किसानों को अन्न के दर्शन राम-राम करके हुये थे, इसलिये वे देने में किनर-मिनर कर रहे थे। पुजारी ने कहा, 'शास्त्र का वचन कभी न भूलो; छटवां भाग राजा का होता है सो तुमने दे दिया। बीसवाँ देवता का, तीसवाँ ब्राह्मण का होता है। उसके देने में आनाकानी करने से यह लोक तो बिगड़ेगा ही, परलोक से ही हाथ धो बैठोगे।'

एक किसान खिसियाहट को छिपाता हुआ बोला, 'फ़िर हम क्या खायेंगे ?'

'भगवान देंगे। मैं भजन जो करूंगा।'

'भजन करने पर भी दिल्ली के सुल्तान ने इतना खून बहा दिया ! इतने घर और खड़े खेत चौपट कर दिये !!'

'देखा इस मूर्ख को ! इस घोर नास्तिक को !! अब कोई नई विपद को बुलाने वाला है। करता है एक, भोगमान भुगतनी पड़ती है हम तुम सब को !'

'अरे, चुप रे चुप ! पुजारी महाराज से कैसी बात करता है !!'

'तो तुम दे दो पहले। भर तो लिया है घर और गड्डा गेहूँ-चने से।

'देंगे नहीं तो क्या तुम सरीखे नठ जावेंगे ?

रार सी होती देखकर वहां अटल आ गया। उसने पुजारी का पक्ष लिया। बोला, 'मैं तो अपने भाग को खुशी के साथ दूंगा। देवता और ब्राह्मण का अंश देना ही पड़ता है। न जाने कहां से बढ़ती हो जायगी।'

अटल ने पुजारी के चेहरे पर गहरी सहानुभूति की मुस्कान पाई। अधिकांश किसान आनाकानी करते हुये भी जानते थे कि अनिवार्य का निवारण नहीं होने का इसलिये देने के लिये अपने को विवश पा ही रहे

अटल को दानवृत्ति में पगा हुआ सा देखकर ढल गये। अटल ने सोचा पुजारी की सहानुभूति आगे चलकर काम देगी। सब किसानों नें देवता का बीसवाँ और ब्राह्मण का तीसवाँ, यानी पुजारी को कुल बारहवाँ हिस्सा, भेंट कर दिया। सब मिलाकर अन्न का चौथा भाग किसानों के पास से निकल गया। तीन चौथाई फिर भी बचा रहा। उन्होंने मन ही मन कहकर सन्तोष कर लिया, जो बाहर के लुटेरे सब का सब ले जाते तो गांठ में कुछ भी न बचता ।

अटल अवसर ढूँढ़कर पुजारी से एकान्त में मिला। बड़ी नम्रता और भोलेपन के साथ उसनें चर्चा छेड़ी।

'महाराज, आपको इतना ज्ञान कहाँ से मिला ? पोथी–पत्रे तो आपके पास थोड़े ही हैं, पर जानते आप जगत भर की बातें हैं !'

'अरे नहीं भाई। भगवान का भजन करता हूँ। मैं तो भगवान के नाम के सिवाय और कुछ नहीं जानता।'

'बाबा जी, आपको रामायण, महाभारत और न जाने कितने शास्त्र रटे पड़े हैं। क्या हम लोग भी पढ़ सकते हैं ?'

'क्यों नहीं पढ़ सकते ? तुम तो क्षत्रिय हो। वेद तक पढ़ सकते हो।'

'क्या आपने वेद पढ़े हैं ?'

'अरे यों ही, कुछ–कुछ। कलियुग में वेदों के पढ़ने–पढ़ाने वाले रहे ही कितने हैं ?'

'क्या स्त्रियां पढ़ सकती हैं ?'

'वेद ! अरे राम राम !! स्त्रियां और शूद्र वेद नहीं पढ़ सकते।'

'वेद नहीं महाराज, पुराण–वुराण।'

'कैसे हो तुम ! पुराण को वुराण नहीं कहते। अनादर नहीं करना चाहिये।'

'वैसे ही कहा। क्षमा कीजियेगा। स्त्रियां पढ़ सकती हैं ?'

'पढ़ सकती हैं। पुरों और बड़े ग्रामों में लड़के-लड़कियों की अलग अलग पाठशालायें रहती रही हैं। आक्रमणकारियों के अत्याचारों के कारण बन्द हो गई हैं; उनमें लड़कियां भी पढ़ती थीं।'

'अत्याचारियों का सामना कैसे किया जावे ?'

'धर्म से। धर्म के हीन-क्षीण हो जाने से, वर्ण के बिगड़ जाने से ही अत्याचारी सिर पर टूट पड़े हैं।'

कुछ क्षण अटल चुप रहा। फिर उसने अपने स्वर में नम्रता की पुट और अधिक बढ़ाई।

डरते-डरते पूछा, 'बाबा जी महाराज, कौन सा धर्म ?'

'अरे धर्म जिसको अपने बड़े लोगों ने बतलाया है। राधाकृष्ण की, सीताराम की भक्ति। साधारण लोगों के लिये इतना ही तो बहुत है।'

'महाराज, श्रीकृष्ण भगवान वर्ण में थे, पर उनकी जाति क्या थी ?'

'अरे तुमको इतनी सी बात नहीं मालूम ! क्षत्रिय थे। ग्ररे क्षत्रिय।'

'सो तो महाराज, सुना है। हम लोग गँवार हैं, गाँव के जो ठहरे, जानते नहीं हैं इसलिये पूछा-भगवान गूजर थे या अहीर ?'

'गूजर उनको गूजर कहते हैं, अहीर-अहीर; परन्तु पुराण में उनको यदुवंशी क्षत्रिय कहा है।'

'चन्द्रवंशी तो अहीर और गूजर भी हैं।'

'हाँ हाँ, उनको चन्द्रवंशी कह सकते हैं।'

'गूजर और अहीर दोनो बराबरी के हैं ?'

'हाँ, हाँ। काम दोनों के एकसे हैं।'

'अहीर और गूजरों में ब्याह-सम्बन्ध हो सकता है ? जब बराबरी के हैं, तो शास्त्रों में ब्याह-सम्बन्ध की मनाई न होगी।'

'अरे रे रे ! क्या कहते हो यह तुम !! पहले हुआ होगा, अब नहीं हो सकता।'

'आप जो पुरानी कथायें सुनाते हैं, उनमें तो इससे भी बढ़ कर कुछ बतलाते हैं।'

'अरे ओ! पढ़ा न लिखा, धमकाने लगा मठा-मूसल का!! मैं जो कथायें सुनाता हूं वे त्रेता-द्वापर की हैं और यह कलियुग है।

'आपने कलियुग की भी कुछ ऐसी कथायें सुनाई थीं जैसे राजस्थान के किसी एक राजा की, जिसने हाल में ही एक जाटन के साथ व्याह किया है।'

'मुंह लगता है मेरे! पंडित बनना चाहता है क्या? क्या अपनी बहिन को किसी अहीर के साथ व्याहना चाहता है? गूजर निर्वन्श हो गये?

'नहीं बाबा जी महाराज, नहीं। ऐसा नहीं करूँगा। कभी नहीं करूँगा। मैं अपनी बहिन को किसी बहुत बड़े ठिकाने व्याहूंगा। वह जैसी है उससे बढ़-चढ़कर उसका दूल्हा होना चाहिये। मैंने तो वैसे ही पूछा।'

पुजारी का क्षोभ शान्त हो गया। पुजारी उसकी और निन्नी की शारीरिक शक्ति को जानता था और गांव में उन दोनों को अपने प्रबल समर्थकों के रूप में पाता था।

पुचकार के स्वर में बोला, 'मैंने वैसे ही कड़े पकड़कर तुमसे बात कह दी। निन्नी के लिये मैं वर की खोज करूंगा। तुम तो जानते ही हो मैं इस कठोर काल में भी देश-देशान्तर की यात्रा किया करता हूं। ग्वालियर जाने वाला हूं। राजा मानसिंह मुझको जानते हैं और उनके सामन्त सरदार भी। ग्वालियर में गूजरों के कई भले घराने हैं। वे भी मुझको जानते हैं।

अटल ने भोले भाव से पुजारी को मान्यता दी—'आपको जो न जाने वह किसी को नहीं जानता। आप तो व्यर्थ ही इस छोटे से गांव में पड़े हैं।'

पुजारी ने कहा, 'राई नदी, ये जङ्गल और पर्वत मुझको भले लगते हैं। और फिर मैंने प्रण किया है कि इस टूटे हुये मन्दिर का जीर्णोद्धार कराऊँगा और एक अच्छी सुन्दर मूर्ति की स्थापना कराऊँगा तब कहीं दूसरे स्थान की बात सोचूंगा। ग्वालियर इसी प्रयोजन से जाना है।'

'आप ग्वालियर कब जायेंगे ?' अटल ने पूछा।

पुजारी ने बतलाया—'दस पांच दिन में।'

'फिर कब लौटोगे, महाराज ?'

'दो एक महीने तो लग ही जायेंगे।'

[६]

सिकन्दर लोदी को ग्वालियर छोड़े कई महीने हो गये थ। किले में घिरे हुये राजा मानसिंह, सामन्त, सरदार, सैनिक और सेवक क़िले से बाहर निकल आये थे और उजड़े हुये ग्वालियर को फ़िर से बसाने के प्रयत्न कर रहे थे।

कई महीनों के उपरान्त लोग अपने घरों को लौट आये। अत्यन्त उग्र कष्ट पानी का था। सड़ी-गली लाशों के कारण सारे कुयें गन्दे और खराब हो गये थे। नये कुयें इतनी जल्दी खोदे नहीं जा सकते थे। क़िले के भीतर अच्छे मीठे पानी का पूरा प्रबन्ध था। राजा मानसिंह ने पुनर्वास के लिये आई हुई जनता को क़िले के भीतर अस्थायी निवास दे दिया और कुओं के स्वच्छ करने का काम तेजी के साथ आरम्भ कर दिया। कुछ कुओं को साफ़ कर लिया गया और तली तक कई बार उनका पानी निकाल दिया गया। फिर गङ्गाजल की बूदों और मन्त्रों के उच्चार से उनका पानी पीने योग्य बना लिया। इन कुओं के आस-पास के मकानों की जनता क़िले के बाहर आ गई। परन्तु अभी अनेक कुयें शुद्ध होने को पड़े थे। बाहर से ग्वालियर के निवासी पहले थोड़े-थोड़े, फिर बड़ी संख्या में आये। टूटे हुये मकानों को उठाने लगे। अशुद्ध कुओं की सफ़ाई होती रही।

एक कुआ साफ़ तो हो गया था परन्तु मन्त्रों से शुद्ध नहीं हो पाया था। कड़ाके की धूप पड़ रही थी। मजदूर चिथड़ों से सिर की रक्षा करते हुये लू और ततूरी में काम कर रहे थे। कुये के समीप घनी छाया वाले नीम का पेड़ था। उस छाया में सुस्ताने के लिये उनका मन ललक रहा था। परन्तु अन्तिम बार कुयें का पानी निकाल कर अलग करना था। छाया में बैठे हुये ब्राह्मण कुयें को शुद्ध करने के लिए उकता रहे थे।

एक ब्राह्मण वैष्णव छाप के तिलक लगाये हुये था। पूजा-पत्री का कुछ सामान लिये हुए था। दूसरा उससे बातचीत करता हुआ चला आया था। वह शैव था।

शैव ने वैष्णव से कहा, 'गङ्गाजल की चार छः बूदों से क्या होगा ! मै कहता हूँ किसी फूल का, फूल न मिले तो शुद्ध मिट्टी का शिवलिङ्ग बनाकर और 'ॐ नमःशिवाय' से अभिमन्त्रित करके कुये में डाल दो कुआँ शुद्ध हो जायगा; क्यों जंजाल बढ़ा रहे हो।'

'गंगाजल और फूल या मिट्टी में जैसे कोई अन्तर ही न हो ?' दूसरा बोला।

'शिव की जटाओं से गंगा जी निकली हैं। इसलिये शिव और गंग में अन्तर है परन्तु में पूछता हूँ कि शिव बड़े या गंगा बड़ी ?'

'लोक, समाज और समय के भेद से छोटे बड़े और बड़े छोटे हो जाते हैं।'

'क्या अनर्गल बात कहते हो ! जो छोटा है वह छोटा ही रहेगा जो बड़ा है वह छोटा नहीं हो सकता।'

'हठ करने का तो तुम्हारा स्वभाव ही है। विष्णु और शिव में विष्णु को बड़ा कहा गया है परन्तु किसी-किसी अवसर पर शिव बड़े हो गये हैं।'

'कभी नहीं। असम्भव। शिव के सामने विष्णु की क्या बिसात ?'

'व्यर्थ झगड़ा करते हो। सब मार्ग एक ही ठौर को पहुँचाते हैं।'

'बिलकुल झूठ। सब मार्ग एक ही ठौर पर ले जाते हैं तो गिर पड़ो कुयें में, नदी में, पहाड़ पर से, किले पर से, पहुँचोगे अन्त में वैकुण्ठ धाम ! यही न ?'

'अर्थ का अनर्थ तुम जैसे तिलङ्गाना वाले करते हैं, वैसा तो कोई नहीं कर सकता।'

'तिलङ्गाना वाले ने ही वेदों के भाष्य दिये ह, नहीं तो डूब मरे होते चुल्लु भर पानी में तुम गौड़-प्रदेश के सब ब्राह्मण !'

'तुम्हारे माथे में तो लड़ने-भिड़ने के लिए कीड़े कुलबुलाया करते हैं। तुम्हारी समझ में इतनी छोटी सी बात क्यों नहीं आती कि कुये

बावली में गिरकर मरना और बात है; भिन्न मार्गों से पूजा और आराधना करके अभीष्ट तक पहुँचना दूसरी बात। ध्यान और मन को एकाग्र करके किसी भी मार्ग को ग्रहण कर लेने से मनुष्य मोक्ष को पा सकता है।'

'नदियों, पेड़ों, साँप के बिलों, टौरियों, पहाड़ों, मेड़ियों, बिलावों और चाहे जिस पत्थर के टुकड़े का ध्यान और मन से पूजा करो कि मिला मोक्ष! अरे तुमने ही इस युग को कलियुग बनाया!! धिक्कार है तुमको!!!

'धिक्कार तुमको और तुम्हारे बाप को! अज्ञान के वश समझते हो कि तुम्हारे शैवमत ही सब कुछ है!! नितान्त भ्रम में पड़े हो। नरक में जाओगे।'

दोनों के स्वर तीक्ष्णता पर चढ़ आये थे। दोनों ने अपने अपने आसन छोड़ दिये। कुएँ पर काम करने वाले मजदूर काम छोड़कर छाया में आ गये। शायद तमाशा कुछ और निखरे-सखरे, वे लोग चाहते थे।

'नरक में बिलबिलाओगे तुम और तुम सरीखे सब, जिन्होंने वर्तमान जीवन को अपने स्वार्थ के सिवाय और कोई महत्व नहीं दिया। हम लिङ्गायत इस जीवन को स्वर्ग बनाते हैं और मरने पर कैलाश तो हमारे लिये है ही।' दूसरे ने डपट कर कहा।

मजदूरों का मुखिया बीच में आ गया। निवारण करते हुए बोला, 'महाराज, लड़ो मत। हम लोगों के लिये भी कहीं कुछ है?'

पहले ब्राह्मण ने तपाक से कहा, 'हम बतला सकते हैं, यह तिल-ङ्गने का विजयजङ्गम नहीं बतला सकता।'

जिसका नाम विजयजङ्गम बतलाया गया था, बोला, 'यह बतला-येगा। क्या बतलाता है, बतला।'

'भजन, भजन, भजन करो मूढ़ो।' उसने बतलाया।

'किसका?' मजदूरों के मुखिया ने पूछा।

विजयजङ्गम ने तुरन्त उत्तर दिया, 'इस पेटू का, अपनी मज़दूरी और पेट काटकर भरो इस भिखमंगे का पेट। भजन से इसका यही प्रयोजन है।'

वह झपटा। मज़दूर आड़े आ गये। वह छुआछूत के डर से वहीं ठठक गया।

विजय ने कहा, 'ये काम करें, तुम भीख माँग–माँगकर खाते रहो। यही है न तुम्हारे भजन की शिक्षा ?'

मज़दूरों का मुखिया बोला, 'हमारे भाग्य में यही बदा है। पूर्व जन्म का फल जो भुगतना पड़ता है। आप सबके भाग्य में पढ़ना-लिखना राज्य करना–कराना लिखा है सो बड़ी जात में जन्म लेते हो।'

'यह सब भ्रम है,' विजय ने प्रतिवाद किया,—जीवन में, काम करना, श्रम से रोटी का उपार्जन करना और शिव का नाम लेना, यही गौरव है। इसी में जीवन की सार्थकता है। भीख माँग कर खाना, छल कपट पाखंड से अज्ञानियों की श्रद्धा का संग्रह करते रहना यही सबसे बड़ा पाप है। पूर्व-जन्म ने सब के लिये काम को प्रधान कर रक्खा है पूर्व जन्म के सब दुःख और श्रम, शिव की गायित्री से कट जाते हैं।

मज़दूर इस व्याख्या को नहीं समझे।

दूसरा विवादी बोला, 'बड़ा शिव की गायित्री वाला बना फिरता है गायत्री केवल एक है, केवल एक।'

'जिसको तुम लोगों ने छिपा-छिपा कर मटोला कर दिया है। सुन सकते हो इन लोगों को अपनी गायत्री ?'

'तुम तो हो मूर्ख ! गायत्री किसी को सुनाई जाती है ? अत्यन्त गोपनीय है—जड़-जङ्गम।'

'शिव की गायत्री ऐसी है जिसका जप चाण्डाल भी कर सकता है और पवित्र हो सकता है परन्तु तुमको अपना पेट भरने और पाखंड रचने से अवकाश कहां ?'

'कहाँ लिखा है कि शिव की भी अलग गायित्री है ?'

'वासव पुराण में, मूर्ख ।'

'और अधिक गाली बकी तो ढेले से खोपड़ा खोल दूँगा ।'

'ढेले से खोपड़ा खोलने के पहले त्रिशूल से तुम्हारी आंतें हम पहले ही बाहर कर देंगे ।'

फिर एक दूसरे पर झपटे । मजदूर फिर बीच में आ पड़े ।

'चल रे तिलङ्ग, राजा के पास । वहीं न्याय और तेरा दण्ड होगा ।' वैष्णव ने चिल्लाकर कहा ।

विजय भी चिल्लाया,—'मैं तैलङ्ग नहीं हूँ गधे, मैं कर्नाटक का हूँ जहां नन्दी और भगवान शंकर ने अवतार लिये । चल, न्याय होगा तो मुँह तेरा काला किया जायगा ।'

'कलियुग में अवतार ! चल, वहीं निर्णय और न्याय होगा ।' दूसरा पूरे भरे स्वर में बोला ।

मज़दूरों को उसने आदेश दिया, 'तुम लोग साखी हो । हमारे साथ चलो ।'

मज़दूरों का मुखिया बोला, 'पर अभी कुछ हुआ तो है ही नहीं, न ढेला चला और न त्रिशूल । बातें जो आप दोनों के बीच में हुई हैं सो हम लोग समझे नहीं ।'

वैष्णव ने कहा, 'इसने भगवान की बुराई की यह तो तुम समझे ? सब न चलें, अकेले तुम ही चले चलो ।'

'फिर यहां काम कौन करायेगा ?' मुखिया ने पूछा ।

उस विवादी ने भर्त्सना की,—'भाड़ में गया काम ! काम को देखते हो या धर्म पर किये गये आघात को ?'

'मुझको क्या',—मुखिया ने उपेक्षा के साथ कहा,—'राजा का काम रुका पड़ा रहेगा । आप जानो । कुआँ रीता कर लिया गया है । आप गंगाजल और मन्त्र से कुएँ को शुद्ध कर दो, फिर चले चलो ।'

'धर्म के सामने कुआँ–वुआ कुछ नहीं। चलो मेरे साथ।' उसने हठ किया।

वे तीनो क़िले की ओर चले। क़िले के फाटक पर रोक लिये गये। राजा चौथे पहर सन्ध्या के समय मिलेंगे, उन लोगों को वतलाया गया। वे दोनो दृढ़ थे। मज़दूरों का मुखिया मन चाहा विश्राम पा गया था।

तीनो फाटक के पास एक घनी छाया में ठहर गये।

तीसरे पहर एक छोटी सी पोटली बाँधे राई गांव का पुजारी भी वहीं आ गया।

आते ही उसने पूछा, 'क्या फाटक नहीं खुला अभी?'

'चौथे पहर खुलेंगे।' उसको उत्तर मिला।

विजय ने पुजारी की धूल-धूसरित और पसीने से भीगी हुई आकृति का निरीक्षण किया। पुजारी के चेहरे पर नम्रता थी। पुजारी ने दोनों को टटोला।

विजय के साथी ने पुजारी से प्रश्न किया, 'कौन हो, कहाँ से आये हो?'

उसने उत्तर दिया, 'छः कोस की दूरी पर राई नाम का एक उजड़ा हुआ छोटा सा गांव है। वहीं से आया हूँ। नाम मेरा बोधन शास्त्री है।'

उस विवादी ने पूरी पड़ताल की—गोत्र, शाखा, सूत्र, पिता का नाम, धर्म–कर्म सभी पूछ डाला। जब पूरा पता लगा लिया तब जल पी लेने का अनुरोध किया। बोधन जल पीकर आया था, इसलिये कृपा बनाये रखने भर की वाञ्छा प्रकट की।

'कैसे आये?' उसने आने का प्रयोजन पूछा।

बोधन ने प्रयोजन प्रकट किया,–गांव में भगवान का मन्दिर था। आक्रमणकारियों ने नष्ट कर दिया। उसके जीर्णोद्धार इत्यादि की याचना के लिये राजा के पास आया हूँ।

एक से दो हुये—और दूसरा शास्त्री ! विजय के विवादी को अपने भीतर स्फूर्ति का स्पन्दन मिला । बोधन ने विवादी के आने का कारण पूछा ।

उसने सविस्तार बतलाया ।

विवादी ने कहा, 'इनका नाम विजयजङ्गम है । तिलङ्गाना या कर्नाटक के हैं । यह इस बात को नहीं मानते कि किसी भी मार्ग से भी जाओ, पहुंचेंगे अभीष्ट स्थान पर ही ।'

विजय बोला, 'कैसे मान जाऊँ ? कूड़ा-कर्कट फांकने और मोहन भोग लगाने के परिणाम और अन्तर को कैसे भूल जाऊँ ?'

बोधन सहमत नहीं हुआ ।

विजय का विवादी बोला, 'अब हम एक से दो हो गये हैं । करलो जितना शास्त्रार्थ करना हो ।'

बोधन ने मोर्चा लेने से इन्कार नहीं किया ।

विजय ने व्यङ्ग किया,—'दो नाहीं की एक हामीं तो बन सकती है, परन्तु दो मूर्खों का योग एक बुद्धिमान नहीं होता है ।'

बोधन की भौंह तन गई परन्तु बोला कुछ नहीं ।

विवादी ने व्यंग का उत्तर दिया, 'नाम इनका जंगम है परन्तु हैं वास्तव में जड़ ।'

बोधन विवाद को बढ़ाना नहीं चाहता था और वह राजा के सामने वादी या प्रतिवादी के रूप में, नहीं पहुँचना चाहता था । बोला, 'घड़ी-आधी घड़ी पीछे राजा के सामने पहुँच जाते हैं, वहीं निर्णय और न्याय होगा ।'

चौथे पहर का घण्टा बजते ही फाटक खुल गये । वे चारों भीतर पहुँच गये । कोट की ऊँची दीवार के भीतर कई छोटे-छोटे कोट मिले । जिनमें सैनिकों का आवास था । प्रत्येक फाटक पर सन्नद्ध सावधान पहरे । दक्षिण दिशा के मैदान के छोर पर सासबहू और तेली के मन्दिर थे ।

वहाँ फूस के छोटे-छोटे झोंपड़े डाले हुये फिर से लौटे हुये कुछ निवासी विपद के दिन काट रहे थे। कुओं के साफ़ हो जाने की प्रतीक्षा म पड़े थे। राजा का भवन उत्तरवर्ती कोट के भीतर था। इस कोट के फाटक पर थोड़ी देर की प्रतीक्षा के बाद राजा ने उन सबों को अपने कक्ष में बुला लिया। वे सब राजा को पहले से जानते थे। मजदूर को छोड़-कर बाक़ी तीनों को राजा भी पहिचानता था। उन तीनों को आसन दे दिया गया। मजदूर खड़ा रहा।

राजा मानसिंह युवावस्था के आगे जा चुका था। बड़ी काली आंखें भरी भौंह, सीधी-लम्बी नाक, चेहरा भरा हुआ कुछ लम्बा, ठोड़ी दृढ़, होंठ सहज मुस्कान वाले। सारा शरीर जैसा अनवरत व्यायाम से तपाया और कसा गया हो। क़द लम्बा और छाती चौड़ी। घनी नोंकदार मूछें।

मानसिंह को इन लोगों के आने का कारण मालूम था परन्तु उसने विवाद के विषय को नहीं छेड़ना चाहा। पुराने परिचय को नया करने के लिये बोधन से पूछा, 'कहाँ-कहाँ कष्ट झेलते फिरते रहे शास्त्री जी ? भगवान ने हमारी सबकी लाज रख ली तो फिर एक दूसरे से मिलने का दिन पा गये।' मानसिंह के स्वर की खनक ऐसी थी मानो तलवार झन-झना गई हो।

बोधन ने अपने कष्टों की गिनती नहीं गिनाई, क्योंकि उसने मानसिंह और उसके साथियों की कष्ट गाथायें सुन रक्खी थीं। उसने कहा, 'सुना था महाराज को कई घाव लगे !'

मानसिंह ने मुस्कराकर उपेक्षा प्रकट की,—'साधारण सी खरोंचें थीं, शास्त्री जी। दो-तीन तीर छू गये थे बस। मेरे साथी अवश्य बहुत मारे गये और घायल हो गये। परन्तु उन्होंने जो परम्परा बना दी है उसके बल हम लोग ऐसे ऐसे अनेक आक्रमणों का डटकर सामना करते रहेंगे। एक बात अवश्य बहुत दुख देती है। जनता बहुत तबाह हो गई है और कुएँ अभी तक सबके सब साफ़ नहीं हो पाये हैं।'

मजदूर हिलकर रह गया।

बोधन बोला, 'हुये जाते हैं महाराज, हो ही रहे हैं।'

राजा ने गांव का हाल पूछा।

बोधन ने सबसे पहले मन्दिर की दुर्दशा का वर्णन करके अपने आने का अभिप्राय प्रकट किया,—'एक आक्रमण में दो सौ वर्ष पहले मन्दिर नष्ट हो गया था, फिर आपके पूर्वजों ने बनवा दिया, फिर नष्ट किया गया और फिर बनवाया गया। अब की बार फिर नष्ट हो गया है। उस पर फूस छाया हुआ है। श्रीमान से फिर बनवा देने की याचना करने के लिये आया हूँ।'

राजा ने निःसंकोच भाव के साथ कहा, 'पहले कुएँ, बावलियाँ, तालाब और नहरों का उद्धार कर लूँ, फिर मन्दिर को देखूँगा। जितनी सामर्थ्य होगी, सहायता करूँगा। कुछ आप देशाटन कर सेठों से उगाही कर लीजिये।'

बोधन चुप रहा। राजा ने बात नहीं तोड़ी।

बोला, 'गांव की खेतीपाती और जानवरों का क्या हाल है?'

बोधन ने कहा, 'भूमि अभी थोड़ी सी ही उठ पाई है। अगले वर्ष भगवान की कृपा से शेष भी हल-तले आ जावेगी, गायें भैंसें थोड़ी सी ही बची हैं। जंगली पशु बहुत उपद्रव किये हैं।'

'कौन कौन से पशु हैं जंगल में?'

'अरने भैंसे, सुअर, रीछ, चीतल, सांभर'—

'नाहर तेंदुए भी हैं?'

'हां श्रीमान, नाहर तेंदुए भी हैं।'

'गांव में कोई शिकारी, लक्ष्यवेधी नहीं है?'

'छोटासा रह गया है गांव। उसमें दो तीन बहुत अच्छा लक्ष्य वेधते हैं। भाई, बहिन गूजर और एक अहीर-लड़की।'

'लड़कियां लक्ष्यवेध करती हैं ! धन्य है वह गांव !!'

'अहीर की लड़की तो नौ-सिखी ही है, महाराज, परन्तु गूजर की लड़की जैसी देखने में सुन्दर और दृढ़ शरीर की है, वैसे ही तीर चलाने में बड़ी निपुण है । सुअर, नाहर, तेंदुये को एक ही तीर में मार गिराती है।'

'एक ही तीर में ! अच्छा !! अवकाश मिलते ही अहेर के लिये भी मैं किसी दिन आऊँगा। आपके मन्दिर को भी देखूँगा और उसके उद्धार की शीघ्र ही योजना करूँगा।'

बोधन ने मानो सब कुछ पा लिया। विजय और उसके विवादी के निर्णय, न्याय में उसको केवल श्रोता की रुचि रह गई। राजा उस चर्चा को टालना चाहता था परन्तु बोधन ने उमंग में छेड़ दिया,—

'महाराज को इनके विवाद का कुछ निर्णय करना है।'

राजा ने उन लोगों के प्रति उदारता भरी हुई आंख घुमाई, मानो आरम्भ करने के लिये कह रहे हों।

'विजय ने आरम्भ कर दिया—'जब लड़ाई चल रही थी यह ब्राह्मण ग्वालियर में नहीं था, मैं श्रीमान् के साथ यहीं बन्द था। हम लोग दिन रात काम करते नहीं अघाते थे और न थकते ही थे। हम सबकी समझ में आ गया कि जीवन इसको कहते हैं। भगवान शंकर के सामने वर्ण, अवर्ण, सुजात-कुजात का कोई भेद नहीं। हम सब जब कन्धे से कन्धा भिड़ाकर लड़ रहे थे, सब एकाकार था, तब इन लोगों की छूत-छात को मानते तो एक-एक करके गिन-गिन कर मारे जाते।'

'वह आपदा का समय था। संकट के समय जो कुछ भी उचित किया जाय सब धर्म है। यह सनातन सिद्धान्त है परन्तु निरापद समय में यह स्वतन्त्रता नहीं दी जा सकती।' विवादी ने कहा।

राजा ने प्रश्न किया 'और कोई समस्या है या इतनी ही ?' मजदूर से पूछा 'तुम कैसे आये ?'

उसने विनीत उत्तर दिया, 'मैं कुये की शोध का काम करवा रहा था। झूठ नहीं बोलूंगा श्रीमान्, इन दोनों में न तो हाथा–वाहीं हुई है और न सिर फुटव्वल, केवल जीभ को लड़ाते रहे और हम लोग जैसी गाली कभी बक जाते हैं, वैसी गाली भी इनके मुँह से नहीं निकली। केवल मूरख-दूरख कहा, सो संसार भर ही मूरख है, अन्नदाता।'

राजा ने हँसी को रोक कर कहा, 'तुम जाकर अपना काम देखो। तुम्हारी साखी की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।'

मजदूर चला गया। राजा ने दोनों विवादियों की ओर दृष्टि फेरी।

विजय ने कहा, 'यह कभी यह कहते थे, किसी भी मार्ग से जाओ ईश्वर की प्राप्ति हो जायगी। संसार के गले पर खांड़ा चलाते जाओ और भगवान का नाम लेते जाओ, तो क्या इस मार्ग से भी मोक्ष मिल जायेगा? वर्ण, अवर्ग के भेद मान कर एक दूसरे से घृणा करते रहो, अछूतों को मनुष्य न समझो, छुआ–छूत के नरक में रहते हुये भी भजन की माला टालते रहो तो क्या वैकुण्ठ प्राप्त हो जायगा? जो गायित्री सबको पवित्र कर सकती है उसको अँधेरी मैली कोठरी में बन्द रक्खो और कहो कि यदि किसी अन्य को इसकी झाँकी मिल गई तो वह अपवित्र हो जायगी! यह कैसी गायित्री?—

विवादी ने उसको और आगे नहीं बढ़ने दिया। टोका–'इनके पास, महाराज, इन बातों का क्या प्रमाण है?'

'हमारा बासव पुराण,'—विजयजङ्गम ने उत्तर दिया,–'महाराज जानते हैं। मैंने लड़ाई के ही काल में कभी-कभी सुनाया है।'

विवादी बोला, 'संसार पाप और पापियों से भर गया है। भजन और त्याग से ही पापों के फन्दे काटे जा सकते हैं। यह कहते हैं भीवन में सने रहो, क्षण–भंगुर जीवन के मोह के माया में लत–पत रहो और एक बार 'नमः शिवाय' कहा नहीं कि वैतरणी का बेड़ा पार हुआ!'

शास्त्रार्थ को उग्र तापमान पर पहुँचता हुआ देखकर राजा ने मुस्कान के साथ हाथ के संकेत से निवारण किया।

बोला, 'यह तो व्यर्थ का विवाद जान पड़ता है। मैंने शास्त्रों को नहीं पढ़ा है।' राजा एक क्षण चुप रहा।

विजय बीच में कूद पड़ा,--'शास्त्र पढ़े हैं और नहीं भी पढ़े हैं, तो सुने तो हैं।'

राजा ने उसको संकेत से चुप कर दिया।

'तपस्या बड़ी वस्तु है परन्तु सुनता हूँ कि तपस्या करने वाले भय और अहंकार के कारण आत्म-दमन में लीन हो जाते हैं और इस आत्म-दमन को परमपद समझ कर दूसरों को आतंकित करने लगते हैं। जब ऐसे लोगों को इस लोक में गौरव नहीं मिल पाता है तब उस लोक में उतनें अधिक गौरव के पाने की आशा पर उनको अचम्भा होनें लगता है और पागल से हो जाते हैं।' राजा ने तौलते हुये कहा।

राजा चुप हो गया। वे दोनो चुप रहे। बोधन तो निश्शब्द तटस्थ बैठा ही था वे दोनो सोच रहे थे, राजा ने निर्णय सा दे दिया है परन्तु यह समझ में नहीं आया कि किसके पक्ष में दिया।

राजा ने बात समाप्त की, 'ये बैठे-ठाड़े के वाक्-युद्ध व्यर्थ हैं। कर्म मुख्य है। जो इससे बचना चाहते हैं, वे ही दायें-बायें की पगडण्डियाँ ढूंढ़ते हैं।' थोड़ी देर निस्तब्धता छाई रही।

विजय ने स्तब्धता को पहले भङ्ग किया—'बासव पुराण में कुछ इस प्रकार की बात झूठे और सच्चे ढोंगियों के सम्बन्ध में कही गई है।'

विवादी बोला, 'हमारे यहाँ भी कुछ इसी तरह की बात कही गई है।'

'बौद्ध-शास्त्र में भी कुछ इसी प्रकार की बात कही गई है' धीरे से बोधन ने अपना मत प्रकट किया।

राजा ने हँसकर कहा, 'मैं नहीं जानता। मैंने कहीं से सुना था, कह दिया। मैं न शास्त्री हूँ और न पण्डित। केवल इतना कह सकता हूँ कि लड़िये मत। कुछ काम करिये और आगे की तैयारी में चिपट लगिये क्योंकि आक्रमणकारी बार-बार अपने जनपद को रौंदने के लिये आयेंगे।' बोधन को आश्वासन दिया, 'मैं शीघ्र ही आपके गांव की ओर आऊँगा।'

[७.]

तीसरा पहर था लू बहुत जोर की चल रही थी। लाखी की मां गाय के साथ नदी किनारे के भरके की हरियाली चराने और वहीं छाया में आराम करने के लिये गई हुई थी। लाखी ने बांस के तीर तरकश में भरकर एक कन्धे पर बाँधे, कमठे को दूसरे कन्धे पर लटकाया, छुरी कमर में डाल ली और नंगे पैर निन्नी की झोपड़ी पर पहुँची। अटल अपने दो बैलों और एक गाय के साथ नदी किनारे कुछ दूर चला गया था।

'अभी तो धूप बहुत कड़ी है। थोड़ी देर में न चलो।' निन्नी ने अलसाते स्वर में कहा।

'सुअर और अरने भैंसे नदी किनारे किसी दह में लोर रहे होंगे। थोड़ी देर में वे जंगल में चरने के लिये घुस जायेंगे फिर क्या हाथ आवेगा ? अभी चलो। लू का सरसराटा है, गरमी नहीं लगेगी।' लाखी ने आग्रह किया।

'अकेली चली जाओ।'

'दो ठो लोहे के तीर दे दो। बांस के तीर से भैंसे का कुछ नहीं बिगड़ेगा और सुअर भी स्यात् ही आन माने।

'यह कहो, मुझको लिवाने नहीं आई हो तीरों के लेने को आई हो !'

अबकी फ़सल पर कुछ बचा सकी तो लोहे के अच्छे तीर और फल बिसा लूँगी।'

'अच्छा, चलो।'

'दो न सही एक तीर मुझको उधार दे दोगी ?'

'भैया से मांग लेना, वह कई तीर यों ही दे देंगे।'

'यों ही कोई किसी को कुछ नहीं देता।'

'तो क्या इस सनसनाती दुपहरी में लड़ने को आई हो ?'

'मेरे आने का बुरा लगा हो तो यह चली !'

'हां पहुँची डांग में। कहीं न कहीं, भैया मिल ही जायगे, ले लेना उनसे तीर।'

'मिल जायेंगे तो परवाह नहीं और न मिलेंगे तो चिन्ता नहीं।'

लाखी मुह मरोड़ कर चलने को हुई।

निन्नी ने मनाया, 'अरी ठहर भी। यों ही भकुरने लगी। मैं चलती हूँ तीर भी दूंगी।'

लाखी पीठ करके खड़ी हो गई। उसांसें ले रही थी। छरेरी देह पर वक्ष उभर-उभर कर गिर रहा था। निन्नी ने तीर, कमान, छुरी लेली और जूते पहिने। लाखी को नङ्गे पैर देखकर उसको अपने जूतों पर अभिमान हुआ।

बोली कुछ अनाज कहीं से आ जावे तो तुम भी जूते बनवा लेना।'

लाखी के चेहरे का रोष छँट रहा था। उसाँस को दबाकर मुस्कराने की चेष्टा करती हुई तिनकी, 'जब लोहे के तीर मोल लूंगी तब जूते भी बनवा लूंगी।'

निन्नी ढ़ली। उसने कहा, 'सुभीता हो जाय तो मैं, अपने लिये नई जोड़ी बनवा लूं और तुमको अपनी दे दूं।

निन्नी के पैर का पंजा बड़ा था। उसके जूते अपने पैर में डालकर जब चलोगी तब जो फड़र फड़र होगी और दौड़ने पर एक पैर का जूता कहीं और दूसरे का कहीं फिककर औंधा पड़ जायगा, सोचकर लाखी को हँसी आ गई।

बोली, 'नङ्गे पैर चलने में जो मोज रहती हे वह दूसरे के आसरे नहीं मिल सकती।'

निन्नी को लाखी का हँसना अच्छा लगा। तरकस में से लोहे का एक तीर निकालकर उसको दिया। कहा, 'अटक भीर पड़ने पर एक और दूंगी।'

लाखी ने तीर को बड़े चाव के साथ तरकस में रख लिया। दोनों चल पड़ीं। जङ्गल गाँव से लगा हुआथा। दूसरी ओर नदी। तेज लू से

बहती हुई धार कलोलें कर रही थी; उसको देख-देखकर उन दोनों की आंखें ठंडक पा रही थीं। इसी प्रवाह के कहीं समीप ही सुअर और जङ्गली भैंसे पड़े होंगे यह सोच-सोचकर दोनों हुलसा रही थीं। वे दोनों नदी के किनारे को छोड़कर जङ्गल में धँस गईं। दोनों ने एक हाथ में कमान और दूसरे में लोहे का एक-एक तीर ले लिया। लाखी को लग रहा था मानों हाथ में इन्द्र का वज्र आ गया हो। जङ्गल में धीरे-धीरे आहट लेती हुई दोनों बढ़ रही थीं। लू के झकोरें से भूमि के बारीक कङ्कड़ और बिछे हुये सूखे पत्ते उड़-उड़कर निन्नी के तपे हुये गोरे और लाखी के सांवले गालों पर पड़-पड़ जा रहे थे। उन दोनों ने ओढ़नी को सिर से लपेट रक्खा था। घुटनों तक मोटे लहंगे का कच्छ। उरोज कंचुकी से ढके हुये, पीठ से लगे हुये पेट उघाड़े। गले में मूंगी और कांच के छोटे बड़े दानों की माला। कलाहियों पर कांच की दो-दो मोटी चूड़ियां पैरों में कांसे या पीतल तक का कड़ा नहीं। शरीर का पसीना पिंडलियों की धूल पर मोटी पतली रेखायें बनाता हुआ जा रहा था। लू से उनको ठंडक मिल रही थी। निन्नी की बड़ी-बड़ी और लाखी की कुछ ही छोटी काली कजरारी आंखें घने पेड़ों के पीछे ध्यान के साथ कुछ टटोल रही थीं। सिर और कन्धे झुके हुये मानो उछल कर किसी पर टूटने वाली ही हों।

वे दोनों ऊबड़-खाबड़ जङ्गल में कुछ दूर निकल गईं। नदी का किनारा छूट गया था। निन्नी के होंठ सूखने लगे।

धीरे से बोली, 'नदी का किनारा पकड़ो। प्यास लग रही है।'

लाखी ने खुसफुसाहट की,—'बस इतने ही में!'

निन्नी की सीधी-पतली नाक का नथना ज़रा सा फूल गया।

'नहीं पिऊँगी,'—उसने निश्चय प्रकट किया, 'सांझ तक नहीं पिऊँगी और तुम पानी पीने के लिये कहोगी तब तुमको भी नहीं पीने दूंगी।'

लाखी ने चुप रहने का संकेत किया। मानो कुछ हुआ ही न हो, मानो शिकार ही सब कुछ थी। दोनों उसी तौल के साथ आगे बढ़ती गईं। आगे एक छोटी सी पहाड़ी की ओट मिली जो लम्बाई में नदी की ओर गई थी। आँख के इशारे से दोनो इसी के नीचे की ओर बढ़ीं। पहाड़ी के नीचे साल, सागोन, महुए और अचार के बड़े-बड़े लम्बे पेड़ थे। पहाड़ी के ऊपर करधई की घनी हलकी कत्थई रंग की झाड़ी थी। दोनो इस पर चढ़कर उस ओर के नीचे मैदान के जंगल को निरख करना चाहती थीं परन्तु पहाड़ी की घनी करधई में घुसने के लिये पतली पगडंडी भी नहीं थी। दोनों ने अपने लँहगों को घुटनों के ऊपर समेटकर कसकर कच्छ बांधा। दोनों की गोरी-गोरी जाँघें आधी उघड़ गईं। लाखी की पतली सुती हुई सी थीं और निन्नी की मान्सल पट्ठों वाली जैसे बैठकें लगाने वाले किसी पहलवान की हों। दोनो करधई की घनी झाड़ी में घुस जाने के लिये सकरे छोटे से ही मार्ग की तलाश में झुक-झुककर, हांफ-हांफकर सांस साध-साधकर, फिरने लगीं। एक हाथ में कमान और दूसरे में सूर्य की प्रखर किरणों में चमक-चमक जाने वाला लोहे का तीर साधे हुये। निन्नी के होंठ सूख रहे थे परन्तु उसने पानी न पीने का निश्चय कर लिया था। ततूरी के मारे लाखी के पैर जल रहे थे। चुरचुराहट न करने के अभिप्राय से वे दोनों सूखे पत्तों पर पद-चाप न करने की सावधानी बरत रही थीं। लाखी नंगे पैरों थी, परन्तु उसकी आंखें करधई की घनी झाड़ी की झांकों को टटोल रही थीं, ततूरी की जलन अवगत ही नहीं हो रही थी।

एक ओर निकट ही, भूमि पर खुरों की अस्पष्ट खांदी और करधई की डालियों की टूटन और कुचलन को देखकर लाखी के सांवले लाल चेहरे पर प्रसन्नता की रेखायें बिखर गईं। तीर के इशारे से उसने निन्नी को बतलाया। निन्नी की आंख ने भी तत्क्षण टटोल लिया। लाल गोरे चेहरे पर हँसी की गुलाली-सी फैल गई।

निन्नी ने गर्दन उभका कर संकेत किया, 'चढ़ चलें यहीं होकर।'

दोनो उस टूटन-कुचलन पर पहुँच गईं।

निन्नी ने धीरे से लाखी के कान में कहा, 'अरने भैंसे गये हैं यहाँ होकर।'

'चलो', लाखी ने उत्साह प्रकट किया।

'सोचा यदि एक अरने को भी वेधकर गिरा लिया तो उसकी खाल से अपने और बुड्ढी माँ के लिए जूते बन जायेंगे, बाकी को बेचकर कुछ अन्न आ जायगा, माँस से मजूरों की मजूरी चुक जायगी। एक 'परन्तु' भी मन में उसी समय आया—परन्तु यदि न मिला अरना या तीर खाकर तीर समेत भाग गया तो निन्नी का उधार न मालूम कब तक चुका पाऊँगी।

निन्नी झाड़ी में पहले घस गई। वह लाखी को पछेड़ना चाहती थी। खड़े होकर या झुक कर भी चलने के लिये गुन्जाइश न थी। बैठ कर और कहीं लेटकर ही बढ़ा जा सकता था। वें दोनो कहीं बैठ–बैठ कर और कहीं लेट-लेटकर रेंगने लगीं। ऊँची छातियां पत्थरों और करधई के मोटे कांटों से टकरा–टकरा जा रही थीं परन्तु मानो उनमें पत्थरों और काँटों से भी लड़ जाने की दम हो। करधई की टेढ़ी–मेढ़ी डालें सिर से बांधी हुई ओढ़नी में अटक-अटक जा रही थीं। गोरी सलोनी भुजाओं में काँटे खरोंचे कर–कर रक्त की पतली लीकें निकाल रहे थे; धूल और धूप उनको सुखाकर मरहम का-सा काम कर रही थी। उन दोनों ने करधई की डालों में उलझी हुई ओढ़नी को सावधानी के साथ सुलझाया और कमर से कस लिया। बिना तेल के लम्बे-काले केश-कुन्तलों में आंधी के एक दो झोकों ने ही धूल और करधई के छोटे–छोटे सूखे पत्ते भर दिये। वे दोनो अब अबाध–गति से धीरे-धीरे बढ़कर पहाड़ों की चोटी पर पहुँच गईं। करधई के एक बड़े झाड़ के नीचे खड़े होने योग्य स्थान था। दोनो तीर-कमान साधकर खड़ी हो गईं। इधर-उधर

आँखें दौड़ाई, परन्तु टटोल में कुछ नहीं आया। घुटने छिल गए थे। हवा लगने से कुछ कसक जागी। झुक कर उनको पोंछा फटकारा। सोचने और सुस्ताने के लिये बैठ गई। कान लगाये थीं। पवन नदी की ओर वह रहा था। पेड़ों की खरखराहट आँधी की मन्द या द्रुत–गति के साथ दुर्बल या तीव्र सुनाई पड़ती थी। कुछ क्षण के उपरान्त नदी की दिशा में पत्थर की ठोकर का शब्द सुनाई पड़ा। दोनो चौंक सी पड़ीं। उझक कर देखा। कुछ नहीं दिखलाई पड़ा। खड़ी हो गईं। देखा, नदी की ओर दो बड़े–बड़े सुअर चले जा रहे हैं। थोड़ी देर बाद वे दोनो नदी के भरके में उतर गईं।

निन्नी ने कहा, 'ये पानी पीकर लौट जावेंगे, चलो' लाखी असहमत हुई, 'पानी पीकर नदी के किसी गड्डे में लोटेंगे, ठहरो।'

थोड़ी देर ठहर कर वे दोनो उसी प्रकार पहाड़ी पर से उतरीं। जब नीचे पहुँच गईं कुछक्षण सुस्ताईं। कमर से ओढ़नी को खोलकर सिर से लपेट लिया और नदी के किनारे की ओर सावधानी के साथ चल दीं।

वे आहट लेतीं जा रही थीं। सिवाय आँधी की खरखराहट के और कुछ नहीं सुनाई पड़ रहा था। ज्यों-त्यों करके उस भरके में पहुँचीं जहां दोनों सुअर उतर गये थे। भरके में एक मोड़ थी। उस मोड़ से सुअरों के निकल जाने की ताजी खुरी बनी हुई थीं। भरके के ऊपर छोटी–सी झाड़ी थी। वे उस झाड़ी की ओट के लिये भरके की सीधी ढाल पर पेट और पंजों के बल चढ़ीं, कमान की डोर और तीर को मुँह में चांपे हुये।

ऊपर पहुँच कर पहले फूली हुई सांस को ठिकाने किया, फिर उझक कर कगर के नीचे के डाबर को देखा। डाबर में एक सुअर का सिर गर्दन तक निकला हुआ दिखलाई पड़ा। दूसरा सुअर नहीं दिखलाई पड़ा। सुअर की बड़ी–बड़ी खीसें थीं। निन्नी ने झाड़ी के झरोखों में से सुअर की गर्दन का निशाना बनाया और डोरी को पूरा खींचकर तीर का

सन्धान कर दिया। तीर गर्दन में धंस गया। सुअर वहीं हुड़क कर पानी को मचाने लगा। एक उछाल लेकर किनारे पर आ पड़ा और चीं-चीं करने लगा। दूसरा भरके के नीचे से भागता हुआ जङ्गल की ओर चला गया। उस पर लाखी या निन्नी ने तीर नहीं चला पाया।

सुअर की हुड़क और चीं-चीं पर ऊपर के डावर से फड़-फड़ का शब्द हुआ। कुछ ही क्षणों के उपरान्त एक भरा-पूरा अरना भैंसा उस डावर के ऊपर वाले टीले पर आ-खड़ा हुआ और इस भरके तथा उस टीले के बीच में, किनारे पर पड़े हुए अस्तप्राय सुअर को देखने लगा। अरना कीचड़ में लतपत था इसलिये अधिक भीमकाय दिखलाई पड़ रहा था।

उन दोनों ने कमानों पर तीर चढ़ा लिये। पहले लाखी का छूटा। निन्नी ने नहीं चला पाया।

लाखी का तीर अरने के पुट्ठे से हटकर कलेजे की कोख पर पड़ा और अधिकांश धँस गया। अरने ने चीत्कार किया और तुरन्त भड़भड़ाता हुआ टीले के नीचे चला गया। दूसरे तीर के चलने की बारी नहीं आई।

अरना जंगल की ओर भागा। पत्तों की चुरचुराहट पत्थरों की खड़खड़ाहट और वृक्षों की डालियों की सर्र-फर्र कुछ दूर तक सुनाई पड़ी। हवा उल्टी चल रही थी इसलिये फिर और कुछ नहीं सुनाई पड़ा।

किनारे पर पड़ा हुआ सुअर अन्तिम सांस ले रहा था। उसके मर जाने पर वे दोनो भरके से नीचे उतरीं।

निन्नी के रूखे होठों पर भरी मुस्कान थी। बोली, 'सोचती हूँ पहले पानी पिऊं या सुअर की गर्दन में से तीर निकालूं और उस भैंसे को ढूंढूं, फिर पानी पिऊँ।'

'पहले मैं पीती हूँ। तुम जीतीं मैं हारी।' लाखी ने कहा।

वे हँसती हुई पानी में उतर गई। जी भरकर पानी पिया।

निन्नी ने सुअर की गर्दन से तीर निकाल कर धोया। सुअर को परिक्रमा सी देकर, देखने लगी। उसको अपने निशाने पर अभिमान था।

लाखी बोली, 'उस भैंसे को देखलो। यह तीर मुझको दे दो, स्यात् काम पड़ जाय।'

निन्नी ने नाक भौं सिकोड़ी। कहा, 'भैंसे के पेट में तीर लगा है। न जाने कहां पहुँचा होगा। भैंसा भी गया और तीर भी। इसको भी दे दूं तो दो तीर गये।'

लाखी को अखरा गया। बोली, 'पेट में नहीं लगा है कांख में लगा है, जहां ताक कर मारा था। कहीं पास ही पड़ा होगा। तुम्हारा तीर लौटा दूंगी।'

'गर्दन को निशाना क्यों नहीं बनाया ?'

'आंधी का झोंका आ जाता तो या तीर सिर के बाहर बह जाता या सिर की हड्डी में लग कर निकम्मा हो जाता।'

'ओहो ! निशाने की बड़ी समझ-बूझ है !!'

'आज नहीं तो फिर कभी दिखलाऊँगी। दे दो एक तीर। तुम सुअर की रखवाली करो तब तक मैं अरने को ढूंढ़ती हूँ।'

'नहीं दूंगी। बाँस के तीर तो लिये हो। एक ही दिन में दो तीर कैसे खो दूं ?'

'न दो, मैं बांस के तीरों से अरने को ढूंढ़ निकालूंगी।'

लाखी अरने को ढूंढ़ने के लिये मुंह बिगाड़े हुए चल पड़ी।

निन्नी ने रोका, 'मेरा सिर न कोल खाओ। ठहरो चलती हूँ।' लाखी नहीं रुकी। निन्नी दौड़कर उसके पास पहुँची।

बोली, 'तुम्हारा बहुत बुरा स्वभाव है। जब घर में भावज बनकर आओगी तब कैसे निभाव होगा ?'

लाखी की आँखों से चिनगारियाँ छूट गईं।

तिनक कर कहा, 'वहुत वढ़-वढ़कर वोलने लगी हो ! जैसे कहीं की रानी हो। थोड़े से तीरों पर इतना घमण्ड। मैं वाँस के तीरों से वह कर के दिखलाऊँगी जो तुम्हारे लोहे के तीर और भाले कभी नहीं कर सकेंगे। न मारा वांस के ही तीर से कभी अरने को तो मेरा नाम लाखी नहीं।'

निन्नी दौड़कर उससे लिपटने को हुई। लाखी हटी।

वोली, 'छोड़ दो मुझको यहीं और अपना सुअर उठा ले जाओ। तुमको गूजर होने का वड़ा अभिमान है तो हमको भी अहीर होने का कम मान नहीं है।'

निन्नी नहीं मानी। जवरदस्ती लोहे का तीर उसके हाथ में पकड़ा दिया।

'हम तुम दोनो निर्धन हैं। दोनो एक से। तुम्हारी सम्पदा तुम्हारी माँ है, मेरी, मेरा भाई। तुम मेरी और उनकी होकर रहोगी, वुरा न मानो, लाखी !' निन्नी ने कहा।

लाखी तीर लिये रही। मुँह फेर कर वोली, 'तुमसे किसने कहा कि मैं तुम्हारे घर में आकर वस जाऊँगी ?'

'कोई कहे या न कहे, पर जानते सव हैं। तुम्हारी आंखें, उनकी आँखें ढोल पीट कर कहती हैं।'

'तुम्हारी आँखें ही पीटतीं ढोल जो तिल का ताड़ वना देती है।'

'अरी, मैंने तो ताड़ का तिल वनाया है ! पुजारी वावा ने ग्वालियर से लौटकर भाई से कहा था।'

'और यह भी कहा होगा कि तुम ग्वालियर के राजा की रानी होन वाली हो !'

'होवे कोई अभागिन। राई नदी और इस खुले जंगल को छोड़कर मैं ग्वालियर के क़िले में क़ैद होने को जाऊँगी ! वावली हुई है क्या ?'

'और तुम वावली हुई हो क्या जो मैं तुम्हारे घर की लौंडीं चेरी वनने आऊँगी ?'

'नहीं लाखी, घर की मालकिन।'

'फिर वही बात! तुम ऐसा कहोगी तो मैं रो पड़ूँगी। गालिय दूँगी। अपनी माँ से कह दूँगी। मेरी सौगन्ध है, बतलाओ तुमसे किसने कहा है?'

'भैया ने।'

'कब?'

'जब पुजारी बाबा ग्वालियर से लौटे। भैया ने कहा कि राज शिकार खेलने आवेगा और मन्दिर बनवावेगा, अगले बरस की उगाही अथाही को भी छोड़ देगा।'

'तुम्हारे भैया ने कहा। मैं पूछूँगी, उन्होंने कहा?'

निन्नी उससे लिपट गई। लाखी ने प्रतिरोध नहीं किया।

बोली, 'सचमुच बतला, तेरे और भैया के बीच में कभी कुछ ऐसी-वैसी बात हुई है न?'

लाखी ने मुँह छिपाकर कहा, 'ऐसी-वैसी क्या बात?'

'कोई प्यार की बात? जैसी कथा कहानी में सुनते आते हैं?'

'हट!'

'ऐं हैं हैं! हट–वट नहीं, ठीक-ठीक बतला।'

'हमारी तुम्हारी जात में ऐसा कैसे हो सकता है?'

'क्यों नहीं हो सकता है? भैया कहते थे हो सकता है।'

'गांव वाले क्या कहेंगे?'

'गांव वाले कहा–सुनी करेंगे तो नदी ऊपर किसी दूसरे डूंगर जंगल में चले जायेंगे परन्तु तुमको अपनी भौजी बनाने की साध को तो पूरा करके ही छोड़ूँगी।'

लाखी दूसरी ओर मुँह करके लाजों में डूबने–उतराने लगी।

निन्नी ने कहा, 'तुम्हारी माँ को मैं मना लूंगी।'

लाखी बनावटी खिसियाहट के स्वर में बोली, 'अरी, तो क्या सब यहीं इसी जलती धूप में होना है क्या?'

निन्नी ने उसका मुंह पकड़कर अपनी ओर मोड़ा। ठोड़ी को गदेली भरकर पुचकारा.—'तो हँस दे मेरी लाखी, नहीं तो दङ्गा करूँगी। मेरी भली लाखी !!'

लाखी हँस पड़ी। बोली, 'लो अब चलो, अरनें को ढूंढ़ लें।'

'और तीर चाहिये ?' निन्नी ने हँसकर पूछा।

आंखों को स्थिर करके और होठों की लाज भरी मुस्कराहट को समेटते हुवे उसने उत्तर दिया, 'एक ही बहुत है। अटक पड़ने पर और ले लूंगी।'

वे दोनो अरने की खोज में निकल पड़ीं।

थोड़ी दूर चलकर लाखी यकायक रुक गई। बोली,'सुअर को अकेला छोड़ आई, कोई नाहर तेंदुआ आकर न घसीट ले जाय। तुम लौट जाओ।'

'ले जाय तो ले जाय,' निन्नी ने कहा, 'तुमको अकेला नहीं छोड़ना चाहती।'

परन्तु उसने सोचा यदि नाहर तेंदुआ झोली में आई शिकार को घसीट ले गया तो दो कुटुम्बों के भोजन की योजना नष्ट हो जायगी। ज़रा सा ठिठकी। लाखी समझ गई, उसने लौट पड़ने का हठ किया।

निन्नी ने तरकस से लोहे का एक तीर निकाला। बोली, 'अरना यदि घायल हुआ तो विपद का सामना करने के लिये दो तीर रक्खो, मैं सुअर के पास जाती हूँ। जल्दी लौटना।'

लाखी दूसरा तीर लेकर अरने की खोज में चली गई। निन्नी सुअर के पास लौट आई।

लाखी घायल अरने के खांद लेती हुई चौकन्नी जा रही थी। एक पत्थर पर उसको खून के छींटे मिले। आगे घार सी लगी हुई थी। सामने एक नङ्गा टीला था। टीले पर चढ़कर उसने इधर-उधर आंख पसारी। एक छोटी सी झाड़ी की बगल में घायल अरना बैठा हुआ झोंम ले रहा था। लाखी ने तरकस में से बांस का बड़ा और पैनी नोक वाला

तीर निकालकर अरने को गर्दन पर भरपूर बल के साथ छोड़ा। तीर थोड़ा सा छिद कर रह गया। अरना उठा उसने लाखी को देखते ही आंख से आग बरसाई। पूंछ उठाकर उसकी ओर झपटा। लाखी टीले पर थी। अरने की असमर्थता का उसको विश्वास था। फिर भी उसने डोरी पर लोहे के तीर को चढ़ाकर पूरे जोर के साथ दोनों आँखों के बीचों बीच मस्तक पर छोड़ा। तीर अरने के माथे पर खूंटी की तरह जा गड़ा। अरना सिर नीचा करके तीर के छुटाने की धुन में लगकर खुरियों से भूमि को उखाड़ता हुआ गिर गया। लाखी ने सन्धान के लिये दूसरा तीर डोरी पर चढ़ा लिया, कदाच उठ खड़ा हो और दूसरी झपट लगावे। अरने का माथा धीरे-धीरे ढीला पड़ा। बांस का तीर गर्दन से छूटकर नीचे गिर गया। थोड़ी देर में अरने के पैर ढीले पड़ गये। उसकी अवशिष्ट शक्ति के निरीक्षण के लिये लाखी ने बांस का एक तीर डोरी को पूरा खींचकर छोड़ा। वह गर्दन में थोड़ा सा ठठा। अरने ने सिर को थोड़ा सा फड़फड़ाया परन्तु वह खड़ा नहीं हो सका। लाखी ने समझ लिया कि मर रहा है।

लाखी ने नदी की ओर मुंह करके जोर से निन्नी को पुकारा परन्तु निन्नी को सुनाई नहीं पड़ा।

हर्षमग्न लाखी आधी घड़ी वहीं खड़ी रही। अन्तिम बार अरना हिला, फ़िर उसने टाँगें तान लीं। समाप्त हो गया। लोहे के दूसरे तीर को डोरी पर चढ़ाये हुये लाखी सावधानी के साथ टीले पर से उतरी—जैसे फ़ूंक-फ़ूंककर क़दम रख रही हो। वह तुरन्त उसके पास नहीं गई। दूर से परिक्रमा लगाई। जिस ओर अरने की लाल आंखें थीं उस ओर पहुँचने पर वह थमी। उन आँखों को देखकर शरीर में फुरेरू आ गई। कितना भयंकर होता है अरना! उसने सोचा। फिर डोरी पर तीर चढ़ाये हुये उसके समीप आ गई। पूरा विश्वास हो गया कि अरना कभी का मर चुका है।

'उँह, करके उसके सिर पर पहुँच गई। लात की ठोकर से हिलाया। बाँस के दोनों तीर तरकस में रख लिये और कलेजे में धँसे हुए तीर को दोनों हाथों खींचने लगी। न खींच सकी। तब नीचे बैठकर दोनों पैर अरने में अड़ाये फिर कठिनाई के साथ तीर को निकाल पाया। माथे वाले तीर को निकालने में भी कठिनाई हुई। दोनों तीरों को वैसे ही लिये हुए वह दौड़कर निन्नी के पास पहुँची।

'मिल गया क्या ?' निन्नी ने उसको देखते ही पूछा।

'हाँ, हाँ। ये देखो।' लोहू-लुहान तीरों को दिखलाते हुये उसने उत्तर दिया।

'मैं भी देखूँ। इतना हल्ला-गुल्ला हो गया है कि नाहर तेंदुआ कोई यहां नहीं आयगा। चलो, कहां है।' निन्नी ने कहा।

वे दोनों दौड़कर अरने के पास पहुँची।

निन्नी ने अरने को ध्यान से देखकर मन ही मन प्रण किया—मैंने यदि एक ही तीर से कभी अरने को, वहीं का वहीं ढेर न कर दिया तो मेरा नाम झूँठा।

बोली, 'बाँस के तीर से इसकी गर्दन फोड़ लेतीं तुम ? या माथे की खाल को ही वेध लेती ?'

'नहीं, मैंने झूठा घमण्ड किया था, वहिन।'

'वहिन नहीं, ननदवाई कहो, ननदवाई।'

'फिर वही भद्दी वात।'

'भद्दी वात नहीं, सुन्दर सलौनी वात। जैसी तुम सुन्दर सलोनी हो।'

'तुमसे वढ़कर, जो इतनी गोरी और लाल हो।'

'अच्छा अभी कुछ दिनों,मैं न तुमसे भौजी कहूँगी और न तुम ननद कहना। भैया के सामने वैसा ही वर्ताव करती चलीं चलेंगी जैसा करतीं आई हैं। किसी को न मालूम पड़ेगा।'

'कैसी रस में डूव गई हो ! इन जानवरों के उठाने की तो चिन्ता करो।'

निन्नी ने हँसकर कहा, 'भैंसे को तुम उठा ले चलो सुअर को मः टांगे लेती हूँ।'

'अरे राम!' लाखी बोली—'हम तुम दोनों एक सुअर को ही न उठा पावेंगे, भैंसे के लिये तो चार छः आदमी चाहिये।'

निन्नी ने सुझाया, 'सुअर को टांगे लिये चलते हैं फिर गांव से कुछ लोग आकर अरने को उठा ले जायेंगे।'

वे दोनो सुअर के पास लौट आईं। उन्होंने सुअर को उठाने का प्रयत्न किया, परन्तु न बन पड़ा। निन्नी ताव पर आ गई।

'इसकी दोनो टांगें साधकर मैं पीठ करके बैठी जाती हूं। पीठ पर उठाती जाऊँगी तुम पूरा बल लगाकर चढ़ा देना। अकेली लादकर ले चलूंगी।'

'अकेली!' लाखी ने आश्चर्य प्रकट किया।

'हां अकेली। पीठ पर लादकर ले चलूंगी! वैसे हम दोनो नहीं ले जायेंगी।'

'तुम मेरे हथियार ले लो।'

काफी प्रयास के बाद निन्नी ने लाखी की सहायता से उस बड़े सुअर को पीठ पर लाद लिया! नदी के किनारे-किनारे वे दोनो चौथे पहर के पहले ही गांव में आ गईं। निन्नी ने सुअर को अपने घर में उतार लिया। कुछ लोग गांव में थे और कुछ गांव के बाहर, वे सब आ गये। अरने भैंसे का ठौर ठिकाना बतला दिया गया। उसको उठाने के लिये पांच छः चले गये। लाखी अपने घर जाने को हीं थी कि एक स्त्री ने आकर लाखी को समाचार दिया, 'तुम्हारी माँ को लू लग गई है। घर पर अचेत पड़ी है।'

लाखी और निन्नी दौड़ी गईं।

[८]

जब वे दोनो घर पहुँचीं तो उन्होंने बुढ़िया को अचेत नहीं, मरा हुआ पाया। लाखी बिलख-बिलख कर रोने लगी। निन्नी भी रोई, परन्तु लाखी को अधिक विह्वल देखकर सम्भल गई।

लाखी कह रही थी, 'अब मेरा कोई नहीं रहा।'

निन्नी ने समझाया, 'हम लोग हैं। जन्म भर साथ नहीं छोड़ेंगे।'

और स्त्रियां भी आ गईं। उन्होंने समझाया–बुझाया।

एक ने कहा, 'जब हम सब पहाड़ की कन्दराओं में समय काट तब यदि मां सिधार जाती तो रो भी न पाते कि हल्ला सुनकर क...... पर न आ जाय। जहां हम लोग जियेंगे-मरेंगे, वहीं तुम भी। रोना-पीटना बन्द करो! गाय को पालती-पोसती रहो, अन्न थोड़ा सा घर में है ही, न होगा तो थोड़ा-थोड़ा सब लोग देंगे। और फिर जङ्गल लगा हुआ है। भगवान देंगे।'

अटल आ गया। उसने भी समझाया। बुढ़िया के दाह की तैयारी हुई, उधर से अरने को लट्ठों पर लादकर कुछ लोग ले आए। अटल उसकी चीर-फाड़ का प्रबन्ध करके बुढ़िया को दाह के लिये ले गया।

दाह करके जब अटल लौटा, रात हो गई थी। उसके बाद अन्य स्त्रियों के साथ लाखी नदी में स्नान करने गई! लौटकर जब घर आई तब घर को सूना पाकर फिर रोई।

निन्नी ने अनुरोध किया, 'कहो तो हम लोग यहाँ आ लेटें, चाहो तो उस घर में चली चलो। यहां अँधेरे सूने घर में तुमको अकेली कदापि नहीं रहने दूँगी।'

अटल ने भी हठ किया।

लाखी ने सोचा इस प्रकार उस घर में पहुँचना लिखा था भाग्य में! परन्तु वह विवश थी। सूना घर भायं–भायं सा कर रहा था। मौत के घर में वह अकेली नहीं लेटना चाहती थी। परन्तु माँ के मरते ही अटल के घर जाना—बड़ी विडम्बना होगी।

अटल ने उसको चुपचाप विसूरते हुये देखकर आंगन से गाय को खोला।

बोला, 'निन्नी तुम इनको लेकर बर्तन-भांड़ों सहित आ जाओ!'

लाखी इन्कार नहीं कर सकी। अटल गाय को लेकर अपने घर चला गया।

गाँव के कुछ लोगों ने सोचा, 'यह गाय को हथिया ले गया और लड़की को भी फांस लेगा?'

निन्नी उसके थोड़े से अनाज का वहीं प्रबन्ध करके बर्तन–भांड़े लेकर जो थोड़े ही थे—लाखी को अपने घर लिवा लाई।

गांव वाले सुअर और अरने के चीरने में लगे रहे। गांव भर को कई दिन के भोजन का प्रसाधन मिल गया। लाखी को भैंसे की खाल।

निन्नी ने लाखी को खिला-पिला कर अपने पास लिटा लिया। लाखी को नींद नहीं आ रही थी। ध्यान कभी मृत माता की ओर, कभी सुअर के लक्ष्यवेध और कभी अरने भैंसे की उन आंखों की तरफ जा रहा था।

एक बार उसने सोचा, 'यदि अरना भैंसा कम घायल होता और टीले पर चढ़ आता तो मां बेटी का दाह एक साथ ही होता! क्या मैं भी मर जाऊँ? क्यों मर जाऊँ? क्यों ऐसे ही मर जाऊँ? कुछ जीकर अच्छी तरह जीकर क्यों न मरूँ? सबको मरना है परन्तु जीवन का कुछ देख-सुन कर ही मरना चाहिये।'

निन्नी ने सोचा, लाखी दुखी है। बोली, 'लाखी, मैंने तुमसे आज बहुत बक-बक की। मुझको क्षमा कर दोगी? आगे कभी तुम्हारे मन को दुखाऊँ तो मेरी जीभ काट कर फेक देना।'

'नहीं मेरी निन्नी' लाखी ने कहा और सिसकने लगी। अटल ने उस सिसक को सुना।

गंभीर स्वर में बोला, 'चाहे संसार इधर का उधर हो जाय, चाहे मेरी बोटी-बोटी कट जाय, तुमको कभी कष्ट नहीं होने दूंगा, लाखी।'

'मैं भी यही कहना चाहती थी', निन्नी ने कहा।

लाखी की सिसकी बन्द हो गई। उसने धीरे से कहा 'मुझको भरोसा है।' सोचा—इसी घर में इस तरह से आना था।

गांव वालों ने चटपट चीरफाड़ करके सुअर को बाँट लिया, अटल को बांट में अधिक भाग मिला। अटल को निन्नी के बल और निशाने का बड़ा गर्व हुआ। वह यह नहीं भान कर सकता था कि दुर्बल छरेरी लाखी भी कुछ कर सकती है—अरने भैंसे को गिरा सकती है!

अरने की खाल का बहुत मोल है। बदले में काफी अन्न मिलेगा। बहुत दिनों गुजर होगी। उसने सोचा और तुरन्त ग्लानि के साथ अपनी भर्त्सना की—उस खाल का मैं यह उपयोग करूँ! धिक्कार है!! एक गरीब लड़की ने अपनी जान जोखों में डाल-डालकर इतना बड़ा पराक्रम किया, मैं सियार की तरह ताक-झांक लगाकर चोरी करूँ!! राम राम!!! खाल पूरी की पूरी उसकी। मैं एक चिन्दी भी उसमें से न लूंगा। उसके पास जूते नहीं हैं, नङ्गे पैरों गाय चराने के लिये जायगी और नंगे पैर जङ्गली पशुओं का सामना करेगी। अन्न भी उसके पास कम ही है। खाल का पूरा लाभ भी उसी का रहेगा। बल्कि, अन्न में अपना खिलाऊँगा। उसका रक्खा रहेगा, जिससे उसके लिये खेती करूँगा।'

दूसरे दिन उसने लाखीं को उदास देखा। निन्नी उसके पास ही थी। ग्वालियर से लौटकर आये हुये पुजारी की बातों को उसने दुहराया।

कहा, 'निन्नी का नाम चारों दिशाओं में फैल गया है कि बड़ी लक्ष्य-वेधिन है। अब तुम्हारा भी फैलेगा, लाखी।'

निन्नी मुंह चिढ़ाकर बोली, 'तो क्या मिल जायगा हम लोगों को ?'

अटल कहता गया, 'अब और कीर्ति फैलेगी कि हमारी निन्नी भारी से भारी सुअर को अकेली पीठ पर लाद लाती है। ग्वालियर से राजा मानसिंह आयेंगे कभी शिकार खेलने, तब देखेंगे वह अच्छा तीर चलाते हैं या निन्नी और लाखी !'

लाखी की उदासी में से वाक्य फूटा, 'राजा सुअर को पीठ पर अकेले उठा लायेंगे डाँग में से ?'

[९]

तैमूर के प्रलयंकर विनास ने दिल्ली की सल्तनत को उतना निर्बल नहीं किया था जितना राजस्थान के राजपूत और अन्तर्वेद के किसानों के निरन्तर अनवरत भयंकर युद्धों और उत्पातों ने। दिल्ली के शासकों ने अन्तर्वेद से लेकर वङ्गाल तक के प्रदेशों को छोटे-छोटे पठान जागीरदारों में बांट दिया था। इन सब के पास, चार-चार छः छः हजार से लेकर पैंतालीस हजार तक की संख्या में सेना रहती थी। अन्तर्वेद में अकेले एक जागीरदार के हाथ में पैंतालीस हजार पठान और सात सौ हाथी थे। दिल्ली के शासक की कमर जरा ढीली पड़ी कि ये स्वतन्त्र हो जाने के ताव पर आ जाते थे। मारकाट करते रहना और जनता को सोखते रहना तथा उस शोषण के सहारे ऐश आराम करना ही इनमें से अधिकांश का उद्देश्य रहता था। राजपूत परस्पर की प्रतिहिंसा और लड़ाई से अवकाश ही कम पाते थे इसलिये इनके अक्षुण्ण बने रहने में इने-गिने ही विघ्न थे।

मेवाड़ उन थोड़े से राज्यों में था जो कम से कम, अपने जनपदों की रक्षा के लिये सदा व्यग्र से बने रहते थे। गुजरात और मालवा के पठान शासकों से मेवाड़ का प्रायः युद्ध चलता रहता था। मेवाड़ को कभी-कभी दिल्ली के शासकों की भी भिड़न्त ओढ़नी पड़ती थी। मालवा के महमूद खिलजी को पराजित करने के उपरान्त राणा कुम्भा ने चित्तौड़ में कीर्ति स्तम्भ बनवाया, तो महमूद खिलजी ने मन की जलन को शान्त करने के लिये मांडू में सतखंडा महल बनवाया। जौनपुर के शासकों का राज्य बुन्देलखण्ड के उत्तरवर्ती क्षेत्र, कालपी तक था। महमूद खिलजी ने मेवाड़ या गुजरात में गुन्जाइश न देख कर कालपी पर चढ़ाई करदी और उसको अपनी सल्तनत में शामिल कर लिया।

महमूद खिलजी के मरने के बाद उसका पुत्र गयासुद्दीन उत्तराधिकारी हुआ। इसके समय में कालपी हाथ से चली गई परन्तु उसको फिर से

अधिकृत करने की हविस ग़यासुद्दीन के मन में सदा बनी रही। ग़यासुद्दीन ने मेवाड़ के साथ संधि कर ली। बड़ी संख्या में राजपूत मालवा में रहते थे। उसने इनके साथ अच्छा वर्ताव करना शुरू किया। आशा करता था कि इनकी सहायता से गुजरात और दिल्ली का भी मुकाबला कर लूंगा।

कालपी दिल्ली के अधीन हो गई थी। उसको विश्वास था कि मेवाड़ और दिल्ली की टक्कर के समय कालपी पर आक्रमण कर देने से काम बन जायगा। परन्तु उसका स्वभाव अधीर, उद्धत, कामुक और कपटप्रिय था। मदिरा पीने पर वह सहज स्वाभाविक मानव सा हो जाता था। पीता अधिक नहीं था परन्तु पी लेने पर उसकी मानवीयता उपेक्षण और हास्य-प्रियता तथा कामुकता बढ़ जाती थी। हिन्दुओं के साथ वह अत्याचार नहीं करता था। कट्टरता का वह मजाक उड़ाया करता था—शराब पीने पर—इसलिये मुल्लावर्ग उससे रुष्ट रहता था। कामुकता के अन्वेषन में वह पुरुष और स्त्री की पहिचान नहीं रखता था और न खाई खड्डों की परवाह करता था।

चवालीस पैंतालीस साल की आयु थी। लड़का नसीरुद्दीन पच्चीस वर्ष का जवान था परन्तु उसका स्नेह एक ख्वाजा के ऊपर सबसे अधिक था। नसीर को मुल्लाओं से घिरवा रक्खा था। नसीर मुल्लों के राजकीय प्रभाव को जानता था। उसको नमाज़ और रोजों से इतना प्रेम नहीं था जितना उस भविष्य का जिसकी वह बाट देख रहा था और जिसको वह मुल्लों के और उनसे प्रभावित तथा प्रेरित मुसलमान सरदारों के हाथ में देखता था। ग़यास ने सोचा नसीर को मुल्लों के सुपुर्द करके मुल्लों और नसीर–दोनों––से छुट्टी पाई, परन्तु वह यह न देख सका कि किसी दिन 'नमाज छुटाने गये और रोजे गले पड़े' की कहावत चरितार्थ होगी; 'अभी तो चैन से गुजरती है' का वह क़ायल था। उन दिनों नसीर के पर निकले भी न थे।

बादल घिर आये। प्रचंड वेग के साथ पानी बरसने लगा। माँडू की रूखी-सूखी पहाड़ियां हरी-भरी हो गईं। नदी नालों ने किनारों की

मर्यादा छोड़ दी। मालवे का पग-पग रोटी डग-डग नीर तो विख्यात ही है, अब अंगुल-अंगुल पर पानी भरने और समाने लगा।

महल के नीचे का कालियादह-सरोवर पानी, बादलों की बूंदों और पवन के प्रचण्ड झकोरों से उतावला सा हो उठा। सन्ध्या का समय था, परन्तु जान पड़ता था जैसे रात हो गई हो।

निजी कक्ष की बारहदारी में खिड़की के पास तख्त पर रंग-बिरंगे गुलगुले, रेशमी मसनद और तकियों में डूबा हुआ-सा ग़यासुद्दीन बैठा था। खवासिनें रत्नजटित सोने की सुराही और कटोरे लिये खड़ी थीं, नीचे उसका मुंह लगा ख्वाजा मटरू बैठा हुआ। एक दो कटोरों को चूस कर उसने खवासिनों को विदा कर दिया। खिड़की से ठण्डी हवा के झोंके पर झोंके आ रहे थे। ग़यास को फुरेरी आई।

'ऐसा रूप तो कहीं कभी देखा नहीं खुदावन्द नियामत।' ख्वाजा ने आँख नीची करके अर्ज की।

'कैसा म्यां ?' खिचड़ी बालों वाली दाढ़ी को हिलाकर और खिचड़ी बालों वाली मूछों पर एक उँगली फेरते हुए गयासुद्दीन ने पूछा।

'ग्वालियर से नजदीक पर, एक गांव में।'

'किस गाँव में ? ग्वालियर से कितनी दूर ? कौन हैं ये ?'

ख्वाजा ने बतलाया।

'अब तक क्यों नहीं जाहिर किया तुमने ? इन दिनों इस मौसम में तो वे दोनो यहाँ पहलू में होनी चाहिये थी।' ग़यास ने व्यग्रता प्रकट की।

ख्वाजा मटरू ने व्याख्या की,—'जहाँपनाह, देहात में ऐसी ख़ूबसूरती नहीं पाई जाती है, इसलिये जब पहले पहल सुना तो यकीन नहीं किया, फिर सरकार उन मुल्ले मौलवियों की उलझन और दूसरे राजकाज में उलझ गये।'

'जहन्नुम में जायं मुल्ले-मौलवी। मेरा बस चले तो सारे के सारे फ़िरके को हिन्दुओं के बैकुण्ठ में पहुंचा दूं, जहां करते रहें बहस कयामत

तक परियों और फ़रिश्तों से। खैर, बरसात खतम होते ही कालपी पर धावा करना है, ज़रा दाएँ होकर ग्वालियर के करीब से निकल चलेंगे। उनका कुछ और हाल सुनाओ।'

'एक गूजर है, दूसरी अहीर। दोनों शिकार खेलती हैं। तीर चलाती हैं।'

'काहे का शिकार खेलती हैं? किस चीज़ के बान चलाती हैं? नज़र के न? तीखी चितवनों के? तू भी मटरू शायर है।'

'नहीं जहांपनाह, यह शायरी नहीं है। सीधी-सच्ची बात है। जङ्गली जानवरों का शिकार खेलती हैं और लोहे के लम्बे तीर चलाती हैं।'

'तोबा! तोबा!! और वे खूबसूरत भी हैं!!! कहां की हांक रहे हो? कहीं नशा तो नहीं कर आये, ख्वाजा?'

'नहीं आलमपनाह। जिन लोगों ने देखा है वही अर्ज कर रहा हूँ। दोनों गांव के गरीब घर की छोकरियाँ हैं। खाने को नहीं जुड़ा तो शिकार से गुजर-बसर कर उठीं। कपड़े पहनने को नहीं। मड़ैया पर सिर्फ फूस, जिससे बरसात की मूसलाधार थोड़ी सी ही बच सकती है। पैर में जूते नहीं।'

'बिचारियों के फफोले पड़-पड़ आते होंगे!'

'अकसर शिकार नहीं मिलता तो जङ्गल के कन्द वन्द से पेट भरती हैं। फटे कपड़ों में पैबन्द नहीं लगा पातीं तो जंगली पेड़ों के पत्तों से तन ढक लेती हैं। हुजूर ने एक बार उस काफिर शायर कालिदास की शकुन्तला का जैसा जिकर सुना था वैसा ही।'

'यहाँ कोई मुल्ला मौलवी तो बैठा नहीं है जो तुम कालिदास को काफिर कहो। वाह! क्या शायर था! शायर नहीं, शायरों का जौहर था। दुनियां के किसी भी पर्दे पर ऐसा शायर नहीं हुआ।' ग़यासुद्दीन का गला भर आया और आँखें गीली हो गई। ख्वाजा ने समझ लिया कि मुराहों की नियामत ने अपनी गोद में समेट लिया है।

ख्वाजा बोला, 'आलमपनाह, नाम भी उनके बड़े मिठास भरे हैं ! गांव में जिसको निन्नी कहते हैं, उसका असली नाम मृगनयनी है और दूसरी जिसको लाखी कहते हैं असल में लाखारानी है।'

'उनके कोई और है ?'

'एक भाई है उनका। कुछ ऐसा-वैसा ही नाम है उसका ! बहुत ग़रीब है।'

'मालामाल कर देंगे। कुछ दे लेकर बुला न लो।'

'बन्दापरवर के मुक़ाबिले मेरा तजुर्बा नहीं के बराबर है। पराई सल्तनत में रुपये या ज़ेवर के लोभ-लालच से काम नहीं चल सकेगा। कालपी के ऊपर धावा करने के सिलसिले में ही यह काम बन पावेगा।'

'इस कमबख्त बरसात के लिये क्या किया जाय ? यह लो, और तेज़ी के साथ बरस पड़ा ! जैसे आसमान में छेद हो गये हों !! मैं तो आज रात ही चढ़ाई के लिये कूच बोल देता, लेकिन रास्ते में बे-हिसाब कीचड़, बड़ी-बड़ी नदियों के पूर वग़ैरह-वग़ैरह जान खा जायेंगे।'

'तब तक मैं कुछ हिकमतें लड़ाऊँगा, हालांकि उम्मेद कम है।'

'फिर भी ?'

'ख़ानाबदोश नट, बेड़िये, कन्जड़ दुनिया भर का गश्त लगाया करते है। इनके ज़रिये कभी-कभी काम बन जाता है। कोशिश करूँगा।'

'ज़रूर मेरे प्यारे मटरू। तुम आज से ही अपना काम शुरू कर दो। कहाँ हैं ये नट-बेड़िये इन दिनों ?'

'ये लोग शहर में नहीं रहते हैं। खानाबदोश हैं, कभी किसी गांव के पास, कभी किसी जङ्गल में। मैं पता लगाता हूँ।'

एक ख़वासिन खांसती हुई आई। हाथ बांधकर खड़ी हो गई, जैसे कुछ कहना चाहती हो। ग़यास ने बोलने की अनुमति दी।

'क़ाज़ी आज़म दीदार हासिल करने का फ़रमान चाहते हैं।' ख़वासिन बोली।

ग़यास ने दांत भींचे ! मन में कहा, यही वक्त मिला इसको यहां मरने के लिए ! परन्तु प्रधान क़ाज़ी प्रभावशाली व्यक्ति था। ग़यास को अनुमति देनी पड़ी। खवासिन चली गई। थोड़ी देर वाद अदव करता हुआ क़ाज़ी आ गया। ग़यास ने रुखाई के साथ आसन दिया।

इशारे से आने का कारण पूछा। परन्तु क़ाज़ी वोलने नहीं पाया और ग़यास ने कहा, 'आप जानते हैं कि यह वक्त मेरा अकेले रहने का है। ऐसे वरसते पानी में कैसे आये ? ऐसी कौन सी मुसीवत आगई है?'

'जहाँपनाह।'

'कहिये, कह डालिये। अव तो आप मेरे हुजूर में आ ही गये हैं।'

'जहांपनाह जिस मसजिद को वनवा रहे हैं उसके कारीगर एक वदमाशी करना चाहते हैं—'

'वस इतनी सी वात ! गजव ख़ुदा का !! आपके दिमाग़ में माशे दो माशे अक़्ल तो होनी ही चाहिये।' प्रधान क़ाज़ी को वहुसँख्यक पठान सरदारों की श्रद्धा प्राप्त थी और नसीरुद्दीन उसके क़दमों में सिर रखने को तैयार रहता था। क़ाज़ी ज़रा तेज़ पड़ा।

'जहांपनाह, कारीगरों ने मसजिद के सदर दरवाज़े, वाज़ू के लिये जो पत्थर तैयार किये हैं उनमें वेलवूटों, पत्तियों और फूलों की पच्चीकारी के साथ चिड़ियों और वन्दरों की मूरतें नक्श कर दी हैं। मना करने पर भी नहीं मानें। कल वड़े सवेरे वे इन पत्थरों को सजा कर ऊपर की मञ्जिल रचा देंगे। फिर मसजिद के इस हिस्से को तुड़वाना पड़ेगा जो वहुत वुरी वात होगी।'

'और कुछ ?'

'और ख़ुदावन्द यह है कि इन लोगों ने विना पूँछे-मांजे मीनार की गुम्वजों की खिड़कियां कमानीदार न वनाकर, जो ईराक का नमूना है, वँडेरीदार वनाई है जिसमें हिन्दुओं के मन्दिरों जैसे वन्दनवार रख दिये हैं।'

'और भी कुछ ?'

'हाँ, जहांपनाह। सदर दरवाज़े की गोख के लिये जालियां झरोखे, उनके ऊपर के कँगूरे, मन्दिरों के जैसे रच डाले हैं। कँगूरों के साधने के लिये मोर और घोड़ों के सिर वाले पत्थर बनाये हैं। उन्होंने इन सबों को सँजो डालने के लिये कल का दिन रक्खा है। यह सब तुग़लकी सादगी और नक़शे-नमूने के खिलाफ है: मसजिद के देखने वाले तुन्दी और बुलन्दी की जगह इस सिंगार और सजावट को देखकर गलत फहमी में पड़ जायेंगे कि यह मसजिद है या मन्दिर।'

'उसमें बुतें न हों तो भी?'

'बिला शक, जहाँपनाह।'

'किसने कहा?'

'मुल्ला और मौलवी फतवा दे रहे हैं।'

'अब तक कहां सो रहे थे ये? बहुत सा हिस्सा तो मसजिद का बन भी गया है।'

'उसमें कोई ऐसा बड़ा नुक्स नहीं है।'

'मुल्ला और मौलवियों के बाप ने भी कभी इमारतें बनवाईं थीं हिन्दुस्तान में?'

'जहांपनाह!'

'आप लोगों का एतराज, चिड़ियों, बन्दरों, घोड़ों और मोरों की तस्वीरों से ज्यादा ताल्लुक़ रखता है। है न ऐसा?'

'जहांपनाह ने ठीक फरमाया।'

'कारीगरों ने जो कुछ पुराने ज़मानों से कारीगरी के रिवाज में सीखा है, उसी को तो पेश कर रहे हैं।'

'मगर जहांपनाह, यह रिवाज ग़लत है। कुफ़्र में सना हुआ। जान बूझकर कारीगर शरारत कर रहे हैं। मना करने पर भी नहीं माने।'

'अपने मन के सलोनेपन के तकाजे से कैसे लड़ जायें वे ग़रीव? आप समझे?'

'बन्दा क्या अर्ज़ करे जहांपनाह ? मौलवी इसको खिलाफ़ फतवा देने वाले हैं।'

'कारीगरों की फितरत में कुछ मसलहत भी दिखलाई पड़ रही है।'

क़ाजी प्रश्न—सूचक दृष्टि करके रह गया।

ग़यास ने सरूर के लहजे में बतलाया, 'मोर खूबसूरत चिड़िया है सो आप लोगों में से मोर कोई भी नहीं; उसको देखते ही आप लोगों को अपनी कमी डस-डस लेगी। घोड़े का सिर्फ़ सिर दिखलाया गया है, इसलिये आपको याद आती रहेगी कि आप आधे घोड़े ह और आधे कुछ और। बन्दर की तस्वीर पेश करने में मसलहत की हद करदी उन कारीगरों ने—आप सब असल में बन्दर हैं, बिलकुल बन्दर। खिलाओ तो चपड़ चूं—चूं करें और न खिलाओ तो भी वही करें; न भले को टिकाने से रहने दें और न बुरे को! और—'

ग़यास की स्मृति और व्यङ्ग-शक्ति को सुरा के बढ़ते हुये सरूर ने झोंका दे दिया। काज़ी क्रोध के मारे तमक कर चुप रह गया। ग़यास ने ख्वाजा की ओर देखा। ख्वाजा ने सोचा बढ़ गई है।

बोला, 'जहांपनाह और सब रहने दें, उन तस्वीरों को हटवाने का फरमान दे दें।'

ग़यास ने सहमति का सिर हिलाया। कहा, 'अच्छा ऐसा ही करो और मौलवियों से कह दो कि फ़तवे को बस्ते में बन्द करके रख दें और अक़्ल को ज़्यादा घास न चरने दें।'

क़ाज़ी अदब करने के बाद चला गया।

सुल्तान ने खाना मँगाने का आदेश किया। ढले हुये स्वर में ख्वाजा मटरू ने कहा, 'उस काम की जल्दी करना है।'

[१०]

भारत के पहाड़, जङ्गल, नदी–नाले, विस्तृत क्षेत्र और लम्बे–चौड़े अन्तर, अनगिनत छोटे-बड़े राज्यों की संख्या और जनपदों के खण्डों की भिन्नता को बढ़ाने में सदा से सहायक रहे हैं; परन्तु एक छोर के विचार और मत को दूसरे छोर तक पहुँचाने में न तो वे और न उनके उत्पादन अनेक छोटे–बड़े राज्य, रजवाड़े और भिन्न–भिन्न जनपदों के सीमाबद्ध संकुचित खण्ड कभी बाधक हो पाये हैं। शंकर उत्पन्न हुये सुदूर दक्षिण में और अपने विरोधी को हराने को तथा अपने मत के प्रचार के लिये भी, पहुँच गये काश्मीर! चैतन्य हुये दूरवर्ती बङ्गाल में और उनके मत के प्रचारकों ने अपना संस्थान बनाया वृन्दावन में!! तक्षशिला का ब्राह्मण काञ्ची के विद्यालय में और काञ्ची का काश्मीर और काशी में!!! गङ्गा और गोदावरी का नाम उतर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम के छोर–छोर तक, घर–घर में, जङ्गल में, पर्वत की कन्दराओं में—मानो हिमालय, विन्ध्याचल, सह्याद्रि सब एक ही थैली के चट्टे–बट्टे हों।

उस युग के हिन्दू को तीर्थयात्रा के लिये, प्राणों की बाजी लगाकर एक छोर से दूसरे छोर पर पहुँचने के लिये कम से कम छः महीने लग जाते थे। घर वाले जानते थे कि गया को गया सो गया। परन्तु बड़े समाचारों और किसी विशेष मत की व्याख्या को एक सिरे से दूसरे सिरे तक पहुँचने में पन्द्रह दिन लग जायें तो बहुत समय लग गया। कभी-कभी काश्मीर का कोई बड़ा महत्वपूर्ण समाचार तो रामेश्वर दस दिन में ही पहुँच जाता था। इस मुँह से उस मुँह, इस गांव और नगर से उस गांव और नगर। भारतीय जन आसानी के साथ इधर–उधर की लम्बी यात्रा नहीं कर पाता था परन्तु भारतीय समाचारों के लिये नदी–नाले, जंगल-पर्वत, मानो कोई अड़चन ही नहीं रखते थे।

ग्वालियर से सिकन्दर लोदी के चले जाने का समाचार फैल गया, कुँओं के सड़ा डालने की बात रुकी न रही और निन्नी का एक तीर से

बड़ी-बड़ी खीसों वाले सुअर का मारना और कन्धों पर एक भारी भरकम सुअर को 'कोसों की दूरी से अपने घर उठा ले आना' तथा अरने भैंसे का लाखी के द्वारा 'बांस के तीर से ही' मारा जाना दूर-दूर तक थोड़े से ही समय में विख्यात हो गया। खबर मालवा की राजधानी माँडू, मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़, गुजरात की राजधानी अहमदाबाद पहुँची। और भी अन्यत्र स्थानों पर। साथ ही प्रसिद्ध हुआ उन दोनों युवतियों का 'अप्रतिम', 'अद्वितीय', 'असाधारण', सौन्दर्य और लावण्य भी।

देखने के लिये और सम्भव हो तो संग्रहण के लिये भी राजाओं और सामन्तों का जी ललचाया। दीदार के लिये और मुमकिन हो नहीं सहज भी है उन दोनों को पकड़ कर हरम में दाखिल कर लेना-मालवा और गुजरात के सुलतानों के दिल की धड़कने बढ़ीं। अप्सरायें उनकी लुनाई के सामने कुछ नहीं। परियाँ उनकी खूबसूरती के सामने नाक रगड़ती हैं—पर लगा-लगाकर बात फैली। बड़े घराने की हिन्दू स्त्री तो घूंघट डालकर भीतर बैठना और कुसमय आने पर चिता में जलकर खाक होना जानती है। ये दोनों अवश्य इन्द्र के किसी अखाड़े से नीचे उतर आई हैं! तब तो शेर तेंदुये, सुअर और अरने भैंसे को बाँस के तीर से मार गिराती हैं।

गुजरात का सुलतान महमूद बघर्रा तो इस समाचार को सुनकर बेताब ही हो गया।

गुजरात की राजधानी अहमदाबाद को बसे पचहत्तर वर्ष से ऊपर हो गये थे। यहाँ चौदहवीं शताब्दि के अन्त में तैमूरलङ्ग ने दिल्ली में एक लाख हिन्दू और एक लाख मुसलमानों का तथा दिल्ली के सेना-नायकों और सरदारों का वध किया। वहाँ गुजरात, मालवा, जौनपुर, बङ्गाल स्वभावतः स्वतन्त्र हो गये। गुजरात का पहला स्वतन्त्र सुलतान अहमदशाह था। वह घोर न्यायी था। उसने एक हत्या के अपराध में अहमदाबाद की सड़क पर अपने दामाद के टुकड़े-टुकड़े करवा डाले थे और हिन्दू सामन्तों

को अपना धर्म दे देने या सिर दे डालने के सिवाय और कोई मार्ग तो वह कभी देता ही न था।

परन्तु गुजरात के महान प्राकृतिक सौन्दर्य का उसके पाषाण-हृदय पर भी प्रभाव पड़ा। हरे-भरे विशाल वन, लहलहाते हुये खेत, लहराती हुई नदियाँ, मधुर बोली और मृदुल नारी। उसने अहमदाबाद में एक बड़ी मसजिद और मनोहर महल बनवाये। चौड़ी तरङ्गिणी साबरमती के किनारे असवल को अहमदाबाद में परिवर्तित और परिवर्धित कर दिया और मसजिद के रूप में गुजरात की हरियाली, सुन्दरता, चमक-दमक, मधुरता और मृदुलता साकार कर दी। उसका हृदय पिघल कर जितना सीधा रह गया था, उतनी सिधाई-सादगी मसजिद के मुहानों और पार्श्वों में साकार हो गई और गुजरात का प्राकृतिक, विभूतिमय, चमत्कारपूर्ण सौन्दर्य अनजाने ही मसजिद के अनुपात बेलबूटों और पच्चीकारी में मूर्त हो गया था। महमूद बघर्रा इसी अहमदशाह का पौत्र था और इसी मसजिद के निकट साबरमती के किनारे वाले महल में रहता था।

महमूद बघर्रा साढ़े तीन हाथ से अधिक ऊँचाई का था परन्तु चौड़ा इतना था कि बौना मालूम होता था। इस समय आयु उसकी लगभग पैंतालीस वर्ष की थी। मूछें इतनी लम्बी कि सिर पर उनकी गांठ बांधता था और दाढ़ी नाभि के नीचे तक फटकार मारती थी।

सवेरे हाथ-मुंह धोकर बारहदरी की दालान में तख्त पर आ बैठा। नौकर कलेवा ले आये। डेढ़सौ पके केले, सेर भर शहद और सेर भर मक्खन यह रोज का कलेवा था। किसी दिन रात में जागने के कारण कुपच हो गया तो केले केवल सौ। शहद और मक्खन की तौल में कोई कसर नहीं।

महमूद ने कलेवे पर हाथ साफ करने शुरू कर दिये। ढेर गायब होने लगे। समाचार देने और आदेश लेने के लिये प्रधान जासूस सरदार और खबर-नवीस हाजिर हो गये। अब सिर नवाये हाथ जोड़े खड़े थे। कलेजे में धड़कन, होंठों पर कड़ी मुहर।

अलिफ़ लैला में उन्होंने सिन्दवाद और जिन्न के किस्से पढ़े थे; वे सब उनको सच प्रतीत हुये। कलेवा अभी समाप्त नहीं हुआ था। समाप्ति के पहले उसको सवेरे का पूरा काम कर डालना था।

एक केले के दो कौर करने के बाद बघर्रा ने प्रधान जासूस की ओर मुँह फेर कर 'ऊँघ' की। जैसे वादल गरज गया हो! जासूस ने कांपते हुये सिर उठाया। आंखें नीची किये हुए बोला, 'मालवा के सुल्तान ग़यासुद्दीन खिलजी—'

बघर्रा के मुँह में आधा केला एक तरफ था, आधा गले से नीचे उतर जाने की जल्दी में। आधा मुँह खाली था। उसी दिशा से दबी हुई कड़क निकली—'सुल्तान नहीं है वह नामाक़ूल। गुलाम खानदान का खिलजी है। कहो उसकी बाबत क्या कहना है?'

कांपते हुये कण्ठ को संभालकर जासूस ने कहा, 'जहांपनाह, ग़यासुद्दीन खिलजी की दोस्ती मेवाड़ के क़ाफिर राना के साथ ज्यों की त्यों चल रही है। मेवाड़ के राना ने दिल्ली के सुल्तान—मैं भूल गया, बख्शा जाऊं—दिल्ली के सिकन्दर लोदी की फ़ौज को हरा दिया है।'

बघर्रा के मन्तव्य को सुनाने के लिये जासूस ठहर गया। कुछ एक छोटे केले को समूचा मुँह में डालकर बघर्रा बोला, जैसे किसी नाले ने प्रवाह के जोर से बाँध को फोड़ डाला हो,—'एक मूजी ने दूसरे मूजी को मारा। कहते जाओ। ग़यासुद्दीन आजकल क्या कर रहा है?'

जासूस ने बतलाया,—'जहांपनाह, वह एक खूबसूरत ख्वाजा लोंडे के बहुत कहने में है।'

'अच्छा है। मरेगा। और आगे?' बघर्रा बोला, जैसे जमीन के नीचे से दरार में होकर भूकम्प बोला।

जासूस अनुमान से कुछ सम्भाव्य को भी कहता गया, 'ग़यासुद्दीन फ़ौज की बढ़ती कर रहा है। ग्वालियर पर चढ़ाई करना चाहता है, क्योंकि ग्वालियर के पास राई नाम के गांव में दो बहुत खूबसूरत हिन्दू लड़कियां हैं जो शिकार खेलती हैं, जङ्गली भैंसे, शेर, सुअर, तेंदुये, रीछ वगैरह को

एक-एक तीर से ही मार गिराती है। ग़यासुद्दीन इन लड़कियों को मांडू ले आना चाहता हैं।'

'ह! ह!! ह!!! ह!!!! ह!!!!!' बघर्रा हँसा। हँसी के साथ ही केले के अध-चबाये टुकड़े फिक कर दूर जा पड़े। दरबारियों को वह हँसी ऐसी जान पड़ी जैसे धरती फट पड़ी हो। जासूस बग़लें झांकने लगा। काटो तो खून नहीं! न मालूम अब क्या होगा।

बघर्रा ने हँसी को रोका और एक बड़े केले के टुकड़े को मुंह में डाला। चबाते हुये कहा, 'कहां की दास्तान बना लाये हो? खूबसूरत लड़कियाँ शेर और भैंसे को एक ही तीर से गिरा देती हैं। भीलनी होगी कमबख्त। काली-कलूटी खबीस!!'

जासूस प्राणों की खैर मनाता हुआ बोला, 'जहाँपनाह, एक लड़की गूजर है और दूसरी अहीर। तसदीक़ करली है। दोनो बहुत हसीन हैं।'

बघर्रा गम्भीर हो गया। खाते-खाते सोचने लगा, ऊँची जात की हिन्दू लड़कियां और वे भी इतनी हसीन शिकार खेलती हैं!

केले समाप्त करके बघर्रा ने सेर भर शहद केलों के पाचन के लिये पेट में पहुँचाई। कुछ न कुछ पेट में दोपहर के भोजन तक बना रहे इस लिये ऊपर से सेर भर मक्खन भीतर डाला। इन सब को हल करने के लिये एक सुराही पानी पिया। फिर सात-आठ पान दाँतों के नीचे दाबे। नौकर छिलके और थाल उठाकर चले गये।

बघर्रा ने तकिया के सहारे पड़कर दाढ़ी पर हाथ फेरते हुये कहा, 'बहमनी सल्तनत की कोई नई खबर?'

जासूस ने चैन की सांस लेकर उत्तर दिया, 'मुहम्मद गवाँ के क़तल के बाद से दक्खिनी और विलायती फ़रीकों में द्वन्द और भी बढ़ गया। बहमनी सल्तनत की टूटन-फूटन से नई सल्तनतें बन रही हैं। विजयनगर का राजा उनसे लड़ता रहता है?'

'मालूम है।' बघर्रा ने कहा जैसे जाती हुई आँधी किसी बड़े पेड़ को एक बड़ा सपाटा दे गई हो,—'लेकिन बहमनी सल्तनत के बाजुओं में इतनी ताक़त हमेशा बनी रहेगी कि विजयनगर के राजा को पछाड़ती रहे, रह गया मालवे वाला सो वह बहमनियों का कुछ बिगाड़ नहीं सकता। मैं उसका होश जल्दी ठिकाने लगाऊँगा। पुर्तगाली क्या कर रहे हैं ?'

'जहाजी ताकत को बढ़ाने में लगे हुये हैं। उन्होंने पांच जहाज नये तैयार करवाये हैं।

'कोई फ़िकिर नहीं। खबरनवीस, तुर्की के सुल्तान आजम खलीफ़ा शरीफ़ को लिखो कि तैयार रहें। तुर्की और गुजरात की ताक़त पुर्तगालियों पर बेपनाह कहर बरसावेगी।'

'जहांपनाह।'

'मांडू पर चढ़ाई बरसात में की जावेगी। बादल की बिजलियों और नदी नालों के पानी के भरोसे जब गयासुद्दीन मांडू के बिल में घुसा होगा तब मैं अपनी बिजलियां मालवे पर कड़काऊँगा—बरसाऊँगा। तैयारी को बढ़ाओ।'

'जो हुक्म जहांपनाह।'

'फ़िलहाल कहीं भी तो लड़ना है।'

'हुक्म जहांपनाह ? चम्पानेर के आस-पास राजपूत फिर सिर उठाने लगे हैं।'

'अभी सात बरस भी नहीं हुये हैं कि जब मैंने सब का क़त्लेआम करवा दिया था। इसको इतनी जल्दी भूल गये ये लोग !'

'बहमनी सुल्तान ने काञ्ची के सारे मन्दिर तोड़ दिये थे, वहाँ फिर मन्दिर बनाये जाने वाले हैं।'

'उन मन्दिरों को मैंने भी देखा था, बुतों को भी। कुछ भी हो मन्दिर थे खूबसूरत। बुतों को तोड़ डालते, काफ़ी था। पत्थर को जान देने के फ़न में हिन्दुओं ने जिस कमाल को हासिल किया है, ताज्जुब होता

है। हमारे मुसलमान तो वैसी कारीगरी नहीं कर सकते। उस कारीगरी को जबान में ही अदा नहीं कर सकते, वैसा करतब कर दिखलाना तो बहुत दूर की बात है।'

दरबारी सिर झुकाये हुये चुप रहे। बघर्रा ने मनमें कहा, 'पहाड़ों, पेड़ों, फूल-पत्तियों, कोयल की कूकों और परियों की लोच-लचकों को जैसे एक साथ इन मन्दिरों के बनाव सिंगार में टाँकी और हथौड़ों से मचल-मचल कर उतार दिया हो। मैं तो देखकर ठगा सा खड़ा रह गया था और बुत भी बेपनाह खूबसूरती के। चाहता था उन बुतों को वैसे ही निगल कर पेट के किसी कोने में रक्खे रहूँ। अरे यह तो कुफ्र है! लेकिन कुफ्र अगर दिलको चैन दे तो क्या बुरा? तोबा! तोबा!! खुदा खैर करे।'

पेट पर हाथ फेर कर बघर्रा ने एक लम्बी डकार ली जैसे बरसात में कोई कच्चा मकान गिरा हो। दरबारियों को चुप देखकर उसने अपनी बात का प्रायश्चित किया,—'मन्दिर तोड़ दिये, बुत फोड़ दिये तो खैर, अच्छा ही किया। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी, जैसा कि यहां के काफिर शायर कहते है। अब उन लोगो को फिर से नये मन्दिर नहीं बनाने चाहिये। मुमकिन है कुछ मन्दिर तोड़े जाने से बच गये हों और उन्हीं को कह दिया गया हो कि नये सिरे से बनाये जा रहे हैं। तुम खुद वहाँ गये थे जासूस?'

जासूस कांप गया,—बघर्रा चाहता भी यही था,—बोला, 'जहाँपनाह मैं पुर्तगालियों की कारस्वाइयों की जाँच में लगा रहा। काञ्ची खुद नहीं जा पाया। बख्शा जाऊं।'

बघर्रा ने मुलायम स्वर में कहा,—फिर भी जान पड़ा जैसे कई फटे बांस एक साथ बज पड़े हों,—'कोई बात नहीं। मुझको इन दिनों काञ्ची या विजयनगर में दिलचस्पी नहीं है। मांडू में बहुत से हिन्दू कारीगर हैं। मुसलमान होने को वे तैयार नहीं हैं। जबरदस्ती उनके साथ की नहीं जा सकती। मांडू की चढ़ाई के नतीजे में उनको यहां

पकड़ लाऊं और मजहब बदलने के लिये न कहूँ तो दे अहमदाबाद को और भी सजा देंगे। मुल्लों और काजियों ने मेरे ख्याल की ताईद करदी है, इसलिये कोई दिक्कत नहीं। जजिये की शकल में उनकी मजदूरी में से थोड़ा सा काट लिया जाया करेगा।'

'जो हुक्म जहांपनाह। ग्वालियर में भी बहुत होशियार कारीगर हैं।'

'मांडू को पीसने के बाद ग्वालियर को भी कूटा जायगा। कौनसा गाँव है जहाँ वे दो छोकरियां रहती हैं? ग्वालियर से कितनी दूर है?'

'गाँव का नाम राई है। ग्वालियर से करीब छः कोस दूर।'

'ठीक है। बरसात में देखूंगा। आज चम्पानेर की तरफ़ दोपहर का खाना खाने के बाद कूच। जब तक हजार पाँचसौ सिर धड़ से खुली लड़ाई में जुदा न करूं तब तक चैन नहीं पड़ता।'

'जहाँपनाह।' दरबारियों ने नीचे सिर किये हुये ही क्षीण मुस्कान में भिगोकर समर्थन को प्रकट किया।

बघर्रा ने फिर डकार ली जैसे कोई बड़ी धौंकनी फटकर बोल गई हो, मानो पेट के भीतर से किसी ने दोपहर के निकट आने-जाने की इत्तिला और दोपहर के भोजन की माँग एक साथ भेजी हो।

अन्य नित्य नैमित्तिक काम की बातें करके दरबारी बघर्रा के आदेश लेकर चले गये।

'दो गोरी साँवरी सलोनी छोकरियाँ आज़ादी के साथ शिकार खेलती हैं और वे भीलनी भी नहीं हैं, हालाँकि भीलों में भी खूबसूरती देखी है। हिन्दू कारीगरों ने पत्थरों में तरह तरह की खूबसूरत औरतों को बेहिसाब तर्ज़ों और तरहों में पेश किया है। लेकिन इस किस्म की औरतों को कहीं नहीं उभारा है। अगर मिल गई तो देखूंगा। कम से कम ख्याल अच्छा है, मजेदार है। कुछ भी न मिला तो जंग की कसरत तो हाथों पैरों को मिलेगी ही। तलवार और तीर से कट कर लुढ़कते हुये सिर और धूल पर बहता हुआ खून।' बघर्रा ने सोचा।

[११]

सघन वर्षा से थोड़ा सा अवकाश मिलते ही अटल ने बँधियों वाले एक खेत में धान बो ली। पास लगे हुये एक ढलवे खेत में थोड़ी सी ज्वार, बाकी भूमि को उनारी के लिये रख छोड़ा। कुछ समय के उपरान्त धान के बीज जम निकले। जैसे ही धान कुछ बड़ी हुई खेत में फैलाकर जमा दी। बहुत पानी बरसा और खेत भर गया तो एक ओर से बँधिया को काटकर फालतू पानी निकाल दिया। दो महीने में धान खेत में लहराने लगी, ज्वार भी बड़े-बड़े पत्तों वाली और होनहार। भाई–बहिन और लाखी, तीनों खेतों की रखवाली में तत्पर थे।

खाने का अन्न समाप्त होने को आया। वन्य पशु जङ्गल में अधिक फासले पर खिसक गये। खेतों को रखाना था और पेट भरना था। रखवाली के लिये एक मचान धान के खेत पर था और दूसरा जङ्गल के किनारे ज्वार की रखवाली के लिये। जानवर बिचक गये थे और रात में कभी इस पहर और कभी उस पहर आ जाते थे। दिन में मिलते बहुत कम थे। जङ्गल में हरियाली इतनी अधिक हो गई थी और झाड़ ऐसे पल्लवित हो गये थे कि शिकार हाथ नहीं लगता था। अटल ने अपना सब अनाज खा लिया। अब केवल लाखी का रह गया था। लाखी की और अपनी गाय की दोहनी पर उन तीनों की गुजर हो नहीं सकती थी। पानी कभी-कभी इतना बरसता था कि दिन में घर से ही निकलना दुस्सह हो जाता था। रात में बदली और पानी के कारण इतना अँधेरा छाया रहता था कि जङ्गली जानवरों को चिल्ला-चिल्लाकर भगाया तो जा सकता था परन्तु तीर से उनका शिकार नहीं किया जा सकता था।

लाखी के अन्न को छूने से अटल का प्रण इनकार कर रहा था। तो अब क्या खावें? गांव के लगभग अन्य लोग भी इसी परिस्थिति में थे। उनसे कुछ नहीं मिलता था। आई नदी में से मछलियां भी नहीं पकड़ी जा सकती थीं।

पकड़ लाऊं और मजहब बदलने के लिये न कहूँ तो दे अहमदाबाद को और भी सजा देंगे। मुल्लों और काजियों ने मेरे ख्याल की ताईद करदी है, इसलिये कोई दिक्कत नहीं। जजिये की शकल में उनकी मजदूरी में से थोड़ा सा काट लिया जाया करेगा।'

'जो हुक्म जहांपनाह। ग्वालियर में भी बहुत होशियार कारीगर हैं।'

'मांडू को पीसने के बाद ग्वालियर को भी कूटा जायगा। कौनसा गाँव है जहाँ वे दो छोकरियां रहती हैं? ग्वालियर से कितनी दूर है?'

'गाँव का नाम राई है। ग्वालियर से करीब छः कोस दूर।'

'ठीक है। बरसात में देखूंगा। आज चम्पानेर की तरफ़ दोपहर का खाना खाने के बाद कूच। जब तक हजार पाँचसौ सिर धड़ से खुली लड़ाई में जुदा न करूं तब तक चैन नहीं पड़ता।'

'जहाँपनाह।' दरबारियों ने नीचे सिर किये हुये ही क्षीण मुस्कान में भिगोकर समर्थन को प्रकट किया।

बघर्रा ने फिर डकार ली जैसे कोई बड़ी धौंकनी फटकर बोल गई हो, मानो पेट के भीतर से किसी ने दोपहर के निकट आने-जाने की इत्तिला और दोपहर के भोजन की माँग एक साथ भेजी हो।

अन्य नित्य नैमित्तिक काम की बातें करके दरबारी बघर्रा के आदेश लेकर चले गये।

'दो गोरी साँवरी सलोनी छोकरियाँ आज़ादी के साथ शिकार खेलती हैं और वे भीलनी भी नहीं हैं, हालाँकि भीलों में भी खूबसूरती देखी है। हिन्दू कारीगरों ने पत्थरों में तरह तरह की खूबसूरत औरतों को बेहिसाब तरफ़ों और तरहों में पेश किया है। लेकिन इस किस्म की औरतों को कहीं नहीं उभारा है। अगर मिल गईं तो देखूंगा। कम से कम ख्याल अच्छा है, मज़ेदार है। कुछ भी न मिला तो जंग की कसरत तो हाथों पैरों को मिलेगी ही। तलवार और तीर से कट कर लुढ़कते हुये सिर और धूल पर बहता हुआ खून।' बघर्रा ने सोचा।

[११]

सघन वर्षा से थोड़ा सा अवकाश मिलते ही अटल ने बँधियों वाले एक खेत में धान वो ली। पास लगे हुये एक 'ढलवे खेत में थोड़ी सी ज्वार, बाकी भूमि को उनारी के लिये रख छोड़ा। कुछ समय के उपरान्त धान के बीज जम निकले। जैसे ही धान कुछ बड़ी हुई खेत में फैलाकर जमा दी। बहुत पानी बरसा और खेत भर गया तो एक ओर से बँधिया को काटकर फालतू पानी निकाल दिया। दो महीने में धान खेत में लहराने लगी, ज्वार भी बड़े-बड़े पत्तों वाली और होनहार। भाई-बहिन और लाखी, तीनों खेतों की रखवाली में तत्पर थे।

खाने का अन्न समाप्त होने को आया। वन्य पशु जङ्गल में अधिक फासले पर खिसक गये। खेतों को रखाना था और पेट भरना था। रखवाली के लिये एक मचान धान के खेत पर था और दूसरा जङ्गल के किनारे ज्वार की रखवाली के लिये। जानवर बिचक गये थे और रात में कभी इस पहर और कभी उस पहर आ जाते थे। दिन में मिलते बहुत कम थे। जङ्गल में हरियाली इतनी अधिक हो गई थी और झाड़ ऐसे पल्लवित हो गये थे कि शिकार हाथ नहीं लगता था। अटल ने अपना सब अनाज खा लिया। अब केवल लाखी का रह गया था। लाखी की और अपनी गाय की दोहनी पर उन तीनों की गुजर हो नहीं सकती थी। पानी कभी-कभी इतना बरसता था कि दिन में घर से ही निकलना दुस्सह हो जाता था। रात में बदली और पानी के कारण इतना अँधेरा छाया रहता था कि जङ्गली जानवरों को चिल्ला-चिल्लाकर भगाया तो जा सकता था परन्तु तीर से उनका शिकार नहीं किया जा सकता था।

लाखी के अन्न की छूने से अटल का प्रण इनकार कर रहा था। तो अब क्या खावें? गांव के लगभग अन्य लोग भी इसी परिस्थिति में थे। उनसे कुछ नहीं मिलता था। आई नदी में से मछलियां भी नहीं पकड़ी जा सकती थीं।

लाखी ने कहा, 'अनाज रक्खा तो है। कुछ दिन उससे काम चलाओ।

'जब बूढ़ी माँ का देहान्त हुआ। तब मैंने प्रण किया था कि इस अन्न को तुम्हारे लिये खेत में बोऊँगा। इसलिये इसको नहीं छूना चाहता हूँ।'

'तो अपना अन्न मुझको क्यों खिलाया ?'

'तुम्हारा ही तो था वह।'

'और यह तुम्हारा और निन्नी का नहीं है ?'

'है तो पर मैंने प्रण जो किया था।'

'और मैं भी कोई प्रण कर लूँ तो ?'

'कैसा ? कौन सा ?'

'वैसा ही। समझ से काम नहीं लेते ?'

'निन्नी से भी पूछ लूँ, बाहर गई है, आती ही होगी।'

'तो मेरे कहने का कोई मोल नहीं ?'

'है। नहीं पूछूँगा निन्नी से। पर जब यह चुक जायगा तब क्या करेंगे ?'

'नदी कम हो जायगी, मछली मिलने लगेंगी और वर्षा कम हो जाने पर शिकार भी। तब तक धान और ज्वार पक उठेंगी।'

अटल ने उस सुरक्षित अनाज में से कुछ ले लिया। निन्नी जब बाहर से आई देखकर बोली, 'भैया तुमने इसमें क्यों हाथ लगाया ?'

अटल ने उत्तर दिया, 'इन्होंने कह दिया तो ले लिया। घर में आज के लिये और कुछ था भी नहीं। इन्होंने कहा यह भी तो अपना ही है।'

निन्नी ने लाखी पर व्यङ्ग की मुस्कान डाली। बोली, 'ठीक तो कहा।'

अटल बाहर चला गया। उन दोनों ने पीसना पीसा और रोटी बनाई, तब कहीं सांझ को पेट भर पाया।

रात के पहले ही वे तीनों खेतों की रखवाली के लिये चले गये।

निन्नी और लाखी धान वाले खेत के मचान पर जा लेटीं, अटल ज्वार वाले पर पहुँच गया।

रात होते ही अँधेरा छा गया। गहरी काली घटायें। आकाश में
न्द्रिमा के होते हुये भी चांदनी का नाम नहीं। एक एक कर फुहार
ड़ जाती थी! हवा चल रही थी, परन्तु मच्छर झुण्ड बांध-बांधकर
ट-टूट पड़ रहे थे। थोड़े से कपड़े, परन्तु इतने कि शरीर को ढक लें।
रीर ढका नहीं कि गरमी और पसीने के मारे ठंडक के लिये फिर,
अङ्गों को बाहर निकालना पड़ता। फिर मच्छर और फिर गरमी और
सीने का क्रम। उन दोनों को बैठ जाना पड़ा।

निन्नी ने कहा, 'कुछ बातचीत ही करें।'

लाखी बोली, 'बातचीत करने को है ही क्या? कुछ गाओ।'

'गाऊँ तो, पर मच्छर मुंह में घुस-घुस पड़ रहे हैं। जी चाहता है
ब मच्छरों को पकड़ पाऊँ तो मारकर भस्म कर दूँ।'

'सुना है, बड़े लोग राज-रजवाड़ों में इनसे बचने के लिये मछहरी
गा लेते हैं।'

मैंने भी सुना है।'

'कैसी होती होगी मछहरी?'

'क्या मालूम। जान कर क्या करोगी? लगाओगी क्या मछहरी?'

'अपने भाग्य में कहाँ लिखी है। एक अरना भैंसा मार लें तो उसकी
ाल से पहले तो दो महीने का अनाज ले लें। दूसरा मार लें तो उससे
छ कपड़े और दो मछहरियां ले लें—एक अपने लिये और दूसरी तुम्हारे
ये।'

'हां तीसरी की अटक भी क्या है। तुम्हारे और भैया के लिये एक
बहुत है।'

'फिर तुमने ठठोली की! गांव वाले यों ही अनखाये से देखते हैं,
ो तुम्हारे मुंह से ऐसी बात किसी के सामने निकल जाय तो क्या
गा?'

'बात उजागर हो जाय तो अच्छा ही है। व्याह रचा दिया जायगा।'

'गांव के पंच नहीं होने देंगे।'

'रखेली की तरह रख लें तो गांव के पंच कुछ नहीं कहेंगे, व्याह हो जाय तो मानो उन पर गाज गिर पड़ेगी।'

'मैं तो अकेली ही बनी रहूगी। किसी की रखेली बनकर रहने से पहले राई नदी में गले से पत्थर बांध कर डूब मरना भला है। तुम्हारे साथ रहकर जनम कट जायगा।'

'मैं क्या अकेले ही बनी रहूँगी?'

'व्याह करोगी?'

'करूँगी जब मन चाहेगा।'

'तुम्हारा मन या तुम्हारे भैया का मन?'

'देखा जायगा। आज की ही रात तो व्याह होना नहीं है।'

दोनों मच्छरों को भगाने मारने में लग गईं। कुछ देर बाद खेत के एक कोने पर छपछप शब्द सुनाई पड़ा। दोनों चौकन्नी होकर सुनने लगीं।

लाखी को एक आकार दिखलाई पड़ा। साफ़ नहीं निर्वरा। परन्तु उसने लोहे का एक तीर छोड़ दिया। वह आकार भस्स से हुआ। उसने दूसरा छोड़ दिया। आकार को वह तीर भी लगा। अरने भैंसे की ऊँची डिड़कार हुई परन्तु वह गिरा नहीं। भाग गया। जङ्गल में भागने की थोड़ी दूर तक आहट मिली। फिर कछ नहीं सुनाई पड़ा।

'अरना था। भाग गया,—'निन्नी ने कहा, 'तुमने बहुत उतावली कर दी।'

'खेत में जाता तो धान को रोंद डालता।' लाखी बोली।

'कितनी धान रोंद डालता? दो तीर खो दिये! बहुत बढ़िया तीर थे। तुमको कुछ सूझता थोड़ा ही है।'

'तुम गिरा लेती उसको?

'गिरा न लेती, तो तीर तो न खो देती।'

'जैसे उन दिनों चिलचिलाती दोफहरी में अरने में से दोनों निकाल-कर लौटा दिये थे; ऐसे ही सवेरे ये दोनों भी ढूंढ़कर लौटा दूँगी।'

'ढूंढ़ लिया अरने को! और लौटा दिये तीर!! अरना कोसों पर जाकर दम लेगा!!!'

'तो प्राण न खा जाओ। भोर तक धीरज धरो।'

'बड़ा घमण्ड करने लगी हो।'

'उस अरने की खाल के जूते न बनवाए होते और अनाज न ले लिया होता तो ऐसे-ऐसे न जानें कितने तीर आ गये होते मेरे पास।'

'कौन अकेले हम लोगों ने खाया वह अनाज। और जूते तो तुम्हारे ही बने थे और उनके जिनके साथ तुम्हारा जीवन बीतना है।'

'मैं खा गई वह सब।'

'अब हम लोग खा रहे हैं तुम्हारा अन्न' सो नित्य उलहना दिया करना!'

लाखी जीभ काटकर रह गई। निन्नी थोड़ी देर चुप रही परन्तु अधिक समय तक स्तब्ध रहना उसको नहीं रुच रहा था।

बोली, 'क्या-क्या लौटाओगी मुझको तुम?'

'जो कुछ लूँगी वह सब।'

'मेरे भाई को भी?'

'बात ही करना हो तो कुछ और चर्चा करो जिससे रात भर बत-बढ़ियाव होता रहे। यदि इस बात को तुमने कहा तो अभी मचान पर से उतर पड़ूँगी और अरने को ढूंढ़ने और तुम्हारे अनमोल अनोखे तीर लाने के लिये जङ्गल में चल दूँगी।'

'ओ हो हो हो! बड़ी अर्जुन पंडवा हो न।'

'अभी दिखलाये देती हूँ, मैं क्या हूँ।'

लाखी ने तलवार उठाई और धम्म से मचान के नीचे कूद पड़ी। नन्नी ने उसको नहीं पकड़ पाया। निन्नी मचान से नीचे उतरी। तब-तक लाखी नंगे पाँव कीचड़ में छप-छप करती हुई कई डग आगे निकल गई। निन्नी ने दौड़ना चाहा परन्तु वह दौड़ नहीं सकी। लाखी छरेरे शरीर की थी इसलिये उसको बाधा नहीं हुई।

'निन्नी ने चिल्लाकर कहा, तुमको मेरी सौगन्ध है, खड़ी रहो! मेरा मरा मुंह देखो जो एक पग भी आगे धरो!!'

लाखी रुक गई। निन्नी ने उसको जा पकड़ा! 'लौटो।' निन्नी ने कड़े स्वर में कहा।

'नहीं।' दृढ़ता के साथ लाखी बोली।

'तो मैं भी तुम्हारे साथ ही मरने चलूंगी।' निन्नी ने निश्चय प्रकट किया।

दूसरे खेत में सिरे वाले मचान से अटल ने कुछ सुन लिया और कुछ देख लिया। वह उतर कर इन दोनो की तरफ आया।

वहीं से चिल्लाया,—क्या बात है ?'

निन्नी ने धीरे से लाखी से कहा, 'लो अब निबटो उनसे चाहे उनके मचान पर चली जाओ।'

'तुम चाहती हो कि मैं मर जाऊँ या कहीं निकल जाऊँ; जब देखो तब लड़ा करती हो।' लाखी बोली,

'मैं ही कहीं क्यों न चली जाऊँ जिसमें तुमको काँटा न आंसे—।' निन्नी ने सोचा परन्तु कहा कुछ नहीं।

निकट आने वाले अटल की ओर देखने लगी। अटल ने पास आते ही आश्चर्य के साथ पूछा, 'यह क्या! कहाँ जा रही हो तुम दोनो नङ्गे पाँव ?'

निन्नी ने तुरन्त उत्तर दिया,'अरना आया था। तुमने नहीं देखा,दाऊ।'

निन्नी बोली, 'इन्होंने उस पर दो तीर चलाये। उसको दोनों लगे। वह डिड़का और भागा। तुमने नहीं सुना ? कहाँ थे तुम ?'

अटल ने शरमाते-शरमाते बतलाया, 'मैंने जैसे हीं पैर फैलाये, सो गया। जब तुम चिल्लाई तब आंख खुली; देखा तो तुम दोनों यहां खड़ी खड़ी कुछ बात कर रही हो। मचान से क्यों उतर आईं ?'

लाखी ने बोलने के पहले गले को साफ किया परन्तु निन्नी ने बीच में ही कहा, 'इन्होंने कहा, तीर न खो जायें, अरने को ढूंढ़ लें। और यह कूद पड़ीं। मैं रोकने के लिये लपक आई।'

'विकट हो तुम दोनों। जाओ मचान पर। तीरों की चिन्ता मत करो। कल ढूंढ़ लेंगे अरने को। जाओ।'

निन्नी ने लाखी का हाथ पकड़ कर मचान की ओर खींचा। वे दोनों जब मचान पर चढ़ गईं, तब अटल अपने मचान की ओर गया।

निन्नी ने लाखी के गले में हाथ डालकर कहा, सौगन्ध खाती हूं कि आगे फिर कभी ऐसी बातचीत नहीं करूंगी।'

'अनाथ जानकर चाहे जो कुछ कह लेती हो।'

'अपने को अनाथ कह कर मुझको डायन मत बनाओ। अनाथ तो मैं हूँ। सौगन्ध खाती हूं, अपने प्यारे से प्यारे की सौगन्ध खाती हूँ कि चाहे जो कुछ हो जाय आगे कभी नहीं लड़ूंगी।'

इस सौगन्ध के खाते ही लाखी हिलककर निन्नी से चिपट गई।

'ऐसी सौगन्ध क्यों खाई निन्नी ?' लाखी ने फफकते हुये कण्ठ से कहा।

'क्योंकि मुझको ताव जल्दी आ जाता है। इस सौगन्ध के कारण अब कभी नहीं आयगा।'

'मैं अपने सारे पुरखों की सौगन्ध खाती हूं कि तुम चाहे जैसी गालियाँ मुझको देना, मारना-पीटना, पर मैं कभी बुरा नहीं मानूंगी।'

'बस सब निबट चुका। आगे मेरी-तुम्हारी लड़ाई कभी नहीं होगी। अच्छा अब हँस दो।'

'हूँ ऊँ।'

'ब्याह करोगी न भैया के साथ ?'

'फिर वही वात ?'

'हां–हां अवश्य। में तुम्हारी पक्की ननद जो वनना चाहती हूँ, तुमको लाड़ के साथ भौजी जो कहना चाहती हूं। एक बार अपने मुंह से कह तो दो।'

'क्या मेरे हाथ की वात है ?'

'है। यदि हो तो, करोगी ?'

'करूँगी।'

'और यदि न भी हो तो ?'

'करूँगी, करूँगी तो भी करूँगी। नहीं तो कहीं मर-खप जाऊँगी। तुम्हारे भैया में हिम्मत होनी चाहिये।'

'उनमें है हिम्मत, मैं जानती हूँ।'

'तो मुझ में किसी से कम नहीं पाओगी।'

दोनों एक दूसरे से देर तक लिपटी रहीं। पसीने में भीग गईं। इतने पसीने में कि मच्छरों ने नहीं काट पाया।

लाखी ने अलग होकर कहा, 'देखती रहो कोई जानवर न आजाय।'

'कई लोहे के तीर रक्खे हैं। चलाना। मैं भी चलाऊँगी।' निन्नी ने आश्वासन दिया।

'इस अँधेरी रात में हल्ला करना तीर चलाने से कहीं अच्छा। और अधिक तीर नहीं खोना चाहती। आगे काम देंगे।' लाखी ने प्रतिवाद किया।

निन्नी हँसी,—'तुम्हारे दुल्हा तो कह गये हैं कि तीरों की चिन्ता मत करो।'

लाखी ने उसका गाल मसल दिया।

'अरी री री !' निन्नी ने हँसी के तूफान में कहा।

लाखी ने आग्रह किया, 'कुछ गाओ। तुम्हारा गला इतना मीठा है कि जब तुम गाती हो जान पड़ता है कि कोयल कूक रही हो। ज़ोर से गाओ, जानवर भी मुग्ध होकर वहीं के वहीं रह जायँ।'

निन्नी ने गाना कहीं सीखा नहीं था, कहीं-कहीं सुना था। स्वर उसका स्वाभाविक मधुरता से भरा हुआ और कान ग्रहणशील थे, बुद्धि प्रखर, इसलिये उसको कई गीत आते थे। उसने गाया। रात के अधिकांश भाग में वे दोनों गाती हँसती रहीं। सवेरे देर तक सोती रहीं।

हाथ मुँह धोने के उपरान्त वे तीनों अरने की खोज में निकल पड़े। बहुत दूर तक खांद और रक्त के चिन्ह मिले। फिर कोई पता नहीं चला। दोपहर के लगभग लौट आये। अटल और निन्नी को तीरों के खो जाने का रंज नहीं था। लाखी को कुछ था।

[१२]

गयासुद्दीन कालपी पर आक्रमण वर्षा के अन्त में करना चाहता था। ख्वाजा मटरू को उसके मन के नट बेड़िये नहीं मिले। इतने में एक दिन समाचार मिला कि गुजरात का सुल्तान महमूद बघर्रा एक बड़ी सेना लिये माँडू पर आ रहा है।

गयासुद्दीन निकम्मा नहीं था। उसने मुकाबला करने के लिये तुरन्त तैयारी कर दी। मेवाड़ को सहायता करने के लिये लिखा।

पचास वर्ष यशस्वी राणा कुम्भा ने मेवाड़ का राज्य किया था। राज्य के लोभी बेटे ऊदा ने अपने पिता को विष देकर मार डाला। उस राज्य-लिप्सा को ऊदा पाँच वर्ष ही असमर्थित और असमर्थ सन्तोष दे पाया। इस बीच में चम्पानेर के राजपूत सिर पर कफ़न बाँध कर गुजरात के बघर्रा से मरते-मिटते लोहा लेते रहे। ऊदा को राममल ने चित्तौड़ से मार भगाया। मेवाड़ को विपद-ग्रस्त समझ कर दिल्ली के सुल्तान ने चढ़ाई की। राणा रायमल ने उसको मार भगाया। गयासुद्दीन का मेमाड़ से सन्धि कर लेना इसी का परिणाम हुआ।

माँडू से सहायता की याचना आने पर मेवाड़ ने युद्ध की तैयारी कर दी। गुजरात के बघर्रा के शरीर की जितनी भूख अन्न, फल, मांस इत्यादि के लिये थी, उससे कहीं अधिक भूख और प्यास उसकी आत्मा को लड़ाइयां लड़ने और खून बहाने की लगी रहती थी। यदि उसको मनुष्य लड़ने को न मिलते तो वह हवा, पहाड़, पेड़, पत्थर किसी से भी लड़ता-भिड़ता रहता। शरीर की कराल जठराग्नि को बनाये रखने के लिये आत्मा का यह पाचक चूर्ण वह अपने लिये अत्यन्त अनिवार्य समझता था।

बरसात छीजने को आ रही थी। पानी कई दिन से नहीं बरसा था। इखरी-बिखरी बदली छितरा-छितरा जाती थी; परन्तु दिन में धूप और रात में तारे प्रायः निकल आते थे। दक्षिण की वायु वेग से चल उठी थी। परन्तु नदियां और बड़े नाले अब भी अपने उन्माद पर थे। ऊँची

नीची पहाड़ियों, पहाड़ियों और नदियों के बीच के मैदान हरियाली से लद गये थे। जंगल में कोसों तक मैदानों और पहाड़ों के पार्श्वों पर वृक्ष, विशाल चमत्कार और हरियाली से भर गये थे। पहाड़ों की चोटियों के किनारे-किनारे लहलहाते वृक्षों के पंक्तिबद्ध समूह कंगूरों पर नाचते हुये मोरों जैसे प्रतीत होते थे। उन पर इधर से उधर उड़ते हुये सुओं तोतों की पाँतें हरियाली की होड़ सी लगाती थीं। सुओं की लाल चोंचें उन पेड़ों पर उड़ते हुये लाल छींटे से जान पड़ते थे। नालों की ढी पर हरसिंगार फूल उठा था। मधुमक्खियां सनसना कर इन फूलों से अपना कुछ संग्रह कर उठी थीं।

मार्ग ऊँचे घास से छा गये। बीच-बीच में कुछ अन्तर पर रूखा गीला कीचड़ दिखलाई पड़ता था। मार्ग के दोनों ओर के बड़े बड़े झाड़ ही बतला रहे थे कि उनके बीच में मार्ग है। बघर्रा अपने पचास हजार घुड़सवारों को लिये और पाँच सौ हाथियों पर सामान लदवाये हुये माँडू की दिशा में आ रहा था। माँडू की पठार पर गयासुद्दीन उसका सामना करने के लिये उतर आया। दोनों की मुठभेड़ के लिये कई नदियों, पहाड़ों और जङ्गलों की आड़ पड़ी थी। बघर्रा अभी धार के क़िले से भी दूर था। धार माँडू से उत्तर में लगभग ग्यारह कोस है। बघर्रा धार पर आक्रमण न करके धार और मांडू की बीच की दिशा में आ रहा था।

एक जगह मार्ग लुप्त प्राय हो गया था। मार्ग-दर्शक भ्रम में पड़ गये। संध्या होने में विलम्ब था परन्तु थोड़ी ही दूरी पर बाढ़ में बल खाती हुई एक चौड़ी नदी भी पार करने को पड़ी थी। मार्ग खोजने वाला दल, सेना के सामने से इधर-उधर फैल गया। थोड़ी दूर जंगल में उनको धुंआं दिखलाई पड़ा। खोजने वाले धुंयें के पास सतर्कता के साथ पहुँचे। वहां नट-बेड़ियों का एक छोटा सा डेरा था।

नट-बेड़िये दस-पन्द्रह से अधिक न होंगे। पेड़ों की झुरमुट में थुनियों के ऊपर घास और पत्तों से कुछ झोपड़ियां छा रक्खी थीं। एक बड़े से

झोपड़े में उनके गधे, दो भैंसे और बकरियां-बकरे बंधे हुये थे। कुछ बन्दर खूंटियों से, एक झोपड़े के किनारे कमठे तीरों भरे तरकस और लम्बे छूरे रक्खे हुये थे। छोटे बच्चे डाल से टँगी हुई डलियों में थे। पाँच सात अधेड़ और जवान स्त्रियां खाना पकाने में लगी हुई थीं। पुरुष एक मारे हुये जानवर की कांटछांट में लगे हुये थे। उन सबके केश लम्बे थे। पुरुष फटी मैली धोतियां पहिने हुये थे। स्त्रियां चिथड़ों गुदड़ोदार पायजामें। ओढ़नी कोई नहीं ओढ़े थीं। उरोजों पर केवल चोली कसे हुये। कानों में जस्ते की बालियाँ और नाक में पीतल के बड़े बड़े नथ। गले में काँच के रंग–बिरंगें गुरियों की मालायें।

डेरे के चारों ओर बड़े-बड़े लक्कड़ों का घेरा था। मार्ग-दर्शकों ने निकट की ओट से समझ लिया कि कौन हैं।

'ओ रे ओ !' मार्ग-प्रदर्शकों का अगुआ उन लोगों का ध्यान आकृष्ट करने के लिये चिल्लाया। उन सबने तुरन्त देख लिया और फुर्ती के साथ खड़े हो गये। उनके चेहरों पर भय नहीं था, केवल आश्चर्य था। उनका मुखिया अधेड़ अवस्था का था। बोला, 'क्या है ?'

अगुआ ने कहा, 'गुजरात के सुल्तान की फ़ौज यहीं पास आ गई है और तुमको खबर नहीं !'

'हमको नहीं मालूम।'

'माँडू का रास्ता बतलाओ और नदी का घाट।'

'हमको नहीं मालूम'

'फ़ौज को इसी घड़ी उस पार उतरना है।'

'काहे के लिये ?'

'काहे के लिये ! तुम्हारे पुरखों को तारने के लिये। निकलता है इस बाड़े में से या हम रण-सिंगा बजाकर फ़ौज के हाथियों को तुम्हें कुचल डालने के लिये बुलावें ?'

एक युवती ने गिड़गिड़ाहट के साथ कहा,—परन्तु उसकी आँखों में कोई गिड़गिड़ाहट नहीं थी, शरारत थी,—'अरे महाराज, क्यों यों ही खाए जाते हो ? हमारा तमाशा देखो, नाच, रस्से पर ढोलकी बजाते हुये दौड़ना, कुलाँचें, एक पेड़ पर से दूसरे पर उछल कर पहुँचना, बन्दरों के खेल और अनगिनते करतब। सुन्दरिया ! अरी ओ सुन्दरिया !!' उसने झोपड़ी में बँधे हुये बन्दरों की ओर मुंह करके सम्बोधन किया। अङ्ग हिलाये और मार्ग-दर्शकों के प्रति शरारत भरी आँख चलाई।

'कितनी फ़ूहड़ है। नटनी ही तो ठहरी।' अगुआ ने सोचा।

बोला, 'यह सब सुल्तान सलामत और उनके सरदारों को दिखलाना। इनाम मिलेगी। हमको तो रास्ता बतलाओ।'

'कहां हैं तुम्हारे बादशाह और सरदार ? मैं तो दिखलाऊँगी आसमान तक का रास्ता। बल जाऊँ तुम्हारी महाराज। क्या इनाम मिलेगा ?'

'बादशाह के जो मन में आवे।'

नटों के मुखिया ने कहा, 'रास्ता तो सीधा है।'

अगुआ बोला, 'हम लोग भूल गये हैं। चलो साथ।'

उस युवती ने तुरन्त एक झोपड़ी में से अपनी ओढ़नी उठाई और जूते पहिने। नटों का मुखिया भी तैयार हुआ। कुछ नट और अधेड़ अवस्था वाली एक स्त्री भी।

अगुआ ने मुखिया से पूछा, 'तुम्हारा नाम ?'

'पोटा।'

'और इस लड़की का नाम।'

'पिल्ली।'

'स्त्रियों को साथ लाने की जरूरत नहीं है।'

'आय हाय ! तुमको जरूरत न होगी। मैं तो चलूंगी। ये रास्ता दिखलायेंगे, मैं खेल दिखलाऊँगी।'

'कहाँ के रहने वाले हो तुम लोग ?'

'इसी मालवा के।'

अगुए को उन सबों को साथ लेना पड़ा। एक कोस चलने पर अगुए ने मार्ग दिखला दिया। वहां से गुजरात की सेना की चहल-पहल कुछ सुनाई पड़ी।

मुखिया ने इनाम मांगा।

अगुआ ने नाहीं की,—'नदी का घाट तो बतलाओ।'

पिल्ली थिरक कर बोली, 'चाहे मारडालो, जब तक मैं अपना खेल तमाशा बादशाह को नहीं दिखलाऊँगी, घाट नहीं बतलाया जायगा।'

अगुआ को विवश होना पड़ा। वे सब सेना में पहुंच गये। सुल्तान महमूद बघर्रा को भूख लग आई थी। अविलम्ब हाथियों पर से तख्त उतारा गया और जोड़कर रख दिया गया। मसनद तकिए लगा दिये गये। खाना आ गया।

कलेवा के अलावा बघर्रा दिन भर में एक मन गुजराती वज़न का भोजन करता था, जो इस गये गुजरे ज़माने में बीस सेर के बराबर होता है। भोजन में रोटियाँ, मांस के नाना प्रकार के व्यंजन, दाल, शाक, दही इत्यादि रहते थे जिनको रसोइये हाथियों पर पकाते हुए या गरम रखकर चलते थे।

बघर्रा ने खाना शुरू किया ही था कि सेना के एक सिरे पर कुछ असाधारण शोर सुनाई पड़ा।

'क्या है यह ?' बघर्रा ने पूछा—जैसे कोई पेड़ टूट कर गिरा हो।

पहरेदार दौड़ गये। लौट कर बतलाया, रास्ता बतलाने वाले नट आये हैं। उनके साथ कुछ औरतें भी हैं। खेल-तमाशे दिखला रही हैं सिपाहियों को।

'लाओ इधर।' बघर्रा ने पाव भर का एक ग्रास मुंह में डालते हुये मिठास के साथ कहा—जैसे पेड़ की कोई डाल टूट पड़ी हो।

नटनी और नट बघर्रा के पास आगये। सुल्तान को नजर उठाकर देखना अशिष्टता समझी जाती थी––उसके लिये कड़ा दण्ड भी था। नट चुपचाप खड़े हो गये।

नटनियों ने, विशेषकर पिल्ली ने, देह की असाधारण लोचों-लचको से असम्भव सी कुलाँचें खानी आरम्भ कर दीं। पिल्ली ने तख्त की मसनद पर एक बड़ा सजीव ढ़ेर भर देखा और भोजन के छोटे-बड़े समूह। वह नीची निगाहों अपना खेल दिखलाती रही। बघर्रा को शरीर की ऐसी मोड़ें-मरोड़ें देखकर आश्चर्य हुआ। कुछ क्षण के लिये भोजन के ढेरों को कम करने से हाथ रुक गया।

'बहुत खूब!' बघर्रा के मुंह से निकला—जैसे किसी पहाड़ पर से चट्टान टूट कर लुड़की हो।

नट कांप गये। पिल्ली की सिट्टी भूल गई। वह अदब के साथ खड़ी होकर नीचे से ही सुल्तान को भांपने लगी। उस शरीर, दाढ़ी और मूँछ को देखकर उसके रोंगटे खड़े हो गये। सुल्तान ने पाव-पाव भर के ग्रासों से भोजन करना जारी कर दिया।

एक ग्रास को चबाते-चबाते बघर्रा बोला, 'कहां रहती हो?'

पिल्ली के कानों को प्रतीत हुआ जैसे किसी बड़े भरे हुये हौज में भैंसा कूदा हो।

बारीक स्वर में बोली, 'सरकार, माँडू के पास के एक जंगल के रहने वाले हैं हम लोग।'

'कहां जा रहे हो तुम लोग?' जैसे कोई चट्टान फटी हो।

'सरकार मेवाड़ की तरफ़।'

'क्यों?' जैसे लोहे के दो गोले आपस में टकरा गये हों।

'वहां के राणाजी और सरदारों को अपने खेल दिखलाने के लिये।'

'यहां से कब चल दोगे तुम लोग?'

'दो-तीन दिन में। बादल साफ हुआ नहीं कि चल पड़े।'

'कौन लोग हो?'

'हिन्दू और मुसलमान दोनो।'

'यह कैसे ?'

'सरकार, हम खुदा और भगवान दोनो को मानते हैं और स॰ जानवरों का मांस खाते हैं।'

'तोबा ! तोबा !!'

'मेवाड़ का राणाजी कहाँ है ?'

'चित्तौड़ में होंगे, महाराज।'

'चित्तौड़ में नहीं है। मुझ से जूझने-मरने को आ रहा है। यहां चालीस-पचास कोस की दूरी पर है। माँडू के सुल्तान को खतम करके आता हूँ उस पर भी। कह देना कि चम्पानेर का हाल किया वही उसका भी करूँगा।'

'जो हुकुम सरकार।'

'कसम खाओ।'

'खुदा की कसम।'

'भगवान की भी खाओ।'

'कसम भगवान और खुदा की।'

नट हाथ बाँध कर इनाम के लिये झुक गये।

'रास्ता और घाट दिखलाओ, इनाम मिलेगा' बघर्रा ने कहा, मानो मोटी भीगी दरी को किसी ने फाड़ा हो।

वे लोग चले गये। खाना खाने के बाद सुल्तान बघर्रा सेना समेत चल पड़ा। नटों के बतलाये हुये घाट से सांझ होते-होते वह नदी के पार हो गया और रात के लिये जङ्गल को अपना शिविर बना लिया।

सवेरा होते ही नटों ने अपना डेरा उखाड़ा और तेजी के साथ कतराते हुये मार्गों से मांडू की दिशा में चल दिये।

बघर्रा के जासूसों ने दूसरे दिन समाचार दिया कि बिलोचियों ने गुजरात के उत्तर में एक लाख की संख्या में सिन्ध से घुसकर लूटमार, उपद्रव मचा दिया है। उसने तुरन्त लौट पड़ने का निश्चय किया। मांडू के सुल्तान और दो देहाती छोकरियों के पीछे न पड़कर बिलोचियों को पहले कुचल डालना ज़रूरी है, फिर देखा जायगा। उसने सोचा।

महमूद बघर्रा बीच से ही लौट पड़ा और अहमदाबाद जाकर गुजरात के उत्तर की ओर चल दिया। बिलोचियों को बेतरह खदेड़ा। सिन्ध प्रदेश के उत्तर में सिन्ध नदी के किनारे बिलोची कुछ जमकर लड़े परन्तु हरा दिये गये और बड़ी संख्या में मारे गये। वहाँ बघर्रा को विदित हुआ कि जूनागढ़ के दक्षिणवर्ती ड्यु टापू पर पुर्तगालियों ने लड़ाई के जहाजों को बड़ी संख्या में जमा किया है। एक बड़ी सेना उतार कर गुजरात में घुसने वाले हैं। माँडू के आक्रमण को अनिश्चित काल के लिये स्थगित कर वह पुर्तगालियों का सामना करने के लिये सिन्ध से सीधा गुजरात चला गया।

पोटा के वर्ग के नट माँडू के जङ्गल में आ छिपे। वर्षा के अन्त तक वहीं बने रहे। उस डरावने सुल्तान और प्रचण्ड 'राणाजी' के झंझट में वे नहीं पड़ना चाहते थे। शंका करते थे सुल्तान अब आया और तब आया। परन्तु न सुल्तान आया और न राणाजी आये।

ग़यासुद्दीन को राणा रायमल के वापिस चले जाने का समाचार अविलम्ब मिल गया था। वह चाहता था, मेवाड़ के राजपूत पहले जूझ जायें, फिर बघर्रा से टक्कर लूँ। ऐसा न हुआ। उसने अपने मन को बहकाया—राणा असल में लड़ना नहीं चाहते थे। सोचते होंगे, मैं और सुल्तान महमूद कट मरें फिर मौक़े का फ़ायदा उठायें; मैं भी समझ लूँगा।

परिस्थिति को निरापद देखकर ख्वाजा मटरू ने पोटा के दल का पता लगा लिया।

उसको बुलाकर कहा, 'सुना है, तुम बहुत होशयार हो।'

'क्या काम है, हुजूर ?' उसने विनय की।

मटरू ने राई ग्राम की उन दोनों लड़कियों का परिचय दिया। क्या करना है यह भी बतलाया।

बोला, 'अगर तुम उन दोनों को किसी भी तरकीब से माँडू या हमारे इलाके में लिवा लाओ तो मुँह मांगा इनाम पाओगे। तुमको खर्च और अटक भीर के लिये कुछ टके दे दिये जायेंगे। काम कर लाओगे तो सोना-चाँदी से पूर दिये जाओगे। रहने के लिये माँडू में एक आलीशान मकान दे दिया जायगा। तुम्हारे सारे साथियों को भी बहुत इनाम मिलेगा।'

उसने कहा, 'हम लोगों को मकान नहीं चाहिये। हमको एक ही ठौर जमकर रहने की हमारे धरम में मनाई है—हमको क़सम है। हम आपके हुक्म को पालने का उपाय करेंगे। पूरा उपाय।'

'कुछ जादू टोना जानते हो ?'

'जादू टोना नहीं जानते तो जंगलों के साँप-बिच्छू, नाहर-तेंदुए कैसे क़ाबू में कर लेते हैं ?'

'अच्छा जाओ, करो काम। तुमको आज ही कुछ गहने, कपड़े और काफ़ी पेशगी रक़म मिल जायगी।'

पोटा सामान लेकर चला गया।

[१३]

ग्वालियर फिर से बस गया। कारीगरों और व्यवसाइयों के संघ अपना काम कर उठे। गांव के किसान मजदूर रोते भींकते फिर से अपने धन्धे में लग गये और ग्राम्य पंचायतें पुनः अपने शासन नियन्त्रण और सञ्चालन के कार्य में व्यस्त हो गई। मानो एक वड़ा अन्धड़ आया था, झाड़ झाड़ियों को झकझोर गया, कुछ पेड़ों को उखाड़ गया, अनेक की डालें तोड़ गया, फिर सब ज्यों का त्यों।

ग्वालियर की सीमाओं के अन्तपालों—सरहद्दी गढ़पतियों—को सतर्क और सजग रखने के लिये राजा मानसिंह ने उपाय कर दिये। नरवर का विशाल गढ़ ग्वालियर के तोमरों के अधीन लगभग डेढ़ सौ वर्ष से चला आता था। ग्वालियर से वहुत दूर नहीं था लगभग पच्चीस कोस दक्षिण पश्चिम में। मालवा के सुल्तान से मोर्चा लेने के लिये पहला और वड़ा अड्डा यही था।

मानसिंह ने नरवर को भी सावधान कर दिया।

तोमरों ने नरवर के क़िले को कच्छपघातों—कछवाहों—से लिया था। कछवाहों को यह वात कांटे सी गड़ती रही। भूमि की भूख वाले उस युग में यह वात भुलाई भी कैसे जा सकती थी? मानसिंह के समय में नरवर के कछवाहों का अन्तिम वंशज राजसिंह था। जवानी के जोश में उसकी राज्य लिप्सा और तोमरों के प्रति प्रति-हिंसा घनीभूत हो गई थी। वह ग्वालियर की सीमा के वाहर मालवा के सरहद्दी नगर चंदेरी में रहता था और कभी मांडू के सुल्तान, कभी दिल्ली के वादशाह को अपने अभीष्ट की प्राप्ति के लिये उकसाया करता था। नरवर से चंदेरी लगभग वीस कोस के अन्तर पर है। चंदेरी में मालवा के सुल्तान का सूवेदार रहता था। वह ग्वालियर की शक्ति को जानता था। नरवर के ऊपर आक्रमण नहीं कर सकता था। सुल्तान करे तो करे उसका निश्चय था। राजसिंह अवसर की ताक में था।

चन्देरी के दक्षिण-पूर्व से बेतवा पहाड़ों और जंगलों को रेतती-कुदेरती पूर्व में लगभग चार कोस के अन्तर से उत्तर की ओर चली गई है। नई चंदेरी के किले और नगर के कोट को मालवा के सुल्तानों ने नये सिरे से बनवाया था। पुरानी चंदेरी ऊजड़ पड़ी थी।

चंदेरी—नई चंदेरी—का क़िला नगर के ऊपर उत्तर से पूर्व की ओर घूम कर जाने वाली एक ऊँची पहाड़ी पर था। चंदेरी का सूबेदार इसी में रहता था, नीचे बसा हुआ नगर सघन था। यहीं एक बड़े भवन में राजसिंह रहा करता था। उसके पड़ौस में एक गायक था जिसके गले की मधुरता और वीणा पर अँगुलियों की चतुराई विख्यात हो गई थी। वह राजसिंह को अपना गायन और वीणा-वादन कभी-कभी सुनाया करता था। दोनों में मैत्री थी। गायक को उससे यदाकदा कुछ सहायता मिल जाती थी।

सूबेदार गायन-वादन का शौक़ीन नहीं था। फिर भी कभी-कभी थोड़ा बहुत दे देता था। गायक का नाम बैजनाथ था। जाति का ब्राह्मण। गायन-वादन के अभ्यास बढ़ाने में उसको दिन और रात, भूख और प्यास, अवसर और कुअवसर की परवाह नहीं रहती थी। नगर में उसको बैजू कहते थे। बैजू के घर के सामने एक चित्रकार की लड़की रहती थी। वह चित्रकारी से बढ़ कर संगीत कला में निपुण थी। वर्णसंकर होने के कारण उसका युवावस्था प्राप्त हो जाने पर भी विवाह नहीं हुआ था। रूपवती थी, लाखी से कुछ मिलती-जुलती। बैजू से उसने गायन-वादन भी सीखा था परन्तु चित्रकारी में उसको विशेष रुचि थी। राजसिंह के भवन पर जब बैजू गाता था तो यह लड़की तम्बूरे का साथ देती थी और बीच-बीच में अपने कण्ठ से उसकी लय को साधती थी। पिता ने मरते मरते तक विवाह की चर्चा की, कोई भी विवाह करने को तैयार नहीं हुआ तो उसने भी विवाह न करने की प्रतिज्ञा कर ली। नाम उसका कला था।

शरद ऋतु लग गई। शुक्ल पक्ष की चांदनी पेड़ों के लहलहाते पत्तों और दूवा पर वैठी हुई ओस की बूँदों के साथ खेलने लगी। शरद-पूर्णिमा की रात में वैजू का गायन राजसिंह के यहां हुआ। कला तम्बूरे की झंकार और वीच-वीच में अपने स्वर से उसका साथ दे रही थी। कला की आंखें आई हुई थीं, हल्दी का भीगा कपड़ा आँखों पर डाले थी; रस में इतनी डूबी हुई थी कि आई आंखों की उसको चिन्ता न थी।

राजसिंह की छोटी सी सभा में उसके कई मित्र वैठे थे। उनमें से एक चारण था। चारण कुछ कहने के लिये उतावला था। गायन के वीच-वीच में उसी के मुंह से सबसे ज्यादा 'वाह! वाह!!' निकल रही थी। गायक वैजू उस वाह-वाह के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन के लिये मुस्करा भर देता था। चारण की वाह-वाह के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना अशिष्ट तो होता ही, शायद कभी हानिकारक भी हो सकता था!

गायन की समाप्ति पर राजसिंह ने यथा-सामर्थ्य गायक को कुछ भेंट किया।

चारण वोला, 'आप जैसे गायक हो वैजनाथ जी, वैसा दान राजसिंह जी उस दिन देंगे जव इनकी पुरानी वपौती लौट आवेगी।'

राजसिंह ने उठी हुई सांस को रोका।

वैजू ने कहा, 'जो मिल जाय वही वहुत है। अपनी आत्माके भीतर से जो कुछ पाता हूँ वह सव से वढ़कर है।'

चारण ने अपने भाव की धार तेज़ की—'जव नरवर के किले में इनका झण्डा फहरावे, तव मैं इनको राजा कहूँगा, तभी आपको मेरे राजा सोने और मोतियों से आदर देंगे। तभी मेरी छाती जुड़ायगी, मेरी आत्मा भी।'

'और तभी मैं सव के सामने अमल करूँगा और मद का प्याला वाँटकर पिऊँगा,' राजसिंह के मुंह से निकला।

कला ने आँखों की पट्टी को जरा सा हटाकर राजसिंह की ओर देखा।

चारण बोला, 'हमारे पुरखों ने राजसिंह जी के पुरखों के साथ नरवर को छोड़ा था जब तोमरों ने नरवर का हरण किया। हमको आन है कि तब तक नरवर में पैर नहीं रक्खेंगे जबतक कछवाहों का राज्य नरवर में फिर से नहीं हो गया।'

बैजू राजनीति को नहीं जानता था। उसे लगा राजसिंह किसी दिन अपने कुछ साथियों और चन्देरी के सूबेदार के संग नरवर पर धावा कर बैठेगा, जिसका परिणाम बुरा अधिक और अच्छा कम होगा।

'हमारे लिये तो बिना राज्य के भी आप राजा हैं। नरवर बहुत बड़ा क़िला सुना है! बहुत रक्तपात होगा।' बैजू ने कहा।

राजसिंह नशा किये था। बोला, 'मर जाऊँगा किसी दिन। अपनी भूमि को फिर से पाये बिना मर जाना ही अच्छा।'

कला ने फिर आंख की पट्टी को उठाया। उसने राजसिंह को ऐसी बात कहते पहले कभी नहीं सुना था।

चारण ने चर्चा को और तेज़ किया,—'मर क्यों जाओगे कुमार? मारोगे और नरवर को फिर पाओगे। चन्देरी के सूबेदार, मालवा के सुल्तान आपको यों ही नहीं मर जाने देंगे। यों ही मरते हैं स्यार; राजपूत ऐसे नहीं मरा करते।'

राजसिंह ने सिर हिलाकर बतलाया कि उसका प्रयोजन, मार कर मरने से था—यों ही मर जाने का अभिप्राय न था।

चारण ने एक उत्तेजक कवित्त सुनाया जिसका तात्पर्य था—सिंह और राजपूत कहीं भी जाकर अपने बाहुबल से राज्य को बना लेते हैं। बैजू के गायन का जो प्रभाव हुआ था उस पर अपने प्रभाव को चढ़ा देने का उस कवित्त-पाठ का उद्देश्य अधिक था, राजसिंह को भड़काने का कम।

बैजू को न तो कवित्त का साहित्य अच्छा लगा और न उसके पाठ की कर्कश ध्वनि।

कला तमूरे को आवरे में रखती हुई कुछ सोचनें लगी। राजसिंह ने वैजू को प्रसन्न करने के लिये कहा, 'वैजनाथ जी, वह शुभ घड़ी भी किसी दिन भगवान लायेंगे। देर सवेर जब आयगी. आवेगी अवश्य। परन्तु उस घड़ी के आने के पहले आपकी अनेक बैठकें होंगी और आपका सन्मान किया जावेगा! दिवाली आ रही है और उसके उपरान्त फिर देवठान एकादशी, फिर कार्तिकी पूर्णिमा, फिर व्याह पंचमी—'

वैजू ने राजसिंह की सूची को आगे वढ़ने से टोक दिया,—'इन त्योहारों पर मैं चन्देरी में नहीं रहूँगा। सुना है ग्वालियर का राजा संगीत का वड़ा प्रेमी है और जानकार भी। देश-देशान्तर के गवैये वहाँ इकट्ठे होनें वाले हैं। मैं उस उत्सव को देखना चाहता हूँ।'

राजसिंह ने सिर नीचा कर लिया।

चारण ने दवे स्वर में कहा, 'ग्वालियर का राजा! वही तो हम लोगों का पुराना वैरी है।'

'वैरी तो नरवर है।' वैजू ने भोलापन प्रकट किया।

'उसी के राज्य में तो नरवर है।' चारण ने वतलाया।

राजसिंह का एक मित्र वोला, 'सुल्तान ग्वालियर पर चढ़ाई करने वाला है। मांडू में तैयारी हो रही है। फूस-माघ तक कूच हो जायगा।'

राजसिंह के मन में यकायक एक विचार उठा। एक क्षण अपने मित्र की ओर देखकर उसने कहा, 'इनको जाना चाहिये, एक लाभ होगा। तुम भी जाओगी कला?'

कला ने सिर नीचा किये हुये उत्तर दिया, 'जाना तो चाहती हूँ। गुरु-जनों की आज्ञा मिल गई तो चली जाऊँगी।'

वैजू की समझ में साफ़-साफ़ नहीं आ रहा था। उसने वैसे ही हामीं का सिर हिला दिया।

राजसिंह के कण्ठ में यकायक मिठास आ गया। 'जाना अच्छा रहेगा। वहुत ठीक रहेगा! वहुत कुछ काम वन सकता है।' उसने संकेत भरे शब्दों में कहा।

बैजू बोला, 'आपकी कृपा से सब ठीक रहेगा। देखूंगा, कौन-कौन गवैये सामने आते हैं ग्वालियर में।'

चारण और राजसिंह ने एक दूसरे की तरफ़ देखा। उसके मित्र ने भी किसी आकस्मिक रहस्य को जानने का कुतूहल व्यक्त किया। कला ने भी आंख की पट्टी उघाड़ कर जहाँ की तहाँ करली।

राजसिंह ने कला से अकेले में कुछ कहा। फिर सब तितर-बितर हो गये।

[१४]

ग्वालियर के क़िले के दक्षिणी मैदान में पुनर्वास के लिये लौटे हुये लोगों के अब कोई झोपड़े नहीं रहे थे। वे सब क़िले के नीचे, नगर में जा बसे थे। उस मैदान के पूर्वी छोर की दीवार के नीचे छोटे-बड़े ऊँचे नीचे बांसों पर विविध रंगो के घड़े, घास–फूस और मिट्टी के पक्षी तथा डोरियों पर लटकते, चक्कर खाते हुये छोटे–छोटे गोले घूम रहे थे। सामन्तों और सैनिकों के साथ मानसिंह तीरन्दाज़ी का अभ्यास कर रहा था। एक घड़ी दिन चढ़े ही अभ्यास करने वाले इकट्ठे होकर समूहों में बँट गये थे। मानसिंह के साथ विजयजङ्गम भी था।

जिन्होंने अभ्यास का आरम्भ ही किया था वे बड़े-बड़े लक्ष्यों को साध रहे थे। जिनको पारङ्गत समझा जाता था वे छोटों के सामने थे। इन सब के पीछे मोटे कपड़े के रेत भरे बोरों की दीवार उठा दी गई थी जिससे तीरों की नोकें कोट की दीवार से टकराकर झड़ न जायें।

मानसिंह और विजय के सामने डोरी से लटकता हुआ एक छोटा सा घड़ा था। इसको उतारा गया और उसमें पानी भर दिया गया। काठ की एक छोटी सी बतख़ उसमें डाल दी गई।

मानसिंह ने विजय से कहा, 'टाँग देने के बाद इस घड़े को हिला दिया जायगा। चक्कर खाते हुये घड़े के भीतर बतख़ को तीर छेद कर निकल जाय तब बात है।'

'कितने तीरों में से एक लग जाय तो सफल वेध समझा जायगा?' विजय ने पूछा।

'पाँच', मानसिंह ने उत्तर दिया।

'पहले राजा', विजय ने स्वीकार करते हुये कहा।

'पहले आचार्य', राजा ने मुस्करा कर प्रतिवाद किया। 'आचार्य, यदि इस लक्ष्य का वेध करलो तो अरने भैंसे और हाथी के मस्तक को फोड़ दोगे।'

'महाराज, हम लोग लड़ाई के सिवाय और कहीं किसी का मस्तक नहीं फोड़ते। जीव हिंसा को पाप समझते हैं।'

'इस लक्ष्य का वेध करते हुये सोचोगे न कि शत्रु के मस्तक को छेद रहे हैं ?'

'सामने तो घड़ा है, शत्रु नहीं है।'

'तब, अवसर आने पर शत्रु का शिरोच्छेद करने में हाथ नहीं कांप जायगा ?'

'कभी नहीं कांपा। पिछली लड़ाई में किया था न मैंने भी कुछ ?'

'तो उस समय शत्रु के सिरों को क्या मिट्टी का ढेर समझ कर तीर चलाये थे ?'

'नहीं तो। जब जैसा समय आता है तब तैसा सोच लेते हैं।'

'जब यह घड़ा हिलेगा तो क्या उसकी उतनी तीव्र गति हो जायगी जितनी घुड़सवार की होती है।'

'तो क्या दौड़ते हुये घोड़ों पर तीर चला उठें ?'

'घोड़ों पर नहीं, अन्न के खेतों का नाश करने वाले अरनों, सुअरों और पक्षियों पर चलाओ।'

'आप कहेंगे मोर, नीलकण्ठ और हँस सरीखे पक्षियों पर भी चलाओ।'

'नहीं तो। और अनेक चिड़ियां हैं।'

'हमारे सिद्धान्त के विरुद्ध है।'

'आप कैसे शैव हैं ! कुमार देवताओं की सेना के सेनापति और आपके आराध्यों में—'

'आज आपको क्या हो गया है ? क्यों इतना हठ कर रहे हैं ! अभी कुछ ठण्ड है फिर धूप तीव्र हो जायगी, करिये न आरम्भ।'

'बात यह है कि मैं एक दो दिनके लिये शिकार खेलने जाना चाहता हूं। इच्छा है कि आपको भी साथ ले जाऊँ। नाहर, तेंदुए इत्यादि भी मिलेंगे। इनको तो आप मारेंगे ?'

'इनको भी नही मारूँगा, शिकार में साथ नही जाऊँगा।'

अपने हठ को छिपाने के लिये विजय हँस पड़ा। बोला, 'आप असल में मेरे चित्त को विचलित करके लक्ष्यवेध में चुकाना चाहते हैं, इसलिये इस अनुपयुक्त प्रसङ्ग पर ही शास्त्रार्थ कर उठे।'

राजा ने भी हँस दिया। कहा, 'अच्छा जाने दीजिये। पहले में शर-सन्धान करता हूँ। लग गया तो आपको इसी प्रकार का दूसरा घड़ा मिल जायगा, चूक गया तो आप चलावें। इसी प्रकार पाँच तीरों से अभ्यास चलेगा।'

घड़े को वेग के साथ हिला दिया गया। राजा न दृढ़ता के साथ साँस साधकर निशाना लिया। तीर चूक कर रेत की बोरी में जा छिदा। विजय ने भी बहुत साधकर तीर छोड़ा वह भी असफल रहा। मानसिंह के एक तीर से घड़ा तो फूट गया परन्तु काठ की बतख को तीर नहीं छू सका।विजय ने दो बार घड़े को फोड़ा परन्तु बतख का वेध वह भी न कर सका।

दूसरे समूहों का भी अभ्यास चल रहा था। बड़े लक्ष्यों को सहज ही बेध लिया जाता था परन्तु छोटों का वेधना बहुत दुष्कर हो रहा था। किसी ने वेध लिया तो वह अपनी सफलता के उल्लास में मग्न हो-हो जाता था।

मानसिंह और विजय ने दूसरे निशानों पर भी अभ्यास किया, कही सफलता मिली, कहीं नहीं मिली। अभ्यास में एक पहर बीत गया। सब लोग अपने अपने धनुष बाणों को संभाल कर ले गये। मानसिंह और विजय साथ-साथ राज भवन में आ गये।

मानसिंह ने कहा, 'तुर्क लोग तीरन्दाजी में बहुत बढ़े चढ़े हैं। जब तक हम लोग उनकी अपेक्षा अच्छे तीरन्दाज नहीं हो जाते हैं, तब तक उनका सामना सफलता के साथ नहीं हो सकता। हम लोगों में साहस, शौर्य इत्यादि सब कुछ है परन्तु इसकी कमी है।'

विजय बोला, 'और कई कमियां हैं; जिनमें से एक बड़ी कमी अच्छे घोड़ों की है। तुर्कों के पास अच्छे घोड़े हैं। महाराज को स्मरण होगा कि मैंने तैलङ्गाने के दक्षिणवर्ती विजयनगर राज्य का कुछ वृत्तान्त सुनाया था। बहमनी सुल्तानों से लड़ने में विजयनगर की अपार सेना न दो त्रुटियों के कारण हो रह-रह जाती है।'

मानसिंह ने निश्चय के स्वर में कहा, 'मैं इन दोनो त्रुटियों को दूर करना चाहता हूँ। अभ्यास, अभ्यास, घोर अभ्यास से हम लोग तीरन्दाजी में तुर्कों से आगे निकल जायंगे। घोड़ों की समस्या अवश्य दुरूह जान पड़ती है सो मेवाड़ के मार्ग से प्राप्त हो सकते हैं। मेवाड़ के राणा को मैं अपना बड़ा मानता हूं, इस काम में वे मेरी सहायता करेंगे।'

'सोना चाँदी बहुत चाहना पड़ेगा। कहां से आयगा इतना?' विजय ने सन्देह प्रकट किया।

'सोने चाँदी की कमी नहीं रह सकती! शासन का प्रबन्ध अच्छा रक्खा जा रहा है। प्रजा अन्न उपजावेगी। सेठ और व्यापारी उद्योग-धन्धों को बढ़ायेंगे, फिर कमी नहीं रह सकती।'

'आपको भवन बनवाना है; मन्दिर भी।'

'सोचा था, परन्तु अभी नहीं। ध्यान में ही नहीं आया है कि भवन किस प्रकार का बनेगा और कैसा। दक्षिण का नमूना तैल मन्दिर है परन्तु किसी और ढंग का बने तो अच्छा रहेगा। सबसे पहले शस्त्र और सेना: फिर कहीं भवन और मन्दिर।

'और शिकार? इन सब से पहले?'

'ह! ह!! ह!!! चोट करके ही माने।'

''मैंने वैसे ही कहा।'

'परिश्रम कर लेने पर कुछ अवकाश भी तो चाहिये।'

'जीवन में कायक—काम-ही सब कुछ है। एक काम से मन उचटे तो दूसरा करने लगे। मैं तो अवकाश इसी को कहता हूँ।'

'आपकी इस बात को मैं बहुत पहले गांठ में बांध चुका हूँ। इसी लिये परिश्रम से आल्हाद पाता हूँ। प्रण किया है जब भवन और मन्दिर बनवाऊँगा तब मजदूरों के साथ नित्य एक घण्टे मैं भी पत्थरों पर श्रम करूँगा।'

'शिकार खेलने कब जायँगे, महाराज?'

'ह! ह!! ह!!! फिर व्यङ्ग!!!! नहीं जाऊँगा बाबा। उस गांव का वह ब्राह्मण दो बार आकर बुला गया है। हुलास में आकर उससे कह देता हूँ कि शीघ्र आऊँगा परन्तु वह हुलास क्षणिक सा रहा; मैं भूल गया।'

'आज फिर स्मरण हो आया!'

'मेरे साथ न्याय करो आचार्य। मैं केवल मन बहलाव के लिये नहीं जाना चाहता हूँ जङ्गलों में। तीव्र गति के साथ दौड़ते हुये भयंकर पशुओं को एक तीर से मार गिराने की क्रिया में निपुण होना चाहता हूँ। बन सका तो वहां के टूटे हुए मन्दिर के उद्धार में भी कुछ सहायता कर दूँगा।'

'गांव के उस शास्त्री ने कुछ और भी कहा था?'

'स्मरण नहीं आता!'

'कुछ बहेलिनियों की बात कही थी।'

'कही होगी, याद नहीं रही।'

विजय को राजा ने भोजन कराया। फिर स्वयं किया। भोजन के उपरान्त विजय मानसिंह को वीणा-वादन सुनाया करता था। वह इसका अच्छा जानकार था। वीणा-वादन पर मानसिंह मुग्ध हो गया। जब रुका,

विजय से उमङ्ग में भरकर कहा, 'पहले के लोगों ने बड़े-बड़े मन्दिर औ विशाल मूर्तियां बनवाई हैं—मैं चाहता हूँ संगीत को पत्थरों में खुदवा दूँ।

'पत्थरों में सङ्गीत!' विजय ने वीणा को एक ओर रखक आश्चर्य प्रकट किया।'

'क्या कुछ असम्भव है? अजमेर के चौहान राजा विग्रहराज ने विग्रह राज नाटक और हरकेलि नाटक को खुदवा दिया था न शिलाओं पर?

'परन्तु संगीत? यह तो हृदय और गले की चीज़ है।'

'क्या अकेले मैंने ही ठेका लिया है सब निर्धार करने का? एव सुझाव दे दिया है। कुछ आप भी सोचो।'

'यह भी किसी क्षणिक उल्लास की ही उपज है महाराज, या कुछ और।'

'आप जितने सरस सङ्गीतकार हो आचार्य, उतने सरस वार्ताकार नहीं हो।'

'महाराज, मेरे गुरुओं ने खरी बात कहने और निस्पृह रहने की शिक्षा दी है।'

'अच्छा, मैं वचन देता हूँ कि उल्लास क्षणिक नहीं रहेगा। मैं संगीत को पत्थरों में मूर्त करने की बात—सोचा करूँगा।'

'राग-रागनियों की मूर्तियाँ और उनकी आरोही-अवरोही अलंकार-तानें उभार कर, खोद कर, पत्थरों को सजीव किया जायगा क्या?'

'अभी कुछ नहीं कह सकता। कहा न कि आप भी सोचते रहो। लालसा है कि उसको देखकर अनजान भी किसी गीत को गा उठे। वीणा पर किसी और राग को मूर्त करिये।'

'अच्छा, कुछ क्षण। फिर थोड़ा सा विश्राम करिये और काम को देखिये।'

विजय ने कुछ क्षण वीणा बजाई। मानसिंह को अच्छा नहीं लगा। विजय बजाकर चला गया। मानसिंह ने एक घड़ी विश्राम किया और काम के लिये भवन के बाहर निकल आया।

[१५]

राई गाँव के निवासियों ने धान की फसल काट ली। ज्वार अभी खड़ी थी।

झटपट खलियान में वालों को सुखाया और कूटकर चावल गाह लिये। पयाल को जाड़े के लिये सुरक्षित रख लिया। राज्य का शहना आया, छटवाँ अँश ले गया। पुजारी ने अपना अँश ले लिया। किसानों ने सोचा बाहर के लुटेरों से बच गये यही बहुत है, इनको देना तो भाग्य में ही लिखाकर चले हैं। लुटेरे कहीं से न आ टूटें तो ज्वार में से दे-दिवाने के बाद भी खाने के लिये कुछ दिनों को हो जायगा। चावलों से आशा कम थी, क्योंकि स्त्रियों के लिये कुछ कपड़े चाहिये थे और कांसे-पीतल के कुछ गहने--यदि एकाध छल्ला चांदी का भी हाथ पड़ जाय तो क्या बात है।

पुरुष बचे हुये चावलो को खेती के औजारों और तीरों में पलटवाना चाहते थे। परन्तु उनकी बहुत ही कम चल सकी। नंगे पैरों, नंगे हाथों स्त्रियां कबतक और कैसे रह सकती है? तिथि त्योहारों पर भी बिना कड़ों और चूड़ों के, पैर और हाथ, आंखों में आंसू ला देते हैं। यह बात पुरुषों के मन में छिपी हुई थी। कहा, उनारी की फ़सल पर गहने और कपड़े लत्ते ले लिये जायँगे। स्त्रियों ने हाय की साँस भरकर हामी भरदी, मुंह लटका लिये। पुरुषों को चावल का अधिकांश भाग हटाकर कांसे पीतल के कड़े चूड़े लेने पड़े। जाड़ों के लिये थोड़े से कपड़े और कुछ कन्जूसी करके थोड़े थोड़े से तीर।

गाँव में अटल का घर कुछ हरा-भरा समझा जाता था, क्योंकि तीनों स्वस्थ थे, परिश्रम करते थे और शिकार खेलते थे। हरे-भरे घर में भी कड़े-चूड़े एक भी नहीं! वस्त्र ही कम। परन्तु यहां वस्त्रों और गहनों के मुक़ाबिले में तीरों को हारना नहीं पड़ा। कोई ऐसे जानवर हाथ नहीं लगे थे जिनकी खालों से वस्त्रों और हथियारों को ले लिया जाता। खाने

के लिये थोड़े से चावल रख लिये गये, ज्वार की फ़सल आने ही वाली थी, फिर उन्हारी। इसलिये बाकी चावलों को हथियारों और वस्त्रों की खरीद के लिये उठा लिये। लाखी को चांदी का एक छल्ला और निन्नी को गले के लिये एक छोटी पतली सी ही सही, हँसुली की आवश्यकता प्रतीत हुई। छल्ला थोड़े में आ सकता था, तीर बहुत आवश्यक थे। यह लाखी की मांग थी। मुझको तीर नहीं चाहिये, एक हँसुली बिना गला बिलकुल सूना रहता है इसलिये मेरे लिये एक हँसुली आनी चाहिये, यह तकाजा निन्नी का था।

जितने तीर निन्नी के पास थे वे उसको पर्याप्त नहीं जान पड़ते थे। वह लाखी को अपने कुछ तीर दिये रहती थी परन्तु लाखी उनको अपना नहीं कह सकती थी। अटल उन तीरों को लाखी को नहीं दिलवा सकता था। कुछ वस्त्र दोनों को चाहिये थे। उतने चावलों से इतना सब हो जाना दुष्कर मालूम होता था।

अटल ने फुसलाने का प्रयत्न किया—

'अबकी बार एक बर्छी लाता हूँ। दोनो उससे अभ्यास करना। पास से मार सकती हो और दूर से फेंक कर भी।'

'अच्छा तो मैं गले के लिये हँसुली नहीं लूंगी, मेरे लिये बरछी ला दो।' निन्नी ने कहा।

लाखी बोली, 'एक बरछी मेरे लिये भी। मुझको चांदी का छल्ला नहीं चाहिये। उन्हारी की फ़सल पर छल्ला ले लूंगी। अभी बरछी और तीर।'

'चावलों को कौन खायगा जो रख लिये हैं? उनसे हम दोनों को दो दो एक-एक छल्ले भी मिल जायेंगे।' निन्नी ने सुझाया।

'फिर खाने के लिये क्या बचेगा?' अटल ने मृदुलता के साथ पूछा।

'ज्वार में भुट्टे आ गये हैं पकनें तक उनसे काम चलायेंगे।' निन्नी ने बतलाया।

लाखी ने उत्तर दिया, 'जाड़ा पड़ने लगा है, जङ्गल का घास सूख गया है, कुछ जानवर ढूंढ़ने से मिल ही जायेंगे। उनसे काम चलेगा। नदी में मछलियां आ गई हैं। उनको भी देखो।'

अटल ने समझ लिया कि उसकी नहीं चल सकेगी। बर्छी की बात को सुलगा कर पछताया। फिर भी उसने आशा नहीं छोड़ी।

कहा, 'अच्छा तो तीर, कपड़े, छल्ला और हँसुली रही। बरछी उन्हारी की फ़सल पर। थोड़े से चावल रक्खे रहने दो।'

'नहीं। बर्छी अवश्य आवे?' निन्नी बोली।

'बर्छी तो आनी ही चाहिये।' लाखी ने हठ किया।

अटल को मानना पड़ा। भोजन की प्राप्ति भाग्य के भरोसे।

चावल लेकर वह ग्वालियर चला गया। पुजारी भी उसके साथ गया।

वे दोनो तीर कमान लेकर जङ्गल में जा पहुँची। जहां लाखी को घायल अरना पड़ा हुआ मिल गया था वहाँ उन्होंने देखा, गधों, बकरे बकरियों, बन्दरों के साथ कुछ लोग आ ठहरे हैं। झिझकीं।

निन्नी ने कहा, 'न जाने कौन हैं ये लोग।'

लाखी ने अनुमान किया,—'लुटेरे नहीं हो सकते। कोई भूले-भटके से जान पड़ते हैं। पास से चलकर देखें। डर क्या है, अपने पास भी तीर कमठे और छुरे हैं।'

निन्नी उत्तेजित होकर बोली, 'डर किस बात का? अपने पास है क्या जिसे यह छीन ले जायेंगे? चलो देखें।'

वे उनके निकट पहुंच गईं।

यह समूह पोटा और पिल्ली का था। हाल ही में आया था। सबके सब झोपड़े बनाने की युक्ति कर रहे थे। इन दोनों को अपने पास आया देखकर वे सब ध्यान के साथ देखने लगे। पोटा आगे बढ़ा। पिल्ली उसके पीछे। निन्नी के विलक्षण सौन्दर्य को देखकर पोटा किसी के

वतलाये हुये परिचय को मन में तौलने लगा। उन दोनों को तीर कमानों से सजा हुआ देखकर उसकी आशा को कोई ठेस नहीं लगी।

पिल्ली वोली, 'क्या तुम दोनों इसी गांव की हो ?'

उन्होंने हामी का सिर हिलाया।

'गांव पास ही है क्या ?' पोटा ने पूछा।

लाखी नें दूरी वतलाई।

पिल्ली आगे वढ़ आई। सुन्दर चोली पहने थी और वढ़िया पैंजामा—ख्वाजा मटरू के टंकों की देन। परन्तु ओढ़नी नहीं थी उसके शरीर पर।

उँगलियां नचाकर और नाक के नथ को हिलाकर उसने कहा, 'आओ न, इधर आओ। वन्दरों का तमाशा दिखलायेंगे, नटों के नाटक, रस्से पर ढोलकी वजाते हुये नाच। कुछ इनाम दोगी ? क्या दोगी ?'

निन्नी ने शान्त निस्संकोच भाव से कहा, 'हमारे पास देने के लिये कुछ नहीं है। हमारा गाँव वहुत गरीव है।'

एक अधेड़ नटिनी आ गई।

वोली, 'अरी ये तो हम सरीखी ग़रीव हैं, इनसे क्या इनाम लेना। इनको वैसे ही अपने खेल-तमाशे दिखलायेंगे। आओ वेटी इधर आओ, हमारे पास अच्छे वड़े पके सीताफल हैं। वड़े मीठे है।'

निन्नी और लाखी ने एक दूसरे के प्रति देखा।

पिल्ली तुरन्त कुलाचें खाने लगी। वे दोनो रुचि और अचम्भे के साथ उसके शरीर की लोचों–लचकों को निरखने लगीं।

हाँफ को साध कर पिल्ली इन दोनों के पास आ खड़ी हुई।

उसने वड़े निहोरे के साथ कहा, 'आओ इधर आओ, वहिन हम वन्दरों के खेल दिखलायेंगे।'

पोटा बोला, 'आकाश में रस्से पर नाचते हुए कभी देखा है तुमने किसी को ?'

लाखी पिल्ली के शरीर की बनावट को परख रही थी। निन्नी ने कहा 'कभी नहीं देखा।'

'कभी सुना ?'

'न कभी सुना।'

'तो लो आओ। अभी दिखलाता हूँ। हम हारे थके तो हैं, पर तुम को ये खेल और जादू-टोने दिखलाना हमको बहुत अच्छा लगेगा।'

'खेल देखो और सीताफल खाओ, आओ बेटी इधर।' अधेड़ नटिनी ने आग्रह किया। पिल्ली को मालूम हो गया कि दोनों उसकी कुलाचों के आश्चर्य से भर गई हैं परन्तु उनके तीर कमठों और बग़ल के छुरों को देखकर उसके मन में कुछ ग्लानि हुई।

उसने पूछा, 'ये तीर कमठे काहे के लिये बांधे है ?'

लाखी ने उत्तर दिया, 'शिकार खेलने जा रही थीं हम दोनो, इधर तुम लोगों को देखकर चली आईं।'

'शिकार खेलती हो इस घने-भयावने जङ्गल में ! क़ौन सी चिड़ियाँ मारती हो तीरों से ? चिड़ियों को तो हम लोग गुलेल से ही मार गिराते हैं।' पिल्ली ने कहा।

निन्नी मुस्कराती हुई बोली, 'चिड़ियों को हम लोग उँगलियों के फंकड़ो से मार लेते हैं। हमारी लाखी ने एक तीर से अरने भैंसे को छेद डाला था।'

'इनका नाम लाखी है। और तुम्हारा बेटी ?' पोटा ने प्रश्न किया।

लाखी ने बतलाया, इन्होंने बड़ी बड़ी खीसों वाले बनैले सुअर एक एक तीर से ही लिटा दिये हैं। इनको निन्नी कहते हैं, पर असली नाम मृगनयनी है।'

वतलाये हुये परिचय को मन में तोलने लगा। उन दोनों को तीर कमानों से सजा हुआ देखकर उसकी आशा को कोई ठेस नही लगी।

पिल्ली बोली, 'क्या तुम दोनों इसी गाँव की हो ?'

उन्होंने हामी का सिर हिलाया।

'गाँव पास ही है क्या ?' पोटा ने पूछा।

लाखी नें दूरी वतलाई।

पिल्ली आगे बढ़ आई। सुन्दर चोली पहने थी और वढ़िया पैजामा——ख्वाजा मटरू के टंकों की देन। परन्तु ओढ़नी नहीं थी उसके शरीर पर।

उँगलियां नचाकर और नाक के नथ को हिलाकर उसने कहा, 'आओ न, इधर आओ। वन्दरों का तमाशा दिखलायेंगे, नटों के नाटक, रस्से पर ढोलकी वजाते हुये नाच। कुछ इनाम दोगी ? क्या दोगी ?'

निन्नी ने शान्त निस्संकोच भाव से कहा, 'हमारे पास देने के लिये कुछ नहीं है। हमारा गाँव वहुत गरीव है।'

एक अधेड़ नटिनी आ गई।

वोली, 'अरी ये तो हम सरीखी ग़रीव हैं, इनसे क्या इनाम लेना। इनको वैसे ही अपने खेल-तमाशे दिखलायेंगे। आओ वेटी इधर आओ, हमारे पास अच्छे वड़े पके सीताफल हैं। वड़े मीठे है।'

निन्नी और लाखी ने एक दूसरे के प्रति देखा।

पिल्ली तुरन्त कुलाचें खाने लगी। वे दोनो रुचि और अचम्भे के साथ उसके शरीर की लोचों-लचकों को निरखने लगीं।

हाँफ को साध कर पिल्ली इन दोनों के पास आ खड़ी हुई।

उसने वड़े निहोरे के साथ कहा, 'आओ इधर आओ, वहिन हम वन्दरों के खेल दिखलायेंगे।'

पोटा बोला, 'आकाश में रस्से पर नाचते हुए कभी देखा है तुमने किसी को ?'

लाखी पिल्ली के शरीर की बनावट को परख रही थी। निन्नी ने कहा 'कभी नहीं देखा।'

'कभी सुना ?'

'न कभी सुना।'

'तो लो आओ। अभी दिखलाता हूँ। हम हारे थके तो हैं, पर तुम को ये खेल और जादू-टोने दिखलाना हमको बहुत अच्छा लगेगा।'

'खेल देखो और सीताफल खाओ, आओ बेटी इधर।' अधेड़ नटिनी ने आग्रह किया। पिल्ली को मालूम हो गया कि दोनों उसकी कुलाचों के आश्चर्य से भर गई हैं परन्तु उनके तीर कमठों और बग़ल के छुरों को देखकर उसके मन में कुछ ग्लानि हुई।

उसने पूछा, 'ये तीर कमठे काहे के लिये बांधे है ?'

लाखी ने उत्तर दिया, 'शिकार खेलने जा रही थीं हम दोनो, इधर तुम लोगों को देखकर चली आईं।'

'शिकार खेलती हो इस घने-भयावने जङ्गल में ! क़ौन सी चिड़ियाँ मारती हो तीरों से ? चिड़ियों को तो हम लोग गुलेल से ही मार गिराते हैं।' पिल्ली ने कहा।

निन्नी मुस्कराती हुई बोली, 'चिड़ियों को हम लोग उँगलियों के कंकड़ो से मार लेते हैं। हमारी लाखी ने एक तीर से अरने भैंसे को छेद डाला था।'

'इनका नाम लाखी है। और तुम्हारा बेटी ?' पोटा ने प्रश्न किया।

लाखी ने बतलाया, इन्होंने बड़ी बड़ी खीसों वाले बनैले सुअर एक एक तीर से ही लिटा दिये हैं। इनको निन्नी कहते हैं, पर असली नाम मृगनयनी है।'

पोटा ने सोचा जैसा सुना था वैसी ही है। दूसरी भी उन्नीस बीस ही बैठेगी।

नटों का समूह अपने निवास के लिये लकड़ियों का घेरा बना रहा था। अभी अधूरा था। वे दोनों अधूरे घेरे के भीतर हो गईं।

अधेड़ नटिनी एक टोकनी में से दो बड़े बड़े पके सीताफल ले आई। निन्नी ने लेने से नाहीं कर दी।

बोली, 'हम कुछ शिकार मार कर ले आवें और तुमको दें, तब हम भी तुम से कुछ ले सकती हैं। यों ही सेंतमेत किसी का कुछ ले लेना हमारे कुल की रीति नहीं है।'

अधेड़ नटिनी ने आग्रह किया, 'अरी तुम दोनों महलों में रहने लायक हो! बड़े-बड़े पलङ्गों पर आराम करने जोग!! लौंडियाँ-बाँदियाँ तुम्हारी हाजिरी में खड़ी रहें!!! हुकुम करो और हम उसको पालें। सीताफल तुम्हारे ऊपर न्योछावर हैं। देखो तो, ऐसी हैं जैसे गुलाब और कमल के फूलों से बनी हो इनकी देह। किसी राजा के साथ होगा तुम्हारा ब्याह, तब कभी-कभी हमारी और सीताफलों की याद करना, भूलना नहीं। शिकार मारकर दोगी तब हम लोग ले लेंगे पर इस समय हमारी यह भेंट तो कबूल करलो, रानी।'

निन्नी को यह भाषा बुरी लगी, लाखी को अच्छी।

लाखी ने कहा, 'ले लो, निन्नी, ले लो। अभी दिन भर पड़ा है कोई न कोई शिकार जंगल में मिलेगा सो इनको ब्याज समेत चुका देंगी।'

नटों के आग्रह के पीछे किसी विशेष अभिप्राय को न देकर निन्नी ने एक सीताफल ले लिया। दूसरा लाखी ने। जब तक उन दोनों ने सीताफल समाप्त किये। पोटा ने एक टोकनी में से लम्बा रस्सा निकाला। दो गुणाकार नोकदार बाँसों से एक ओर और वैसे ही दो बाँसों से दूसरी ओर उस रस्से को बाँधकर ताना, और कड़ा कर लिया। अधेड़ नटिनी के

संकेत पर पिल्ली दो बड़े-बड़े सीताफल और लाई। उन दोनों ने खाने से इनकार किया, परन्तु पिल्ली और अधेड़ नटिनी के लचक-लचक कर किये हुये आग्रह को वे न ठुकरा सकीं। उन्होंने इन फलों का खाना समाप्त नहीं कर पाया था कि गले में ढोल बांधकर पोटा अपने साथियों की सहायता से रस्से पर पहुँच गया। चलने लगा।

वे दोनों आश्चर्य के साथ उसकी क्रिया को देखने लगीं। पिल्ली मचल-मचल कर, मचक-मचक कर नाचने और गाने लगी। पोटा कभी धीरे-धीरे, कभी द्रुतिगति के साथ रस्से पर इधर से उधर और उधर से इधर चलने लगा। पिल्ली के गायन और नृत्य का साथ देने के लिये वह गर्दन में पड़ी हुई ढोलकी को भी बजाता जाता था।

निन्नी का आश्चर्य शीघ्र समाप्त हो गया। कुछ क्षण उसको पिल्ली का गाना भाया, परन्तु कुछ ही क्षण। वह अपने मन को कारण नहीं समझा सकती थी, परन्तु उसको पिल्ली के गायन में बेसुरापन और भद्दा-पन प्रतीत हो रहा था और नृत्य में बहुत भोंड़ापन। क्या स्त्रियाँ इतनी निर्लज्ज भी हो सकती हैं? उसके मन में ग्लानि के साथ बार-बार प्रश्न उठ रहा था।

लाखी को उसके गायन और नृत्य में कुछ कुरस या नीरस नहीं लग रहा था। उसका ध्यान पोटा के संतुलन और विलक्षण लाघव पर मुग्ध हो रहा था।

उसके मन में उठा, क्या मैं ऐसा कर सकती हूँ ? क्यों नहीं कर सकती ? इस नटिनी सरीखी कुलांचें चाहे न ले पाऊँ, परन्तु इस नट के समान रस्से पर तो चल फिर लूंगी। अवश्य चल फिर लूंगी। देह को साधने और सांस को सँभालने ही का तो काम है। सीखूंगी। घर में रस्सा है ही। जंगल से बांस काट लाऊँगी। आज ही छुरे से चार बांस काटूंगी और घर लौटते ही अभ्यास करूँगी। यदि शिकार मिलता रहा तो नटों को दिया करूँगी और उनसे इस विद्या को सीख कर ही रहूँगी।'

नट प्रदर्शन को समाप्त करके रस्से से नीचे उतर आया। उसने पूछा, 'बेटी कैसा लगा ?'

निन्नी ने केवल सिर हिलाया, लाखी ने उत्साह के साथ कहा, 'बहुत अच्छा लगा। कब तक रहोगे तुम सब यहां ?'

'कुछ ठीक नहीं, अभी तो आये ही हैं। नदी का सहारा है। हमारे जानवरों के चरने के लिये घास यहाँ बहुत है। आस पास कई गांव हैं। हैं तो छोटे ही, पर अपने खेल तमाशे दिखलाते रहेंगे और पेट पालते रहेंगे। ग्वालियर भी दूर नहीं है। कभी वहां भी खेल दिखलाने जायेंगे, पर अभी तो यहीं पड़े हैं।' पोटा ने कहा।

पिल्ली बोली, तुम आया करो, तुमको रोज कोई न कोई नया खेल दिखलाया करेंगे। अभी दिखलाया ही क्या, और कितना है। अनगिनत तमाशे हैं हमारे पास। तुम्हारे गाँव में भी आयेंगे हम।'

निन्नी ने हतोत्साहित किया, 'गाँव में तमाशे के बदले कुछ नहीं मिलेगा। बहुत गरीबी छाई है।'

अधेड़ नटिनी ने उत्साह प्रकट किया, 'बेटी हम लोग बहुत कमा खा लेते हैं। एक गाँव में कुछ न सही। तुम्हारे सहारे यहां जङ्गल में दिन काट लेंगे, यही क्या कम है ? आया करो, भला। कसम है, आया करो बेटी दोनों। और देखो शिकार क्यों खेलती हो ? यह तो मर्दों का काम है। जङ्गल में शेर भालू होंगे। खाई खड्ड और काँटे हैं। तुम्हारे कन्धों पर तो फूलों की मालायें और कमर में मोतियों की करधौनी होनी चाहिये। बिना तीर कमठों के ही आया करो। वैसी बहुत भली लगोगी।'

पिल्ली ने अपने वक्ष फड़का कर आँख मिचकाई और मुस्कराई। लाखी को वह उपहास-जनक फूहड़पन जान पड़ा। ग्लानि और क्षोभ के कारण निन्नी का चेहरा तनतमा गया।

निन्नी ने कहा, 'अब हम लोग शिकार खेलने जा रही हैं। कुछ मिल गया तो तुमको भी देंगी।'

पोटा ने अनुरोध किया, 'हम लोग भी तीर चलाना जानते हैं। संग में ले लों हम में से दो–एक को, मदद मिलेगी। दो से तीन और तीन से चार भले।'

लाखी हामी भरने वाली थी। निन्नी ने तुरन्त निषेध किया, 'शिकार में जहां दो से तीन हुये कि शिकार हुई चौपट। हम लोग किसी को साथ नहीं लेती। यहाँ तक कि मैं अपने भाई को भी साथ नहीं लेती।'

'कहाँ हैं तुम्हारे भाई ?'

'ग्वालियर गये हैं, आज ही।'

'कब तक लौटेंगे ?'

'चार–पांच दिन में आ जावेंगे।'

अधेड़ नटिनी ने कहा, 'अच्छा कोई बात नहीं। तुम दोनो अकेली ही चली जाओ, पर शिकार मिल जाय तो हम लोगों को न भूल जाना। हमारे पास बहुत बढ़िया चावल और मालवे का गुड़ है। हम तुमको देंगे।'

निन्नी ने पूछा, 'तुम लोग कहाँ से आ रहे हो ?'

उसने उत्तर दिया, 'दूर मालवे के एक जंगल से। हम ग़रीबों का कोई घर नहीं होता। जिस जंगल में डेरा डाल लिया वहीं, हमारा घर बन जाता है।'

लाखी को पिल्ली के वस्त्रों की चमक–दमक और बहुमूल्यता पर आश्चर्य हो रहा था। ये लोग अपने खेलों से बहुत कमा लेते होंगे, तभी इनके पास इतने अच्छे कपड़े हैं।'

निन्नी बोली, 'तुम्हारे चार सीताफल हम लोग खा गईं—'

अधेड़ नटिनी ने टोका, 'अच्छे लगे न ? हमारे पास और बहुत हैं। जंगल में से तोड़ते-बीनते लाये हैं।'

निन्नी कहती गई,—'सेंतमेत तुम्हारा कुछ भी नहीं लेंगी। जानवर मार कर देंगी तभी तुमसे फल, चावल और गुड़ लेंगी।'

बिन्नी लाखी को लेकर जंगल के एक कोने में चली गई।

नटों का सन्तोष और हर्ष फूट पड़ने को हुआ। अवेड़ नटिनी ने होठ पर उँगली रखकर वर्जित कर दिया।

पिल्ली बोली, 'इनको और गांव वालों को जादू-टोने के करतब दिखलाओ।'

अवेड़िन ने कहा, 'धीरे-धीरे, सबका सब इकट्ठा नहीं। बड़ी आंख वाली के भाई को आ जाने दो।'

पिल्ली ने बतलाया,—'नाम उसका मृगनयनी है, भूल गई क्या?'

'कच्ची गोलियां नहीं खेली हूँ यह सारी जिन्दगी। तू छोकरी ही है अभी; तू भले ही भूल जाइयो।' अवेड़ नटिनी ने भर्त्सना की।

'नहीं भूलूंगी', पिल्ली ने आश्वासन दिया।

'यहां के लोगों ने जो कपड़े कभी देखे-सुने न होंगे, तू उनको नयनी के भाई के सामने पहिनियो। और देख, उसके सामने घूँघट डालियो, तभी वसीकरण कर पावेगी। ऐसी ही अधनङ्गी खड़ी हो जायगी उसके सामने तो कहीं वह विचक न जावे।'

पिल्ली ने कुछ अकड़ के साथ विवाद किया, 'लेकिन तुमने बहुत दिन हुये जब बतलाया था और मैंने देखा भी है कि मर्दों को इसी तरह ज्यादा आसानी के साथ लुभाया जा सकता है।'

अवेड़िन नें कहा कुछ छिपाव-लुकाव करने से आदमी का मन बढ़ता है। शुरू में उसको लुभाने के लिये ऐसा ही कर, फिर जैसा ठीक दिखे वैसा करना। किसी तरह भी उसके भाई को—।' उसने वाक्य पूरा नहीं किया, आँख की एक हलकी झपकी से मनोरथ समझा दिया। पिल्ली अपने हठ पर आरूढ़ जान पड़ी।

पोटा ने जरा रूखे स्वर में अघेड़िन का समर्थन किया, 'समझ के काम करना पिल्ली ! नायकिन ठीक कह रही है ।'

पिल्ली ने तुरन्त आज्ञाकारिता का भाव ग्रहण किया। वे सब अपने काम में लग गये। चौथा पहर नहीं आने पाया कि उन्होंने लक्कड़ों का मज़बूत घेरा बना लिया। उसके भीतर झोपड़े खड़े कर लिये और अपने जानवरों तथा सामान के लिये ठौर कर लिया।

एक घड़ी पीछे निन्नी और लाखी आ गईं। दोनो एक-एक सुअर को टांगे थीं। दोनो छोटे थे, निन्नी वाला कुछ बड़ा था। कमान और तरकस कंधों पर डाले शिकार के खून से भीगीं हुई नटों के पास आ खड़ी हुईं। वे सब के सब बाड़े को खोलकर बाहर आगये। पोटा आतंकित हुआ और अघेड़िन भी कुछ डिग गई। पिल्ली ने उनके रूप में साकार भीमता देखी।

उन दोनों ने शिकार को जंगल की बेलों से बांध रक्खा था। लाखी के जानवर को निन्नी ने खोलकर नीचे रखवा दिया। अपना बांधे रही।

नटों से उसने कहा, 'यह तुम्हारे लिये है। खाते हो न इसको !'

नटों ने हर्ष प्रकट किया। उन लोगों से बेड़े के भीतर चलने और सीताफल खाने के लिये प्रार्थना की।

निन्नी बोली, 'सीताफल बहुत खा लिये हैं ! फिर कभी देखेंगे। इसके बदले में थोड़ा सा चावल और गुड़ दोगे ? तुमने कहा था।'

अघेड़िन और पिल्ली के मुंह से एक साथ निकला, 'जरूर।'

पोटा ने कहा, 'थोड़ा नहीं, बहुत। भीतर आओ न।'

लाखी बोली, 'समय कम है। नदी में पानी पीते हुये घर पहुँचना है। ढोरों की उसार करनी है।'

अघेड़िन और पोटा बेड़े के भीतर दौड़ गये और छः सेर चावल तथा एक भेली गुड़ की ले आये।

निन्नी ने कहा, 'अरे यह तो बहुत है ! इतना नहीं ।'

'नहीं बेटी'—पोटा ने आग्रह किया, 'यह कुछ भी नहीं है । तुम्हारे ऊपर न्योछावर है । वाह, कैसा निशाना लगाया है ! बड़े-बड़े सूर-सामन्त भी नहीं लगा सकते !!'

अचेड़िन बोली, 'ले लो, ले लो । हम और भी ला-लाकर देंगे । तुम्हारे गाँव में अन्न कम पैदा होता है, शायद ।'

'हां,—'लाखी ने कहा और अपनी ओढ़नी में दोनों चीजों को बांध लिया ।

पिल्ली ने अनुनय की—'कल फिर आना, भला । हम बहुत से खेल दिखलायेंगे । दूर देशों की बातें सुनायेंगे । अच्छे अच्छे कपड़े दिखलायेंगे ।'

लाखी ने कहा, 'अच्छा ।'

वे दोनों चली गईं ।

जब अदृश्य हो गईं, नटों ने बेड़े को बन्द कर लिया ।

अचेड़िन बोली, 'पिल्ली ने कपड़ों की बात चतुराई के साथ कही । इनमें से एक भी हाथ चढ़ जाय तो दूसरी को भी ढाल लेंगे । काम सँभाल कर करना है । वह जो तगड़ी लड़की है—नयनी या निन्नी—कुछ कठिन जान पड़ती है । दो आदमियों को सवेरे ही माँडू भेजो । कुछ टंके, सोने चांदी के गहने और रेशमी कपड़े जल्दी से मँगवाओ । गुड़ और बढ़िया चावल भी लेते आवें, और—' शेष वाक्य उसने बहुत धीरे से कहा ।

पोटा ने अपने समूह में से दो आदमी छाँट लिये ।

अचेड़िन ने पिल्ली से कहा, 'तुमको बहुत सूझबूझ के साथ काम करना है । इनको नित्य यहां किसी न किसी मिस से बुलाओ । जानती हो जवान लड़कियां और औरतें किन चीजों पर सब से अधिक रीझती हैं ?'

'गहनों पर ।'

'मूर्ख ही रही। न जाने कब अकल आयगी। जवान लड़कियां और औरतें भड़कीले कपड़ों और दमकते हुये गहनों पर रीझती हैं। उनके लिये अपने प्राण तक देने के लिये तैयार हो जाती हैं। उनका धरम, ईमान कपड़ों और गहनों में बसता है। उसी से अपनी जवानी को सजाती हैं। फिर पुरुषों के मन को ठगने की बारी आती है। सो इन्हीं कपड़ों और गहनों के लिये। जिस जवान के पास कपड़ा और गहना न हो वह चाहे जैसा सुन्दर सलौना हो, उस पर ये औरतें थूकती भी नहीं हैं।'

'समझ गई, मुझको बतलाओ क्या करना है।'

'खेल कूद पर नहीं रीझेंगी ये। इनको अपने वे सब कपड़े धीरे-धीरे देना शुरू कर दो। गहने आये जाते हैं। फिर गहने देना। यहां से कुछ ही दूर टाल ले जाने की मैंने जानी। जब तक वह मौका नहीं आया, खूब मिलमिल कर, घुल-घुलकर बातें करो। तब तक—समझ गई न?'

'हाँ।'

'और जब इनका या इनमें से किसी का भाई लौट कर आ जावे तब उनके ऊपर प्रेम की आंधी छोड़ दो। उसको इन लड़कियों समेत टाल कर मालवे की सीमा पर ले चलना है। इस बीच में मांडू से कुमुक आ गई तो, बस, सब काम बन गया।'

'ठीक है।'

'याद रखना इस गोल की नायकिन मेरे पीछे तुम्हीं को बनना है।'

(१६)

हाथ मुंह धोने और नहाने के उपरांत लाखी ने घर में चार लकड़ियां ढूंढ़ीं। उनको छांटने के बाद एक रस्सा ले आई।

निन्नी ने कहा, 'उस नट ने जो किया था, देखती हूँ मैं भी कर सकती हूँ या नहीं।'

'खाना नहीं बनाना है ? कब बनाओगी ?'

'तुम बना दो मेरी भली सी निन्नी।'

'खा लोगी मेरे हाथ का बनाया हुआ ?'

'आज नहीं तो किसी दिन खाना ही है।'

'तो मुझसे ननद कहो, एक बार ही कह दो।'

'हूं—ऊँ। बड़ी वैसी हो।'

'एक बार कह दो तो रोज खाना बना दिया करूँगी।'

'जिसमें मैं निकम्मी हो जाऊँ और तुम मुझसे लड़ा करो।'

'अच्छा, आज बना दूंगी, फिर तुम बना दिया करो। पर एक बार कह दो।'

'ननद जी, बना दो खाना।'

'अभी लो, भौजी।'

वे दोनों एक दूसरे से लिपट कर हँसती रहीं।

निन्नी खाना बनाने लगी। लाखी ने नट के रस्से के तनाव का अनुकरण किया। लकड़ियों को गाड़ कर कस लिया। अभ्यास करने लगी और बार-बार गिरने लगी। रस्सा ढीला पड़ गया तो उसको फिर से कस लिया। जब तक निन्नी ने खाना पकाया वह उस अभ्यास में लगन के साथ उलझी रही। अन्त में वह रस्से पर कुछ क्षणों के लिये सधने लगी। एक बार चार पांच डग उस पर चली भी। हर्ष के मारे फूल गई। दौड़कर निन्नी के पास पहुँची।

हाँफती हुई सी बोली, 'मैं एक अठवारे में रस्से पर चलने लगूँगी। मैं भी कह सकूँगी कि आकाश में चल सकती हूँ।'

निन्नी ने बधाई दी,—'हाँ हाँ क्या कहना है। बड़ा अनूठा काम है न? मैंने चावल पकाये हैं। अपने तो बहुत मोटे थे जिन्हें भैया ले गये हैं। ये बहुत अच्छे हैं। गुड़ भी है आज तो! भैया जब आयेंगे तब तो पङ्गत सी करेंगे। आओ, गुड़ चावल की बधाई लो।'

दोनो ने उस रात साथ बैठकर एक ही वर्तन में खाना खाया। मचान पर पहुँचकर लाखी देर तक सोचते-सोचते सो गई। कब सवेरा हो और नटों के डेरों पर पहुँचूं; निन्नी को भी साथ ले जाऊँगी, ढोरों को किसी चरवाहे को सोंप दूंगी। निन्नी ज्वार की रखवाली के लिये जागती रही। जब उसको नींद आई तब उसने लाखी को जगा दिया।

सवेरे हाथ मुंह धोने के बाद, ढोरों का प्रबन्ध करके और कुछ बासी खा-पीकर नटों के डेरे पर पहुँची। तीर कमठे और छुरे लिये ही थीं।

नटों ने बहुत आव-भगत की। अघेड़िन और पिल्ली ने पाँवड़े से बिछा दिये।

लाखी ने रस्से का खेल देखने की वांछा प्रकट की। नट ने बांसों को गुणाकार गाड़कर रस्से को कस कर तान लिया। ढोलकी गले में बांधकर रस्से पर पहुँच गया। पिल्ली एक बहुत रंग-बिरंगी बढ़िया ओढ़नी ओढ़कर आ गई। पोटा रस्से पर चलने फिरने लगा। पिल्ली हाव-भाव के साथ नाचने गाने लगी।

निन्नी का मन उस ओढ़नी और रस्से पर के नाच और ढोलकी की ढपाढप से उकता गया। लाखी का मन उस ओढ़नी और नट के आकाश नृत्य में बँट बँट जाता था। परन्तु उसने अपने मनको एकाग्र करके नट के आकाश नृत्य की तौल पर अधिक लगाया। नट ने रस्से को जोर के साथ इधर-उधर हिलाते-डुलाते ढोलकी बजाते हुये चलना आरम्भ किया। लाखी अचम्भे में डूबने लगी।

(१६)

हाथ मुंह धोने और नहाने के उपरांत लाखी ने घर में चार लकड़ियां ढूंढ़ीं। उनको छांटने के बाद एक रस्सा ले आई।

निन्नी ने कहा, 'उस नट ने जो किया था, देखती हूँ मैं भी कर सकती हूँ या नहीं।'

'खाना नहीं बनाना है ? कब बनाओगी ?'

'तुम बना दो मेरी भली सी निन्नी।'

'खा लोगी मेरे हाथ का बनाया हुआ ?'

'आज नहीं तो किसी दिन खाना ही है।'

'तो मुझसे ननद कहो, एक बार ही कह दो।'

'हूं—ऊँ। बड़ी वैसी हो।'

'एक बार कह दो तो रोज़ खाना बना दिया करूँगी।'

'जिसमें मैं निकम्मी हो जाऊँ और तुम मुझसे लड़ा करो।'

'अच्छा, आज बना दूंगी, फिर तुम बना दिया करो। पर एक बार कह दो।'

'ननद जी, बना दो खाना।'

'अभी लो, भौजी।'

वे दोनो एक दूसरे से लिपट कर हँसती रहीं।

निन्नी खाना बनाने लगी। लाखी ने नट के रस्से के तनाव का अनुकरण किया। लकड़ियों को गाड़ कर कस लिया। अभ्यास करने लगी और बार-बार गिरने लगी। रस्सा ढीला पड़ गया तो उसको सिर से कस लिया। जब तक निन्नी ने खाना पकाया वह उस अभ्यास में लगन के साथ उलझी रही। अन्त में वह रस्से पर कुछ क्षणों के लिये सधने लगी। एक बार चार पांच डग उस पर चली भी। हर्ष के मारे फूल गई। दौड़कर निन्नी के पास पहुँची।

हाँफती हुई सी बोली, 'मैं एक अठवारे में रस्से पर चलने लगूँगी। मैं भी कह सकूँगी कि आकाश में चल सकती हूँ।'

निन्नी ने बधाई दी,—'हाँ हाँ क्या कहना है। बड़ा अनूठा काम है न? मैंने चावल पकाये हैं। अपने तो बहुत मोटे थे जिन्हें भैया ले गये हैं। ये बहुत अच्छे हैं। गुड़ भी है आज तो! भैया जब आयेंगे तब तो पङ्गत सी करेंगे। आओ, गुड़ चावल की बधाई लो।'

दोनो ने उस रात साथ बैठकर एक ही बर्तन में खाना खाया। मचान पर पहुँचकर लाखी देर तक सोचते-सोचते सो गई। कब सवेरा हो और नटों के डेरों पर पहुँचूं; निन्नी को भी साथ ले जाऊँगी, ढोरों को किसी चरवाहे को सौंप दूँगी। निन्नी ज्वार की रखवाली के लिये जागती रही। जब उसको नींद आई तब उसने लाखी को जगा दिया।

सवेरे हाथ मुंह धोने के बाद, ढोरों का प्रबन्ध करके और कुछ बासी खा-पीकर नटों के डेरे पर पहुँची। तीर कमठे और छुरे लिये ही थीं।

नटों ने बहुत आव-भगत की। अघेड़िन और पिल्ली ने पाँवड़े से बिछा दिये।

लाखी ने रस्से का खेल देखने की वांछा प्रकट की। नट ने बांसों को गुणाकार गाड़कर रस्से को कस कर तान लिया। ढोलकी गले में बांधकर रस्से पर पहुँच गया। पिल्ली एक बहुत रंग-बिरंगी बढ़िया ओढ़नी ओढ़-कर आ गई। पोटा रस्से पर चलने फिरने लगा। पिल्ली हाव-भाव के साथ नाचने गाने लगी।

निन्नी का मन उस ओढ़नी और रस्से पर के नाच और ढोलकी की ढपाढप से उकता गया। लाखी का मन उस ओढ़नी और नट के आकाश नृत्य में बँट बँट जाता था। परन्तु उसने अपने मनको एकाग्र करके नट के आकाश नृत्य की तोल पर अधिक लगाया। नट ने रस्से को जोर के साथ इधर-उधर हिलाते-डुलाते ढोलकी बजाते हुये चलना आरम्भ किया। लाखी अचम्भे में डूबने लगी।

निन्नी ने मन में कहा, 'इस काम के लिये बहुत अभ्यास चाहिये। पर सीख लेने पर इससे लाभ क्या होगा ? यदि सुअर या भैंसे को बर्छी से बेधना मैंने सीख लिया तो रस्से पर इस तरह झूलने से कहीं अच्छा रहेगा।'

नट खेल को समाप्त करके उतर आया।

लाखी के मुंह से यकायक निकला, 'क्या मैं भी सीख सकती हूं इस काम को ?'

'जरूर', सब नट-नटियों ने एक साथ कहा।

निन्नी ने देखा—कल जितने नट बेड़े में थे उनमें से कुछ नहीं हैं। जिज्ञासा नहीं हुई। सोचा, अपने किसी काम से कहीं चले गये होंगे।

पोटा बोला, 'बहुत जल्दी सीख लोगी। तुम्हारी देह बहुत छरेरी है। कुछ ही दिन में सिखला दूंगा। आज से ही शुरू कर दो।'

लाखी ने निन्नी की तरफ़ देखा।

निन्नी ने कहा, 'आज एक अरने को मारने की बात सोच रही हैं। यदि नाहर हाथ लग गया तो और भी अच्छा। अच्छी खाल अच्छे मोल बिक जायगी।'

पिल्ली बोली, 'अभी तो दिन भर पड़ा है, आओ तब तक कुछ बड़े-बड़े नगरों की बातें सुनाऊँ।'

लाखी सहमत हो गई। निन्नी को भी मानना पड़ा। नट एक जगह सिमट गये। स्त्रियाँ एक स्थान पर इकट्ठी रह गई। पिल्ली एक झोपड़ी के भीतर उन दोनों को ले गई। अन्य नटनियाँ बाहर बैठ गई।

पिल्ली ने एक पिटारी में से कुछ बहुमूल्य ओढ़नियाँ निकालीं। एक एक करके दिखलाने लगी और सराहना करने लगी। उन दोनों ने इस तरह के कपड़े कभी नहीं देखे थे। दोनो चाव के साथ देखने-टटोलने और सराहना को सुनने लगीं।

निन्नी ने सोचा, 'इन कपड़ों में हमारा तो कोई काम कभी चलना नहीं है। इनको पहिनकर न तो रसोई बनाई जा सकती है, न ढोरों और खेती का काम किया जा सकता है और न शिकार खेली जा सकती है। एक कांटा बीधा या डाल उलझी कि फटकर फुर्र हो जायगी। पहिनकर यदि भाई के सामने गई तो कहेंगे नटिनी है! राम!! राम!!! राम!!!! कितनी लाज-हीन है यह पिल्ली !!!!!'

'बहुत दाम होंगे इनके ?' लाखी ने देखते-देखते प्रश्न किया।

'अरी हां, बहुत। बड़ी अनमोल है।' पिल्ली ने कहा।

'तुमको कैसे मिल गई ? किसी ने इनाम में दी है क्या ?'

'और क्या ? वैसे हम लोग मोल थोड़े ही ले सकते हैं। ये कपड़े तो बड़े-बड़े नगरों में ही मिलते हैं।'

'तुमको कहां मिले ये ?'

'मांडू में। रानियों के पहिनने के कपड़े हैं ये। यानी रानियाँ या हमारी तुम्हारी सरीखी मन वाली ही पहिन सकती हैं इनको। मांडू के राजा को खेल दिखलाया। उन्होंने प्रसन्न होकर इनाम दे दिया।'

अधेड़िन ने बाहर से ही रङ्ग चढ़ाया,—'अरी बेटी, राजा क्या है, मानो इन्द्र है। बहुत सोना, चांदी, हीरे, जवाहिर, मोती हैं उसके पास। बड़े-बड़े महल। वह इसके खेलों को देखकर लट्टू हो गया था।' पिल्ली नखरे के साथ हँस पड़ी। लाखी ने भी साथ दिया। निन्नी भी हँसना चाहती थी; परन्तु भीतर के किसी झटके ने हँसी को होठों पर क्षीण मुस्कान में आकर संकुचित कर दिया।

पिल्ली बोली, 'मेरे मन में तुम दोनों बहिनों के लिये इतना प्यार पसीज उठा है, न जाने क्यों, कि चाहती हूँ एक-एक दोनो ले जाओ और पहिनो। मैं तो खेल में नाचने के समय कभी—कभी ही पहिनती हूँ, सो बहुत सी रक्खी हैं। ले लो एक-एक।'

उन दोनों को यह नहीं रुचा। निन्नी को विशेष गड़ा। लाखी उस आकाश नृत्य को सीखना चाहती थी। उनमें से किसी को भी रुष्ट नहीं करना चाहती थी।

मुस्कराकर बोली, 'अभी नहीं लेंगी हम। जब कुछ देने योग्य हो जायँगी, तब लेंगी। अभी तो हमारे लिए ये काम की नहीं है।'

अघेड़िन ने पूछा, 'तुम्हारा व्याह हो गया है?'

'नहीं,' निन्नी ने बिना संकोच के उत्तर दिया।

उसने दूसरा प्रश्न किया, 'कहीं सगाई हो गई है?'

लाखी को संकोच हुआ। निन्नी ने दृढ़ता के साथ उसके प्रश्न पर प्रश्न किया. 'तुमको इससे क्या?'

लाखी ने साधने का प्रयत्न किया,—"नहीं हुई है। निन्नी, इन्होंने वैसे ही पूछा, कोई बात नहीं।'

अघेड़िन सहारा पाकर बोली, 'अरी हां। देखो तो, तुम दोनों कितनी रूपवती और गोरी नारी हो। जैसे जङ्गल की रानी हो। तुम्हारी सगाई होगी किसी बड़े राजा के साथ। मैं हाथ देखकर बतला सकती हूँ। ज्योतिषी जो बात नहीं बतला सकते, यह हम लोग बतला सकते हैं। जो मंत्र-जन्त्र कोई नहीं जानता है, वह हम जानते हैं। जङ्गल की जिन जड़ी-बूटियों को राजधानियों के बड़े-बड़े वैद्य नहीं जानते उनको हम लोग पहिचानते हैं। काले नागराज से हम कटवा लें तो जड़ी के जोर से और मन्त्र की मार से पलों में विष को दूर कर दें।'

निन्नी नहीं सहमी परन्तु उत्तर नहीं दे सकी। मुस्कराकर रह गई। लाखी ने अपने हाथ की गदेली पसार दी।

अघेड़िन कुछ देर तक रेखाओं को देखती रही। उसने परिणाम सुनाया, 'तुम किसी बड़े किलेदार को व्याही जाओगी, किसी बड़े ठिकानेदार को।'

वे दोनो हँस पड़ीं। अघेड़िन को ज़रा भी संकोच नहीं हुआ। बोली, 'देख लेना, बहुत जल्दी मेरी बात सच्ची होकर रहेगी। तुम दिखलाओ मृगननी अपना हाथ।'

निन्नी संकोच कर रही थी। लाखी ने पकड़ कर उसका हाथ बढ़ा दिया। अघेड़िन ने ध्यान के साथ देखा।

कहा, 'तुम तो बेटी, बड़ा भारी राज्य भाग्य में लिखाकर चली हो। राजा की नहीं किसी बड़े महाराज की रानी बनोगी। झूठ निकले तो मेरी जीभ काटकर फ़ेक देना।' अघेड़िन ने साथ ही अपनी जीभ बाहर निकाल कर भीतर कर ली। जीभ पर काफ़ी मैल जमा था।

वे दोनो उस कौतुक को देखकर हँस पड़ीं।

लाखी ने हँसते-हँसते पूछा, 'कहां का राज्य मिलेगा इनको?'

अघेड़िन ने उत्तर दिया, 'बेटी बहुत से राज्य आसपास हैं। बिलकुल ठीक इसी घड़ी तो नहीं बतला सकती; परन्तु देवताओं को बलि चढ़ाकर ध्यान करते करते, कुछ दिन बाद यह भी बतलाऊँगी। वैसे देखो इतने राज्य तो आस-पास ही हैं—ग्वालियर, कालपी, मालवा, मेवाड़ और न जाने कितने। हम लोग सब देशों में घूमा करते हैं। बहुतेरों का तो नाम भी याद नहीं है।'

राज्यों की गिनती की लपेट में उसने मालवा को सावधानी के साथ रक्खा। वे दोनो नहीं समझ पाईं।

अघेड़िन बोली, 'अब हम लोग अपना काम देखती हैं, तुम तीनों तब तक अपने मन की बातें कर लो।'

'हम लोग भी जङ्गल की तरफ़ जाती हैं।' निन्नी ने कहा।

पिल्ली ने रोका, 'वाह, वाह, थोड़ी देर ठहरो। अभी तो बहुत दिन पड़ा हुआ है।'

अघेड़िन अन्य स्त्रियों को लेकर वहां से चली गई।

निन्नी ने पूछा, 'यह तुम्हारी कौन है?'

पिल्ली ने बतलाया, 'यह हम लोगों की सब कुछ हैं। हमारे गोल की मुखनी हैं यह। इन्हीं का हुकुम चलता है।'

'स्त्री मुखिनी! जो रस्से पर चलते हैं, वह होंगे मुखिया?'

'बाहर वालों से वही बात करते हैं, पर हमारे भीतर हुकुम इन्हीं का चलता है। हमारी जात में बूढ़ी पुरानी स्त्रियों की ही चलती है।'

'तुम्हारी कौन हैं यह?'

'हमारी माँ है और रस्से पर चलने वाले हमारे काका हैं। हम सब एक ही कुटुम्ब के हैं।'

'तुम्हारा व्याह हो गया है?'

'अभी नहीं हुआ है। सगाई भी नहीं हुई है। तुम कराओगी अपना व्याह और यह तुम्हारी वहिन?'

'वहिन नहीं है, सखी है।'

'कराओगी व्याह?'

'हिष्ट।'

'हिष्ट कैसी? मैं कराऊँगी अपना व्याह। तुम दोनो भी कराओ। जवानी के दिन हैं। यही तो समय खेलने-कूदने और खाने-पीने का है।

'खाती-पीती भी है और खेलती-कूदती भी है।'

'अरे यह सब कोरा और रूखा है, बिना राग-रङ्ग, आराम और चैन के। हम लोग तो ऐसे दूल्हे ढूंढ़ देंगी कि जैसे नायकिन माँ ने तुम्हारे हाथ देखकर बतलाये हैं।'

लाखी बोली, 'अभी तो हमको अपने पेट पालने हैं। घर के हमारे बड़े करेंगे यह काम। वह ग्वालियर से आ जायें, तब उनसे चर्चा करना।'

निन्नी खड़ी हो गई। लाखी से कहा, 'देर हो रही है, चलो अब!' वह भी खड़ी हो गई।

पिल्ली ने रोक रखने का प्रयत्न किया।

लाखी बोली, 'कल दिन भर रहेंगी। मैं रस्से का काम सीखूंगी तुम इनको कहानियाँ सुनाना।'

निन्नी ने जाते-जाते कहा, 'यदि कुछ शिकार मिल गया तो तुम्हारे डेरे पर होकर आवेंगी।'

वे दोनों चली गईं। सन्ध्या तक नटों ने उनकी प्रतीक्षा की परन्तु वे नहीं आईं। उनको बहुत भटकने पर भी कोई शिकार नहीं मिली थी। जङ्गल के सीधे मार्ग से घर पहुँच गईं।

[१७]

अटल को ग्वालियर गये आठ दिन के लगभग हो गये थे। दो दिन से निन्नी और लाखी को कुछ चिन्ता रहने लगी थी। दिन में वे नटों के डेरे पर या आखेट के लिये जङ्गल में रहती थी। सन्ध्या के पहले घर आ जाती थीं। ढोरों की देखभाल की, भोजन बनाया, खाया और रात में ज्वार को रखाने के लिये मचान पर पहुँच जातीं।

इन दिनों रस्से पर चलने का लाखी नें इतना अभ्यास कर लिया था कि पोटा नट को हँसी आती थी।

सुल्तान का नाम न लेकर पिल्ली और नायकिन ने मालवा की राजधानी मांडू के महलों, नगर, दूकानों, सम्पत्ति और तड़क-भड़क की उन दोनों के मन पर धाक बिठलाने में कसर नहीं लगाई। इस बीच में निन्नी और लाखी को जङ्गल में कोई ऐसा जानवर नहीं मिला जिसको देकर नटों से वे कोई सामान लेतीं। मुफ्त में वे कुछ लेना नहीं चाहती थीं।

दोनों सन्ध्या के पहले ही उस दिन भी घर आ गईं। ढोरों के बांधने और चारे का प्रबन्ध कर रही थीं कि अटल आगया। वह हाथ में बर्छी लिये था, पीठ पर तरकस में लोहे के कुछ तीर। नए मोटे गहरे लाल रंग के कपड़े की छोटी सी पोटली को दूसरी बर्छी पर कन्धे से टांगे था। भारी-भरकम चोंचदार जूतों पर धूल, पैर धुले हुये. चेहरा धुला तपा हुआ। आँखों में प्रसन्नतापूर्ण मुक्तता जैसे किसी बड़े समाचार को सुनाने के लिये व्यग्र हो। आँगन के एक तरफ उसने एक रस्से को दो-दो लकड़ियों के गुणाकारों पर बँधा हुआ तना पाया। आश्चर्य हुआ।

आह्लाद के स्वर में पुकार लगाई—'कहां हो री ?'

लाखी ने कहा, 'आई।'

निन्नी बोली, 'भैया !'

दोनो मुस्कराती हुईं निकल आईं। अटल ने तपाक के साथ हाथ वाली वर्छी को पेंदी के बल आँगन में गाड़ दिया और एक हाथ में कन्धे वाली पोटली को ले लिया। दूसरे में दूसरी वर्छी को।

तने हुए रस्से की ओर देखकर हँसते हुये कहा, 'यह क्या खेल है?'

'खेल तो है ही'—निन्नी वोली, 'वतलाऊँगी, पहले यह कहो कि इतने दिन कहाँ लगा दिये?'

'वहुत चिन्ता रही।' लाखी हर्ष को नहीं छिपा पा रही थी।

अटल ने पैर फैलाये, 'अरी वड़े-वड़े समाचार हैं। थोड़ी देर में सुनाऊँगा। दोपहर का रक्खा है खाने को कुछ? या सेंतमेंत वतला दूँ?'

अटल पाल्थी मारकर वैठ गया। चुप्पी साध ली। निन्नी ने उसके हाथ से वर्छी छीन ली। लाखी ने गड़ी हुई वर्छी को उखाड़ लिया।

निन्नी ने आदेश दिया, 'खोल लो लाखी इनकी पीठ पर से तरकस, फिर मैं देखती हूँ इनकी पोटली को। इसी में हैं इनके वड़े-वड़े समाचार जिनकी ठसक के मारे मौनी वावा वनकर वैठ गये हैं।'

झूठ-मूठ का विरोध करते हुये अटल वोला, 'पहले खाना! पहले खाना!! तव तीर–तरकस और पोटली!!! अरेरेरे, सव छीन लिया!!!! सव लूट लिया!!!!!'

वे दोनो विनोद में डूवने–उतराने लगीं। पोटली को झटपट खोला उसमें एक मोटी लाल धोती और दो चोलियों के मोटी छींट के टुकड़े निकले। उन्हीं में चांदी की एक पतली हँसुली और चांदी के दो छल्ले। तरकस को लाखी ने कन्धे पर चढ़ा लिया और वर्छी को हाथ में लिये वड़े चाव के साथ देखने लगी। निन्नी ने अपने गले में हँसुली डाल ली, एक छल्ले को उँगली में डाल लिया और दूसरे को लाखी की उँगली में पहिना दिया। छल्ला लाखी की उँगली में ढीला वैठा परन्तु वह अपनी वर्छी और लोहे के तीरों पर, उस समय, अधिक ध्यान दिये थी।

निन्नी ने कहा, 'खाना दोपहर का नहीं बचा, होता भी तो न देती चावल और गुड़ खिलायेंगी—बढ़िया चावल और चाँदनी से होड़ लगाने वाला बढ़िया गुड़।'

'एं!'—अटल ने चुप्पी को तुरन्त समाप्त किया, 'गुड़ और चावल कहाँ से आ गये?'

वे दोनो हँस पड़ीं।

निन्नी बोली, 'तुम्हारे समाचारों से भी बड़ा हमारा समाचार है।'

'बतलाओ, बतलाओ।' अटल उत्सुकता के मारे चीख पड़ा।

निन्नी ने कहा, 'पहले तुम यह रानो, भैया, कि तुम्हारे सब समाचार इतने ही थे और अब तुम्हारी गाँठ में कहने को कुछ नहीं है। फिर हम बतलायेंगी।'

'मेरी गाँठ में बहुत-बहुत समाचार हैं।' अटल बोला, 'नहीं तो आठ दिन काहे में लगा दिये? लो, पहला बड़ा समाचार तो यह है कि पुजारी बाबा राजा से मिले थे। राजा ने उनको पक्का वचन दिया है कि वे शीघ्र शिकार खेलने राई आयेंगे और, और—नहीं बतलाता, पहले तुम बतलाओ कि चावल और गुड़ कहाँ से आ गये यहाँ और यह रस्सा क्यों तान रक्खा है?'

निन्नी ने अनखाकर कहा, 'राजा लोगों के वचनों का क्या? उन्होंने कई बार पुजारी बाबा से कहा कि आयेंगे और नहीं आये। राजा के वचन कच्चे। छोटों की बात बड़ी होती है और बड़ों की छोटी। आ भी गये तो मेरा लक्ष्यवेध देखकर कौन राई का गांव जागीर में लगा जायँगे! और कोई समाचार!'

अटल, जिस बात के कहने को उकता रहा था और रुक-रुक जाता था, बोला, 'वहाँ लाखी की सूरत से मिलती-जुलती एक लड़की देखी और मैं कई बार चक्कर में पड़ गया। चिन्ता हुई, यह ग्वालियर में कैसे और कब आ गई। एक बार पूछ भी बैठा तो हँसाई हो गई।'

लाखी ने मुस्करा कर मुंह फेर लिया और हंसी को रोकने के लिये मुंह दवा लिया। निन्नी ठहाका मारकर हँस पड़ी।

हँसी को रोक कर लाखी का कन्धा झंझोड़ा। वह भी हँस पड़ी।

निन्नी ने लाखी की ओर देखते हुये कहा, 'कोई उल्टी-पुल्टी बात तो नहीं कर बैठे थे उससे ?'

लाखी आँगन के एक कोने में भाग गई।

अटल बोला, 'अरे हिष्ट ! क्या पागल हूँ ?'

इस पर वे दोनों और भी हँसी।

निन्नी ने पूछा, 'फिर भ्रम टूटा कैसे ?'

अटल ने झेंप को हँसी में घोलते हुये कहा, 'वह नाचने गाने वाली और चितेरिन निकली !'

'ऐसे भूले, भैया तुम ?'

लाखी धीमे स्वर में बोली,' 'अरी अब रहने भी दो। क्यों बात को बढ़ा रही हो ? और कुछ पूछो।'

निन्नी ने पूछा, 'और भी कोई बड़ा समाचार है या बस ?'

'हां हां, अभी बहुत से पड़े हैं। पहले अपना सुनाओ।' अटल ने उत्तर दिया।

निन्नी ने बतलाया,—'यहां डांग में कुछ नट आये हैं। अधपर रस्से पर एक नट नाचता है। उसकी यह नक्ल लाखी ने आंगन में उतार डाली है। किसी दिन यह उस नट को इस खेल में पछाड़ेगी। नटों के पास बहुत अच्छे चावल है और गुड़ भी। एक दिन शिकार का एक जानवर हमने उसको दिया। चावल और गुड़ उनसे ले लिया। उनके पास अनमोल कपड़े भी हैं। मुझको तो अच्छे नहीं लगे। एकाध बड़े जानवर का सुभीता लग गया तो एक ओढ़नी लाखी के लिये ले लूंगी।'

'तुम अपने लिये नहीं लोगी तो मैं क्यों लेने लगी ?' लाखी ने आक्षेप किया।

'हाँ आँ, कुछ ही है तुम्हारा यह समाचार,'—अटल ने अपने समाचार को महत्व देने के लिये कहा, 'ग्वालियर में बड़े-बड़े मेले लगे। लक्ष्य-वेध का काम क़िले में अपनी आँखों देखा। रस्सी से लटकती डोलती हाँड़ी में पानी पर तैरते हुये काठ के छोटे से खिलौने को वेधने के लिये हजारों ने बड़ी-बड़ी साँस साधकर तीर चलाये। हाँडिया तो बहुतेरों के तीरों से फूटी; परन्तु खिलौने का बेध केवल राजा मानसिंह ने कर पाया, सो केवल एकवार। क़िले में फिर गाने-बजाने का मेला जुड़ा। ग्वालियर में दूर दूर के जन आये थे इसको देखने के लिये। मैं भी गया। दो-तीन दिन गया। चन्देरी का कोई बड़ा गवैया आया था। उसके साथ वह लड़की थी। वे दोनों बहुत गाते थे और बीन बजाते थे। समझ में तो नहीं आया, पर बहुत लोगों को सिर हिलाते देखा सो अच्छा हीं गाया बजाया होगा।'

फिर हँसकर बोला, 'निन्नी, तुम्हारा गाना उन लोगों के सामने टीं टीं सा जान पड़ेगा।'

मैंने क्या कहीं सीखा है ? सीख लूं तो देखूं उस गवैया को।' निन्नी ने तिनक कर कहा।

लाखी के प्रति मुंह फेरकर अटल कहता गया, 'यह समाचार तुम सुन लो। हमारी जाति का एक अच्छा घर ग्वालियर में है। दो भैंसें, एक जोड़ी बैल, चार गायें, चार पांच बछड़े, बड़ा मकान और एक कुयें की खेती है। लड़का होनहार है। अपने ढोर चराता है और खेती करता है। घर भरा-भरा है। माँ बाप भाई बहिनें हैं। मैं उस लड़के के साथ निन्नी की सगाई करना चाहता हूं। चर्चा कर आया हूं परन्तु बात पक्की नहीं की है। सोचा पहले अपने घर पर बात को मथलूं तब पक्की करूँ। हमको कुछ देना नहीं पड़ेगा। देना भी पड़ा तो धान वाला खेत बेच दूंगा। वे लोग निन्नी के पैरों के लिये चांदी के कड़े तक देंगे।'

बर्छी को वहीं छोड़कर निन्नी घर में चली गई। उसनें वहीं से लाखी को बुलाया,—'बातें सब हो चुकी हैं, खाना बनाने आओ यहाँ।'

लाखी ने उसके पास आकर तीर और बर्छी को एक ओर रख दिया।

चूल्हे को साफ करते हुये निन्नी बोली, 'भैया से कहना कि सगाई की चर्चा को आगे न बढ़ावें। मैं ब्याह नहीं करूँगी।'

'उस नटिनी ने हाथ देखा था पर वह ब्राह्मण तो है नहीं!' लाखी ने धीरे से कहा।

'पागल हो गई हो क्या? मैं ब्याह नहीं करूँगी। तुम लोगों को सुखी देख-देखकर ही सुख मनाऊँगी। तुम लोगों को नहीं छोड़ सकती।'

'घर अच्छा है। बड़े नगर में है।'

'कह दिया कि मर भले ही जाऊँ परन्तु वहाँ नहीं करूँगी। कह दो भैया से। तुम नहीं कहोगी तो किसी और से कहलवा दूँगी।'

'गाँव वाले क्या कहेंगे?'

'जब तुम्हारे लिये मुझको या भैया को गाँव वालों का डर नहीं है तो मेरे ही सम्बन्ध में क्या होना चाहिये?'

'अच्छा अभी कहे देती हूँ।'

'हाँ मेरी लाखी।' निन्नी का स्वर काँप रहा था। अटल ने बातचीत का कुछ अंश तो सुन ही लिया था। लाखी ने पूरी वार्ता सुना दी।

अटल सन्न सा रह गया। कुछ क्षण चुप रहा।

थोड़ी देर बाद बोला, 'अच्छा, ठीक है। मैंने उचित ही किया जो बात पक्की नहीं की। और कहीं देखा जायगा। खोज में रहूँगा।

उसने निन्नी को बुलाया। वह इधर-उधर दृष्टि डालती हुई आई और उसकी बगल में खड़ी हो गई।

'वेटी, तेरे मन से उल्टा–पुल्टा कभी कुछ नहीं करूँगा। उठा लेजा अपनी यह वर्छी। कल से कर इसका अभ्यास। देखूं अरने को कैसे फोड़ती है इससे तू।' अटल ने कहा।

निन्नी ने हँसकर वर्छी को उठा लिया। लाखी को धकियाती हुई खाना वनाने के लिये रसोई घर में ले गई। वहीं से वोली, 'इनके हाथ का वनाया खाना मैं खा चुकी हूँ आज तुमको भी खाना पड़ेगा।'

'अच्छा...आ।' अन्तिम स्वर को लम्वा करते हुये अटल ने हामी भरी।

(१८)

सवेरे अटल को ढोर सम्भालने थे और निन्नी तथा लाखी को कई काम करने थे—वर्छी का चलाना, नये तीरों का परीक्षण, नटों से किसी जानवर के बदले में एक साड़ी का लेना। लाखी के लिये एक और भी काम था—रस्से पर चलने की कुशलता को बढ़ाना और अटल को दिखलाना। अटल ने ढोरों को गाँव के किसी किसान की देख-रेख में, कम से कम, उस दिन के लिये बनाये रखने की जुगत करली, जो आठ दिन से उनको चरने के लिये ले जाता था, क्योंकि अटल को भी नटों का वह अद्भुत खेल देखना था।

वे तीनों दिन चढ़े नट-शिविर में पहुँच गये। नटों ने निन्नी और लाखी को दूर से पहिचान लिया। उन दोनों के हाथ में वर्छियों को देखकर कुछ कुतूहल हुआ।

पोटा बेड़े से बाहर निकल आया। अटल को प्रणाम किया, प्रश्न सूचक ढीठ दृष्टि थी निन्नी और लाखी पर।

निन्नी ने कहा, 'मेरे भाई हैं।'

नट उन तीनों के प्रति आदर का प्रदर्शन करता हुआ बेड़े के भीतर ले गया। नटनियों और अन्य नटों ने निन्नी के दिये हुये परिचय को सुन लिया। पिल्ली अधनङ्गी बैठी हुई बन्दर के सिर के जुएँ बीन-बीन कर नष्ट कर रही थी - उसको तुरन्त लेकर झोपड़ी में चली गई। नायकिन ने मोटे कपड़े की एक फटी, गुदड़ियों वाली, चादर अटल के बैठने के लिये बिछा दी। अटल को जीवन में कभी ऐसा आदर नहीं मिला था। ठाठ के साथ बैठ गया। निन्नी और लाखी खड़ी रहीं।

लाखी ने पोटा का नाम बतलाते हुये कहा, 'रस्से पर यही चलते हैं।'

पोटा तुरन्त विनय के साथ बोला,—आंख में उसके खोजबीन का पैनापन और ढिठाई थी,—'मैं अभी दिखलाता हूँ। चाहे सारे काम पड़े रहें पर तुमको तमाशा दिखलाऊँगा, एक ही नहीं कई तमाशे।'

पिल्ली एक बहुत क़ीमती, रंग-बिरंगी और बारीक ओढ़नी ओढ़कर आ गई। वह नायकिन के पीछे खड़ी हो गई। नायकिन ने परिचय दिया, 'इस लड़की की क़सरतों को देखो पहले, जो उछलती हुई गेंद को भी अपनी कुचालों से भुलवा देगी। देखो, इसने अपनी देह को कैसा कमाया है! कैसा सुन्दर बनाया है!! और कैसी सलौनी है यह!!!'

पिल्ली एक हल्की सी मोच लेकर नायकिन के पीछे से आगे आधी आई। वहीं से उसने अटल को अपने अङ्गों को ज़रा सा फड़का कर आंशिक दिखलाया। सिर पर घूंघट को ज़रा सा बढ़ाया, एक क्षण के लिये चितवन घुमाई और सिर नीचा करके उसकी ओर कनखियों देखने लगी। सलज्जता की इस बनावट को अटल नहीं समझा। कुछ अनोखी सी लगी। परन्तु निन्नी और लाखी के गाल कानों तक लाल हो गये। अटल ने उसको देखा परन्तु आंख को जमा न सका। दूसरे नटों की ओर देखने लगा जैसे कोई भकुआ हो; परंतु फिर से पिल्ली को देखने के लिये इच्छा प्रबल हो गई।

पोटा बोला, 'मैं रस्से को तान लूं। अभी खेल शुरू होता है।

नायकिन ने पिल्ली को ज़रा सा और आगे करके कहा, 'यह बहुत शरमाती है, पर कमानियों, कुलांचों और रस्से पर नाच होने के समय अपनी कारीगरी में ऐसी मस्त हो जाती है कि अपने को बिलकुल भूल जाती है।'

वह सब देखने के लिये अटल के मन में कुलबुली सी मच गई। पोटा रस्से को तानने में लग गया। नायकिन ने पिल्ली को आंख का इशारा किया।

पिल्ली ने ओढ़नी को वक्ष और कन्धे पर लपेट लिया, बिजली की गति वाली आँख की एक कोर अटल पर फेरी और कुलाँचें लगाने लगी। अटल ध्यान के साथ उसकी मोचों-मरोड़ों, कूदफाँद और देह की लचकों को देखने लगा। उसने किसी भी नर-नारी में इतनी फुर्ती और देह की कमाई नहीं देखी थी।

जैसे ही पोटा ने रस्से को ताना और ढोलकी गले में डालकर रस्से पर चढ़ने को हुआ, पिल्ली ने व्यायाम बन्द कर दिया और ओढ़नी को खोलकर ओढ़ने लगी। उस समय भी उसने चितवन और अंगों की फड़कन को लाज के झरोखे से अटल के सामने प्रस्तुत किया। पोटा ने रस्से पर विविध गतियों से चलना आरम्भ किया और पिल्ली ने असीम स्वच्छन्दता के साथ नृत्य। अटल का मन पोटा के काम पर अधिक रीझने लगा। पिल्ली ने और भी अधिक प्रयत्न के साथ अटल का ध्यान आकृष्ट करने की चेष्टायें कीं। निन्नी और लाखी पोटा की गतियों को अधिक चाव से देख रही थीं। पोटा रस्से को झूला सा बना कर, इधर से उधर झूमता रहा और पिल्ली के नृत्य पर ढोलकी की ताल देता रहा।

जब वह खेल को समाप्त करके रस्से पर से उतर आया, बोला, 'बेटी लाखी, तुम भी थोड़ा सा अभ्यास कर लो।'

लाखी पहले लजाई, पर फिर निन्नी के कन्धे के सहारे रस्से पर पहुँचकर बैठ गई और सधने के लिये थोड़ी देर काँपती रही। दृढ़ता के साथ खड़ी हुई, कुछ क्षण स्थिर रही। एक-दो डग चली, तौल बिगड़ी और नीचे आ गिरी। पैर में कुछ धमक आई परन्तु उसको दबाने के लिये हँसने लगी।

पिल्ली खिलखिलाकर हँस पड़ी। अटल ने देखा। उसने हँसते हुये थोड़ा सा घूंघट डालकर कटाक्ष किया। लाखी ने नहीं देखा परन्तु निन्नी और अटल ने देख लिया। निन्नी बोली, 'चलो लाखी, जंगल में बर्छी का अभ्यास करेंगे।'

'जंगल तो यहीं है। कहां मारी-मारी फिरोगी ?' नायकिन ने कहा।

निन्नी ने आग्रह किया, 'अभ्यास अवश्य करना है। पास के किसी बड़े छेवले के पेड़ पर करेंगी। उसके बाद बर्छियां भाई को देकर शिकार के लिये जंगल में निकल जायेंगी।'

'अच्छा।' नायकिन ने मान लिया।

वे दोनो थोड़ी दूर छेवले के पेड़ पर बर्छी चलाने का अभ्यास करने लगीं। अटल वहीं बैठा रहा।

नायकिन ने उससे कहा, 'इस लड़की का खेल तुमको कैसा लगा ?'

'बहुत अच्छा।' अटल बोला।

पिल्ली इठलाती हुई झोपड़ी में भाग गई।

नायकिन ने धीरे से कहा, 'तुमको तो यह देखते ही चाहने लगी है।'

'हां आं—हूँ !'

'देखो न, वह समझ गई मैं क्या कहना चाहती हूँ, इसलिये तुरन्त कूद गई। कितनी लजवन्ती है !'

अटल को आधी घड़ी ही पहले देखे हुये उसके निर्लज्ज प्रदर्शन का पूरा स्मरण था। मुझको चाहती है ! चाह कर क्या करेगी ? व्याह करेगी ? और लाखी ? राम ! राम !! राम !!! उसने सोचा।

नायकिन से कुछ नहीं कहा। उस दिशा में देखने लगा जिसमें निन्नी और लाखी जाकर बर्छी चलाने का अभ्यास कर रही थीं।

नायकिन ने दूसरा पहलू पकड़ा। संकेत से पोटा को अपने निकट बुला लिया। पिल्ली झोपड़ी के एक थूमे के पीछे खड़ी थी।

नायकिन ने कहा, 'इनको देश-देशान्तरों का हाल सुनाओ, तब तक वे दोनो आई जाती हैं। मांडू, कालपी, मन्दसौर कितने बड़े-बड़े और कैसे तड़क भड़क वाले शहर हैं। तुमने कभी पहले देखे ?'

अटल ने उत्तर दिया, 'मैं तो अपने गांव और आस-पास के गांवों को छोड़कर और कहीं कभी भी नहीं गया। अब की ही बार ग्वालियर गया था। और कुछ नहीं देखा।'

पोटा ने देखे और अनदेखे नगरों की कहानी को गहरा रंग-रंगकर सुनाया। अन्त में बोला, 'हमारे साथ मांडू चलो तो देखना ग्वालियर उसके सामने रत्ती बराबर भी नहीं बैठेगा।'

'निन्नी लाखी को कहां छोड़ जाऊँगा ?'

'साथ लेते चलना। बड़ी अच्छी हैं। वे भी बिचारी देख-सुन लेंगी कि दुनियां में सांक नदी और राई गांव से भी बहुत बढ़-चढ़कर कुछ है।'

पिल्ली थूमे के पीछे से खांसी।

नायकिन ने कहा, 'वह देखो खाँसी की बोली में कह रही है कि मांडू चलो। तुमको सभी तरह का सुख मिलेगा हमारे साथ में।'

अटल सिकुड़ गया।

पोटा बोला, 'इन लड़कियों की गजब की तीरन्दाजी को देखकर मांडू का सुल्तान दांत तले उँगली दबायेगा और न जाने कितना इनाम न दे देगा।'

'मांडू कितनी दूर है। कहां होकर जाते हैं ?'

'बहुत दूर नहीं है और जवान के लिये संसार का कोई भी कोना दूर नहीं होना चाहिये। वैसे एक रास्ता नरवर होकर है। यहां से बिना ग्वालियर गये सीधे पहुँच सकते हैं। पच्चीसेक कोस होगा, बस।'

'ग्वालियर के राजा शिकार खेलने आ रहे हैं। वे इन लड़कियों की निशानाबाज़ी देखेंगे। मांडू फिर कभी सही।'

ग्वालियर के राजा का नाम और उसके आने का समाचार सुनकर नटों को हड़कम्प हो आया। पोटा ने चर्चा को टाला।

'हमारे पास कुछ अनमोल साड़ियाँ हैं। इन लड़कियों को दे देन चाहते हैं।'

'दाम कहाँ से आयेंगे देने को ?'

'हम तो वैसे ही देना चाहते हैं।'

'वे नहीं लेंगी, सेंतमेंत नहीं लेंगी।'

'हां हां ऊँचे मन वाली हैं, महलों में रहने लायक़।'

'क्या ?'

'मतलब, उनका ऐसा ऊँचा मन है जैसा महलों की रहने वाली रानियों का होता है।'

'हाँ सो तो है, पर झोपड़ों में रहने वाले लोग महलों को क्या जानें ?'

'हमारी इन्होंने, जो बहुत बड़ी ज्योतिषी हैं, उन लड़कियों के हाथ की रेखायें देखी हैं। इनका कहना है कि किसी राजा की रानियाँ बनेंगी।'

'अरे वाह! ऐसा कभी हो सकता है ?'

'हो सकता है और होगा। तुम देखोगे कुछ ओढ़नियों को ?'

'अच्छी बात है। यों ही बैठे-बैठे क्या करेंगे।'

अटल का कुतूहल जागा। उसके सामने कई चुन्हरियाँ आ गईं। वह उनको देखने लगा। यदि इनमें से एक को भी लाखी ओढ़े तो कैसी दिपेगी वह ? उसने सोचा। कपड़ों को देखते-देखते उसकी आँख बहुमूल्य चुन्हरी ओढ़े हुये पिल्ली पर गई। उसने फिर आंख चलाई। अटल की आँख के सामने तुरन्त लाखी का चित्र पिल्ली के साथ ही खिच गया। उसके मन म ग्लानि आई।

'पानी पी आऊँ नदी म।' अटल ने कहा। नटों का पानी वह नहीं पी सकता था। उठकर नदी की ओर चला गया।

पोटा और नायकिन की खुसफुस होने लगी।

'ऐसे काम होता नहीं दिखता।'

'पिल्ली पर ढुला है वह कुछ।'

'बस यही एक सहारा दीखता है।'

'माँडू से लौट आवें वे लोग तो कुछ और उपाय चलावें।'

'साथ में कुछ ले तो आवें।'

'हाँ गहने, कुछ टंके और, और कुछ अच्छे सवार। शायद ज़रूरत पड़ जाय।'

'वह काम है बड़े खटके का। कहीं ग्वालियर का राजा अपने दलबल के साथ न आ धमके।'

'आ भी जाय तो हम लोगों के लगाव को कोई भी नहीं समझ पावेगा।'

'गहनों की बात इस आदमी के सामने न की जाय। लड़कियों को दिखलाये जायें और उनको फुसलाया जाय। लड़कियां अच्छे कपड़ों और क़ीमती गहनों की शौकीन होती हैं। उनके पीछे अपनी जान तक दे दें। अकेले में समझायें तो शायद कहने में आ जावें। इस आदमी को कहीं खपा देंगे। और लड़कियों को लेकर चल देंगे।'

'ज़रा कठिन जान पड़ता है। पर कुछ उकत-ज़ुगत निकालेंगे। वे दोनो मांडू से लौट आवें तभी कुछ तै हो सकेगा।'

एक घड़ी पीछे अटल लौट आया और उसके बाद लाखी और निन्नी भी आ गईं। वे दोनो अपने अभ्यास पर सन्तुष्ट थीं।

निन्नी ने प्रफुल्ल स्वर में कहा, 'भैया, हम लोग बहुत शीघ्र बर्छी का चलाना सीख लेंगी। तीर चलाने से यह कहीं सहज है।'

'फफकार भी चलाया?' उसने पूछा।

लाखी ने उत्तर दिया, 'हाँ, हाँ।'

निन्नी बोली, 'भैया तुम बर्छियां रख लो, हम दोनो शिकार खेलने जाती हैं। कोई बड़ा शिकार मिल गया तो उसके बदले में इन लोगों से लाखी के लिये एक अच्छी चून्हरी ले लूंगी।'

उसी प्रकार की एक चून्हरी ओढ़े अटल ने पिल्ली को देखा। उसने मुस्कान के साथ तुरन्त अटल पर चितवन चलाई। इस तरह की रंग-बिरङ्गी, फूलदार, बारीक चून्हरी ओढ़े हुये लाखी कैसे लगेगी? उसमें से उसका रोम–रोम झांकेगा जैसा इस नटिनी का दिखलाई पड़ रहा है। कैसी आंखें चलाती है! अङ्गों को कितना फड़काती है!! नाचते समय कितनी बेशर्मी दिखलाई थी इसने!!! लाखी इस प्रकार की चून्हरी पहिन कर क्या इसी नटिनी सरीखी नहीं दिखेगी? क्या वह कुछ छिपेगी? और निन्नी? मेरी बहिन! इस तरह के कपड़े पहिने यह कैसी दिखलाई पड़ेगी? नटिनी सी न? राम! राम!! राम!!! उसके मन में ग्लानि की कोचनें उठीं।

उसने कहा, 'अपने यहां ऐसे कपड़े नहीं पहिने जाते।'

नायकिन बोली, 'रानियां तो पहिनती हैं।

अटल ने प्रतिवाद किया, 'न मैंने कभी देखा और न कह सकता हूँ और न हम लोगों को राजा-रानी बनना है।'

'तो भी एक को तो घर में रख ही लेंगे। अवसर काज पर काम आ सकती है।' निन्नी ने लाखी के भविष्य में होने वाले व्याह का संकेत किया।

'देखा जायगा',—लाखी ने कहा, 'लेंगे तो दो लेंगे, एक नहीं ली जायगी।'

वे दोनो शिकार खेलने जंगल में घुस गईं। अटल बर्छियां लिये हुए घर चला आया।

सन्ध्या के पहले नट-शिविर में नौ-दस दिन पहले बाहर गये नट आ गये। आते ही उन्होंने सावधानी के साथ अपनी फेंट में से एक पोटली दी और गर्व के संकेत द्वारा प्रकट किया कि साथ में कुछ इससे भी अधिक प्रबल साधन लाये हैं।

निन्नी और लाखी जंगल में पूर्ववत् भटककर रीते हाथ घर आ गईं।

[१९]

दूसरे दिन निन्नी और लाखी कहीं नहीं गई। घर का काम किया, बर्छियों का अभ्यास और—लाखी ने—रस्से पर चलने का दृढ़ प्रयत्न। अटल अपने ढोरों के साथ चला गया।

रात को उन दोनों ने एक निश्चय किया।

निन्नी बोली, 'कई दिन से जंगल म कुछ भी नहीं मिल रहा है। जानवरों के खोंद तो मिलते हैं, पर दिखलाई उनकी पूंछ तक नहीं पड़ती। सवेरे के काम-काज से निबटकर जल्दी जंगल में घुस चलें और एकाध कोस आगे बढ़ जायँ। देखें शिकार कैसे नहीं मिलता। जानवर नटों के डेरे और हम लोगों के फिर–फिर वहीं घूमने के कारण कुछ दूर हट गये हैं।'

लाखी ने समर्थन किया, 'बिलकुल ठीक। साथ में एक बर्छी भी ले लो तो कैसा रहे?'

निन्नी ने कहा, 'मैं ले लूंगी अपनी बर्छी। पीठ पर बांध लूंगी। झांड़ी–झंकाड़ में अड़चन जान पड़ी तो हाथ में ले लूंगी। अवसर आने पर पहले तुम तीर चला देना, फिर मैं देखूंगी।'

'ठीक है।' लाखी ने आश्वस्त किया।

सवेरे का काम-काज करके और कुछ खा-पीकर वे दोनों जङ्गल की ओर चली गईं। गाँव से थोड़ी दूर निकल जाने पर उनको पोटा मिला।

नट ने कहा, 'तुम लोगों को रात में जानवरों की कोई बोली सुनाई पड़ी?'

'कौन से जानवरों की?'

'अरनों की डँड़कार और सुअरों की हुर्र-हुर्र?'

'नहीं तो।'

'ओफ़ ! वही तो वतलाने को आया हूँ। हमारे डेरे से कुछ दूर उधर पीछे की तरफ़ न जानें कितने जानवर ऊधम करते रहे हैं। शायद आपस में लड़ रहे थे।'

'या नाहर ने दिखाई दी हो। कई दिन से खेतों के भी पास जानवर नहीं आये। तुम्हारे डेरे से कितनी दूर जान पड़ते थे वे ?'

नट ने अपने अटकल और जानवरों की दिशा कों वतलाया। वे दोनो उसी दिशा में उल्लास के साथ चली गईं।

नट अपने डेरे की तरफ़ वढ़ गया।

निन्नी और लाखी जानवरों के चिह्नों की तलाश में दूर निकल गईं।

वहुत से खांद मिलने शुरू हुये। खांद जङ्गल के खुले और साफ स्थानों में दिखलाई पड़ जाते थे परन्तु पथरीली या घास और झकाड़ वाली भूमि में वहुत कम। निशान एक-दूसरे पर चढ़े हुये मालूम पड़ रहे थे और साफ़ समझ में नहीं आ रहे थे कि किस जानवर के हैं। कभी अनुमान करती थीं कि अरनों के हैं, कभी भ्रम हो जाता था कि घोड़ों के हैं। घोड़ों के ! घोड़े यहाँ कहाँ से आये ? उन्होंने अपने भ्रम का खण्डन करना चाहा। दोनों एक झाड़ी की ओट में खड़ी हो गईं। खुसफुस करने लगीं।

'सुअर और भैंसे के खुर तो चिरे होते हैं, ये घोड़ों की खांद जान पड़ते हैं।' निन्नी वोली।

लाखी ने कहा, 'घोड़ों के ही हो सकते हैं परन्तु यहाँ घोड़े कहाँ से आये ? कहीं से तुर्क न आ गये हों !'

'चिह्न किसी वड़े दल के नहीं हैं। तुर्कों ने चढ़ाई की होती तो अपने गांव वालों को वहुत पहले मालूम हो जाता। रात को हर टीले पहाड़ पर से आग जलती हुई दिखलाई देती। गांव-गांव में ढोलों की

ढप-ढप सुनाई पड़ती और एक पंचायत का कुटवार दूसरी पंचायत को समाचार दौड़कर दे जाता। कहीं ऐसा न हो कि राजा मानसिंह के सवार पहले से आ गये हों।'

'वाह ! पहले यहां आते या गाँव में ? और फिर यहाँ ग्वालियर से आने के लिये मार्ग भी नहीं हैं।'

बग़ल में फ़ैला हुआ ऊंचा पहाड़, ढालू जङ्गल। पथरीली जगह, नीची झाड़ी, समथल भूमि पर सघन विशाल वृक्ष-कहीं झुरमुटों में, कहीं विखरे हुये। गाँव लगभग एक कोस की दूरी पर। नटों का डेरा भी दूर था। उन दोनों ने इधर–उधर देखा। कुछ दूरी पर, एक टौरिया की ओट में खड़–खड़ का शब्द सुनाई पड़ा।

'कोई जानवर है। स्यात् अरना हो।' निन्नी ने बहुत धीमे स्वर में कहा।

'हाँ अरना ही होगा, सुअर नहीं हो सकता। आवाज ऊंची थी।'

उन्होंने कान लगाया परन्तु कुछ सुनाई नहीं पड़ा।

निन्नी ने पीठ पर से बर्छी को खोल लिया।

लाखी ने कहा, 'बर्छी मुझको दे दो। अरने के लिये तुम्हारे हाथ का तीर अच्छा रहेगा।'

'नहीं।' —निन्नी ने समझाया,—'बर्छी मेरी मुट्ठी और कलाही ज्यादा बल के साथ चला सकेगी, तीर तुम्हारा अच्छा रहेगा। इस टौरियों की ओर चलें जहां से आहट आई है।'

वे दोनो टौरिया की दिशा में चलीं। टौरिया के नीचे पहुंचकर देखा तो टौरिया को इतनी उलझी हुई झाड़ी से भरा हुआ पाया कि उसमें लेट कर जाने की गुंजाइश न थी। उनको विश्वास था कि टौरिया के ऊपर से आहट नहीं आई, बल्कि पीछे या बगल से। भूमि ऊंची-नीची थी और घास कुछ अधिक ऊंचा। कहीं नाहर पड़ा हो और उछलकर सिर पर आ

धमके, भालू किसी अदृष्ट झाड़ी में से झपटकर गले से आ चिपके, सुअर सपाटा भरकर घुटने तोड़ दे और जांघ फाड़ डाले; और, यदि कहीं किसी अगोचर झाड़ी के पीछे एक ही अरना हुआ और छाती पर आ टूटा—तो क्या होगा ? वे दोनों कलेजे को कड़ा करके भी कुछ ऐसा ही सोच रही थीं। पहाड़ी का सिरा थोड़ी ही दूर रह गया। वहां से दूसरी पहाड़ी के ढाल की ऊँचाई शुरू होती थी। दोनों पहाड़ियों के बीच म जगह खाली मालूम होती थी। लगता था जैसे कोई चौड़ा सा मार्ग हो। वे दोनो सावधानी के साथ एक-एक डग धरती हुई, इधर-उधर ताकती-झांकती इसी सिरे की ओर जा रही थीं। सिरे के निकट पहुँचकर वे ध्यान के साथ आहट लेने लगी। निन्नी बर्छी सम्हाले और लाखी कमान पर लोहे का तीर चढ़ाये।

निन्नी को अवगत हुआ जैसे सिरे की मोड़ के पीछे कोई खांसा हो। लाखी को भासित हुआ जैसे उसकी बग़ल में टोरिया के ऊपर किसी ने उस खांसी को दुहराया हो। निन्नी ने लाखी की टहुनी को अपने खाली हाथ की उँगली से कोंचा। दोनों ने एक दूसरे के प्रति देखा। पशु नहीं हैं, कोई मनुष्य हैं—यह भान कर उन दोनों का गला सूख गया, दोनो ठिठकीं।

वहुत धीरे से लाखी बोली, 'कोई मनुष्य हैं, अरना या सुअर नहीं हैं।'

निन्नी ने चुप रहने और चुपचाप टोह लेने के लिये आँखों का संकेत किया।

थोड़ी देर इसी स्थिति में वे दोनों खड़ी रहीं।

निन्नी ने वहुत धीमे स्वर में कहा, 'हवा से पेड़ों की टहनियाँ रगड़ खा गई थीं और कुछ नहीं था।'

लाखी ने असंदिग्ध नाहीं का सिर हिलाया।

बोली, 'लौट पड़ो।'

निन्नी भय की लज्जा और निर्भयता के हठ के द्वन्द्व में पड़ गई

उसने आँख के सङ्केत से थोड़ी देर और खड़े रहने का आ किया। कुछ ही क्षण पीछे उन दोनों को टौरिया के ऊपर से स खांसने का शब्द और मोड़ के पीछे से घोड़ों की टापों की आव सुनाई पड़ी। दोनो धक से रह गईं।

निन्नी ने एक ही क्षण उपरान्त भोंह सिकोड़ी, होंठ सटाये और भाले को मुट्ठी में साधकर कसा। तीर को पकड़े लाखी का हाथ कांपने लगा। होंठ उसके हिल रहे थे। धीरे काँपते हुये स्वर में बोली, 'पीछे हटकर ओट ले लो। सवार आ रहे हैं।'

निन्नी के भी कान ने धोका नहीं खाया था। आस-पास कोई अच्छी ओट का सहारा न देखकर वह लाखी के साथ पीछे को मुड़ी। लौटकर देखा तो सिरे की मोड़ पर दो घोड़ों के थूथर दिखलाई पड़े। पहाड़ी पर चढ़ जाने के लिये बीते भर का भी मार्ग दिखलाई नहीं पड़ रहा था। जहाँ से आईं थीं उसी रास्ते से जाने में छिपाव की गुंजाइश नहीं के बराबर थी। पहाड़ी के समान्तर वाली बग़ल में कुछ दूरी पर पेड़ों की एक झुरमुट थी। वे दोनो उसी दिशा में मुड़ीं। परन्तु इस ओट के पीछे नहीं पहुँच पाईं, शस्त्र-सज्जित चार सवार सिरे के पीछे की मोड़ से उस स्थान पर आ गये जहाँ से वे लौट पड़ी थीं। वे दोनो एक छोटी सी झाड़ी के पीछे दुबकने का प्रयास करने लगीं।

चार सवारों के जो आगे था, चिल्लाया, 'घबराओ मत, जङ्गल की परियो! हम तुमको खुश करने के लिये ही आये हैं। चलो हमारे साथ।'

कलेजे की धक-धक के साथ निन्नी खड़ी हो गई।

उसके मुंह से फटे स्वर में निकला, 'कौन हो तुम?'

सवाल के बाद ही निन्नी के कलेजे की धक-धक बन्द हो गई और अपने शिकार का सफल इतिहास उसकी स्मृति में बिजली की तरह कौंध गया।

लाखी भी खड़ी हो गई।

'कहां चलें तुम्हारे साथ ?' लाखी बोली। स्वर निष्कम्प, ऊँचा और ैना था। होंठ सूखे।

सवार लोहे की जाली का कवच पहिने हुये थे, झिलम पर साफ़ा ांधे थे। उनकी आँखों की जगह केवल बड़े गोल छेद दिखलाई पड़ रहे थे। सवारों ने कोई जवाब नहीं दिया। आगे बढ़ आये। उनके निकट आकर थम गये।

आगे वाले सवार ने कहा, 'एक एक घोड़े की पीठ पर आकर दोनो बैठ जाओ। फेंटे से तुमको कस लिया जायगा। गिरने का कोई डर नहीं रहेगा। ऐसी जगह ले चलेंगे जहाँ जिन्दगी भर गुलछर्रे उड़ाओगी। निकल आओ झाड़ी में से यहाँ।'

सवार घोड़े पर से उतर पड़ा। कन्धे पर तीरों का तरकस और कमान कसे था। कमर में खमदार लम्बी शमशीर। उन दोनों की तरफ़ बढ़ा। उसके पीछे वाला सवार भी घोड़े पर से उतर कर बढ़ा। घोड़ों को दोनों ने छोड़ दिया था। घोड़े घास पर मुंह फेरने लगे। बाक़ी दो सवार आरूढ़ रहे।

निन्नी ने तीखे पैने स्वर में रोका, 'वहीं खड़े रहो! हमको क्यों छेड़ते हो ?'

'शुरू-शुरू में बाज-बाज इसी तरह भड़कती-तड़कती हैं, फिर असीसने लगती हैं। हुकुम की बन्दगी के लिये आये हैं हम लोग। घोड़ों पर सवार हो जाओ, इसके बाद तुम्हारे भी हुकुम के सामने सिर झुकायेंगे।' वह बोला।

'चुप।' निन्नी कड़की, जैसे बिजली तड़क गई हो। सवार ने अपने पैदल साथी को लाखी के पकड़ने का इशारा किया और स्वयं झाड़ी का चक्कर काटकर निन्नी की बग़ल पर आया।

उसने ठट्टा मारकर कहा, 'अच्छा! बर्छी लिये हो!! और तीर कमान!!! फजूल है, फेंक दो बर्छी। तुम्हारा—आपका नाम, मृगनयनी है ?'

'हां', कड़क के साथ निन्नी के मुंह से निकला और वज्रमुष्टि की वर्छी का फल झन्न के साथ सवार के कवच को छेदकर पसलियों के भीतर जा धसा। लाखी ने ताककर दूसरे पैदल की आंख वाले छेद को निशाना बनाया। सन्न से छूटकर तीर आँख के भीतर दूर तक धस गया। दोनो 'ओह !' के साथ गिरकर तड़पने लगे। लाखी ने एक तीर घोड़े की गर्दन पर छोड़ा। वह भी गिर गया। तुरन्त निन्नी ने कमान को कन्धे से उतार कर तरकस में से तीर निकाला और दो घुड़सवारों में से एक पर छोड़ा। सवार तेजी के साथ मुड़ पड़े थे इसलिये तीर चूक गया। लाखी ने दुसरा तीर छोड़ा। एक झाड़ी आड़ में आ गई थी इसलिये तीर ने एक पतले पेड़ की डाल को काटा और वह गया। निन्नी ने दूसरा तीर छोड़ा। वह भी खाली गया। सवार मोड़ पर पहुंच गये थे । बिना सवार वाला दूसरा घोड़ा दौड़कर उन भागते हुये सवारों के साथ हो गया। मोड़ के पीछे पहुँचते-पहुँचते भी उन सवारों के पीछे दो तीर और गये परन्तु लगे उन में से किसी को भी नहीं। मोड़ के पीछे से दौड़ते हुये घोड़ों की टापों का शब्द थोड़ी देर सुनाई पड़ा। फिर शान्त। इधर कुछ क्षण वे दोनो आगन्तुक तड़पे, कराहे, फिर बिलकुल शान्त।

निन्नी और लाखी के कलेजे में फिर धुकधुक हुई। एक दूसरे से कुछ कहना चाहती थीं परन्तु मुंह से बक नहीं फट रहा था।

लाखी का गला सूख गया था। भर्राये स्वर में बोली, 'वर्छी को उसकी पसलियों में से खींचकर चलो जल्दी यहाँ से।'

निन्नी कोई उत्तर न देकर भूमिशायी सवार को निकट जाकर देखने लगी। वह मर चुका था। निन्नी ने कांपते हाथ से वर्छी निकालने की कोशिश की। न निकाल सकी। हाथ की मुट्ठी बँध नहीं सकी। लाखी ने तीर कमान को घास में एक तरफ़ रख दिया। बैठकर लाश की बगल में पैर अड़ाये और एक कस में वर्छी को निकाल लिया। खून की धार फूट निकली। निन्नी ने दूसरी ओर मुंह फेर लिया। लाखी ने वर्छी उसके हाथ

ें दे दी और लपक कर अपना तीर कमठा उठा लिया जैसे किसी पर तत्काल चलाना हो। फिर उसने दौड़कर दूसरी लाश और मरणासन्न घोड़े में से अपने तीर निकाल कर तरकस में रख लिये। उसकी आँखों में पागलपन सा छा गया था। सुन्न सी खड़ी निन्नी के पास आकर कन्धे को झटका दिया।

उसी भर्राये हुये स्वर में बोली, 'यहाँ से जल्दी चलो। या खोये हुय तीरों के ढूँढ़ने की सोच रही हो? जल्दी! जल्दी करो!!'

निन्नी सचेत हो गई। कहा, 'छोड़ो तीरों को। चलो घर। बहुत तीर हो जायेंगे। घर पर और भी रक्खे हैं।'

लाशों को वहीं छोड़कर वे तेजी के साथ चल दीं। उनकी इच्छा घने जङ्गल को छोड़कर नदी के किनारे होते हुये घर पहुँचने की थी।

गाँव के पास पहुँच कर वे धीमी पड़ीं। बर्छी और तीरों पर रक्त सूख गया था परन्तु मन के भीतर ग्लानि भरी थी।

निन्नी ने कहा, 'नदी में इनको धो लो और नहाकर घर चलो।'

लाखी बोली, 'नदी में कोई और सवार न हों।'

'दूर से दिखलाई पड़ जायेंगे। हुये तो भागकर घर पहुँच जायँगी।'

'तब तो गांव भर को सचेत करना पड़ेगा। कहीं गाँव पर धावा न हो जाय।'

'भैया न जाने कहाँ होंगे। उनको छोड़कर कैसे कहीं भाग कर छिप सकते हैं? चलो, नदी किनारे। थोड़ी ही दूर नटों का डेरा है। उनके पास हथियार भी हैं। वे सवार उतने ही रहे होंगे, या इधर-उधर थोड़े से और होंगे। गाँव पर धावा नहीं हो सकता।'

लाखी सहमत हो गई। उन दोनों के पास तरकसों में अभी और कई तीर थे। नदी किनारे चौकन्नी होकर पहुँची। आंख पसारी। गांव के इधरे-बिखरे चरते हुये ढोरों के सिवाय कुछ नजर नहीं आया। नदी में

जाकर उन्होंने वर्छी और तीरों को धोया। नहाया और घर आगईं। घर पहुँच कर अब उनको डर लगा। घर में जैसे कोई बड़ा जङ्गल हो; जैसे वहाँ कोई खाने को दौड़ रहा हो; जैसे वे निश्शस्त्र हों, निस्सहाय। घर की टटिया बन्द कर लेने पर उनको और भी डर लगा। निन्नी ने टटिया खोल ली। घर के बाहर आकर इधर-उधर देखने लगी।

लाखी बोली, 'उन्होंने बड़ी देर लगाई! ढोरों को लिये न जाने कहाँ डोल रहे होंगे।'

निन्नी ने कहा, 'यही मैं सोच रही थी। चाहती हूँ हम सब ब्यालू करके मचान पर चल दें।'

थोड़ी देर में सन्ध्या हुई। गांव वाले अपने-अपने थोड़े से ढोर लेकर आ गये। दूर से उनके शब्द को सुनकर निन्नी को भान हुआ जैसे कई घुड़सवार दौड़ते चले आते हों। आधी घड़ी पीछे अटल भी अपने ढोरों सहित आ गया। जैसे ये दोनों उसके लिये आँखें बिछाये बैठी हों।

निन्नी बोली, 'कहाँ थे अभी तक, बड़ी देर लगाई।'

अटल को अचरज हुआ, 'देर लगाई! पशुओं को पानी पिला कर लौटने का तो समय ही यह है। क्यों, क्या बात है?'

लाखी ने कहा, 'हम दोनों को लग रहा था जैसे कुसमय हो गया हो।'

पशुओं को सार में बाँधने के बाद, अटल को उन्होंने पूरा वृत्तान्त सुनाया। अटल को विश्वास नहीं हो रहा था। अन्त में मानना पड़ा।

बोला, 'तुर्कों की कोई छोटी सी ही टुकड़ी है। बहुत होते तो तुम दोनो घिरकर मारी जातीं। तुमको पकड़कर तो वे ले नहीं जा सकते थे। आज मेरे लाये तीर और बर्छे सार्थक हुये! हमारे तोमर राजा ने चम्बल और यमुना की सीमाओं और घाट-घाटियों पर मोर्चे बांध रक्खे हैं। उनके बीच में होकर चार छः का ही निकल आना सहज हो सकता है। कोई

बड़ी टुकड़ी या सेना बिना बड़ी लड़ाई और मारकाट के यहां तक नहीं आ सकती। चिन्ता मत करो। रात में मचान पर हम तीनो रहेंगे। दोनो सो जाना, मैं जागता रहूँगा। कल से इतनी दूर शिकार खेलने मत जाया करो। बस। फ़सल कटने को आ गई है। अनाज गाहकर गड्ढे में रख लें, फिर कोई वात नहीं।'

दूसरे दिन सवेरे मचान पर से घर आने के वाद थोड़ी ही देर हुई थी कि पोटा आया। उसकी आंखों की ढिठाई में खोजबीन नहीं थी। पुतलियों के घुमाव-फिराव के अन्तरों में कुछ भय सा था।

आदरसूचक प्रणाम के वाद वोला, 'इन वेटियों को कल कुछ शिकार मिला था क्या ? मिला हो तो थोड़ा हमको देदो।'

अटल ने अभिमान के साथ कहा, 'शिकार नहीं मिला, कुछ चोर मिले थे सो इन्होंने उनको मार भगाया।'

'चोर ! ओ भगवान !! ओ घाट के घटौरिया देवता !!! ओ गोड़ बाबा !!!! हम लोग वहां सूने से अकेले पड़े हैं। क्या करें ?' नट ने भयातुरता प्रकट की।

अटल वोला, 'तुम तो कई हो। तुम्हारे पास हथियार भी हैं।'

नट ने भय के उसी स्वर में कहा, 'हमारे पास कुछ कपड़े हैं। चावल और गुड़ भी थोड़ा सा है। कुछ और सामान हैं। गांव की पञ्चायत और पटैल कहदें तो हम लोग गांव के पास ही कहीं अपना डेरा डाल लें।

'कोई नाहीं नहीं करेगा।' थोड़ा सा सोचकर उसी अभिमान के स्वर में अटल ने कहा।

नट प्रसन्नता प्रकट करता हुआ वहां से अपने डेरे को चला गया।

धीरे से उसने नायकिन से कहा, 'हमारी सांठ-गांठ का उनको पता नहीं है। थोड़े दिन गांव के पास ही रहकर कोई और क्रिया वर्तनी पड़ेगी।'

सन्ध्या के पहले,उन्होंने अपना शिविर गांव के निकट खड़ा कर लिया।

[२०]

[वज्र मुष्ठि में बर्छी की मूंठ को पकड़ कर नोक से कवच को झन झन के साथ फोड़ा और चोर को धराशायी कर दिया ! दो दिन के ही अभ्यास में कितना सफ़ल, प्रवल, तीला हुआ प्रहार रहा !! दूर दूर तक कहीं भी कोई सहायता प्राप्य नहीं, रोने-चीखने तक की भी कोई सनाथता नहीं !!! कोई और स्त्रियाँ ऐसी परिस्थिति में पड़ी होतीं तो डाकू उनको उठा ले जाते और उनके सतीत्व को उजाड़ देते !!!! निन्नी के हृदय के एक कोने में अभिमान जाग-जाग पड़ रहा था। परन्तु वे तुर्क रहे होंगे। आगे अनेकों को साथ लायँगे। तब क्या होगा ? यह डर निन्नी के अभिमान को दवा—दवा डालता था।]

लाखी ने अपने ऊपर आते हुये उस नक़ाबपोश का वेध झाड़ी की ओट लेकर, क्षण भर में निशाना बाँधकर किया। घोड़े को दूसरे तीर से फोड़ डाला, उसी पर चढ़ाकर तो वह तुर्क भगा ले जाना चाहता था। परन्तु क्या उस समय इतना सोचा था ? कुछ भी याद नहीं आता कैसे क्या हो गया। परन्तु हो गया। गाँव की स्त्रियों में, गाँव के पुरुषों के सामने कैसे बखाना जाय ? बात चारों तरफ़ फैलेगी। यदि तुर्कों की फ़ौज की फ़ौज चढ़ दौड़ी और खेती, पशु और घर मिटा दिये तो लोग कहेंगे इन लड़कियों ने ही सब सत्यानाश खड़ा करवाया—लाखी ने सोचा।

उन दोनों ने अपने पराक्रम की कथा को सिवाय अटल के और किसी को नहीं सुनाया। अटल से अनुरोध किया कि वह किसी को उन सवारों के मार डालने का हाल न बतलावे।

अटल के अभिमान ने कथा को पहला रूप दिया—'लड़कियों ने चोरों को मार भगाया।' दूसरा रूप—'चोरों के पास हथियार थे, वे घोड़ों पर सवार थे, घाव खाकर भागे।' तीसरा रूप—'चोर तुर्क थे या अन्तर्वेद के कोई पठान, लूटने मारने को आ रहे थे कि इन विकट लड़कियों ने मार

भगाया।' चौथा रूप—'इन तुर्कों या पठानों को तीरों से छेद दिया, वे तीरों को ही ले जा सके।' मार डालने की बात किसी से भी नहीं कही और न चोरी का अभिप्राय बतलाया कि वे इन लड़कियों को ही उठा भागने को आये थे।

परन्तु गांव वालों को चोरी के अभिप्राय के समझने में क्षण भर का भी विलम्भ नहीं हुआ। उनको शंका हो गई कि फिर कोई बड़ा हमला होता हैं और फिर वन—कन्दराओं में मरने-खपने या अधमरे हो जाने की बारी आती है। राजपूतों का परस्पर युद्ध तो था ही नहीं जिसमें खेती, गाँव और स्त्री की इज्जत नहीं बिगाड़ी जा सकती थी।

दूसरे—तीसरे ही दिन गिद्धों, चीलों और ढोरों के चराने वाले ने दो मरे हुये मनुष्यों और एक मरे घोड़े का पता दिया। नटों ने अपने अन्वेषण अनुसन्धान द्वारा उनका समर्थन किया। कवच, झिलम और मृत तुर्कों के हथियार भी लाकर गाँव वालों को दिखला दिये। लाशों पर और जो कुछ पाया हो उसको अपने डेरे में रख लिया।

गांव की जन-संख्या अल्प थी। थोड़े से नटों के आजाने से गांव की चिन्ता कम नहीं हुई। नटों की जाति, उनका व्यवसाय, किसी भी गांव के अंग या अन्श न होना, उस गांव में उनको हिलामिला नहीं [सकता था। लाखी, निन्नी और अटल को नटों का अधिक सम्पर्क प्राप्त था इसलिये वे उनको अपने से उतना ज्यादा अलग नहीं समझते थे। परन्तु गाँव की चिन्ता या भय की अवहेलना नहीं कर सकते थे।

आक्रमण के भय का शमन केवल एक ही उपाय द्वारा हो सकता था—ग्वालियर के राजा की सहायता।

गांव वाले पुजारी के पास पहुँचे।

'बाबा!' एक गांव वाले ने कातर स्वर में कहा, 'हम किसान लोग किसी से नहीं लड़ते। लड़ाई राजपूतों, तुर्कों और पठानों का काम है परन्तु गांव की दो लड़कियां कुछ पागल हैं। इनके तीरों से दो तुर्क या पठान अपने जङ्गल में मारे गये है—'

अटल ने तुरन्त टोका, 'बाबा, वे डाकू इन दोनों को जबरदस्ती उठा ले जाना चाहते थे। हथियार न उठातीं तो क्या करतीं? अपनी जान खो देतीं? पुरखों को डुबो देतीं?'

गाँव वाला बोला, 'वैसे ही तोरई छोंकता है, मुझको बात कर लेने दे।'

अटल मुँह बिदरा कर चुप रहा।

गांव वाला कहता गया, 'घोड़ों की टापों के चिन्हों से जान पड़ता है कि वे सब बहुत से थे। लड़कियां कुल चार बतलाती हैं पर इतने अवश्य थे कि दो को मरा छोड़कर बाक़ी जहाँ से आये थे वहां पहुँच गये। अब वे लावेंगे अपने साथ न जाने कितनों को। यदि आ गये तो न तो फसल बचेगी, न ढोर और न हम लोगों के प्राण। आप ग्वालियर जाकर राजा से कहिये।'

'ग्वालियर होकर ही अभी तो हम लोग लौटे हैं। राजा ने फिर से वचन दिया है कि चार छः दिन में आयेंगे।' पुजारी ने कुछ निराश स्वर में कहा।

गांव वालों ने प्रार्थना की कि एक बार और कष्ट करो। किसी भी बहाने हो राजा को अपने साथ लिवा लाओ। गांव का एक बूढ़ा बोला, 'पुजारी देवता, अबकी बार मन्दिर को और तुमको पिछली फ़सल से दुगुना चढ़ायेंगे, हम गांव वाले।'

पुजारी को भविष्य बुरा नहीं लगा परन्तु वर्तमान में क्षणिक ग्लानि डाल दी। मुस्कराया। मुस्कान में होठों के एक कोने पर छोटा सा निरछापन आ गया।

अटल ने तुरन्त कहा, 'पुजारी महाराज को लोभ-लालच दिखलाते हो, जो संसार को छोड़े हुए इस फूस के मन्दिर में अपने पोथी-पत्रों समेत पड़े रहते हैं! वह किसके लिए? क्या हमारे अनाज की चढ़ोत्री के लिये?'

पुजारी को अटल की बात अच्छी नहीं लगी,की थी उसने चाटुकारी, परन्तु पुजारी को गड़ गई—मन पर उसका प्रतिकूल खुद गया; अनाज की चढ़ोत्री के लोभ में यहां पड़े रहते हो ! परन्तु उसने अपनी मुस्कान को नहीं छोड़ा।

बोला, 'फिर से जाता हूं। आशा है कि अबकी बार लिवाकर ही आऊँगा और बिना विलम्ब के आऊँगा।'

अटल ने विनय की, 'मैं भी साथ चलूं ?'

पुजारी ने रूखे स्वर में अस्वीकार किया, 'नहीं, मैं अकेला ही जाऊँगा। दो तीन दिन बाद। एक पाठ को पूरा करते ही चल दूंगा।'

गाँव वाले आशा और उत्साह के साथ लौट आये। नटों ने विशेष उत्साह प्रकट किया। परन्तु सोचा, टिके रहें या राजा के आने के पहले कहीं खिसक जायँ।

लाखी और अटल ने टिके रहने और राजा के सामने अपने खेल दिखलाने का आग्रह किया।

गांव वाले फ़सल काटने पर पिल पड़े। पकने में थोड़ी सी कसर थी परन्तु वे और अधिक नहीं ठहरना चाहते थे। अटल ने भी काटी। सबने पास-पास खलिहानों में रखली। अबकी बार खलिहान जङ्गल में नहीं बनाये। अटल ने निन्नी और लाखी को जङ्गल में जाने से रोक दिया। वे दोनो गाँव के पास के पलास वृक्षों पर बर्छी चलाने का अभ्यास करने लगीं। गाँव वालों को अब उनका यह अभ्यास ज्यादा कसकने लगा।

स्त्रियां चाहती थीं, दोनो कहीं टल जांय तो अच्छा। सब सोचते थे, 'पागल हो गई हैं—बिलकुल गोंड भीलनी, नहीं तो क्या ऊँची जाति की लड़कियों में ऐसे कुलक्षण होते हैं !

गांव वालों की वृत्ति उन दोनों से छिपी नहीं रही। एक दिन अटल खाना खाकर खलिहान में चला गया। वे दोनों हथियार लेकर खलिहान

से कुछ ही दूर बर्छी चलाने के अभ्यास के लिये निकटवर्ती पलाश वृक्ष समूह के नीचे पहुँच गईं। बर्छियों को पेड़ से टिकाकर छाया में बैठ गईं।

लाखी ने कहा, 'यदि हम लोग हथियार चलाना न जानती होतीं तो वे लोग क्या हमको छोड़ देते ? हमारा सर्वनाश हो जाता तो गांव वाले क्या करते ? क्या कहते ?'

'रोते किलपते और क्या करते ?' निन्नी बोली।

'स्यात रोते भी नहीं। हमारे भाग्य को दो चार गालियां देकर अपने अपने काम में लग जाते।'

'इन लोगों की समझ में यह क्यों नहीं आता कि हम तीनों गांव में न होते तो इनकी आधी फ़सल को जङ्गली जानवर चौपट कर जाते और वे चार तुर्क गाँव की आधी स्त्रियों को नष्ट-भ्रष्ट कर जाते ?'

मुझको एक सन्देह है निन्नी – 'ये लोग हम दोनों को पकड़ने आये थे।'

'क्यों ?'

'क्योंकि तुम्हारे गोरेपन की, तुम्हारी आँखों की, तुम्हारी छवि की, चारों दिशाओं में कीर्ति फैल गई है।'

'दुर पगली ! तुम कुछ कम सलौनी हो ?'

'हूं या नहीं हूँ – दर्पण, आरसी तो अपने पास है नहीं। पर मेरा कहना ठीक है कि वे हम दोनों के पकड़ने के लिये ही आये थे। यहां से ग्वालियर चल देना अच्छा होगा।'

'फिर साँक नदी, जङ्गल, शिकार और खेत ? ये वहां कहां मिलेंगे?'

'एक और कारण है। तुमने सुना है या नहीं ? सुना होगा।'

'नहीं तो, क्या बात है ?'

'एक स्त्री ने मुझसे ठठोली की थी—'तुमको गर्भ रह गया है।'

'ऐं ! क्या है ऐसा कुछ ?'

'अरी हट !'

'जैसे ही ज्वार को घर में गाही तुम्हारा ब्याह रचूंगी । नटों से ओढ़नी इसीलिये लेनी है ।'

'गांव वाले नहीं होने देंगे ।'

'पुजारी को कुछ अनाज दे-दिवाकर साध लेंगे ।'

'देखो ।'

'और किसी ने कही यह बात ?'

'और तो किसी ने नहीं कहा । पर दूसरी स्त्रियां भी अनखाई सी रहती हैं, मानो मैं कुजात हो गई हूं ।'

'तुमको जो कुजात कहे वह कुजात ।'

'अभी कहा तो नहीं है परन्तु डर है कहीं कह न उठें !'

'तो कहीं भी जायेंगे सभी जगह ऐसी ही कहा सुनी और बुराई होगी ।'

'बाहर अपने को गूजरी कह उठूंगी ।'

'अरी वाह ! डर काहे का है ? क्यों डरें ? कोई पाप नहीं हो जायगा । पुजारी बाबा कथा-कहानियों में सुनाया करते हैं । ब्याह के बाद तो गूजरी हो ही जाओगी । मैंने और भैया ने तो ब्याह होने के पहले ही तुम्हारा अपना चौका एक कर लिया है ।'

'गांव वाले गांव में रहने नहीं देंगे । जाति का दण्ड बहुत कठोर होता है ।'

'तब कहीं बाहर चल देंगे । इतनी दूर जहां कहीं इन गांव वालों की कांव-कांव सुनाई ही न पड़े ।'

'इन नटों को भी एक ज्यात है । किसी गांव में नहीं रहते, घूमते फिरते बने रहते हैं और मौज करते हैं ।'

से कुछ ही दूर बर्छी चलाने के अभ्यास के लिये निकटवर्ती पलाश वृक्ष समूह के नीचे पहुँच गईं। बर्छियों को पेड़ से टिकाकर छाया में बैठ गईं।

लाखी ने कहा, 'यदि हम लोग हथियार चलाना न जानती होतीं तो वे लोग क्या हमको छोड़ देते ? हमारा सर्वनाश हो जाता तो गांव वाले क्या करते ? क्या कहते ?'

'रोते किलपते और क्या करते ?' निन्नी बोली।

'स्यात रोते भी नहीं। हमारे भाग्य को दो चार गालियां देकर अपने अपने काम में लग जाते।'

'इन लोगों की समझ में यह क्यों नहीं आता कि हम तीनों गांव में न होते तो इनकी आधी फ़सल को जङ्गली जानवर चौपट कर जाते और वे चार तुर्क गाँव की आधी स्त्रियों को नष्ट-भ्रष्ट कर जाते ?'

मुझको एक सन्देह है निन्नी – 'ये लोग हम दोनों को पकड़ने आये थे।'

'क्यों ?'

'क्योंकि तुम्हारे गोरेपन की, तुम्हारी आँखों की, तुम्हारी छवि की, चारों दिशाओं में कीर्ति फैल गई है।'

'दुर पगली ! तुम कुछ कम सलौनी हो ?'

'हूं या नहीं हूँ – दर्पण, आरसी तो अपने पास है नहीं। पर मेरा कहना ठीक है कि वे हम दोनों के पकड़ने के लिये ही आये थे। यहां से ग्वालियर चल देना अच्छा होगा।'

'फिर साँक नदी, जङ्गल, शिकार और खेत ? ये वहां कहां मिलेंगे?'

'एक और कारण है। तुमने सुना है या नहीं ? सुना होगा।'

'नहीं तो, क्या बात है ?'

'एक स्त्री ने मुझसे ठठोली की थी—'तुमको गर्भ रह गया है।'

'ऐं ! क्या है ऐसा कुछ ?'

'अरी हट !'

'जैसे ही ज्वार को घर में गाही तुम्हारा व्याह रचूंगी । नटों से ओढ़नी इसीलिये लेनी है ।'

'गांव वाले नहीं होने देंगे ।'

'पुजारी को कुछ अनाज दे-दिवाकर साध लेंगे ।'

'देखो ।'

'और किसी ने कही यह बात ?'

'और तो किसी ने नहीं कहा । पर दूसरी स्त्रियां भी अनखाई सी रहती हैं, मानो मैं कुजात हो गई हूँ ।'

'तुमको जो कुजात कहे वह कुजात ।'

'अभी कहा तो नहीं है परन्तु डर है कहीं कह न उठें !'

'तो कहीं भी जायेंगे सभी जगह ऐसी ही कहा सुनी और बुराई होगी ।'

'बाहर अपने को गूजरी कह उठूंगी ।'

'अरी वाह ! डर काहे का है ? क्यों डरें ? कोई पाप नहीं हो जायगा । पुजारी बाबा कथा-कहानियों में सुनाया करते हैं । व्याह के बाद तो गूजरी हो ही जाओगी । मैंने और भैया ने तो व्याह होने के पहले ही तुम्हारा अपना चौका एक कर लिया है ।'

'गांव वाले गांव में रहने नहीं देंगे । जाति का दण्ड बहुत कठोर होता है ।'

'तब कहीं बाहर चल देंगे । इतनी दूर जहां कहीं इन गांव वालों की कांव-कांव सुनाई ही न पड़े ।'

'इन नटों को भी एक न्यात है । किसी गांव में नहीं रहते, घूमते फिरते बने रहते हैं और मौज करते हैं ।'

'उस लड़की को तो देखो, पिल्ली को। राम! राम!! कितन आंखें मटकाती है और अंगों को कितना फड़काती है। बारीक चून्ह उसके शरीर पर तो बहुत ही घिनावनी लगती है।'

'उसी को मेरे लिये लेना चाहती हो! मैं कभी नहीं ओढ़ूंगी नटिनी सी जचने लगूंगी।'

'हां——सो तो अपने मोटे कपड़े बहुत अच्छे। अब सारी बात पुजा के लौटने पर तै करेंगी।'

[२१]

सांझ के बाद का समय। ठण्डी हवा, खुली हुई लम्बी-चौड़ी खिड़कियों से दक्षिणी मन्द समीर के भीने भीने झोंके। चन्द्रमा की मुस्कानें महल के नीचे की वृक्षावलि पर। माँडू के विशाल महल के उस बड़े कमरे में तख्त के ऊपर मखमली मसनद और तकियों पर गयासुद्दीन। नीचे ख्वाजा मटरू नीची निगाहों। तख्त के पास खूबसूरत खवासिनें ललक के साथ, कांच की सूराही में आबरूदार उफनाती हुई लाल-लाल शराब लिये हुये। सोने की रत्नजटित कटोरी में पहुँच-पहुँच वह होठों पर सुरसुराती हुई गयासुद्दीन को स्वप्न लोक को आमन्त्रण दे रही थी।

'मटरू!' सुल्तान ने सम्बोधन किया।

मटरू नें सावधानी और विनय के साथ सिर उठाया, हाथ जोड़े, ज़रा सा खवासिनों की तरफ़ देखा और चुप रहा। सुल्तान ने खवासिनों की तरफ़ देखा और चुप रहा। सुल्तान ने खवासिनों को संकेत किया। वे सुराही को तख्त के पास वाले ऊँचे पीढ़े पर रख कर चली गईं।

मटरू ने काँपते हुये स्वर में कहा, 'जहाँपनाह, अबकी बार काम नहीं बन पाया।'

'क्यों? क्या हुआ?' हाथ में प्याले को लिये हुये सुल्तान ने पूछा।

'चार सवार गये थे, उनमें से दो वहीं खेत रहे।'

'किस तरह? किसने मारा उनको? क्या मानसिंह तोमर के सिपाही पहुँच गये वहाँ?'

'नहीं जहाँपनाह। उन्हीं लड़कियों में से एक नें बर्छी चलाई और दूसरी ने तीर।'

'सवारों ने कुछ बेअदबी की होगी।'

'वैसे नहीं आ रही थीं तो उन्होंने पकड़ कर लाना चाहा।'

'बिलकुल गधे थे वे सब। निरे काठ के उल्लू। बाकी दो कहाँ हैं?'

'आज ही लौटे हैं। उन्होंने सब हाल सुनाया हैं।'

'उनको कैद में डाल दो। नहीं आती थीं खुशी खुशी तो बहका फुसला कर चम्बल के इस पार कर लेना था अपने इलाके में, फिर चाहे कुछ किया जाता। नट क्या कर रहे हैं?'

'जहाँपनाह। नट—'

'तुम भी अहमक़ हो। क्यों रुक गये? कहो न, क्या वे भी मार डाले गये?'

'नहीं जहाँपनाह। उन्होंने कुछ गहने और सिक्के मँगवाये थे सो भेज दिये गये, मगर वे अभी तक कुछ नहीं कर पाये हैं।'

'हुँ।' सुल्तान के क्रोध को मदिरा के सरूर ने उत्तेजित किया।

मटरू को सुल्तान के स्नेह और कृपा के पात्र होने का अभिमान था। यकायक इस रुख को देखकर चौकड़ी भूलने लगा। विपयान्तर की खोज में लगा।

सुल्तान को मदिरा की प्याली देते हुये मटरू ने कहा, 'महमूद वघर्रा सिंध की तरफ़ से लौटकर फिर तैयारी में है।'

सुल्तान को विपयान्तर बुरा नहीं लगा। कुछ ढलते हुये स्वर में बोला, 'कहां की तैयारी में?'

दिन में उसको जासूसों ने बतलाया था परन्तु इस समय बात स्मरण से ओझल हो गई थी।

'जहाँपनाह आजकल पुर्तगालियों का मुक़ाबला करने के लिये जहाजों की तैयारी में लगा है, सुल्तान महमूद।' मटरू ने कहा।

'उस हब्शी को मेरे सामने सुल्तान मत कहा करो,' ग़यासुद्दीन चिल्लाया।

मटरू चुप रहा।

राजपूताने के ऊपर चढ़ाई करने के लिये जा रहा है वह, मुझको याद आ गया। हम ग्वालियर पर चढ़ाई करेंगे।'

'बेशक जहाँपनाह।'

'नरवर होकर हमला होगा। नरवर को घेरे रहने के लिये कुछ दस्ते छोड़कर ग्वालियर का मुहासिरा किया जायगा। एक छोटा सा दस्ता चम्बल के रास्ते से राई गांव को दबायेगा। उधर से मैं ग्वालियर होता हुआ आ पहुँचूंगा। नटों के पास खबर भेजो कि तब तक वे किसी तरह उन दोनों को अपने पास से इधर-उधर न हिलने भटकने देवें। तुम मेरे साथ चलोगे।'

'ख़ुदावन्द की नियामत है।'

'मैं अभी क्या कुछ कड़ा पड़ गया था?'

'नहीं, ऐसे तो कुछ नहीं जहाँपनाह।'

'हाँ ठीक, मेरी ग़ैर मौजूदगी में मांडू की नायबी शाहजादा नसीरुद्दीन करेगा।'

'बजा है, जहाँपनाह।'

सुल्तान ने दूसरे प्याले को चुस्कियों का लक्ष्य बनाया। यह उसके नित्य के अभ्यास के प्रतिकूल था।

मटरू ने देखा सुल्तान ढल गया है। कुछ क्षण उपरान्त बोला, 'जहाँपनाह, उन दो सवारों को बख्श दिया जाय। वैसे उनका कोई कसूर नहीं है।'

'कभी नहीं। उन्होंने अपने दो साथियों को क्यों मर जाने दिया?'

ख्वाजा मटरू चुप साधकर रह गया। जब नरवर पर हमला होगा तब ग्वालियर का तोमर हाथ पर हाथ धरे बैठा रहेगा ग्वालियर में? जिसने दिल्ली के बादशाह बहलोल और सिकन्दर से टक्कर ली, वह क्या ग्वालियर के क़िले में बन्द होकर ही लड़ेगा? अगर इन हज़रत के ही आंख या छाती पर कोई तीर आ बरसा तो क्या यह मांडू जीते जी लौट

कर आयेंगे ? किसी तरह इस लड़ाई से मेरा पिण्ड छूट जाय तो बड़ी बख्त हो। यह खतम हो गये तो नसीरुद्दीन सुल्तान बनेगा। क्यों न अभी से उसकी खैर मनाने लगूँ ? मगर इससे पीछा छूटे तब तो। वैसे इस तरह कभी पहले नहीं बिगड़े। शायद फिर मुहब्बत मिहरबानी करने लगें। देखूंगा। मटरू सोच रहा था।

सुल्तान बोला, 'मेवाड़ में नकली राना ऊदा और असली राना रायमल का किस्सा तो खतम हो गया है, लेकिन मेवाड़ में कुछ कमज़ोरी अब भी है। अगर बघर्रा वहां उलझा रहा तो हमको ग्वालियर की लड़ाई में सुबीता रहेगा। हम मेवाड़ को किसी तरह की मदद नहीं देंगे, क्योंकि पिछली मर्तबा राणा फ़ौज लेकर आये और बघर्रा से बिना लड़े ही लौट गये। वैसे भी फिलहाल मैं दो मोर्चो पर लड़ाई नहीं लड़ूंगा। एक ग्वालियर ही काफ़ी ठीक रहेगा। क्या कहते हो ?'

मटरू ने सुल्तान को फिर ढला हुआ पाया परन्तु वह अपनी पिछली ग़लती को दुहराना नहीं चाहता था।

बोला, 'यही ठीक है जहांपनाह।'

'नरवर, ग्वालियर की चढ़ाई के लिये यह मौसम मजेदार है। नटों के पास होशियारी के साथ खबर भेज देना। जो कुछ मैंने कहा है होकर रहे।'

'जहाँपनाह।'

[२२]

दोपहरी के समय को छोड़कर दिन में राजा मानसिंह किसी न किसी काम में व्यस्त रहता था। लोगों से मिलने का समय नौ बजे से बारह बजे तक। न्याय का शासन तीसरे पहर की अन्तिम घड़ियों में। चौथे पहर के आधे भाग में सेना की तैयारी और अश्वारोहण, दिन के पहले पहर की तरह। रात के पहले पहर में भोजन और राज्य-व्यवस्था की चर्चा, दूसरे पहर में सङ्गीत। यह कार्य-क्रम गर्मी की ऋतु में कुछ घट बढ़ जाता था।

तीसरे पहर की समाप्ति में कुछ विलम्ब था। मानसिंह अपने भवन के सभा-मण्डप में सिंहासन पर बैठा था। सभा में मन्त्री, सचिव इत्यादि यथास्थान थे। उसके कुछ निकट एक नया यूथपति खड़ा था। नाम निहालसिंह। निहालसिंह अट्ठाईस-तीस वर्ष का युवा था। छरेरी गठीली देह। सहसा प्रवर्ती लक्षण वाली आंख। मानसिंह ने इसको कुछ समय पहले ही अर्जित किया था। कुशल उपयुक्त साथियों को ढूंढ़ निकालने की मानसिंह में प्रतिभा थी।

'यदि दिल्ली के सुल्तान ने जौनपुर पर फिर आक्रमण किया तो जौनपुर सुल्तान की सहायता करनी पड़ेगी। आक्रमण अनिवार्य सा जान पड़ता है।' राजा मानसिंह ने मन्त्री से कहा।

मन्त्री बोला, 'परन्तु यदि मालवा के सुल्तान ने हमारे ऊपर चढ़ाई कर दी महाराज, तो हम जौनपुर की सहायता नहीं कर सकेंगे। यदि हमारे ऊपर पहले आक्रमण हो गया तो क्या जौनपुर सुल्तान हमारी सहायता करेगा? जौनपुर का सुल्तान बङ्गाल की ओर चला गया था, सम्भव है फिर लौट पड़ा हो।'

'परन्तु मालवा के सुल्तान की सन्धि मेवाड़ के साथ है और मेवाड़ हमारा मान्य है। फिर मालवा की सल्तनत को गुजरात के बघरों

से चैन कहां हैं ? वह हमारे ऊपर हमला करने का अवकाश कैसे पायगा ?' मानसिंह ने पूछा।

मन्त्री ने बेधड़क उत्तर दिया, 'महाराज, ग़यासुद्दीन सनकी और प्रबल है। हम लोग उसके विग्रह का विश्वास तो कर सकते हैं परन्तु सन्धियों का भरोसा नहीं कर सकते।'

राजा ने हँसकर कहा, 'हमारी की हुई सन्धियों के सम्बन्ध में भी लोग इसी प्रकार का व्यङ्ग कर सकते हैं।'

राजा ने निहाल की ओर स्नेह की दृष्टि फेरी। वह तुरन्त बोला, 'हम मालवा और दिल्ली दोनों से लड़ लेंगे। अपने लिखे हुए वचन का पालन करेंगे।'

सचिव ने कहा, 'और यदि मालवा के ग़यासुद्दीन खिलजी ने हम पर पहले धावा कर दिया और जौनपुर दिल्ली के बादशाह के डर के मारे फिर बंगाल भाग गया और हम खिलजी से लड़ाई में उलझ गये, उसी समय बादशाह ने जौनपुर पर आक्रमण कर दिया, तब हम यदि जौनपुर की सहायता न करें तो लिखे हुये वचन को भंग करने का अपराध हमारे सिर आयगा या जौनपुर के सिर जायगा ?'

निहालसिंह उत्साह के साथ बोला, 'हम दोनों मोर्चों पर युद्ध कर लेंगे।'

मानसिंह ने निर्णय किया, 'ऐसी परिस्थिति में हम दो मोर्चों पर लड़कर अपने बल को क्षीण नहीं करेंगे।'

मन्त्री और सचिव ने समर्थन किया। निहालसिंह निर्णय को समझने की कोशिश करने लगा।

मंत्री ने कहा, 'एक छोटा सा काम और रह गया है। बैजू गायक को आज सवेरे ही विदाई दी जाती थी। उसने नहीं ली। कुछ सनकी सा है। कहता है ग्वालियर में ही रहूंगा। हमारे चिट्ठे में इतना उकाम

नहीं है कि एक ऐसे गायक और उसके साथ वाली वैसी गायिका और चित्रकारिणी को मासिक वेतन पर रख सके। आजकल तो हमको अपनी सब बचत सेना पर खर्च करनी पड़ रही है।'

राजा हँसकर बोला, 'मेरे चिट्ठे में कमी करके उन दोनों कलाकारों का वेतन बाँध दो। राज्य है काहे के लिये ? प्रजापालन, कला की रक्षा और बढ़ोत्तरी के ही लिये न ? प्रजा और कला, दोनों, के लिये हमें अपने प्राण दे देने के लिये तैयार रहना चाहिये। इन दोनों की रक्षा का ही तो दूसरा नाम धर्म का पालन है। कहाँ है आचार्य विजय-जङ्गम ?'

मन्त्री ने उत्तर दिया, 'क़िले के भीतर जो सरोवर बन रहा है उसकी मजदूरी से नहीं लौटे हैं।'

विजय को 'कायक'—शारीरिक श्रम में इतना विश्वास था कि अपना पसीना बिना बहाये वह किसी से कभी कुछ नहीं लेता था।

'कितना बड़ा कलाकार और पण्डित है वह ! राज्य से कुछ नहीं लेता। वीणा सुनाने के बदले में एक कौड़ी नहीं लेता। कहता है अपनी रक्षा के पल्टे में वीणा को सुना देता हूँ। परन्तु आय की कमी को शारीरिक श्रम से पूरा करता है। एक से अब तीन हो जायेंगे। इनकी आजीविका का प्रबन्ध तो, मन्त्रीजी, राज्य की ही ओर से होना चाहिये।' राजा ने कहा।

मन्त्री सहमत नहीं हुआ,—'महाराज, आपके और मन्त्रियों के चिट्ठे में कुछ कटौती करके ही प्रबन्ध किया जा सकेगा, वैसे तो नहीं हो सकता।'

'करो। अपने चिट्ठे के सम्बन्ध में मैंने पहले ही कह दिया है।' राजा ने मुस्कराकर कहा।

निहालसिंह की समझ में राजा के दोनों निर्णय जब जाये। उसने नीचा सिर कर लिया।

द्वारपाल ने आकर सूचना दी, 'राई गाँव से पुजारी जी आये हैं दर्शन करना चाहते हैं।'

राजा ने अनुमति दी। द्वारपाल पुजारी को भेज गया। परस्पर अभिवादन के बाद पुजारी से राजा ने कुशलवार्ता पूछी।

पुजारी ने कहा, 'श्रीमान् ने कई बार वचन दिया कि राई आकर शिकार खेलेंगे। अब तो साथ लेकर ही टलूँगा ग्वालियर से।'

'क्षमा करना शास्त्री जी, राज्य की व्यवस्था को बिलकुल ठीक अवस्था में स्थापित करने की धुन ने शिकार को भुला सा दिया है शीघ्र ही आने का उपाय करूँगा। वैसे भी राज्य भर का एक दौरा तो जाड़ों-जाड़ों में मुझको करना ही है, राई भी आऊँगा, अर्थात् यदि इस बीच में किसी शत्रु से खटक न गई और युद्ध में उलझ न जाना पड़ा तो।'

'युद्ध तो महाराज, छलांगें भर कर आ रहा है।'

'कैसे? कहाँ से शास्त्री जी?'

'अभी तो उसकी भूमिका हमारे गाँव में उत्तर से आई है। चाहे चली वह अन्तर्वेद से हो या मालवा से।'

'पहेली सी बूझ रहे हो! स्पष्ट कहो शास्त्री जी।'

पुजारी ने विस्तार के साथ पूरी कथा सुना दी।

मन्त्री ने कहा, 'महाराज, ये लोग अन्तर्वेद से नहीं आये होंगे। कालपी और इटावा अपने मित्रों के हाथ में है। ये तुर्क या पठान सवार मालवा के खिल्जी के सिवाय और किसी के नहीं हो सकते।'

बात को निखारने के लिये मायसिंह बोला, 'इस बुरे काल में चार लुटेरों का कहीं से भी आ जाना सम्भव है।'

पुजारी ने विनय की,—'महाराज, लुटेरे तो कहीं से भी आ सकते हैं परन्तु उन सुन्दर लड़कियों का अपहरण करने वे किसी शक्तिशाली की आज्ञा पर ही आये होंगे वहाँ।'

राजा ने पुजारी पर प्रश्न-सूचक दृष्टि की मानो उन लड़कियों के सम्बन्ध में कुछ और जानना चाहता हो।

पुजारी ने बतलाया,—'मैंने पिछले जेठ के महीने में और पीछे भी, उन लड़कियों के लक्ष्य-वेध की कुशलता के विषय में, कुछ कहा था। उनकी सुन्दरता के विषय में या तो कवि ही कुछ कह सकता है या कुशल चित्रकार और, मैं इनमें से एक भी नहीं।'

राजा समझ गया और समझने के साथ ही कुछ लजा भी गया।

निहालसिंह बोला, 'महाराज का राई गाँव पधारना आवश्यक हो गया है। जनता के मन में विश्वास का संचार हो जायगा, शत्रु सुनकर काँप जायगा और महाराज नाहर, अरना इत्यादि का शिकार भी खेल लेंगे।'

राजा ने अपना निश्चय सुनाया,—'मैं कल ही राई की ओर यात्रा करूँगा। निहालसिंह अपने दल को साथ ले चलेगा। खाने-पीने की सामग्री की पूरी व्यवस्था यहीं से कर ले चलो।'

[२३]

एक पहर दिन नहीं चढ़ा था जब गाँव के अधिकाँश स्त्री-पुरुष खलिहानों में पहुँच गये। एकाध में दाँय भी होने लगी थी। अटल ने बैल चलाये, निन्नी और लाखी भुट्टों को सकेलने-बगोड़ने में लग गईं। पुजारी हाँफता हुआ सा तेजी के साथ आया। दूर से ही चिल्लाया, 'अरे ओ ! अरे ओरे !! थम जाओ, थम जाओ !!! महाराज की सवारी आ रही है !!!!'

खलिहानों में जो लोग काम कर रहे थे सब थम गये। पुजारी ने पुकार को दोहराया। स्त्री-पुरुष सरपट उसके पास आ गये। घेर लिया। उनके चेहरों पर उत्सुकता और आह्लाद की रेखायें फैल गईं।

'कब ?' उन लोगों ने पूछा।

'अरे अभी आ रहे हैं। पीछे आ रहे हैं। बस आते ही होंगे। बन्द करो काम। बड़े भाग्य से राजा के दर्शन होते हैं।'

'धन्य हो पुजारी बाबा आप ! हमारा तो भाग्य जाग गया। अब काम नहीं करेंगे। चलो रे सब दर्शन करने।'

'अरे ऐसे नहीं। मूर्ख हो न ! जल्दी से नहाओ। थालियों में दीपक सजाओ। जब महाराज आवें तब उनकी आरती उतारो। हमने मन्दिर के पास गेंदा के कुछ पौधे लगाये हैं। उनमें से कुछ फूल ले लो। अच्छा, नहीं। निन्नी और लाखी की थालियों के लिये हम तोड़ देंगे फूल। नहीं तो तुम लोग सारे पौधे ही उखाड़कर फेंक दोगे।'

'हाँ उजालेंगे घी के दिये, पर थालियाँ तो सब के पास हैं ही नहीं। कचुल्ले चाहे सब के यहाँ निकल आयें।'

'अच्छा, जिसके पास जो निकल आवे उसी में घी के दिये रखकर आरती उतारना। राजा भगवान का अवतार या पूर्व जन्म का योगी होता

है, भला। नहा-धोकर अच्छे कपड़े पहिन कर गाँव के बाहर खड़े हो जाना स्वागत करने के लिये।'

'कपड़े अच्छे कहाँ से लावें ?'

'अच्छा जैसे हों वैसे ही सही। नटों से उधार ले लेना। अब मैं मन्दिर जाता हूँ। वहीं तो ठहरेंगे राजा।'

'कब तक पधारेंगे राजा ?'

'दो-तीन घड़ी के भीतर। चल पड़े होंगे इस वेला तो वे। घोड़े कुदाते आ रहे होंगे, दलबादल के साथ। अब देखूं कौन लुटेरा आता है यहाँ ?'

पुजारी उतनी ही तेजी के साथ मन्दिर की दिशा में चला गया।

गांव वालों के लिये जैसे नदी में यकायक बड़ी बाढ़ आ गई हो और किसी तरह सम्भाले न संभलती हो, इधर-उधर भागने दौड़ने लगे। नहाने गये। जैसे कुछ वस्त्र उनके पास थे, धो-निचोड़ कर उनको सुखाया और पहिन लिया। पुजारी ने निन्नी और लाखी को थोड़े से फूल दिये।

निन्नी और लाखी के उत्साह का उफान कम हो गया। उनको मालूम हो गया कि स्वागत का लगभग सर्वांश उनके ही सिर है। लहँगे मोटी छींट के परन्तु धोने पर भी भदरंगे, कहीं-कहीं उनकी फटनों पर गांठें लगी हुईं। चोलियां रङ्ग-बिरङ्गी परन्तु मोटे कपड़े की। ओढ़नी लाल, पर वह भी मोटी-झोटी।

लाखी ने सुझाव दिया, 'नटों से उधार ले लें बढ़िया चून्हरी ?'

निन्नी सोचने लगी।

लाखी ने कहा, 'उनके पास कुछ अच्छे गहने भी हैं।'

'तुमने देखे हैं ?' निन्नी ने पूछा।

'हां', उसने बतलाया, 'कल दिखलाये थे। देखते ही आंखों में चकाचौंध लग गई।'

निन्नी फिर सोचने लगी। लाखी उसका मुँह ताकने लगी।

निन्नी बोली, 'नटों से कपड़े या गहने उधार लेकर नहीं पहिनना चाहिये। भाग्य में होंगे तो अपने पसीने की कमाई के पहिनेंगे।'

'वे लोग देने को तैयार हैं। कहते थे। पिल्ली बढ़िया कपड़े पहिनकर खड़ी होगी आरती उतारने और हम दोनों के होंगे ये चियड़े-गुदड़े से।'

'अपने ऐसे ही अच्छे। कपड़ों पर तो राजा इनाम देगा नहीं। नट, नट—बेड़ियें ही हैं और हम लोग, हम लोग।'

'तुम्हारी तो सनक है जब जैसी उखड़ पड़े।'

'तो क्या नटनी बन जावें? डाँग-डूंगर में ये जो तितलियां उड़ रही है क्या वैसी बनावट बनालें? राजा से क्या बात छिपी रहेगी कि पिल्ली नटिनी है? राजा हम दोनों को दुरकिनी—बेड़िनी समझ बैठेगा।'

'तो तुम मेरे लिये उनसे उस तरह की एक ओढ़नी मोल लेने की बात क्यों कहती थीं?'

'अरी पगली, बुरा मान गई क्या? व्याह के समय पहिनाऊँगी तुमको उस तरह की ओढ़नी। पर इस अवसर पर न तो मैं पहिनूंगी और न तुमको पहिनने दूँगी। राजा को अपना जौहर दिखलायंगी तीर कमान से।'

निन्नी ने उसके गाल मीड़ दिये। लाखी के चेहरे की तमतमाहट चली गई।

भोजन करते-करते और थालियों, कचुल्लों में दीपक सजाते-सजाते दो घड़ियां निकल गईं। पुरुष गांव के बाहर इकट्ठे हो गये। स्त्रियां घरों से बाहर नहीं निकली थीं। अटल दौड़ता हुआ आया। टटिया के बाहर से ही पुकार लगाई,—'अरी चलो री सवारी आ गई।'

उन दोनों ने दीपक जला लिये। हाथ और अञ्चल की ओट में थालियां को लिए गांव के बाहर खड़ी हो गईं। और स्त्रियां भी आ गईं। पुरुष एक तरफ खड़े हो गये, स्त्रियां एक तरफ। इन्हीं में नट वर्ग

भी था। पिल्ली बहुत तड़क-भड़कदार पोशाक में आई। उसकी थाली भी सबसे अच्छी थी।

राजा घोड़े पर सवार धीरे-धीरे इन लोगों की ओर आया। उसके पीछे निहालसिंह था। कुछ दूरी पर पीछे घुड़सवारों का छोटा सा दल। हाथी नदी में छोड़ दिये गये थे।

पुरुषों की पहचान में भी नव राजा नहीं आया था, उसी क्षण से उन्होंने सिर झुका कर हाथ जोड़ लिये। स्त्रियों ने घूंघट डालने और खोलने शुरू कर दिये। लड़कियाँ मुंह उघाड़े थीं। निन्नी और लाखी के हृदय धड़क रहे थे। निन्नी नियंत्रण के लिये कठोर प्रयास कर रही थी।

राजा और भी निकट आया। घोड़ा आवदार था। तेज़ होने के लिये लगाम को चबाये डाल रहा था। सईस बग़ल में ज़रा हटकर चल रहे थे।

पुरुष वर्ग में से पुजारी थाल में माला, चंदन, हल्दी, चावल लिये सबसे आगे बढ़ा। राजा घोड़े पर से उतर पड़ा। सईसों ने घोड़ों को थाम लिया। राजा ने ब्राह्मण को प्रणाम किया। उसने चिल्लाकर आशीर्वाद दिया। मानसिंह के चौड़े माथे पर चन्दन-तिलक लगाया और उसकी झुकी हुई गर्दन में माला डाल दी। मानसिंह स्त्रियों के सामने आया। उन्होंने उसकी आरती उतारी। उनके फटे हुये मोटे मैले-कुचेले कपड़े देखकर उसके मन में उठा—'मैं इनका राजा हूँ? इनका राजा!!!'

निन्नी स्थिर हो गई थी। आरती के लिए उसने दोनों हाथों से थाली बढ़ाई। राजा के सिर पर बढ़िया, रेशमी, रंग-बिरंगा मुड़ासा था जिस पर जड़ाऊ कलगी और लिपटी हुई मुक्तामाला। गले में सोने का रत्न-जटित हार।

निन्नी ने अपनी बड़ी-बड़ी आंखों की लम्बी बरौनियां एक क्षण के लिये ऊपर को कीं। यह है राजा! भरी हुई सांचे में सी ढली हुई देह। ऊँचे कन्धे। धनुष-बाण कन्धे पर और ढाल पीठ पर। लम्बा खड्ग कमर में। वीर होगा यह राजा! नाहरों और अरनों को मार देने का बल होगा

इसमें !! तुर्कों को मार भगाने की शक्ति होगी। इसके कलेजे और हाथों में !!!' उसने सोचा। आंखें नीची पड़ गईं।

यह कौन ? यहाँ कैसे? राख के ढेर में चिनगारी कहाँ से आई? इस सड़ियल गाँव में ऐसा सौन्दर्य ? राजा ने प्रश्नसूचक दृष्टि पुजारी की ओर की।

पुजारी ने उत्साह के साथ—इतने उत्साह के साथ कि जितना उसको कभी अनुभव न हुआ होगा—कहा, 'महाराज इस लड़की का नाम मृगनयनी है। गाँव में लोग इसको निन्नी कहते हैं। यही है हमारी वह कन्या जिसने एक-एक तीर से बड़े-बड़े नाहर, अरने, भैंसे, खीसों वाले सुअर मार गिराये हैं। ऐसा निशाना लगाती है कि आपके सामन्त भी चकरा जायँ। गाती भी बहुत अच्छा है, हमारी निन्नी।'

निन्नी ने क्षणखण्ड में पुजारी की ओर देखा, होंठ जरा से संकुचित किये, मानो कह रही हो क्या बके जा रहे हो ?

राजा मुस्कराकर बोला, 'शास्त्री जी धन्य है यह गाँव जहां सब गुणों से सम्पन्न मृगनयनी जैसी स्त्री हो।'

पुजारी ने तुरन्त टोका,'महाराजाधिराज, मृगनयनी कुमारी कन्या है।'

उमङ्ग भरी हँसी के साथ राजा ने कहा, 'हो, हो क्षमा कीजियेगा। कौन है यह ?'

पुजारी ने उत्तर दिया, 'गूजर ठाकुर। यह इसका भाई खड़ा है। अटलसिंह इसका नाम है। बड़ा अल्हड़ है—' पुजारी अपने उत्साह में कुछ और भी कहना चाहता था।

एक बुड्ढे ने टोका,—'अरी सब चुप खड़ी हो, जैसे तुम्हारे होठों को किसी ने सीं डाला हो ! सामने हमारा रक्षक, हमारा राजा खड़ा है और तुम सब निड़ी भूल गईं !! कुछ गाना-वाना आता है या बिल्कुल गँवार ही हो !!! देखो कैसा सलौना है हमारा राजा !!!!'

निन्नी ने एक वार फिर मानसिंह की ओर देखा और सिर नीचा कर लिया।

मानसिंह ने भी देखा और उन आँखों को वार-वार, देखने का चाव जागा।

राजा वोला, 'मृगनयनी, तुम्हारे तीरों की परीक्षा लूँगा। ग्वालियर तव लौटूँगा जब तुम्हारे लक्ष्यवेध की पूरी परीक्षा कर चुकूँगा।'

निन्नी ने नीचा सिर किये हुए उसकी आरती उतारी। थाली में एक फूल था। आँखों को ऊँचा करके उसके मुड़ासे पर डाला। फूल नीचे गिर गया। राजा ने उसको उठाकर अपनी पगड़ी में खोंस लिया। वह वहीं खड़ा रहना चाहता था। स्त्रियां गा उठीं। लाखी ने आरती के लिये अपनी थाली आगे बढ़ाई।

पुजारी ने व्याख्या की, 'महाराज इसका नाम लाखारानी है। कहते हम लोग इसको लाखी हैं। यह अहीर है। कुमारी है। वड़ी वहादुर है। इन्हीं दोनों लड़कियों ने उन दो वैरियो को मार गिराया था और दो को भगा दिया था। यह भी वड़ा अच्छा निशाना लगाती है।'

'देखूँगा' राजा मुस्कराते हुए बोला, 'इन दोनों कुमारियों ने तो रामायण महाभारत का युग सामने लाकर खड़ा कर दिया!'

लाखी ने आँखें खोलकर मानसिंह को देखा। मुस्कराकर आरती उतारी और उसकी पगड़ी पर फूल फेंका जो नीचे जा गिरा। उसी समय पिल्ली अपनी स्वाभाविक निर्लज्जता को दवाती हुई मानसिंह के सामने थाली लेकर आ गई। लाखी वाले फूल को मानसिंह ने नीचे से नहीं उठा पाया। निन्नी ने देखा, सवने देखा। मानसिंह को उसके वस्त्रों पर आश्चर्य, हुआ। इस गांव में ऐसे कपड़े! परन्तु नट—नटिनियों की वेशभूषा ने उसको वतला दिया कि ये वास्तव में कौन हैं। तो भी उसने पुजारी से पूछा, 'यह कौन है ?'

पुजारी ने नहीं बतला पाया। नटी की नायकिन तुरन्त आगे आकर बोली, 'महाराजाधिराज, यह नट जात की है मेरी लड़की। कुँआरी है अभी। ऐसे खेल करती है जिसका ठिकाना नहीं। हम लोग अपने खेल महाराज को दिखलायँगे।'

उसकी आरती को स्वीकार करके मानसिंह नटों के समीप एक क्षण भी नहीं ठहरा।

कहा, 'तुम लोगों का भी खेल देखूंगा, मैं यहां कई दिन ठहरूँगा।'

पुजारी ने विनय की, 'अब महाराज, मन्दिर की ओर पधारना होवे। वहीं वरगद के नीचे डेरा लगेगा न ?'

'हां शास्त्री जी, उसी के लगभग।' राजा ने उत्तर दिया।

राजा कुछ देर वहीं ठहरना चाहता था परन्तु ठहरने के लिये कोई कारण नहीं था। स्त्रियाँ भोंड़ी तरह एक ग्राम्य गीत गा रही थीं। लाखी का स्वर उस गीत में कुछ मिठास डाल रहा था। निन्नी नहीं गा रही थी।

राजा ने कहा, 'यहां की स्त्रियां तो शास्त्री जी, खूब गाती हैं।' राजा ठिठका।

पुजारी ने झँझोड़ सी लगाई, 'महाराज मन्दिर को सिधारें, वे सब वहीं आकर और भी गीत सुनावेंगी।'

राजा को वहां से चलना पड़ा। चलते-चलते उसने एक बार फिर मृगनयनी की ओर आंख फेरी। निन्नी ने कनखियों देखकर आंख नीची कर ली।

मन्दिर पहुँचकर राजा रुक गया। खण्डित मूर्तियां इधर-उधर बिखरी हुई पड़ी थीं। उन्मेष की बिजली सी कौंध गई। मानो खण्डित मूर्तियों ने चुपचाप उसकी तीव्र भर्त्सना की हो।

दृढ़ स्वर में बोला, 'शास्त्री जी मैं इस मन्दिर का जीर्णोद्धार करूँगा और—'

उसकी स्मृति में दिल्ली की कुतुबमीनार के सामने गड़ी हुई लोहे की भारी-भरकम शलाका पर अनङ्गपाल तोमर प्रथम का खुदवाया हुआ वचन उभर आया—मैं इस भूमि को फिर सच्चे अर्थों में आर्यावर्त बनवाऊँगा।

मानसिंह हिल गया। उसका गला भर आया। नियन्त्रण किया।

लगा साफ़ करके धीरे से उसने कहा, 'मन्दिर को शीघ्र बनवा दूंगा।'

'महाराज की जय हो। महाराज सब कुछ कर सकेंगे।' पुजारी ने आशीर्वाद दिया।

राजा की आंख एक यक्षिणी की खण्डित मूर्ति पर गई। गांव की दिशा में ध्यान उचटा।

राजा पुजारी से पूछना चाहता था, 'क्या स्त्रियां यहाँ गीत गाने आवेंगी।' परन्तु साहस नहीं हुआ। शिविर की योजना में लग गया।

अटल इत्यादि पुरुष राजा के शिविर का तमाशा—हाथी, घोड़े, सैनिक इत्यादि—देखने के लिये मन्दिर की ओर चले गये। स्त्रियां अपने अपने घर लौट आई।

निन्नी और लाखी प्रसन्न थीं। निन्नी अपने किसी अनजाने स्पन्दन को दबाकर लाखी को और अधिक प्रसन्न करने का प्रयास कर रही थी।

निन्नी ने लाखी के कन्धे से झूलकर कहा. 'मुझको तो जकड़ सी लग गई थी, तुमने बहुत अच्छा गाया।'

'तुम तो ध्यान में मग्न हो गई थीं। सोच रहीं होगी हमारे बरसाये हुये फूल को राजा ने धूल में से उठाकर माथे पर चढ़ा लिया।'

'अरी तुम्हारे फूल को भी पगड़ी में खोंस लेते, पर उधर से वह फूहड़ पिल्ली आ गई न मेढ़की की तरह फुदकती हुई। छाती को कितनी निर्लज्जता के साथ उचका रही थी? उस पर वह चून्हरी ऐसी लगती थी जैसे कानी के टेंट पर सिन्दूर की बिन्दी!!'

पुजारी ने नहीं वतला पाया। नटी की नायकिन तुरन्त आगे आकर बोली, 'महाराजाधिराज, यह नट जात की है मेरी लड़की। कुँआरी है अभी। ऐसे खेल करती है जिसका ठिकाना नहीं। हम लोग अपने खेल महाराज को दिखलायँगे।'

उसकी आरती को स्वीकार करके मानसिंह नटों के समीप एक क्षण भी नहीं ठहरा।

कहा, 'तुम लोगों का भी खेल देखूँगा, मैं यहां कई दिन ठहरूँगा।'

पुजारी ने विनय की, 'अब महाराज, मन्दिर की ओर पधारत होवे। वहीं वरगद के नीचे डेरा लगेगा न ?'

'हाँ शास्त्री जी, उसी के लगभग।' राजा ने उत्तर दिया।

राजा कुछ देर वहीं ठहरना चाहता था परन्तु ठहरने के लिये कोई कारण नहीं था। स्त्रियाँ भोंड़ी तरह एक ग्राम्य गीत गा रही थीं। लाखी का स्वर उस गीत में कुछ मिठास डाल रहा था। निन्नी नहीं गा रही थी।

राजा ने कहा, 'यहां की स्त्रियां तो शास्त्री जी, खूब गाती हैं।' राजा ठिठका।

पुजारी ने झँझोड़ सी लगाई, 'महाराज मन्दिर को सिधारें, वे सब वहीं आकर और भी गीत सुनावेंगी।'

राजा को वहां से चलना पड़ा। चलते-चलते उसने एक बार फिर मृगनयनी की ओर आंख फेरी। निन्नी ने कनखियों देखकर आंख नीची कर ली।

मन्दिर पहुँचकर राजा रुक गया। खण्डित मूर्तियां इधर-उधर बिखरी हुई पड़ी थीं। उन्मेष की बिजली सी कौंध गई। मानो खण्डित मूर्तियों ने चुपचाप उसकी तीव्र भर्त्सना की हो।

दृढ़ स्वर में बोला, 'शास्त्री जी मैं इस मन्दिर का जीर्णोद्धार करूँगा और—'

उसकी स्मृति में दिल्ली की कुतुबमीनार के सामने गड़ी हुई लोहे की भारी-भरकम शलाका पर अनङ्गपाल तोमर प्रथम का खुदवाया हुआ वचन उभर आया—मैं इस भूमि को फिर सच्चे अर्थों में आर्यावर्त बनवाऊँगा।

मानसिंह हिल गया। उसका गला भर आया। नियन्त्रण किया।

गला साफ़ करके धीरे से उसने कहा, 'मन्दिर को शीघ्र बनवा दूंगा।'

'महाराज की जय हो। महाराज सब कुछ कर सकेंगे।' पुजारी ने आशीर्वाद दिया।

राजा की आँख एक यक्षिणी की खण्डित मूर्ति पर गई। गाँव की दिशा में ध्यान उचटा।

राजा पुजारी से पूछना चाहता था, 'क्या स्त्रियां यहाँ कभी नहीं आवेंगी।' परन्तु साहस नहीं हुआ। शिविर की योजना में लग गया।

अटल इत्यादि पुरुष राजा के शिविर का तमाशा—हाथी, घोड़े, सैनिक इत्यादि—देखने के लिये मन्दिर की ओर चले गये। स्त्रियां अपने अपने घर लौट आईं।

'अरी तो मेरा कन्धा क्यों तोड़े डालती है ?···तुम तो निगाह नीची किये थीं, तुमने वह सब कहाँ से देख लिया ?'

'आँखें नीची थीं, पर मुंदी तो थी नहीं।'

'और कनखियों भी कुछ देखा !'

'तुमतो ऐसी पुतलियाँ फैला-फैलाकर देख रही थीं जैसे राजा को बरोनियों और पलकों के भीतर भर लेने के लिये अंगूठों पर तुल गई हो।'

'ह ! ह !! ह !!! ह !!!! उनको बरोनियों से बाँधकर पलकों के भीतर तो तुमने भरा है। मैं यही तो सब परख रही थीं, मेरी ननद-बाई। आँखों में भर कर फिर कहां ले गईं उनको ?' लाखी ने निन्नी के हृदय पर उँगली रक्खी।

'अरी कैसी है तू ! कहां राजा भोज कहाँ गंगू तेली !!'

'हाँ हाँ हाँ आँ। शास्त्री जी, धन्य है यह गांव जहां सब गुणों से सम्पन्न मृगनयनी जैसी सुन्दर स्त्री हो !! पुजारी बाबा ने टीप जमाई—महाराजाधिराज मृगनयनी कुमारी कन्या है !!!'

निन्नी ने उसका मुंह बन्द करने के लिये झपटकर अपनी गदेली बढ़ाई। लाखी हँसती हुई भागी। निवारण करती हुई बोली, 'दूर खड़ी रहो। पहले मेरी पूरी बात सुन लो। अपनी भुजाओं के बल भरोसे बहुत न रहना, हां आँ।'

निन्नी ने अपने होठों पर बार-बार आने वाली कम्पनमयी मुस्कान को मोटी ओढ़नी के छोर से नाक तक छिपा लिया परन्तु आँखें छल करती रहीं।

लाखी उसी प्रकार कहती रही, पुजारी ने बतलाया—अभी तक कुआंरी है बिचारी। ह ! ह ! ह !!! बिचारी ने नयन उठाये और किसी को कोई संदेसा भेज दिया। राजा की आँखों ने उस सन्देसे को अपनी

'तुम कौन हो जी ?' निहाल ने पूछा।

'मृगनयनी का भाई, अटलसिंह मेरा नाम है। मैं भी शिकार खेलना चाहता हूं।' अटल ने उत्तर दिया।

निहाल उपहास में हँसा। सोचा यह शिकार खेलेगा! राजा और सामन्तों की बराबरी करना चाहता है!!

पुजारी को कहना पड़ा, 'अच्छी बात है। जाओ अटल, दोनों को यहीं भेज दो। यहां से मचान पर चली जायेंगी। कह दो महाराज से, रावजी, कि वे अभी आती हैं। पर उनके पास मूँगिये रङ्ग के कपड़े नहीं हैं।'

'मूँगिये रङ्ग के तो मेरे पास भी नहीं हैं।' अटल ने चलते-चलते अपनी टीप जमाई।

निहाल मुस्कराकर 'अच्छा' कहते हुये चला गया। अटल गांव की ओर सरपट भागा। निन्नी और लाखी घर पर थीं।

'अपने हथियार संभालो! जल्दी करो!! राजा ने शिकार के लिये बुलाया है!!! तुम्हारे निशाने की परीक्षा होनी है!!!! हथियारों को मांजकर चमकदार बनालो!!!!!' अटल ने कहा।

'यदी परीक्षा में खरी न उतरी ? वाण चूंक गये तो ?'

'तुम हारोगी तो भी जीतोगी। पर हारोगी नहीं।'

'वड़ी ज्योतिषिन हो न ! उधर ज्योतिषी जी आंगन में खड़े हैं वड़ी उतावली में !!'

'गड़वड़ वकी तो दो ठूंसे दूंगी मुंह में।'

'वड़ी है न सो करले मनचाहा उत्पात। लो अव राम का नाम लेकर उठाओ और वांधो अपने-अपने हथियार। वर्छी भी रक्खेंगी।'

उन्होंने अपने अपने हथियार उठाये और वांधे। लाल ओढ़नी को चोली पर कसते हुए सिर को ढक लिया। गांठों वाले भदरङ्गे लहँगे की कच्छ लगाली। द्वार पर घोड़ों की टापों की आहट मिली। निन्नी ने मुस्कान को दवाया। लाखी हँस पड़ी। वोली, 'देखा ? राजा को चैन नहीं है, सवार भेजा है।'

निन्नी घूंसा तानकर उस पर झपटी और रुक गई। कहा, 'तुम वहुत वुरी हो।'

दोनो अपनी अपनी वर्छियाँ लिये हुये आँगन में आ गईं। अटल मूंगिया रङ्ग के कपड़ों की एक पोटली लिये हुये वाहर से आया। वह अपनी उमङ्ग भरी मुस्कानों को सँभाल ही नहीं पा रहा था।

वोला, 'शिकार में लाल कपड़े नहीं पहिने जाते। राजा ने ये भेजे हैं। पहिनो इन्हें जल्दी।'

निन्नी ने विना किसी मुस्कान के कहा, 'अभी तक तो मैंने लाल कपड़े पहिने ही शिकार खेली है।'

'अव इन्हें पहिनो, नहीं तो राजा को वुरा लगेगा।' लाखी हँसती हुई वोली।

अटल ने पोटली खोली। अच्छे वुनाव की दो धोतियां, दो छोटे-छोटे मुड़ासे और एक लम्वा कुर्ता।

पलकों पर ले लिया। और फिर इन्होंने उनको और उन्होंने इनको जो कुछ गुपचुप समाचार दिया-लिया सो लाखी ने अपनी आँखें फाड़-फाड़ कर देख लिया ! और उन कनखियों ने कसर पूरी कर दी। अरी निन्नी मुझसे बने मत।'

'ओ हो हो हो ! तुम कहीं की बड़ी कवि हो न ! तुम्हें तो अपनी बीती आती है तो तुमने बखान डाली। सच बतलाओ लाखी, भैया के तुम्हारे बीच में कुछ इसी तरह का चलता रहा है न ?'

'अरी वाह ! कैसी टाली अपनी करतूत मेरे सिर पर !!',

'असम्भव बातें क्यों करती हो लाखी ? कहाँ गरीब किसान, कहाँ इतना बड़ा राजा !'

'किसान ही तो राजा को बनाता है और फिर गूजर तोमरों से किस बात में कम हैं।'

'भाग्य भी तो कुछ होता है न ?'

सो उस नटिनी ने हाथ की रेखायें देखकर पहले ही बतला दिया।'

'रेखायें तो तुम्हारी भी देखी थीं !'

'अब तो मुझको विश्वास हो गया। तुम्हारे भैया भी कुछ होकर रहेंगे।'

'अभी से ऐसी बड़ी-बड़ी आशायें मत बाँधो।'

[२२]

दूसरे दिन मानसिंह ने शिकार का आयोजन किया। आसपास के गाँवों से हँकाई करने वाले आ गये। शिकार का खेल और राजा का सङ्ग। वे सब मोद-मग्न थे। अटल भी शिकार में शामिल होना चाहता था परन्तु हँकैया बनकर नहीं। इससे भी बढ़कर उसकी कामना थी निन्नी और लाखी के लक्ष्यवेध-परीक्षण की। राजा से कैसे कहें? अपनी कामना प्रकट करने के लिये उसके पास तक पहुँचे ही कैसे? राजा ने निन्नी की कितनी प्रशंसा की थी! उसके नाते गाँव को धन्य कहा था!! तो उनकी परीक्षा कब हो? घड़े और गेंदों को फोड़ने की जगह यदि निन्नी और लाखी कहीं अरने या नाहर को फोड़ दें तो क्या बात! और यदि मैं भी एकाध खिसारा सुअर अपने तीर से पटक लूँ तबतो सभी कुछ बन जाय!! उसने सोचा। पुजारी से कहा। विनय सी की। सोचने लगा! उसी समय पुजारी के पास निहालसिंह आया। मूगिये रंग की शिकारी-पोशाक पहिने था।

आते ही बोला, 'महाराज की आज्ञा है कि उन लड़कियों के लक्ष्य-वेध की परीक्षा आज ही इसी शिकार में ली जाय।'

पुजारी अपने महत्व को बढ़ाने के लिये और अधिक विचारमग्न दिखलाई पड़ा। अटल कुछ कहने के लिये फड़फड़ाने सा लगा। निहाल-सिंह व्यग्र था। पुजारी ने तौलते हुये से कहा, 'लड़कियाँ ही हैं। शिकार तो उन्होंने खेली है परन्तु ऐसी बड़ी हँकाई में जोखिम बहुत है।'

निहालसिंह ने व्यग्रता प्रकट की, 'मैं क्या करूँ। आप चलकर महाराज को समझा दें। वैसे उन्होंने कहा है कि लड़कियों को कहीं उनके निकट ही किसी मचान पर बिठला दिया जायगा जहाँ से वे बिना किसी संकट के तीर चला सकें। शीघ्र निश्चय करिये।'

पुजारी के पहिले ही अटल ने निश्चय व्यक्त किया, 'वे नहीं डरतीं। बीहड़ भयंकर जंगल में पैदल घूमती हैं। उन्हें मचान-बचान नहीं चाहिये।'

'चिन्ता मत करो। तुम जाओ।'

'राजा क्रुद्ध होंगे।'

'किससे? मुझसे? चिन्ता मत करो।'

'तुम लोगों से नहीं, मुझ से। आफ़त में पड़ जाऊँगा।'

'डरो मत। चले जाओ किसी पेड़ पर। हंकाई होने वाली होगी।'

मार्ग-दर्शक अपना माथा टटोलता हुआ चला गया और थोड़ी दूर एक बड़े झाड़ पर चढ़ गया।

'अब?' लाखी ने धीरे से पूछा।

निन्नी ने उत्तर दिया, 'यह पेड़ आड़ के लिये बहुत अच्छा है। बर्छियां इससे टिकादो। कमान के ऊपर तीर चढ़ाओ। तरकश में दो दो तीन तीन झटपट निकाल लेने के लिये तैयार रक्खो। एक दिशा में मुँह करके तुम खड़ी हो जाओ, दूसरी में मैं। आड़े-ओटे अच्छी है ही। जानवर जब बहुत निकट आ जावेगा, तब नहीं देख पावेगा।'

'देखें आज कुछ निकलता है ढोंग में से या नहीं।'

'अवश्य निकलेगा। कई दिन से हम लोग जंगल में आईं नहीं हैं। उस पर हो रही है बड़ी भारी हँकाई। शिकार की कमी रह ही नहीं सकती।'

[२२]

दूसरे दिन मानसिंह ने शिकार का आयोजन किया। आसपास के गाँवों से हँकाई करने वाले आ गये। शिकार का खेल और राजा का सङ्ग। वे सब मोद-मग्न थे। अटल भी शिकार में शामिल होना चाहता था परन्तु हँकैया बनकर नहीं। इससे भी बढ़कर उसकी कामना थी, निन्नी और लाखी के लक्ष्यवेध-परीक्षण की। राजा से कैसे कहें ? अपनी कामना प्रकट करने के लिये उसके पास तक पहुँचे ही कैसे ? राजा ने निन्नी की कितनी प्रशंसा की थी ! इसके नाते गाँव को धन्य कहा था !! तो उनकी परीक्षा कब हो ? घड़े और गेंदों को फोड़ने की जगह यदि निन्नी और लाखी कहीं अरने या नाहर को फोड़ दें तो क्या बात ! और यदि मैं भी एकाध खिसारा सुअर अपने तीर से पटक लूं तबतो सभी कुछ बन जाय !! उसने सोचा। पुजारी से कहा। विनय सी की। सोचने लगा ! उसी समय पुजारी के पास निहालसिंह आया। मूगिये रंग की शिकारी-पोशाक पहिने था।

आते ही बोला, 'महाराज की आज्ञा है कि उन लड़कियों के लक्ष्य-वेध की परीक्षा आज ही इसी शिकार में ली जाय।'

पुजारी अपने महत्व को बढ़ाने के लिये और अधिक विचारमग्न दिखलाई पड़ा। अटल कुछ कहने के लिये फड़फड़ाने सा लगा। निहाल-सिंह व्यग्र था। पुजारी ने तौलते हुये से कहा, 'लड़कियाँ ही हैं। शिकार तो उन्होंने खेली है परन्तु ऐसी बड़ी हँकाई में जोखिम बहुत है।'

निहालसिंह ने व्यग्रता प्रकट की, 'मैं क्या करूँ। आप चलकर महाराज को समझा दें। वैसे उन्होंने कहा है कि लड़कियों को कहीं उनके निकट ही किसी मचान पर बिठला दिया जायगा जहाँ से वे बिना किसी संकट के तीर चला सकें। शीघ्र निश्चय करिये।'

पुजारी के पहिले ही अटल ने निश्चय व्यक्त किया, 'वे नहीं डरतीं। बीहड़ भयंकर जंगल में पैदल घूमती हैं। उन्हें मचान-वचान नहीं चाहिये।'

'चिन्ता मत करो। तुम जाओ।'

'राजा क्रुद्ध होंगे।'

'किससे? मुझसे? चिन्ता मत करो।'

'तुम लोगों से नहीं, मुझ से। आफ़त में पड़ जाऊँगा।'

'डरो मत। चले जाओ किसी पेड़ पर। हंकाई होने वाली होगी।'

मार्ग-दर्शक अपना माथा टटोलता हुआ चला गया और थोड़ी दूर एक बड़े झाड़ पर चढ़ गया।

'अब?' लाखी ने धीरे से पूछा।

निन्नी ने उत्तर दिया, 'यह पेड़ आड़ के लिये बहुत अच्छा है। वर्छियाँ इससे टिकादो। कमान के ऊपर तीर चढ़ालो। तरकस में दो दो तीन तीन झटपट निकाल लेने के लिये तैयार रक्खो। एक दिशा में मुँह करके तुम खड़ी हो जाओ, दूसरी में मैं। आड़ें-ओटें अच्छी हैं हीं। जानवर जब बहुत निकट आ जावेगा, तब कहीं देख पावेगा।'

'देखें आज कुछ निकलता है डाँग में से या नहीं।'

'अवश्य निकलेगा। कई दिन से हम लोग जंगल में आई नहीं हैं। उस पर हो रही है बड़ी भारी हँकाई। शिकार की कमी रह ही नहीं सकती।'

'वह सुनो, क्या बज रहा है?'

'हाँका शुरू हो गया है। सचेत हो जाओ।'

दूर से ढोल की आवाज सुनाई पड़ी। दोनो सतर्क हो गईं।

हांके वालों ने काफ़ी दूरी से जङ्गल को घेरकर हँकाई की। हांकने वालों की संख्या बड़ी थी, इसलिये एक बड़े क्षेत्र के पहाड़ और झाड़ी को ढङ्ग से घेरने में सुविधा रही।

लगान दूर दूर तक लगे हुये थे और इतने थोड़े-थोड़े अन्तर पर कि छोटा सा भी जानवर निकले तो दिख जाय।

'अच्छा, चलो। मैं भी पैदल ही चलूँगा।'

निन्नी लाखी की ओर देखने लगी।

वे सब जङ्गल में लगान के लिये चल पड़े।

घने पहाड़ी जङ्गल के एक ठौर पर मानसिंह अपने कुछ साथियों सहित रुक गया। मार्गदर्शक साथ था। लगान कहाँ कहाँ हैं, किसको कहां बैठना है, शीघ्र निश्चित हो गया।

मानसिंह ने मार्ग-प्रदर्शक से कहा, 'इन दोनों को मेरे निकट वाले मचान पर बिठला दो।'

अटल के लिये भी स्थान तै हो गया था।

निन्नी बोली, 'सब ठौर मेरे देखे हुये हैं।'

'सारा जङ्गल!' मानसिंह ने मुस्कराहट के साथ आश्चर्य प्रकट किया।

लाखी ने कहा, 'हाँ महाराज।'

'तो भी,'—मानसिंह ने मार्गदर्पक को सङ्केत किया 'तुम इनको मचान पर सुरक्षित बिठला देना।'

वे दोनों मार्गदर्शक के साथ चली गईं। मानसिंह अपने मचान पर जा बैठा। और लोग अपने अपने लगान पर सतर्कता के साथ जा रुपे।

जब निन्नी और लाखी नियुक्त स्थान पर पहुंचीं, मार्गदर्शक ने मचान पर चढ़ जाने के लिये सङ्केत किया।

निन्नी ने सुनफुस स्वर में अस्वीकार किया, 'मचान पर नहीं बैठेंगीं। यहाँ से तीर के लिये निशाना अच्छा नहीं बैठेगा।'

'राजा की आज्ञा है।'

'राजा की आज्ञा से ही तो नाहर और अरना बिंध कर गिर नहीं जावेगा।'

'नीचे प्राणों की जोखों है।'

'इन पर भी नहीं ।'

सांभरों का झुण्ड भाग गया। दूसरी दिशा के किसी लगान वाले ने उस झुण्ड पर तीर चलाया। गिरने की आवाज़ आई।

'यदि अब कोई न आया तो निशान लगाने को कुछ भी नहीं मिलेगा।' लाखी ने धीमे क्षुब्ध स्वर में कहा।

निन्नी चुप रही।

किसी और लगान से फिर गरज सुनाई पड़ी। निन्नी ने सोचा, 'यह तेंदुये की बोली हो सकती है।'

थोड़ी देर तक उन लोगों के सामने या निकट से कुछ भी नहीं निकला। कमानों पर तीर सुधियाये हुये विलम्ब हो गया। कन्धों में थकावट और पीड़ा कसक देने लगी। हाथ नीचे करके सुस्ताने लगीं।

उसी समय निन्नी को अपने सामने की झाड़ी के पीछे पत्तों के दबने की चुरचुराहट सुनाई पड़ी। झाड़ी के झांके में होकर आंख गड़ाई। परछाहीं सी जान पड़ी। परन्तु साफ़ नहीं दिखलाई पड़ा।

मानसिंह के मचान की दिशा से किसी जानवर के गिरने और खुरों को समेटने फेकने की आवाज़ आई।

निन्नी के सामने वाली झाड़ी के पीछे से एक दबी हुई छोटी हुंकार सुनाई पड़ी। निन्नी ने डोरी पर तीर चढ़ा लिया। लाखी ने मुड़कर देखा।

एक क्षण उपरान्त ही पूरी लम्बाई–चौड़ाई वाला भरा–पूरा नाहर मानसिंह के मचान की दिशा में गर्दन जरा सी मोड़ कर देखते हुए आता दिखलाई पड़ा। निन्नी ने तुरन्त गर्दन का निशाना बांधा और पूरी शक्ति के साथ डोरी को खींचकर तीर छोड़ दिया। अविलम्ब दूसरा चढ़ा लिया।

नाहर की गर्दन में तीर धस गया। नाहर ने तड़प और हुँकार के साथ ऊपर को उचाट भरी और जिस ठौर से उचटा था उसी पर गिर कर अपने बड़े नाखूनों से धरती खोद–खोद कर धूल उड़ाने लगा।

तीक्ष्ण हुँकारें तो निकाल ही रहा था। लाखी उस पर तीर छोड़ना चाहती थी। निन्नी ने रोक किया। नाहर अन्तिम साँसें लेने लगा। लाखी ने हर्षोन्मत्त होकर निन्नी के सटे हुए कपोल की चुटकी लेने के लिए हाथ बढ़ाया परन्तु हाथ इतना कांप रहा था कि चुटकी में गले के ऊपर का ही कपड़ा दबा पाया।

मानसिंह ने अपने मचान पर से नाहर की दबी हुँकारों को सुना। उसने सुअर पर तीर चलाया था। वह मर चुका था। मानसिंह मचान पर से उतर कर यहाँ आना चाहता था परन्तु उसको विश्वास था कि निन्नी और लाखी का मचान पेड़ की इतनी ऊँचाई पर बँधा होगा कि वे संकट में पड़ ही नहीं सकतीं।

थोड़ी देर बाद नाहर समाप्त हो गया। हाँका बढ़ता आ रहा था।

लाखी के सामने कुछ दूरी से खड़बड़ और जोर की सांस का शब्द सुनाई पड़ा। लाखी तैयार हो गई। नाहर पर एक दृष्टि डालकर निन्नी ने भी मुड़कर तीर सम्भाला। कमान पर तीर चढ़ाया ही था कि एक बड़ा पूरा अरना भैंसा फुसकारें मारता हुआ सामने से छोटी–छोटी झाड़ी को रौंदता कुचलता आ गया। लाखी ने सिर का निशाना लेकर तीर छोड़ा, कोई दूसरा निशाना ठीक बैठता ही नहीं था। तीर अरने के माथे पर पड़ा और थोड़ा सा धस गया। अरने ने दोनों को देख लिया। झपटा।

जब तक लाखी दूसरा तीर चलावे, निन्नी ने अरने के मस्तक के बीचोंबीच का निशाना लेकर तीर छोड़दिया। तीर अपने निशाने पर तो लगा परन्तु इतनी जल्दी में चलाया गया था कि पूरी शक्ति को लेकर न छूट सका। माथे की ऊपरी हड्डी की एक तह को ही फोड़ सका। टकरा रह गया। अरने ने जोर की टिड़कार लगाई और उनकी ओर पूँछ उठाए हुए आया। लाखी ने दूसरा तीर छोड़ा। तीर ने उसके नथने को ही फोड़ पाया। अरना थोड़ा सा ठिठका। परन्तु अन्तर इतना कम रह

गया था कि तरकस में से तीर निकालकर प्रत्यन्चा पर नहीं चढ़ाया जा सकता था। अरने की बड़ी-बड़ी लाल आंखों से अङ्गारे से छूट रहे थे और फुफकार में से फेन उड़ रहा था।

निन्नी ने कमान को एक ओर फेंककर बर्छी उठाई और अरने की दिशा में सीधी की ही थी कि वह लपका। निन्नी पेड़ से एक पग आगे बढ़ आई। लाखी ने बग़ल से कमान की डोरी पर तीर चढ़ाया परन्तु छोड़ नहीं पाया।

सिर को थोड़ा सा नीचा किये हुये उन दोनों को अपने माथे और सींगो की जड़ से पीसकर फेक देने के लिये अरना और बढ़ा। उन दोनों का कचूमर निकालने के लिये एक क्षण ही और रह गया था कि निन्नी ने पूरे बल और वेग के साथ अरने के माथे पर बर्छी ठोक दी। बर्छी तीर के कुछ ऊपर जाकर लगी। अरना उपेक्षा के साथ बढ़ता चला आया। निन्नी एक हाथ से बर्छी की डांड़ को पकड़े रही और पेड़ के तने से थोड़ी सी बग़ल काट गई। अरना खाई हुई बर्छी समेत पेड़ से जा टकराया। निन्नी के हाथ से बर्छी छूट गई। मूठ पेड़ के तने पर अड़ गई।

अरने के अपने ही धक्के से बर्छी का फल माथे की हड्डियों को तोड़ता फ़ोड़ता और भी घस गया। निन्नी उछल कर पीछे हट गई। उसने अपना छुरा निकाल लिया। लाखी ने तीर कमान को फेक कर अपनी बर्छी उठाई और अरने पर हूलना चाहती थी कि अरना लड़खड़ा कर गिर पड़ा, चौपर हो गया। सिर हिलाने लगा और जल्दी-जल्दी फूमने लगा। उसको चक्कर आ रहा था। परन्तु वह मरा नहीं था।

निन्नी ने उसकी गर्दन को निशाना ताककर छुरे को फेंका। वह ऊपर से निकल गया। खन्न से अरने की बग़ल में जा गिरा। लाखी ने पूरी शक्ति के साथ उसकी कोख पर बर्छी चलाई परन्तु अरना लड़-खड़ाते पैरो भी उठ खड़ा हुआ और बर्छी एक टांग को छीलती हुई

क्षीण हुँकारें तो निकाल ही रहा था। लाखी उस पर तीर छोड़ना चाहती थी। निन्नी ने रोक किया। नाहर अन्तिम साँसें लेने लगा। लाखी ने हर्षोन्मत्त होकर निन्नी के सटे हुए कपोल की चुटकी लेने के लिए हाथ बढ़ाया परन्तु हाथ इतना कांप रहा था कि चुटकी में गले के ऊपर का ही कपड़ा दबा पाया।

मानसिंह ने अपने मचान पर से नाहर की दबी हुँकारों को सुना। उसनें सुअर पर तीर चलाया था। वह मर चुका था। मानसिंह मचान पर से उतर कर यहाँ आना चाहता था परन्तु उसको विश्वास था कि निन्नी और लाखी का मचान पेड़ की इतनी ऊँचाई पर बँधा होगा कि वे संकट में पड़ ही नहीं सकतीं।

थोड़ी देर बाद नाहर समाप्त हो गया। हाँका बढ़ता आ रहा था।

लाखी के सामने कुछ दूरी से खड़बड़ और ज़ोर की सांस का शब्द सुनाई पड़ा। लाखी तैयार हो गई। नाहर पर एक दृष्टि डालकर निन्नी ने भी मूड़कर तीर सम्भाला। कमान पर तीर चढ़ाया ही था कि एक बड़ा पूरा अरना भैंसा फुसकारें मारता हुआ सामने से छोटी–छोटी झाड़ी को रौंदता कुचलता आ गया। लाखी ने सिर का निशाना लेकर तीर छोड़ा, कोई दूसरा निशाना ठीक बैठता ही नहीं था। तीर अरने के माथे पर पड़ा और थोड़ा सा धस गया। अरने ने दोनों को देख लिया। झपटा।

जब तक लाखी दूसरा तीर चलावे, निन्नी ने अरने के मस्तक के बीचोंबीच का निशाना लेकर तीर छोड़दिया। तीर अपने निशाने पर तो लगा परन्तु इतनी जल्दी में चलाया गया था कि पूरी शक्ति को लेकर न छूट सका। माथे की ऊपरी हड्डी की एक तह को ही फोड़ सका। ठठकर रह गया। अरने ने ज़ोर की छिड़कार लगाई और उनकी ओर मुँह उठाए हुए आया। लाखी नें दूसरा तीर छोड़ा। तीर ने उसके नथने को ही फोड़ पाया। अरना थोड़ा सा हिचका। परन्तु अन्तर इतना कम रह

गया था कि तरकस में से तीर निकालकर प्रत्यन्चा पर नहीं चढ़ाया जा सकता था। अरने की बड़ी-बड़ी लाल आंखों से अङ्गारे से छूट रहे थे और फुफकार में से फेन उड़ रहा था।

निन्नी ने कमान को एक ओर फेंककर वर्छी उठाई और अरने की दिशा में सीधी की ही थी कि वह लपका। निन्नी पेड़ से एक पग आगे बढ़ आई। लाखी ने बग़ल से कमान की डोरी पर तीर चढ़ाया परन्तु छोड़ नहीं पाया।

सिर को थोड़ा सा नीचा किये हुये उन दोनों को अपने माथे और सींगो की जड़ से पीसकर फेंक देने के लिये अरना और बढ़ा। उन दोनों का कचूमर निकालने के लिये एक क्षण ही और रह गया था कि निन्नी ने पूरे बल और वेग के साथ अरने के माथे पर वर्छी ठोक दी। वर्छी तीर के कुछ ऊपर जाकर लगी। अरना उपेक्षा के साथ बढ़ता चला आया। निन्नी एक हाथ से वर्छी की डांड़ को पकड़े रही और पेड़ के तने से थोड़ी सी बग़ल काट गई। अरना खाई हुई वर्छी समेत पेड़ से जा टकराया। निन्नी के हाथ से वर्छी छूट गई। मूठ पेड़ के तने पर अड़ गई।

अरने के अपने ही धक्के से वर्छी का फल माथे की हड्डियों को तोड़ता फ़ोड़ता और भी धस गया। निन्नी उछल कर पीछे हट गई। उसने अपना छुरा निकाल लिया। लाखी ने तीर कमान को फेंक कर अपनी वर्छी उठाई और अरने पर हूलना चाहती थी कि अरना लड़खड़ा कर गिर पड़ा, चौपर हो गया। सिर हिलाने लगा और जल्दी-जल्दी फूसने लगा। उसको चक्कर आ रहा था। परन्तु वह मरा नहीं था।

निन्नी ने उसकी गर्दन को निशाना ताककर छुरे को फेंका। वह ऊपर से निकल गया। खन्न से अरने की बग़ल में जा गिरा। लाखी ने पूरी शक्ति के साथ उसकी कोख पर वर्छी चलाई परन्तु अरना लड़-खड़ाते पैरों भी उठ खड़ा हुआ और वर्छी एक टांग को छीलती हुई

धरती में धस गई। मूठ लाखी के हाथ मे सटक गई। लाखी अपने छुरे को निकाल कर पीछे हटी। उस छुरे के सिवाय उन दोनों के हाथ में अब और कोई हथियार न था। आतुरता में फेंके हुये तीर कमानों को उठाने के लिये गाँठ में आधा क्षण भी नहीं था। निन्नी को केवल एक उपाय सूझा।

उसने उछल कर अपनी ओर वाले एक सींग को दोनों हाथों से पकड़ कर अरने को प्रचण्ड वेग के साथ धक्का दिया। अरना मुड़ गया, रिल गया और धम्म से गिर गया। निन्नी भी उसके सींग को पकड़े हुये उस पर गिरी परन्तु तुरन्त सम्हल गई। उसका छोटा सा मूँगिया मुड़ासा झटके के साथ खुलकर अरने पर जा गिरा––एक छोर अरने पर बाकी धरती पर।

पीछे से, मानसिंह के मचान की तरफ़ से, किसी के दौड़ कर आने की आवाज आई। निन्नी अरने को छोड़ कर पीछे हठी कि नङ्गी तलवार लिये हुये मानसिंह को आते देखा। मानसिंह ने उसकी झपट और अरने के भरभरा कर गिरने का दृश्य कुछ दूर से देख लिया था। वह अरने की डिड़कार सुनकर मचान से उतर आया था।

अरना फटी हुई आँखों अन्तिम फुफकारें ले रहा था। कुछ ही दूरी पर नाहर मरा हुआ पड़ा था।

मानसिंह ने मरते हुये अरने पर तलवार उबारी, परन्तु चलाई नहीं। धीरे से बोला 'मर रहा है।'

नाहर की ओर आँख फेरी। धीरे-धीरे उसके निकट गया। निन्नी और लाखी ने अपने-अपने तीर कमान उठा लिये। पेड़ से सटकर आ खड़ी हुई। अरना दूसरी तरफ़ था।

मानसिंह ने नाहर का बारीकी के साथ निरीक्षण किया। नाहर ने केवल एक तीर खाया था। आश्चर्य के साथ उन दोनों के पास लौटा। उनके सामने खड़ा हो गया।

निन्नी उसकी ओर अच्छी तरह देखकर दूसरी ओर देखने लगी। लाखी की दृष्टि कभी अरने पर और कभी जंगल की दिशा में जाने लगी। अभी हांका समाप्त नहीं हुआ था।

राजा ने पूछा, 'नाहर की गर्दन पर किसका तीर बैठा ?'

निन्नी ने सिर झुका लिया। लाखी ने तुरन्त सामने होकर उत्तर दिया, 'निन्—मृगनयनी का।'

राजा ने दूसरा प्रश्न किया,–'अरने के माथे पर बर्छी किसकी खोंसी हुई है ?'

लाखी बोली, 'मृगनयनी की।'

'वाह ! धन्य हो !! तुम दोनों, धन्य हो !!! मानसिंह के मुंह से निकला और उसने अपने गले से सोने का रत्नजटित हार निकालकर निन्नी के गले में डाल दिया। निन्नी मुंह फेरकर पेड़ की छाल को उङ्गलियों से कुरेदने लगी।

मानसिंह ने काँपते हुये स्वर में धीरे-धीरे कहा, 'सुन्दरी मृगनयनी, साहस नहीं होता, संकोच लगता है परन्तु कहे बिना नहीं रहा जाता। क्या तुमको व्याह में पा सकता हूँ ? क्या अपनी जन्म–संगिनी बना सकता हूँ ?'

लाखी अत्यन्त कठिनाई से अपने हृदय की धड़कन को दबाकर सामने आई। निन्नी पेड़ की छाल को और भी जल्दी जल्दी खरोचने–कुरेदने लगी।

लाखी बोली, 'यह तो इनके भाई बतला सकते हैं।'

'उनसे भी पूछूंगा परन्तु पहले इनके मन की भी तो जान लूं।' राजा ने कहा।

निन्नी खाँसी। लाखी इशारे को समझ गई। उससे सटकर खड़ी हो गई।

निन्नी ने धीरे से कहा, 'गरीबों का और बड़ों का जन्म-संग कैसा ?'

मानसिंह ने सुन लिया। उसे सुनाने के लिए ही कहा गया था।

मानसिंह बोला, 'आदि काल में सबके पुरखे गरीब ही थे। अपने शौर्य से बढ़े। शौर्य में तुम मुझसे कम नहीं हो।'

'बड़े लोग कहते कुछ और हैं, करते कुछ और हैं; ऐसा सुना है कथा कहानियों में,' उसी ओट से निन्नी ने कहा। मानसिंह ने सोचा इसने शकुन्तला की कहानी कहीं सुनी है।

'बोला, 'तुम्हारे दिये हुये उस फूल को पगड़ी में खोंस लिया था। अब भी वहीं बाँधे हूँ और सदा वहीं रहेगा। गंगा-यमुना की सौगन्ध खाता हूँ कि जन्म-संगिनी रहोगी।' मानसिंह का स्वर कांप-काँप जा रहा था।

निन्नी ने क्षीण स्वर में प्रतिवाद किया, 'सौगन्ध मत खाइये।'

'तो कहो, क्या कहती हो सुन्दरी ?' राजा ने हठ किया।

'मैं राजाओं की भाषा नहीं जानती।' निन्नी ने उत्तर दिया।

लाखी यकायक बोली, 'उस झाड़ी के पीछे मेरे तीर चले गये थे। ढूंढ़ लाऊँ।' और झाड़ी की ओर भागी।

'ठहर जा, कहाँ जाती है लाखी ? तीर तो सब यहीं हैं!' निन्नी ने कोमल स्वर में रोका। लाखी नहीं मानी।

राजा ने अपना हाथ बढ़ाया, कहा,—'इस भाषा को संसार भर समझता है। अपना हाथ मेरे हाथ में दो।' गर्दन मोड़े हुए, कनखियों देखते हुये, धड़कते कलेजे और अर्द्धस्मित के साथ निन्नी ने अपना कांपता हुआ धूल भरा हाथ उसके हाथ में दे दिया।

बोली, 'मैं नहीं जानती क्या कर रही हूँ। मेरी पत रखना।'

मानसिंह ने तुरन्त कहा, 'परमात्मा मेरा साक्षी है, तुम सदा मेरे हृदय की रानी और जीवन की शोभा रहोगी। समझ गईं ?'

'समझ गई।' बहुत धीरे से उसके मुंह से निकला।

'क्या कहा ?'

'आज्ञा का पालन करूंगी।'

'मेरी तरफ़ देखो।'

'लाखी उस झाड़ी के पीछे से झांक रही होगी।'

निन्नी ने अपना हाथ उसके हाथ से छुटा लिया। छुटाते समय गीली आंखों उसकी ओर देखा। मानसिंह के नेत्रों से आभा सी बिखर रही थी। वह आभा उन गीली आंखों में समा गई।

मानसिंह चिल्लाया,—'लाखा रानी जी, इधर आ जाओ। तीर मिल गये होंगे अब तक तो।'

वह झाड़ी के पीछे से हँसती हुई बोली, 'सब मिल गये। ब्याज समेत मिल गये।' और हँसी को गदेली से ढांपे हुये आ गई।

मानसिंह ने कहा, 'कहां हैं तीर ? हाथ में तो एक भी नहीं।'

'जहां रहते हैं वहां हैं।' उसने निन्नी की ओर देखते हुये व्यङ्ग किया।

'तुम्हारी सखी विकट है।' मानसिंह हँसते हुय बोला।

लाखी ने मुँह फेरे हुये पूछा, 'महाराज कबतक ठहरेंगे इस गाँव में ?'

'जब चाहो तब चला जाऊँ।'

'वाह ! अभी तो इस जङ्गल में बहुत शिकार है।'

'जीवन का सब कुछ पा लिया। तुम सब मेरे साथ ग्वालियर चलो।'

ऐसे ?'

निन्नी मुंह फेरे हुये बोली, 'सुना है ग्वालियर में जल का बड़ा कष्ट है।'

'अब तो कुयें स्वच्छ हो गये हैं। कोई कष्ट नहीं है।' मानसिह न कहा।

अरने ने टांगें पसारीं और समाप्त हो गया। मानसिंह ने उसके पास जाकर देखा।

'तुमने अपने हाथों इसके सींग मोड़े और गिरा दिया ! अरना बहुत भारी है !!' उसने आश्चर्य प्रकट किया।

कोमल धीमे स्वर में निन्नी बोली, 'मुझको स्मरण ही नहीं क्या हुआ और कैसे हुआ।'

राजा ने मुस्कराकर पूछा, 'इतना बल तुम में कहाँ से आया ?'

नीचा सिर किये हुये मुस्कान के साथ उसने कहा,

'राई की नदी के पानी से। हम,लोगों की गाँठ में और है ही क्या ?'

'राई गाँव तुमको बहुत प्यारा है ?'

'बहुत आँखों में बसा रहता है।'

'ग्वालियर के क़िले में तालाब है। उसके पानी को देखना।'

'मैं अपनी नदी के बिना नहीं रह सकती।'

'तो ग्वालियर के क़िले को यहाँ उठा ले आना।'

'साँक को ही ले चलिये वहाँ।'

'कैसे ?'

'राजा को क्या गाँव के लोग यह भी बतलावें ?'

'गाँव के लोगो को नहीं, 'राजा की रानी को बतलाना होगा।'

'तो नहर काटकर ले जाइये किले तक। मैं तो इसी का पानी पियूँगी।'

'ले जाऊँगा। वचन देता हूँ।'

'कब तब ?'

'काम का आरम्भ तुरन्त करवा दूंगा। बस, या कुछ और ?'

'मैं ग्वालियर में जाकर पर्दा नहीं करूँगी।'

'मत करना। कुछ और?'

'और कुछ नहीं।'

हांके वाले पास आ गये। उनमे पहले पेड़ से उतर कर मार्ग-दर्शक रता डरता आ गया।

उसने क्षमा प्रार्थना की,—'महाराज, अन्नदाता, मुझको क्षमा मिले। ने बहुत कहा कि मचान पर चली जाओ, पर ये नहीं मानीं।'

निन्नी ने समर्थन किया, हाँ हम लोगों ने हठ किया, मचान पर हीं बैठीं।'

मानसिंह हँसकर बोला, 'और उस हठ का फल यह सामने है और ह नाहर उधर पड़ा हुआ है।'

हांके वाले आ गये। उन लोगों ने अरने और नाहर को देखा। नन्नी के गले में रत्न-जटित स्वर्ण-माला को देख कर समझ गये कि किसके पराक्रम का परिणाम है।

राजा ने पगड़ी में से मोतियो की माला खोली और लाखी के गले में डाल दी।

कहा, 'तुम भी बहुत वीर हो।'

थोड़ी ही देर बाद वहां और शिकारी भी आ गये।

'जिस जिसने जो कुछ किया और जो नहीं कर पाया उसकी चर्चा होने लगी। राजा ने एक खिसारे सुअर को मारा था।

अटल भी आ गया। उसके हाथ कुछ नहीं लगा था, अरने, नाहर और उन दोनों के गले में मालाओं को देखकर वह फूला नहीं समा रहा था।

(२५)

मन्दिर तक पहुँचते-पहुँचते सब को मालूम हो गया कि सुन्दरी मृगनयनी राजा मानसिंह की विशेष स्नेह-भाजन हो गई है। वे दोनो मन्दिर का किनारा काटकर घर जाने को थीं कि पुजारी ने बुला लिया। पुजारी को शिकार के परिणाम का समाचार पहले ही मिल चुका था।

बोला, 'आज हमारा गांव कृतार्थ हो गया। मूर्ति के दर्शन करो, फिर घर जाओ।'

निन्नी ने आक्षेप किया,—'स्नान नहीं किया है, दर्शन कैसे करूँगी ?'

लाखी ने समर्थन किया,—'नहा कर कल आवेंगी सवेरे और कुछ अनाज लावेंगी चढ़ाने के लिये।'

पुजारी की हँसी में से निकला,—'बाहर से ही दर्शन करलो। अब अनाज लूँगा चढ़ोत्तरी में तुमसे ? गांव लूँगा मन्दिर के लिये जागीर में।'

'किससे ?' लाखी ने पूछा। निन्नी ने नीचा सिर किये हुये आँखें ऊँची कीं।

'ग्वालियर की रानी से,' पुजारी ने सिर को नचाते हुये उत्तर दिया। दूसरी दिशा से मानसिंह और निहालसिंह मन्दिर की ओर आते दिखलाई दिये।

'गरीब किसान कन्या,' लाखी ने मुस्कराकर कहा और निन्नी का हाथ पकड़ कर घर चलीं गई।

पुजारी को प्रणाम करके राजा बोला, 'शास्त्री जी, आशीर्वाद दीजिये।'

'आशीर्वाद तो सदा राजा के साथ है।'

'मानसिंह तोमर और मृगयनयनी को आशीर्वाद दीजिये।'

'इनसे बढ़कर अभिमान की बात इस गाँव और गाँव के मन्दिर के पुजारी के लिये और क्या हो सकता है महाराज ?'

'चाहता हूँ कि वैदिक मन्त्रों और होम के साथ विवाह ग्वालियर में सम्पन्न हो। आप भी चलने की तैयारी करिये।'

'महाराज यह कैसे हो सकता है? विवाह की विधि लड़की के घर पर ही होगी। अपने यहां यही रीति चली आई है। लड़की का पुरोहित मैं रहूँगा आप अपना ग्वालियर से बुला लीजिए। हम कुछ नहीं दे सकतें, केवल, कुछ फूल चढ़ा देंगे। यज्ञ होम के लिये अन्जलि भर घी अटल के घर में निकल ही आवेगा।'

अटल भी प्रफुल्लता के साथ वहीं आ गया। पुजारी ने उससे कहा, 'महाराज के साथ मृगनयनी की भांवर यहीं पड़नी चाहिए या ग्वालियर में?'

उसने गर्व की छाती फुलाकर उत्तर दिया, 'यहीं। हमारे वंश की परम्परा यही है।'

'देने को है कुछ राजा के लिये?' हँसकर पुजारी ने प्रश्न किया।

विना किसी झिझक के अटल ने वतलाया, 'कन्या और एक गाय। बैलों की जोड़ी अपने लिए रक्खूंगा।'

वे सव हँस पड़े। अटल सोचने लगा, क्या मैं कोई मूर्खता की वात कह गया?

'यज्ञ होम के लिये कुछ है?' पुजारी ने हँसी को गम्भीरता के भीतर छिपा कर कहा।

वह झेंपता हुआ सा वोला, 'थोड़ा सा होगा। कुछ उधार ले लूंगा।'

मानसिंह ने उसको अपने कन्धे से लगा लिया। कहा, 'चिन्ता मत करो, सव हो जायगा।'

अटल धीरे से वोला, 'पर मैं आपका कुछ नहीं लेना चाहता।'

राजा ने आश्वासन दिया, 'घवराओ नहीं। यह विवाह तुम्हारी ही सामग्री से निभाया जायगा।'

पुजारी से कहा, 'मुहूर्त शोधिये, शास्त्री जी।'

वह हँसकर बोला, 'ज्योतिष को जो जितना अधिक जानता है वह उतने ही निकट का मुहूर्त शोध सकता है, महाराज !'

मुहूर्त शोधा जाने लगा।

निन्नी और लाखी गांव में पहुँचीं नहीं कि चर्चा हो उठी।

'निन्नी का व्याह दो तीन दिन के भीतर होने वाला है।'

'अब वह महारानी कहलावेगी ! अपने-अपने भाग्य की बात।'

'अभी तक खाने को नहीं जुड़ता था, अब गुड़ दूध से नहावेगी !!'

'और अटल की भी पट पड़ेगी। राजा का साला कहलावेगा ! राजधानी की सड़कों पर ऊँचा मुड़ासा बांधें डोला करेगा !!'

'लाखी चेरी बन कर रहेगी। निन्नी के पैर दाबेगी और राजा की सेज सँजोवेगी।'

'लाखी को अटल का गर्भ है। राजा की कृपा से सब छिप जावेगा।'

'अरी चुप ! चुप !! राजा सुन लेगा तो मरवा डालेगा।'

'दोनों यहां से चले जायें तो फिर कोई डाकू लूटने न आवेगा। टलें तो यहाँ से।'

निन्नी और लाखी घर में थीं। निन्नी गम्भीर दिखलाई पड़ने का प्रयास कर रही थी, लाखी चुहल पर थी। वह मुँह छिपाना चाहती थी, यह बार-बार उसके सामने आ खड़ी होती। लाखी ने एक बार उसकी ठोड़ी को पकड़ कर ऊँचा किया।

बोली, 'देखो, मेरी तरफ।'

'क्यों ? क्या मैं डरती हूं ?'

'तो मिलाओ मेरी आंखों से आंखें।'

'लो। क्या कर लोगी अब ?'

'उनसे मिलाई थीं ?'

'छोड़ दो मुझको। बड़ी वैसी हो।'

'अच्छा बतलाओ क्या क्या बातचीत हुई थी, वहाँ ? पेड़ के नीचे ?'

'छिपी तो थी वहीं कहीं चिपकी हुई।'

'देखा तो था जब हथलेवा हुआ, पर बातचीत नहीं सुन पाई। बड़ी देर तक तो हुई थी, क्या हुई थी ?'

'कहां बड़ी देर हुई ? कुछ ही क्षण।'

'ओ भगवान ! बहुत छोटे क्षण थे वे !! मैं तो तीर ढूंढ़ते-ढूंढ़ते थक गई। बतलाओ क्या कहा था ?'

'मैंने कहा था मेरी पत रखना, सदा आज्ञा का पालन करूँगी। बस लो पीछा छोड़ो।'

'देखें व्याह कहां होकर होता है।'

उसी समय पड़ोस की एक स्त्री आई। वहीं से शोर मचाती हुई बोली, 'अहाहा ! कैसा भाग जागा !! भगवान सब का भला करें !!! गांव का नाम अमर कर दिया। जैसा रूप पाया, वैसा ही राजा मिला। राजा को ढूंढ़ने पर भी ऐसा रूप संसार भर में नहीं मिलता।' स्त्री घर में घुस आई। निन्नी की माला पर उसने प्यार बरसाया।

'बड़े मोल की होगी यह ! कैसी दिपती है गोरे गले में !' उसने कहा।

निन्नी की समझ में नहीं आया कि क्या कहूँ।

लाखी बोली, 'इन्होंने नाहर को एक तीर से मारा और अरने भैंसे के सींग मोड़ दिये। इसलिये राजा ने इनाम में माला दे दी।'

'अरी बनावे मत,'—उस स्त्री ने कहा,—'व्याह होने वाला है राजा के साथ।'

'अच्छा !' लाखी ने बनावट प्रकट की।

उस स्त्री की आँखें सजल हो गईं और कण्ठ गद्गद्। बोली, हमारे लिये तो वही खेती-पाती, ढोरों की देखभाल, एक जून का खाना तुम सुखी रहो। हमको इसी में सुख है।'

लाखी ने पिघलकर कहा, 'अभी कोई बात ऐसी तै तो नहीं हुई है काकी। हो जावे तो क्या कहना है!'

स्त्री ने आँसू पोछकर गला साफ़ किया। बोली, 'अरी गाँव के मानस जल उठे हैं, सो कहने आई हूँ।'

निन्नी ने ताड़ लिया कि यही सबसे अधिक जली होगी और अ अपनापन समेटने आ गई है।

वह स्त्री कहती गई.—'एक कहती थी निपूती कि निन्नी रानी बनकर पान चबायेगी और लाखी चेरी बनकर निन्नी की पीक को गदेली प लेगी और राजा की सेज को बिछाया उठाया करेगी, सुन्दर सलोन है न।'

निन्नी का चेहरा लाल हो गया और लाखी का फक़।

निन्नी ने तमककर पूछा, 'किसने कहा?'

वह स्त्री पाँव पड़ती हुई बोली, 'बता दूँगी कभी। अभी नहीं। गाँव में रहना जो है। वे सब सुन लेंगी तो मेरा मुंह काला कर दिया जावेगा और जात में से निकाल दी जाऊँगी। हा हा खाती हूँ अभी न पूछो। वे सब आने वाली ही होंगी। उन्हें मालूम न होने पावे कि मैंने कुछ बतलाया है। राम! राम!! मेरी जीभ कट जाय, कैसे निकल गई मुंह मे यह बात।'

वे दोनों ठण्डी पड़कर सोचने लगीं।

लाखी ने कहा, 'काकी तुम बड़ी भली हो। हमको क्या पड़ी जो ऐसी बुरी बात को फैलाती फिरें। इसमें तो हमारी ही नाक कटेगी।'

उसी समय कुछ और स्त्रियाँ आईं जिनके चेहरों पर मुस्कानें थीं और आंखों में छिपी हुई ईर्षा। उनके पीछे से आह्लाद-मग्न अटल आ गया।

आते ही बोला, 'व्याह का मुहूर्त–निन्नी के साथ महाराज के व्याह का मुहूर्त—परसों के लिये शोधा है पुजारी बाबा ने। हमारी गांठ में तो कुछ नहीं है, पर गाँव वालों की कृपा से पार लग जायेंगे।'

स्त्रियों में एक बुढ़िया भी आई थी। वह सबसे अधिक प्रसन्न थी।

बुढ़िया ने कहा, 'राजा रङ्गत देंगे। मङ्गल साज सजाओ री। इनके घर में कोई बड़ी-बूढ़ी नहीं हैं। हमीं लोगों को तो नेगचार करने पड़ेंगे। अभी से गाओ कुछ।'

इस बुढ़िया के स्वर में निन्नी को सचाई का आभास मिला। स्त्रियां मंगलचार गाने लगीं। थोड़ी देर बाद अधीर अटल ने टोका,—'यह सब पीछे करती रहना। पहले यह बतलाओ कि करना क्या क्या है। एक ही दिन तो बीच में है।'

बुढ़िया समेत कुछ स्त्रियों ने जो योजना बतलाई उसके लिये अटल के घरमें धन का सौवां भाग भी नहीं था।

परन्तु उसने दृढ़ता के साथ कहा, 'हमारी डाँग में हरे पत्ते, मन्दिर में कुछ फूल और घर में थोड़ी सी हल्दी है। हल्दी से निन्नी के हाथ पीले कर दूंगा, फूल राजा पर चढ़ा दूंगा और डाँग के पत्तों से मण्डप, बन्दनवार और द्वार की शोभा सजा दूंगा। राजा से कुछ नहीं लूंगा, अपने पुरखों की नाक रक्खूंगा।'

एक स्त्री बोली, 'तोमरों और गूजरों में व्याह सम्बन्ध होता है?'

अटल ने उत्तर दिया, 'हाँ होता है—हुआ है। पुजारी बाबा ने बतलाया है। उन्हीं ने तो शोधा है मुहूर्त और वे ही व्याह को पढ़ेंगे।'

'हाँ राजा हैं। सब कर सकते हैं। ठीक है।' स्त्री कहकर चुप हो गई और तुरन्त व्याह का एक गीत गाने लगी।

निन्नी और लाखी को वे स्त्रियां थोड़ी देर बाद भार-स्वरूप जान पड़ीं। पर वे वहां से नहीं टलीं। गाने में जैसे-जैसे स्त्रियों का मन लगा-

विशेषकर अश्लील गीतों में--वैसे-वैसे उनकी जलन और उन दोनों की कटुता कहीं दबकर जा बैठी।

अटल जङ्गल के उपादानों से अपने घर और आसपास के अगवाड़ों को सजाने के लिये कुल्हाड़ी लेकर बाहर चला गया। गांव की स्त्रियां प्राप्य सामग्री से आने वाले विवाह दिवस की तैयारी करने लगीं।

निन्नी के पान की पीक अपनी गदेली पर लूंगी! राजा की सेज की चेरी बनूंगी!! लाखी के मन में दब दबकर उठ-उठ रहा था। फिर भी वह निन्नी के भविष्य से सुखी थी।

करूँगी। मृगनयनी की आंखों में एक आंसू आ गया। दासियों ने नीची निगाहों ही देख लिया। सोचा देर तक देखते रहने के कारण आँखें गीली हो गई होंगी।

मृगनयनी सोचती रही—यह सब सीखने में न जाने कितने दिन लग जायँगे, घर जल्दी जाऊँगी, जल्दी न जाने पाई तो लाखी और भाई को बुलवा लूंगी, उनके लिये गांव में अब ऐसा क्या रखा है ?

बग़ल के कमरे से वीणा बजाने की ध्वनि सुनाई पड़ी। मृगनयनी को वह विचित्र जान पड़ी। समझ तो गई कि कोई बाजा बज रहा है। ध्वनि बहुत मीठी लगी। मन को जैसे अपनी गांठ में बांधती जा रही हो। एक घड़ी पीछे गायन भी सुनाई पड़ा। ऐसा गायन! ऐसा स्वर!! पहले कभी नहीं सुना था। था किसी पुरुष का ही, परन्तु कितना मधुर! बीच-बीच में किसी स्त्री का भी कण्ठस्वर सुनाई पड़ा—वाद्य की झँकारों को बढ़ाने वाला सा।

मृगनयनी ने एक दासी की ओर प्रश्नसूचक एक दृष्टि की। दासी ने बतलाया,—'प्रसिद्ध गायक बैजू गा रहे हैं। साथ में उनकी चेली क़ला है।'

[२७]

गाँव से राजा और मृगनयनी के दलबल सहित चले जाने के उपरांत चहल-पहल एकदम ठंडी पड़ गई। लाखी और अटल को घर सूना-सूना प्रतीत होने लगा। लाखी की आंखें सूज गई थीं और अटल की लाल हो गई थीं। वह लाखी को खलिहान में ले गया। सन्ध्या तक खलिहान में काम करते-करते समय काटा। घर आने पर ब्यालू के उपरान्त अटल मारे थकावट के सो गया। लाखी को भी थोड़ी देर के बाद नींद आ गई।

दूसरे दिन हाथ मुंह धोकर खलियान में काम करने के लिये दोनों गये और छाया में बैठ गये।

अटल ने चर्चा चलाई,—'अब हमारा तुम्हारा ब्याह भी हो जाना चाहिये।'

लाखी उदास तो थी ही, उसका चेहरा और भी गिर गया। बोली, 'निन्नी के बिना कैसे होगा ?'

'उसको बुलायेंगे। वह अवश्य आयगी। रानी हो गई तो क्या हो गया, बहिन तो मिट नहीं गई।'

'कब बुलाओगे ?'

'कल ही। सोचता हूँ अभी मण्डप हरा है। इसी के नीचे भांवर पड़वा लूंगा, कल ही।'

'क्या हो गया है तुमको ? कल गई है यहां से और कल के दिन लौट आयेंगी वहां से ? ऐसा तो गाँवों में भी कहीं नहीं होता।'

'तो कब तक विदा करा लेने की रीत है ?'

'वह स्यात ही कभी आवें यहां। इतने बड़े राज्य की महारानी को हमारी झोपड़ी में राजा और उनके सामन्त नहीं आने देंगे।'

'कैसे नहीं आने देंगे ? कोई नहीं रोक सकता। मैं लिवा लाऊँगा। पुजारी से मुहूर्त सुधवा लूँगा और ग्वालियर को चल दूँगा। वह आयगी और उसके सामने इसी मंडप के नीचे भांवर पड़ेगी।'

'ग्वालियर जाओ, तब मोतियों की उस माला को लेते जाना। सुना है, हजारों टंके की है। उसमें से कुछ मोती बेच आना। थोड़े से कपड़े-वपड़े ले आना। गांव वालों को खाना देना पड़ेगा, पुजारी बाबा को दक्षिणा। उससे बहुत काम चलेगा।'

'हाँ यह ठीक है। उसकी याद ही नहीं रही, कहाँ है माला ?'

'घर में छिपाकर रखदी है। पहिनती तो गाँव वाले देखकर जलते। बाहर के चोर-चपाटे भी ताक लगाते।'

'तो मैं पहले पुजारी के पास मुहूर्त सुधवाने के लिये हो आऊँ। घड़ी भर में लौटकर आता हूँ।'

'ऐसी क़ौन सी जल्दी पड़ी है ?'

'हम दोनो पति-पत्नी की तरह रहना चाहते हैं, यह जल्दी पड़ी है।'

अटल पुजारी के पास चला गया। अटल को आशा थी कि राजा का साला होने के कारण पुजारी अविलम्ब मुहूर्त शोध देगा।

पुजारी ने अटल के अनुरोध पर तुरन्त नाहीं की—

'मैं राज्य को छोड़कर परदेश चला जा सकता हूँ परन्तु वर्णाश्रम धर्म को लात नहीं मार सकता।'

अटल उसके लोभी स्वभाव को जानता था। उसने धैर्य और सहिष्णुता को हाथ में रखने का प्रयास किया। बोला, 'महाराज मन्दिर बनवाने के लिये तो कह ही गये हैं, मैं भी आपको मनमानी दक्षिणा दूँगा।'

'मैं ऐसा नहीं कर सकता। कोई भी ब्राह्मण नहीं कर सकता।'

'तो हमारे छोटे घराने की लड़की को छत्तीस कुरी वाले के साथ क्यों ब्याह दिया ?'

'वह राजा है। राजा किसी देवता का अवतार होता है, वह कर सकता है। उसको सब सुहाता है। तुम लोग राजा नहीं हो। तुम्हारे लिये मनाई है।'

'पर हम दोनों ने निश्चय कर लिया है कि व्याह करेंगे।'

'लाखी को तुम्हारा गर्भ है?'

'झूठ, विलकुल झूठ। हम लोग गंगाजल की तरह पवित्र हैं।'

'गङ्गाजल की बराबरी करके गङ्गाजी का अपमान मत करो। तुम यदि हठ करोगे और लखी को रख लोगे तो जाति बाहर कर दिये जाओगे।'

'हमारी और उसकी जाति का गांव में है ही नहीं कोई दूसरा घर।'

'गांव का कोई भी नर-नारी तुम्हारे हाथ का भरा-छुआ पानी नहीं पियेगा, तुमको छुयेगा तक नहीं, बोल–चाल, काम–काज सब बन्द हो जायेगा।'

'परवाह नहीं। मैं ग्वालियर चला जाऊँगा।'

'जिसमें राजा को भी थुकवाओ, सारी प्रजा कहे कि राजा का साला अधर्मी है।'

'कहीं और चला जाऊँगा, पर इस घोर अन्याय को नहीं सहूंगा। पहले राजा के पास जाकर इस अन्याय की बात सुनाऊँगा।'

'मैं ब्राह्मण हूँ। राजा मेरा कुछ नहीं कर सकते। रूठ जायेंगे तो इस राज्य को छोड़ कर कहीं और चला जाऊँगा। मैं तुम्हारी धमकी में नहीं आ सकता। शास्त्रों को मैने यों ही नहीं पढ़ा है। जाओ, कह दो राजा से।'

अटल धैर्य को थोड़ी सी ही देर धारण कर सका था। भनभनाता हुआ चला आया।

खलियान में पहुँचते ही उसने कहा, 'पानी लाओ। लुटिया को मांज कर जल भर लाओ।'

लुटिया खलिहान में रक्खी हुई थी। उसमें कई छोटे-छोटे गड्डों की दोचियां थी। लाखी लुटिया को मांजकर जल भर लाई। बारीकी के साथ उसके चेहरे को परखा। सहम गई।

अटल ने थोड़े से जल से अपने हाथ धोये और लुटिया को दोनों हाथों में ले लिया।

बोला, 'मेरी बग़ल में बैठ जाओ।'

लाखी को आश्चर्य था यह सब क्या हो रहा है। अटल ने ऊपर की ओर आंखें उठाई। और कहा, 'हे भगवान, मैं कुआँरा हूँ और लाखी कुआँरी है। मैं गङ्गाजी की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि यह जन्म भर मेरी होकर रहेगी।' उसने आँखे बन्द करलीं। हिल उठा। आँखों से आंसू टपक पड़े।

'यह क्या कर रहे हो?' गद्गद् कण्ठ से लाखी ने कहा और अटल के आँसू अपनी उँगलियों से पोंछे। अटल ने लुटिया एक ओर रखदी।

बोला, 'अपना बायां हाथ मेरे हाथ में दो।' लाखी ने हाथ बढ़ा दिया, अटल ने अपने में पकड़ लिया।

कहा, 'अब सदा के लिये तुम मेरी हुई, चाहे जाति मुझको रक्खे चाहे निकाले, चाहे गांव मुझको पत्थर मारकर गांव से भगा दे, मेरा तुम्हारा सम्बन्ध कभी नहीं टूटेगा। बोलो तुम मेरी हुई?'

लाखी के उदास चेहरे पर लाली दौड़ आई, होठों पर मुस्कान आ गई और रेखाओं में सारे मुख पर आंखों तक बिखर गई।

बोली, 'हाँ।'

'मैं आज ही गांव भर में कह दूँगा कि हम दोनों का ब्याह होगया।'

'वे लोग मान जायँगे?'

'न मानें। हम लोग अपना सामान लेकर ग्वालियर चल देंगे।'

'ग्वालियर नहीं जायँगे।

'क्यों ?'

'अपना निज का कुछ करतब कर दिखलायँगे तभी ग्वालियर जायँगे।'

'मैं समझा नहीं।'

लाखी ने आद्योपान्त गांव के निन्दाचार को सुनाया। अन्त में कहा 'कोई मुझको यदि किसी की चेरी कहे, चाहे वह मेरी निज ननद ही क्यों न हो, तो मैं नहीं सह सकूँगी और न यह सह सकूँगी कि तुमको राजा का दास या रोटियारा कहे। हम लोगों को भगवान ने भुजाओं में बल दिया है और काम करने की लगन। कुछ करके ही ग्वालियर चलेंगे।'

'मैं तो गाँव वालों से आज ही कह दूंगा। वे लोग खुल्लम-खुल्ला हमारा अपमान नहीं कर सकते। वह ब्राह्मण तो भूल गया जब हम लोग अपने प्राणों की होड़ लगाकर उसकी और उसके पोथी पत्रों की रखवाली करते थे परन्तु गाँव वाले नहीं भूल सकेंगे।'

'जैसा ठीक समझो।'

'मैं सब तरह की विपद झेलने को तैयार हूँ।'

'मैं पीछे नहीं रहूँगी।'

'सो तो पूरा भरोसा है।'

[२८]

अटल ने अविलम्ब अपनी उमङ्ग के प्रवाह को गाँव में बहाया और तुरन्त उसका फल पाया।

'यह नहीं होने पायगा हमारे गाँव में।' एक ने कहा। दूसरे ने हामी भरी,—'ऐसा अधर्म। हायरे दुष्ट कलिकाल!!'

'अहीर की लड़की गूजर के घर!'

'गाँव में अहीर होते तो दोनों को मार डालते!!'

'पुजारी बाबा ने क्या कहा?'

'उन्होंने साफ़ ही तो कहा है कि यह अधर्म है।'

'अटल का बहनोई राजा है।'

'सो क्या हुआ? राजा चाहे जिस जाति की लड़की के साथ व्याह करे, चाहे जितनी स्त्रियों को घर में डाल ले, वह कर सकता है। बड़े-बड़े लोग कर सकते हैं, करते आये हैं, पर यह अटल? राम! राम!! राम!!!'

'उसकी ऐंठ तो देखो। ऐसे कहता फिरता है जैसे काशी-रामेश्वर नहा आया हो!'

'राजा न उपद्रव कर बैठे कोई? निन्नी उसको भड़कावे कहीं?'

'धर्म के खिलाफ़ कोई कुछ नहीं कर सकता। राजा अधर्मी हो जायगा तो राजा टिकेगा कितने दिन?'

'और यदि कुछ किया तो?'

'तो बुन्देलखण्ड पास ही लगा हुआ है। ओर्छा के राजा के राज में जा बसेंगे। यहां हमारा कौनसा सोना गड़ा है जिसके पीछे धरम को खो दें? सोच लेंगे तुर्क फिर से आ गये।'

'पुजारी बाबा कितने सच्चे हैं। उन्होंने कह दिया कि राजा यदि अपना आधा राज भी हमको दे दें तो अटल की भांवर नहीं पढ़ूंगा।'

'हाँ, कहीं गाय और भैंसे का व्याह हुआ है जग में कभी?'

'हमने पहले ही कहा था कि लाखी को अटल का गर्भ रह गया है। उसने सोचा चार-छः महीने में बात अपने आप फूट पड़ेगी अभी से कह दो और गांव वालों को उल्लू बना कर सीधा कर लो!'

'भाँवर डालना चाहता है! हम लोगों की असीस चाहता है!!'

अरी, वैसे चाहें जो करता। पर कितना निर्लज्ज है! ढोल बजा कर कहता फिर रहा है जैसे गाँव की पंचायत कोई चीज़ ही न हो! जैसे हम लोग किसी गिनती में ही न हों!! ग़रीब हुये तो क्या, हम सब कुजात तो नहीं हैं!!!'

खाने-पीने की लालच देता है! कहता है लड्डुओं की पङ्गत दूँगा। भाड़ में जायं ऐसे लड्डू!!

'खाना-पीना, छूना, उठना-बैठना, बोल-चाल, यहाँ तक कि उसकी तरफ हेरना तक बन्द कर दो!'

'वह यहाँ से लगे हाथ ग्वालियर चला जायगा।'

'बहुत अच्छा होगा। वहां जाकर लाखी चेरी बनेगी तो उसके पीछे उर्क-तुर्क तो न आयंगे गाँव को लूटने-लाटने।'

'कितने बुरे चलन की निकली यह छोकरी!'

'पास के गांव के अहीरों को खबर दे दो न। वे बात की बात में निबटा देंगे सारा किस्सा।'

'यह ठीक रहेगा। गाँव भर करदे इनके साथ व्योहार बन्द और अहीरों को दे दो खबर। राजा सबको तो मार नहीं देगा।'

'जब वैसा दिखलाई पड़ने लगेगा तो ओर्छा के राज में चल देंगे।'

अन्त में उसी दिन मन्दिर के निकटवर्ती बरगद के पेड़ के नीचे पंचायत हुई और उन दोनों के बहिष्कार का निश्चय हो गया। पुजारी ने इस निश्चय पर पहुँचने में पंचायत की पूरी सहायता की।

पोटा नट ने अटल के पास आकर बड़े स्नेह के साथ कहा, 'अटलसिंह जी, तुम अब गाँव में मत रहो, नहीं तो आस-पास के अहीर आकर तुम दोनों को मार डालेंगे। सब जानते हैं कि लाखी और तुम, हम ग़रीबों पर बहुत दया करते हो, इसलिये हम लोग भी आफ़त में पड़ जायँगे। जो कुछ करना हो जल्दी सोचो और कर डालो।'

अटल सोचने लगा।

'अहीर ज़रूर आयंगे। शायद अनेक गाँवों के आयंगे। राजा धर्म के मामले में हाथ नहीं डाल पावेंगे।' नट बोला।

'तुम ठीक कहते हो।' अटल के मुँह से निकला।

'क्या सोचा ?' उसने पूछा।

क्षीण स्वर में अटल ने उत्तर दिया, 'अभी तो ऐसा कुछ नहीं सोच पाया।'

नट ने कहा, 'दो ही उपाय हैं—या तो यहाँ से भाग चलो, या लाखी का साथ छोड़ो।'

'क्या !' अटल के कण्ठ से दबी हुई गरज सी फूटी।

पोटा ने अनुनय की, 'मैंने रावजी, आपके हित की बात कही। माफ़ी देना। लेकिन कही मैंने सच्ची बात।'

अटल फिर कुछ सोचने लगा।

पोटा ने धीरे से कहा, 'यह संसार बहुत लम्बा-चौड़ा है। किसी अच्छी जगह चलकर अपना काम देखो और आराम के साथ रहो। क्या ग्वालियर जाने का विचार है ? पर ग्वालियर पास है और अहीरों के जत्थे के जत्थे राजा को घेरेंगे, तुमको चैन नहीं लेने देंगे।'

लाखी भीतर से बोली, 'ग्वालियर नहीं जायेंगे।'

'मैंने इसीलिये कहा,' पोटा ने लाखी की बात को अपनाया—'ग्वालियर में नाक नीची पड़ जायगी, मुंह दिखलाने को ठौर नहीं रहेगा।'

'लाखी को गर्भ तो है नहीं ?' धीरे से नट ने पूछा।

'अरे हिष्ट !' तीखे स्वर में अटल ने प्रतिवाद किया।

नट ने क्षमा प्रार्थना की, 'रावजी, माफ करना। हम लोग जंगल के आदमी हैं। गांव वाले कह रहे थे, इसलिये मुंह से निकल गया। अब जल्दी तै करो क्या करना है। हम लोग सोचते हैं कि बखेड़ा उठने वाला है इसलिये अपने डेरे को यहां से उखाड़ कर किसी दूसरी जगह चल दें।'

'कहां जाओगे ?'

'हमारा अभी तो कुछ नहीं। वैसे नरवर क़िले के पास मगरोनी नाम के गांव में हमारी कुछ जान पहिचान है। बहुत दिन हुये जब गये थे। खेल दिखलाये थे। इनाम पाया था। बहुत अच्छे लोग हैं वहां के। खेती पाती के लिये वहाँ जिमीन बहुत पड़ी है। वहाँ रह जाना। मन न लगे तो मालवा को चल देना। मालवे में तो माल ही माल हैं।'

'मगरोनी किन लोगों की बस्ती है ?'

'लुहारों और कसेरों की। बनिये और ब्राह्मण भी थोड़े से हैं। पर वहाँ इस कहानी के फैलाने की अटक ही क्यों पड़ेगी। क्या सोचा ?'

'सोचता हूँ तुम्हारे साथ ही चलूं। तुम लोगों में लाखी का मन भी लगता रहेगा। मगरोनी चलकर तै करेंगे कि वहीं रह जायं या मालवा में चल दें। उन से पूछता हूँ।'

लाखी ने तुरन्त कहा, 'अपने पास थोड़ा सा सामान है सो बोझ नहीं आंसेगा।'

नट बोला, 'हमारे पास गधे काहे के लिये हैं ? उन पर हमारा सामान भी रहेगा और तुम्हारा भी। कुछ पर सवारी रहेगी।

गधे पर सवार होकर अपने और लाखी के चित्र ने अटल के भीतर गुदगुगी उत्पन्न की और वह हँस दिया। पोटा सहमा। अटल शीघ्र गम्भीर हो गया।

'भाग्य में जो कुछ लिखा होता है वह होकर रहता है, फिर रास्ते की थकावट से बचने के लिये जो भी सवारी मिल जाय सो ठीक ही है।' अटल ने कहा।

पोटा तुरन्त बोला, 'रावजी, हमारी नायकिन ने तुम्हारी बहिन का और लाखी का हाथ देखा था। उस दिन कोई भी चर्चा ग्वालियर के राजा के साथ ब्याह सम्बन्ध की न थी। नायकिन का ज्योतिष कितनी जल्दी और कैसा सच्चा निकला! लाखी के सम्बन्ध में जो बात उसने कही है वह भी राई-रत्ती सच्ची निकलेगी। आज तुमको नहीं दिखलाई पड़ रही है परन्तु बहुत जल्दी दिखलाई पड़ेगी! नायकिन की बात कभी झूठी नहीं निकली। उसको न जाने कितने देवता सिद्ध हैं!'

लाखी ने वहीं से कहा, 'इस गाँव को छोड़कर कहीं भी चलना है। तब जहाँ को यह कह रहे हैं, वहीं ठीक है।'

अटल ने भी अपना निश्चय प्रकट किया, 'अच्छा भाई पोटा, तुम्हारे साथ चल देंगे। हमारे दो बैल हैं। ये हमारी इनकी सवारी के लिये ठीक रहेंगे और तुम्हारे गधों पर सामान आ जायगा। ज्वार की दायँ हमने कर ही ली है। कल सवेरे उसको उड़ाकर गाह लूँगा। गधों पर लाद लेंगे। कुछ अपने बैलों पर लाद ले चलेंगे। है भी कितनी?'

'ठीक है, ठीक है,'—प्रसन्न होकर पोटा बोला, 'गाँव में किसी को बात मालूम न होने पावे। कल रात में किसी समय चुपचाप चल देवेंगे। गाँव वालों को हमारे जाने का पता तब लगेगा जब हम लोग कोसों की दूरी पार कर जायेंगे।'

'यहाँ से कितनी दूर है, मगरोनी? कब तक पहुँच जायेंगे वहाँ?' अटल ने पूछा।

पोटा ने चाव के साथ बतलाया—'बहुत दूर नहीं है, यहां से कुल बीस-बाईस कोस होगी। मगरोनी के दक्षिण में नरवर केवल दो कोस पर है। वहां कोई नहीं जान पायगा कि क्या से क्या हुआ। सब अपने अपने काम में लगे रहते हैं। बहुत अच्छा ठौर है।'

अटल ने दूसरे दिन अन्न का संग्रह कर लिया। दिन भर उससे और लाखी से गाँव का नर-नारी कोई नहीं बोला। कुछ स्त्रियों ने तो लाखी को देखते ही धरती पर बार बार थूका। गाँव की पञ्चायत का निर्णय सुनाने के लिये कुछ पुरुष आसपास के गाँवों में चले गये।

रात में चुपचाप, अपना सामान लादकर, वे लोग चल दिये। लाखी ने केवल यह जानने के लिये लौट-लौटकर गांव की ओर देखा कि पीछे से कोई आ तो नहीं रहा है।

जङ्गल की ओर दृष्टि गई तो उसने एक साँस भरी—इनमें मेरा कोई शत्रु नहीं रहता; जङ्गल के पशु गाँव के इन पशुओं से अच्छे।

अँधियारी रात के तारों की धुंधली सी झिलमिल में दूर एक ऊँची पहाड़ी पर आँख गई—इसी पर ग्वालियर का क़िला है, इसी में निन्नी कहीं होगी, मेरी निन्नी ! आज यदि वह मेरे साथ होती !! कितना हंसती-खेलती चली जातीं हम दोनों इस मार्ग पर !!!

लाखी रो पड़ी। मार्ग की खड़बड़ में किसी ने उसके रुदन को नहीं सुना। तारों की धुंधली झिलमिल में किसी ने उसके आंसुओं को नहीं देखा।

[२९]

ग़ियासुद्दीन के आदेशानुसार ख्वाजा मटरू ने नटों से सम्पर्क स्थापित करने के लिये जासूस भेजे। जासूस अपने प्राणों की खैर मनाते मनाते राई गाँव तक आ गये और यह पता लगाकर वहाँ से चले गये कि मृगनयनी का विवाह राजा मानसिंह के साथ हो गया और वह कई दिन हुये जब ग्वालियर चली गई, दूसरी भाग गई है, नट भी कहीं चले गये हैं। जासूस जैसे आये थे वैसे ही माँडू को लौट पड़े।

नरवर पर चढ़ाई करने की तैयारी हो चुकी थी परन्तु ग़ियासुद्दीन ने कूच नहीं किया उसको खबर लगी कि बघर्रा माँडू पर हमला करने के लिये अहमदाबाद को छोड़ने वाला है।

'मरदूद कहीं का' ग़ियासुद्दीन ने मन ही मन उसको गालियां दीं।

थोड़े दिनों बाद समाचार मिला कि बघर्रा दक्षिण में खानदेश के सुल्तान का दमन करने के लिये निकल पड़ा है, क्योंकि खानदेश का सुल्तान गुजरात की अधीनता में नहीं रहना चाहता था। गुलबर्गा और बीदर की बहमनी हुकूमत की कमर टूट चुकी थी और उसकी जगह चार पांच सल्तनतें बनकर उभर रही थीं। खानदेश की गर्दन पर से गुजरात के जुयें को फेंक देने का प्रयत्न रच उठा था। बघर्रा के दक्षिण की ओर जाने का कारण यही हुआ।

ग़ियासुद्दीन बघर्रा से चिन्तित रहता था। ऐसा न हो कि मुंह तो किये जा रहा हो खानदेश की दिशा में और यकायक पैरों को पलट दे मांडू की ओर! जब तक मांडू की सीध से दक्षिण में काफी दूर न चला जाय तब तक मांडू को शाहजादा के अनुभव-शून्य हाथों में छोड़ देना बुद्धिमानी न होगी इसलिये ग़ियासुद्दीन को कुंठित होना पड़ा।

मटरू मौका निकाल कर शाहजादे से एकान्त में मिला।

शाहजादा नसीर ने बगलें झांकते हुए मटरू से पूछा, 'शराब तो बहुत बुरी चीज कही जाती है फिर लोग क्यों पीते हैं?'

'जान आलम'—मटरू ने फूक कर क़दम रक्खा—

'बुजुर्गों ने ज़माने से इसको बुरा कहा है, मगर लोग नहीं मानते हैं, इसलिये पी लेते हैं।'

'बुरी कहते हैं तो पीने में भी बुरी होती होगी ?'

'जान आलम, बुरी चीजें जब बादशाहों के हाथ छू लेती हैं तब उतनी बुरी नहीं रहती ! बन्दा तो गुलाम है कह ही क्या सकता है ? लेकिन हाँ सुना है कि बाज़ लोग दवा के तौर पर कभी-कभी पी लेते हैं।'

'तुमने कभी पी ?'

'जान आलम, के सामने बयान करने में गुस्ताख़ी होगी।'

'तुम कैसे आये ?'

'जान आलम बादशाह सलामत की ग़ैर मौजूदगी में मांडू का बन्दोवस्त करेंगे। मुझ गुलाम की याद बनी रहे और दरबार की परवरिश होती रहे यही अर्ज़ करने आया था। जान आलम का कभी कोई हुक्म बन्दे के लिये हो तो आजमा लें और सिर कटवाकर फिकवा दें।'

'जी चाहता है कि मैं भी कुछ दुनियां को देखूं। किताबें तो बहुत सी पढ़ लीं, मगर दुनियाँ समझ में नहीं आ रही है।'

'जान आलम ज़िन्दाबाद। मैं क़ुरबान जाऊँ हुज़ूर तो इतना देखेंगे कि न खुद अघायेंगे न दुनियाँ अघायगी।'

'देखूं कब वक्त आता है।'

'आयगा वक्त हुजूर और अभी क्या हो गया है। हुकुम होने की देर है कि बजा लाया जायगा। सिर्फ फिकर गर्दन की है क्योंकि मुल्ला-मौलवी गुलाम से कुछ यों ही फिरे रहते है।'

'मुल्ला-मौलवियों को खबर न होगी। अकेला ही रहता हूँ रात में कभी-कभी हो जाया करो।'

'बड़ी इनायत है जानआलम की गुलाम के ऊपर। बेहतर यह होगा कि हूजूर के इत्मीनान का कोई खिदमतगार हो और वह दिन-रात के आठ पहर में से किसी पल भी किसी बात की फरमाइश करे, पूरी होने में देर न लगेगी, वरना अगर बड़े हुजूर को किसी तरह खबर लग गई तो बन्दे का धड़ कुत्तों के खाने को दे दिया जायगा और जानआलम के साथ सख्ती का बर्ताव और भी बढा दिया जायगा।'

'सख्ती अभी क्या कम है? मर जाने को भी जी चाहता है। मगर खैर तुम ठीक कहते हो। यही तै रहा। तो फिर अब सच-सच बतलाओ कि बुरी कही जाने वाली उस चीज में कुछ मजा भी है या वाक़ई बुरी है?'

'जानआलम, अगर उसमें मजा न होता तो बादशाहों के मुंह ही क्यों लगती?'

'तब फिर एक तो यह। पर थोड़ी सी ही, बहुत ही थोड़ी, वरना पकड़ में आ जाने का अन्देशा है। और दूसरी—तुम खुद समझ लो।'

'कुछ भी मुश्किल नहीं जानआलम।'

'अभी तो मेरे पास ऐसा कुछ नहीं है, लेकिन वक्त आने पर इनाम दूंगा तुमको।'

'हुजूर वह वक्त भी बिना आये न रहेगा, खुदा खैर करे। जान-आलम को रोशन ही होगा नरवर पर क्यों चढ़ाई हो रही है।'

'ग्वालियर का राजा सरकशी कर रहा।'

'और जहाँपनाह, ग्वालियर राज्य में दो बहुत खूबसूरत परियां भी हैं। मगर इधर-उधर खबर न फैले हुजूर, नहीं तो गुलाम कीड़ों-मकोड़ों की मौत मारा जायगा।'

'नहीं, मैं क्यों किसी से कहने लगा ? मगर मटरू, यह सब इतनी क़ैद मेरे लिये और अपने लिये शराब, शीरीं, लैला वग़ैरह-वग़ैरह सब जायज़ ! ख़ैर, फिलहाल हमको क्या पड़ी। देखा जायगा। फिर भी सवाल उठता है कि ऐश आराम बुरा या उससे ज्यादा बुरा यों ही इन्सान का ख़ून बहाते फिरना ? अच्छा, याद रखना।'

'हुज़ूर की इनायत पाकर गुलाम अपने को बहिश्त में पा रहा है।'

[३०]

महमूद बघर्रा मांडू की सीव से बाहर निकल कर दक्षिण में खान-देश की ओर बढ़ गया, गियासुद्दीन ने सपाटे के साथ नरवर पर चढ़ाई कर दी। माँडू का प्रबन्ध नाम मात्र के लिये नसीर के हाथ में सौंप दिया, वास्तविक प्रबन्ध वजीर के पास रहा।

नरवर माँडू के उत्तर-पश्चिम में है। मालवा के मैदान को पार करके पहाड़ों और जङ्गलों को लाँघता हुआ गियास एक बड़ी सेना के साथ नरवर के निकटवर्ती जङ्गल मे पहुच गया।

यह विशाल जङ्गल नरवर के दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम में था। सिन्ध नदी सर्प की सी लीक बनाती हुई दक्षिण-पश्चिम से आकर नरवर को पश्चिम की ओर से घेरकर उत्तर-पूर्व की तरफ चली गई है। नरवर मानो उसकी पश्चिमी कुण्डली के भीतर स्थित है।

जङ्गल इतना विशाल, सघन और भंयकर था कि हाथियों के बड़े बड़े झुण्ड इसमें मौज के साथ विचरते थे। नाहरों, अरनों और गेंड़ों तक की, तो कोई बात ही न थी। उत्तर से दक्षिण खण्ड को मार्ग नरवर के पश्चिम दक्षिण होता हुआ सिन्ध नदी की कुण्डलियों को कई घाटों पर काट कर गया था। जङ्गल का लम्बा-चौड़ा विस्तार नरवर के पूर्व में भी था, परन्तु कुछ दूर तक क्षीण।

उस सीव से पूर्व-दक्षिण में फिर बहुत सघन हो गया था, पहाड़ियों पर पहाड़ियों के सिलसिले। छोटी बड़ी नदियाँ, झीलें, खेती और जंगल के मैदान बीच-बीच में सुदूर पूर्व तक। चन्देरी तक, लगभग चालीस कोस तक, यही क्रम चला गया था। गियास ने चन्देरी के सूबेदार को मांडू से ही आदेश भेज दिया था। चन्देरी का सूबेदार चन्देरी के पश्चिम दक्षिणवर्ती पहाड़ी के काटने में लगा हुआ था। उसको काटकर वह चन्देरी का मालवे के लिये मार्ग सीधा कर देना चाहता था। सूबेदार ने

उस काम को चालू रक्खा और नरवर के लिये चल दिये। इधर-उधर के छोटे-छोटे से हिन्दू राव और राय अपनी वफ़ादारी प्रकट करने के लिये सहायक हुये। ग़ियासुद्दीन के मार्ग में जो छोटे-छोटे राव और राय पड़े थे इन्होंने उसकी निभाई। प्रजा—जनता—अपनी जात-पाँत, पंचायतें, खेती-किसानी और जीवन की अन्य कठिनाइयों में उलझी हुई थी, उसने अपने नित्य के कार्य-क्रम को जारी रक्खा। जब ग़ियासुद्दीन एक तरफ़ से और चन्देरी का सूबेदार दूसरी तरफ़ नरवर की चढ़ाई के लिये ग्वालियर राज्य की सीमा के भीतर आ गये तब भी गावों में लड़ पड़ने की दम नहीं जागी, चिन्ता अवश्य बहुत बढ़ गई—कब क्या होता है। ग़ियास या चन्देरी के सूबेदार ने गाँव नहीं उजाड़े और खेती भी उतनी ही नष्ट की जितनी उनके घोड़ों को चरने के लिये चाहिये थी।

ग़ियास नरवर से अभी कुछ दूर था। पश्चिम दक्षिण में कुंजरवन का सघन, ऊबड़-खाबड़ और बड़ा क्षेत्र उसके और नरवर के बीच में था। वह अपने सूबेदार के ससैन्य आ मिलने की प्रतीक्षा में जङ्गल से घिरी हुई, एक खुली जगह में ठहर कर विश्राम करने लगा।

नरवर के क़िलेदार को ग़ियास के आने की उस समय सूचना मिली, जब उसने नरवर के चारों ओर, आने—जाने वालों को, बिलकुल रोक देने के लिये चौकियों की जकड़ लगा दी। क़िलेदार ग्वालियर को समय पर समाचार न भेज सका। क़िले के फाटक बन्द कर लिये और जूझ जाने की तैयारी में लग गया।

नरवर के उत्तर में दो कोस पर मगरौनी नाम का गांव है। वहां के बने हुये लोहे ताम्बे इत्यादि के बर्तन भारत में दूर-दूर तक टांड़ों पर लद कर बिक्री के लिये जाते थे। मगरौनी घेरे के भीतर कर लिया गया। जो गांव घेरे के परिधि में न लाये गये थे उनके निवासी भाग कर दूर के गांवों या पास के जंगलों में अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार चले गये।

उतरते अगहन की आधे पाख वाली चांदनी पश्चिम के क्षितिज की गोद में लीन होने वाली थी। ग़ियासुद्दीन की सेना का प्रधान शिविर

सजग था। जगह–जगह लक्कड़ों के अलाव जल रहे थे। शिविर के चारों ओर आड़ें ओटें, पहरे, चहल–पहल। बीच में ग़ियासुद्दीन की आलीशान रावटी। रावटी के एक भाग में हरम। दूसरे भाग में दरबार–भवन और उससे लगा हुआ ग़ियास का बैठक–खाना।

सेना के शोरगुल और जङ्गल के काटे जाने के कारण हाथी, गेंड़े, अरने कुछ दूर गहरे में हट गये थे - परन्तु हाथियों की चिंघाड़ हवा के झोंकों के साथ कभी–कभी शिविर में सुनाई पड़–पड़ जाती थी। बीच–बीच में नाहर की गरज भी।

शिविर के जो सिपाही सिरे पर थे। उनको ये आवाजें अधिक स्पष्ट सुनाई पड़ रही थीं। अलावों में लक्कड़ पर लक्कड़ डाल कर प्रज्वलित अग्नि शिखाओं में वे अपने डर को मिटाने का प्रयत्न कर रहे थे। दूर के पहाड़ धूमरे धुँधले बादलों की आड़ी–तिरछी रेखाओं से दिख–दिख जाते थे। दूर के पेड़ धोखे की टट्टियों जैसे, और पास के ऊँचे मोटे पेड़ों की झुरमुट में हवा से हिल जाने वाले पत्ते कुछ धमकी सी दिखलाने वाले। जब लौ बहुत तेज हो जाती तब वे चंचल चमक में लुकते-छिपते से दिखते। लौ धीमी पड़ती तो उनके टेड़े–मेड़े विकृत आकार खड़े मुर्दों के जैसे। फिर लौ तेज हुई और तुरन्त मन्द, तो जैसे मुर्दों के प्रेत बन गये हों। दूर से हाथी की चिंघाड़ या नाहर की गरज सुनाई दी तो सिपाही अलाव के और नज़दीक आ गये और हथियारों पर बार-बार निगाह डालने लगे। इनके सिर पर केवल आकाश का तम्बू था।

ग़ियास की रावटी के बैठक खाने वाले खण्ड में एक पीढ़े पर अँगीठी जल रही थी दूसरे पर अधभरी सुराही और रत्नजटित स्वर्ण प्याले। खवासिन विदा कर दी गई थीं। ग़ियास के मसनदी तख़्त के नीचे मोटे क़ीमती क़ालीन पर ख्वाजा मटरू बैठा हुआ। हाथी की चिंघाड़ और नाहर की गरज बहुत क्षीण होकर कभी-कभी सुनाई पड़ जाती थी। कुछ देर पहले से बात-चीत हो रही थी। राई गांव को भेजे गये जासूसों ने रास्ते में ही समाचार दे दिया था कि उस भागी हुई लड़की और नटों की तलाश

की जा रही है, जासूसों ने समाचार में इतना अन्य समाचारों के साथ अपनी तरफ़ से मिला दिया।

सुल्तान को विश्वास था कि वह भागी हुई सुन्दरी नटों के बीच में है और नटों को जासूस ढूंढ़ पावें या न ढूंढ़ पावें, नटों को नरवर की चढ़ाई का हाल, जहाँ भी होंगे, मालूम हो जायगा और वे शिविर में स्वयं आ जायेंगे। इसके सिवाय, मांडू से इतनी दूर निकल आने के बाद अब लौटना असम्भव था।

मटरू बोला, 'जहाँपनाह अगर मुनासिब समझें तो चन्देरी के सूबेदार को नरवर का घेरा डाले रहने के लिये छोड़ दें और ग्वालियर को घेरें। शायद मृगनयनी के पास वह भी पहुँच गई हो।'

सुल्तान ने उवटा सा खाये हुये स्वर में कहा, 'गांव से उनको ग्वालियर जाना होता तो जासूस यह खबर क्यों लाते कि वह और नट लापता हैं? मगर यह कुछ ठीक मालूम होता है कि नरवर का घेरा सूबेदार डाले रहे और हम लोग यहाँ से चलकर ग्वालियर का घेरा डाल दें। मेवाड़ का राणा इस लड़ाई में किसी तरफ से शामिल न होगा। जौनपुर का कोई डर नहीं है क्योंकि सुल्तान भागकर बङ्गाल चला गया है। मुझे एक ख्याल आ रहा है मटरू, । वाह! क्या कहना है!!'

'जहांपनाह।'

'अ म्याँ ग्वालियर को खतम करके कालपी और फिर कालपी से दिल्ली। वालिद मरहूम जो नहीं कर पाये वह बन्दा कर गुजरे तो नाम हो जायगा! क्या कहते हो?'

'कितना बड़ा ख्याल है, जहाँपनाह! बेशक!!'

हाथियों की एक पतली सी चिघाड़ सुनाई पड़ी गियास के मन में गुदगुदी उठी।

बोला, 'कितनी सुहावनी मालूम होती है यह बोली, रात के इस समय में! घना जंगल, जाड़ों की डूबती चांदनी, सुनसान बियावान में हाथी बोल रहा है। थोड़ी देर पहले शेर की गरज भी सुनाई पड़ी थी। मौका

सजग था। जगह-जगह लक्कड़ों के अलाव जल रहे थे। शिविर के चारों ओर आड़ें ओटें, पहरे, चहल-पहल। बीच में ग़ियासुद्दीन की आलीशान रावटी। रावटी के एक भाग में हरम। दूसरे भाग में दरबार-भवन और उससे लगा हुआ ग़ियास का बैठक-ख़ाना।

सेना के शोरगुल और जङ्गल के काटे जाने के कारण हाथी, गैंड़े, अरने कुछ दूर गहरे में हट गये थे - परन्तु हाथियों की चिंघाड़ हवा के झोंकों के साथ कभी-कभी शिविर में सुनाई पड़-पड़ जाती थी। बीच-बीच में नाहर की गरज भी।

शिविर के जो सिपाही सिरे पर थे। उनको ये आवाज़ें अधिक स्पष्ट सुनाई पड़ रही थीं। अलावों में लक्कड़ पर लक्कड़ डाल कर प्रज्वलित अग्नि शिखाओं में वे अपने डर को मिटाने का प्रयत्न कर रहे थे। दूर के पहाड़ धूमरे धुँधले बादलों की आड़ी-तिरछी रेखाओं से दिख-दिख जाते थे। दूर के पेड़ धोखे की टट्टियों जैसे, और पास के ऊँचे मोटे पेड़ों की झुरमुट में हवा से हिल जाने वाले पत्ते कुछ धमकी सी दिखलाने वाले। जब लौ बहुत तेज हो जाती तब वे चंचल चमक में लुकते-छिपते से दिखते। लौ धीमी पड़ती तो उनके टेड़े-मेड़े विकृत आकार खड़े मुर्दों के जैसे। फिर लौ तेज़ हुई और तुरन्त मन्द, तो जैसे मुर्दों के प्रेत बन गये हों। दूर से हाथी की चिंघाड़ या नाहर की गरज सुनाई दी तो सिपाही अलाव के और नज़दीक आ गये और हथियारों पर बार-बार निगाह डालने लगे। इनके सिर पर केवल आकाश का तम्बू था।

ग़ियास की रावटी के बैठक ख़ाने वाले खण्ड में एक पीढ़े पर अंगीठी जल रही थी दूसरे पर अधभरी सुराही और रत्नजटित स्वर्ण प्याले। खवासिन विदा कर दी गई थीं। ग़ियास के मसनदी तख्त के नीचे मोटे क़ीमती क़ालीन पर ख्वाजा मटरू बैठा हुआ। हाथी की चिंघाड़ और नाहर की गरज बहुत क्षीण होकर कभी-कभी सुनाई पड़ जाती थी। कुछ देर पहले से बात-चीत हो रही थी। राई गांव को भेजे गये जासूसों ने रास्ते में ही समाचार दे दिया था कि उस भागी हुई लड़की और नटों की तलाश

की जा रही है, जासूसों ने समाचार में इतना अन्य समाचारों के साथ अपनी तरफ़ से मिला दिया ।

सुल्तान को विश्वास था कि वह भागी हुई सुन्दरी नटों के बीच में है और नटों को जासूस ढूंढ़ पावें या न ढूंढ़ पावें, नटों को नरवर की चढ़ाई का हाल, जहां भी होंगे, मालूम हो जायगा और वे शिविर में स्वयं आ जायेंगे । इसके सिवाय, मांडू से इतनी दूर निकल आने के बाद अब लौटना असम्भव था ।

मटरू बोला, 'जहांपनाह अगर मुनासिब समझें तो चन्देरी के सूबेदार को नरवर का घेरा डाले रहने के लिये छोड़ दें और ग्वालियर को घेरें । शायद मृगनयनी के पास वह भी पहुँच गई हो ।'

सुल्तान ने उचटा सा खाये हुये स्वर में कहा, 'गांव से उनको ग्वालियर जाना होता तो जासूस यह खबर क्यों लाते कि वह और नट लापता हैं ? मगर यह कुछ ठीक मालूम होता है कि नरवर का घेरा सूबेदार डाले रहे और हम लोग यहां से चलकर ग्वालियर का घेरा डाल दें । मेवाड़ का राणा इस लड़ाई में किसी तरफ से शामिल न होगा । जौनपुर का कोई डर नहीं है क्योंकि सुल्तान भागकर बङ्गाल चला गया है । मुझे एक ख्याल आ रहा है मटरू, । वाह ! क्या कहना है !!'

'जहांपनाह ।'

'अ म्यॉं ग्वालियर को खतम करके कालपी और फिर कालपी से दिल्ली । वालिद मरहूम जो नहीं कर पाये वह बन्दा कर गुज़रे तो नाम हो जायगा ! क्या कहते हो ?'

'कितना बड़ा ख्याल है, जहांपनाह ! बेशक !!'

हाथियों की एक पतली सी चिंघाड़ सुनाई पड़ी गियास के मन में गुदगुदी उठी ।

बोला, 'कितनी सुहावनी मालूम होती है यह बोली, रात के इस समय में ! घना जंगल, जाड़ों की डूबती चांदनी, सुनसान बियाबान में हाथी बोल रहा है । थोड़ी देर पहले शेर की गरज भी सुनाई पड़ी थी । मौका

मिले तो शिकार खेल डालूं। खेदा डालकर सौ पचास हाथी तो यहाँ से पकड़ ही ले चलें। अबकी बार नरवर के इलाके को मालवे की सल्तनत में मिला ही लेना चाहिये।

'चन्देरी तक तो सल्तनत है ही, नरवर का इलाका शामिल कर लेने से बड़ी तरक्की हो जायगी, जहाँपनाह। एक सूबेदार नरवर में और दूसरा ग्वालियर में।'

'तुम अहमक ही रहे। ग्वालियर को जीत लेने पर राजा मानसिंह को ही सूबेदारी बक्श दूँगा, मुझको मतलब मृगनयनी से है न कि ग्वालियर की जब्ती से। ज़मीन और बैर भंजाने के लिये राजपूत अपना सिर तक दे देने को तैयार रहता है।'

मटरू के मन में उठा, और अपनी स्त्री के पीछे सारी दुनियां में आग लगा सकता है।

परन्तु उसने कहा, 'जहांपनाह, बिलकुल सही है। नरवर की सूबेदारी राजसिंह कछवाहा को दे दी जाय और ग्वालियर को राजा मानसिंह तोमर के ही हाथ में रहने दिया जाय। खिराज हर साल देता रहेगा।'

जो काम वालिद मरहूम नहीं कर पाये वह शायद मेरे हाथों हो जायगा। मगर इस वक्त सवाल यह नहीं है। सवाल है नट अगर आना भी चाहेंगे हमारे हुज़ूर में, तो पहरों के डर और खतरे की वजह से बिचक जायेंगे।'

'जहांपनाह का हुकुम हो तो उन्हीं जासूसों को तलाश के लिये छोड़ दिया जाय।'

'सोच रहा था, नटों को अपना खेल दिखलाने की आम इजाजत दे दी जाय। अपने आप आ जायेंगे।'

'बिलकुल बजा है।'

'लेकिन दूसरा ख्याल कहता है कि कुछ पागल राजपूत नट बनकर ... में आ गये और उन्होंने कोई बड़ी शरारत कर डाली तो फ़ौज पर

बुरा असर पड़ेगा। इसके अलावा, चन्देरी से दस्ता आता ही होगा, फिर शायद ग्वालियर की तरफ़ चल देना पड़े।'

'राजपूत नट बनकर शायद न आवें, जहाँपनाह !'

'मियाँ तुम तो बुद्धू हो ! बुज़ुर्ग अलाउद्दीन खिल्जी को चित्तौड़ के राजपूतों ने कितना बड़ा धोखा दिया था जो डोलियों में बैठकर आ गये थे।'

मटरू ने सहमकर समर्थन किया। गियास के संकेत पर उसने अधभरी सुराही में से एक प्याले में कुछ डाली। उसने पी और नशे का मज़ा लेने लगा।

हाथी की चिंघाड़ फिर सुनाई पड़ी।

खिसलते लिपटते स्वर में गियास बोला, 'कितनी प्यारी बोली है !'

[३१]

लाखी और अटल नटों के साथ मगरौनी चार पांच दिन में आ गये। ग्वालियर और मगरोनी में अन्तर बाईस तेईस का ही था परन्तु उनको पहाड़ों, जङ्गलों, नदियों को पार करने में समय लगा और नटों की मर्जी पर इनकी यात्रा निर्भर थी।

मगरोनी में नटों ने गाँव के बाहर अपने अभ्यास के अनुसार डेरा डाल लिया। वहाँ अटल और लाखी को आश्रय लेना पड़ा।

लाखी सोचती थी इससे तो ग्वालियर ही अच्छा था, कहां आ गई? मर गई तो कउये राई तक हाड़ भी नहीं ले जायेंगे!!

अटल के मन में उठा, मैंने व्यर्थ ही यह जजाल बिसाया।

जब लाखी के सूखे चेहरे, धसे हुये से नेत्र और कराहते हुये से स्वर को सुना, तो उसने अपने को धिक्कारा—इसका वहां, या कहीं भी, कौन है? गंगाजल की शपथ लेकर मैंनें कोई वचन हारा था? भगवान को साक्षी करके इसका हाथ पकड़ा था!! अब क्या मैं अपने वचन से मुंह मोड़ूँगा? कभी नहीं।

'परन्तु क्या नटों के बीच में रहकर नट बन जावें? जैसा यह पोटा है और जैसी यह उससे बढ़कर पिल्ली है! पर जायं तो कहां जायें?

यहां लोहे और ताम्बे का काम बहुत चलता है और मजदूरों की सदा अटक बनी रहती होगी; पेट भरने लायक मजदूरी अवश्य मिल जायगी, ढूँढूंगा?

दूसरे दिन अटल मजदूरी और निवास-स्थान की खोज में गांव में निकल गया।

पिल्ली लाखी के पास आ बैठी।

बोली, 'हाय! हाय!! कितना दुख हुआ तुमको इस यात्रा में!!! हम लोग तो इस तरह चलते-फिरते ही रहते हैं, तुम्हारे लिये नई बात थी।

हमें तो एक दिन मिल गया आराम के लिये सो सुस्ता लिये, पर तुम तो वैसी ही दिख रही हो जैसी थकी कल दिखलाई पड़ रही थी। आगे दिन बहुत अच्छे आ रहे हैं, चिन्ता मत करो। नायकिन की बात कभी झूठी नहीं पड़ी।'

लाखी ने सांस भरके कहा, 'जैसे भी दिन आवेंगे, भुगतूंगी। किसान मजदूर के अच्छे बुरे दिन क्या।'

'तुम्हारी सखी निन्नी से रानी मृगनयनी हो गई। तब देखने की बात सच्ची निकली न ?' पिल्ली ने स्मरण कराया।

पिल्ली और नायकिन अपने जादू टोने के बल और हाथ की रेखाओं को देखकर भविष्य की बाबत बावन तोले पाव रत्ती बतलाने की शेखी का, यात्रा में भी कई बार जिकर कर चुकी थीं। लाखी को भी कुछ विश्वास भी था।

लाखी ने प्रतिवाद नहीं किया,—'सो तो जानती हूं। परदेश में तुम्हीं सब का भरोसा है।'

'नायकिन कहती है कि एक महीने के भीतर तुम किलेदारिन या ठिकानेदारिन तो क्या कहीं की रावरानी बनोगी।'

'अच्छी मजदूरी मिल जाय और जात-पांत वाले तङ्ग न करें, तो हमारे लिये यही सब कुछ है।'

'मांडू चलकर देखना तुमको दिन रात सुख चैन मिलेगा।'

'मांडू कितनी दूर है यहां से ?

'अरी यों ही थोड़ी दूर। पहाड़ जंगल कुछ कोस और मिलेगा, फिर हरा-भरा मालवा जहां मांडू के सुल्तान का राज है। बड़ा अच्छा देश है। वहां ऐसी भुखमरी थोड़े ही है जैसी यहां छाई हुई है। मेरे पास वहां का कुछ है, देखोगी ? मैं तुम्हें कुछ दिखलाऊं ? पर यहां किसी को मालूम न होने पावे।'

'ऐसी क्या चीज है ?'

'अरी अभी दिखलाती हूँ। पहले मेरे सिर की सौगन्ध खाओ कि किसी को जाहिर नहीं करोगी।'

लाखी के रूखे होठों पर मुस्कान आई जैसे गर्मियों के सूखे ताले में पहिली छिछिली वर्षा की पतली धार हो। कहा, 'खाती हूँ सौगन्ध बतलाओ, क्या कोई खेल है ?'

पिल्ली ने अपने वस्त्रों में से सोने और मोतियों के गहने निकालकर उसके सामने रख दिये। उसने अपने मोतियों के हार से मन में उनकी तुलना की। यह उनकी अपेक्षा अधिक दमक वाले थे। अपने मोतियों को वह सयत्न सुरक्षित रक्खे हुये थी।

पिल्ली बोली, 'एक छोटे से रजवाड़े के बराबर है मोल इनका। ये तुमको मिल जायें तो एक रजवाड़े की मालिक तो यों ही हो गई।'

'कैसे ?' लाखी को कुतूहल हुआ।

पिल्ली ने लाखी के कुतूहल को और भी जगाया, 'अरी यह तो क्या, इनसे कई गुने और मिल जायेंगे, मोल भी उनका इतना कि नरवर का क़िला खरीद लो।'

नरवर का क़िला मगरोनी से दो कोस था। सिन्ध नदी बीच में। ग्वालियर को न देख पाया तो इसी को देखूँगी किसी दिन। लाखी के मन में एक लहर दौड़ी।

'कैसे मिल जायेंगे ?' उसने फिर पूछा।

'मांडू चलकर।' पिल्ली ने उत्तर दिया।

लाखी के नारी-हृदय का सन्देह चौंका।

उसने उसी प्रश्न को तिहराया, 'कैसे ? किससे ?'

परन्तु पिल्ली नट-नारी थी। उसने लाखी की आंख के कोने में सन्देह की कौंध को परख लिया।

बोली, 'नायकिन ने अभी इतना ही बतलाया है। चार छः दिन में वही बतलायेंगी। अभी इतना तो मैं कह सकती हूँ कि इनको तुम ले लो और समझ लो कि ऐसे मिले और मुझ से मिले।'

[पिल्ली ने मुस्कानों के साथ गहनों को उठाकर उसकी ओर बढ़ाया। सुलभ अलंकार-मोह लाखी के भीतर उठ खड़ा हुआ और वह गहनों को ग्रहण करने के लिए हाथ बढ़ाना ही चाहती थी कि नारी-सहज शंका फिर आड़े आ गई। यदि ये गहने पीतल और कांच के नहीं हैं तो नट सरीखे लोगों के पास कहाँ से आये? और ये इतनी तरह-तरह के क्यों यों ही दिये डाल रही हैं? बदले में मुझसे क्या चाहेगी? अटल की ओर बाँकी तिरछी निगाहों मुस्का-मुस्काकर देखा करती है, तो क्या मेरी सौत बनना चाहती है? अटल से बात करके तब इन गहनों को लूंगी, वैसे हैं बढ़िया]

कहा, 'अभी रक्खे रहो। उनके आने पर ले लूंगी। तुम मुझे बहुत चाहती हो।'

पिल्ली ने सोचा पानी बिलमा। बोली, 'जब बढ़िया लहँगे पर, सुन्दर चून्हरी ओढ़ोगी और उसमें से ये गहने दिखलाई पड़ेंगे तब मालूम पड़ेगा कि कहीं की रानी या बेगम हो। मांडू के बड़े बड़े लोग आह भर कर रह जायेंगे।'

पिल्ली नखरे के साथ हँस पड़ी। लाखी उसकी उथली छिछली प्रकृति को पहिचान गई थी, इसलिए बात बुरी नहीं लगी, परन्तु उसको लगा इस तरह की चून्हरी को पहिननें से अङ्गों का एक एक रोम दिखलाई पड़ेगा और देखनें वाले समझेंगे कि मैं भी कोई नट-बेड़िनी हूँ! छि!! परन्तु ये गहने यदि सच्चे हों? मझोले मोटे कपड़े के नीचे पहने जायें और स्त्रियां देखें तो जल तो जरूर उठेंगी ईर्षा के मारे, और पुरुष देखेंगे; तो अपना मन मार कर अपनी गैल पकड़े चले जायेंगे। कल्पना में अपने को विजयी पाना उसे अच्छा मालूम हुआ।

परन्तु अटल का चित्र आंखों के सामने घूम गया।

'चून्हरी तो हमारे यहां जैसी पहनी जाती है वैसी ही पहनूंगी।' लाखी ने कहा।

पिल्ली ने एक चोट की,—'रानी मृगनयनी क्या ग्वालियर में वैसे ही कपड़े पहने होगी जैसे गांव में पहनती थीं? और तुम यदि ग्वालियर उन के साथ जातीं तो आज जैसे पहिने हो वैसे ही पहिने फिरतीं?'

लाखी को कटुता के साथ अपने गांव की स्त्री की बात याद आ गई। 'निन्नी की पीक हाथ पर लेनी पड़ेगी और राजा की—। उसने विचार को आगे नहीं बढ़ने दिया!

बोली, 'यहीं यदि बनी रही या मांडू चली, जैसा तुम कहती हो, तब देखा जायगा। अभी तो ये ही अच्छे।'

'मांडू तो चलना ही है। बड़ा नगर है। यहां क्या धरा है?'

'चलेंगे। यहां तो हमारे यहां से भी बड़े पहाड़ और जङ्गल हैं। सुनते हैं हाथी तक हैं यहां के जगलों में!'

'हां हैं। बुरा देश है यह। पर रास्ता मांडू के लिये सीधा यहीं हो कर पड़ता है। तुम्हारी और कुंवर जी के जात के कुछ लोग तो होंगे ही यहां, पर उनको कुछ मालूम न होने पावेगा।'

लाखी सोचने लगी—मालूम भी हो जायगा तो भुगतूंगी।

'मांडू में स्यात् जाति के लोग न हों?' उसने पूछा।

पिल्ली ने उत्तर दिया, 'हों या न हों, मालूम नहीं। पर इतना बड़ा सुल्तान तो है। अरी उसको देखोगी तो अचरज करोगी।'

'देखूंगी किसी दिन। मांडू के सारे खेल तमाशे देखूंगी!'

'खेल तमाशे तो वहां ढेरों हैं। हाथियों की कुश्ती, आदमियों की कुश्ती, औरतों की कुश्ती, गाना बजाना, नाचना, भालुओं के नाच और जाने क्या क्या।'

'हाथियों की कुश्ती ! कैसी होती होगी वह ?'

'लड़ते हैं, चिघाड़ते हैं, महावत उनकी गर्दन पर बैठकर लड़ाते हैं और सुल्तान एक बड़े हाथी पर बैठकर सब देखता रहता है। रानी एक तरफ खड़ी आनन्द में झूमती रहती है।'

'बड़ा विचित्र होगा वह तमाशा, जरूर देखूंगी।'

'तुम बढ़िया-बढ़िया गहने और रेशम के रङ्ग-बिरङ्गे कपड़े पहिनकर जब वहां तमाशा देखने जाओगी तब भीड़ की भीड़ औरतें तुम्हें देख-देख कर जल-जल उठेंगी। कहेंगी, हे भगवान यह अप्सरा कहां से आगई यहां!'

'ह!ह!!ह!!! हां, हो तो सकता है ऐसा। दूसरों के गहने कपड़े बहुतेरों को अच्छे नहीं लगते।'

लाखी हँस-हँसकर बात कर रही थी और उसकी कल्पना हाथियों की कुश्ती से उलझ रही थी।

पिल्ली ने अवसर आया हुआ समझ कर कहा, 'एक बार इन गहनों को पहिनकर देखो तो कैसी खिलती हो। मन को न भावे तो लौटा देना। सच्चे और अनमोल हैं. इतना तो मैं कह सकती हूं।'

पिल्ली ने गहने बढ़ाये और लाखी ने ले लिये। पहिनने शुरू कर दिये।

पिल्ली उत्साह के साथ बोली, 'इनके ऊपर रेशमी लहँगा और चून्हरी भी पहिन कर देखलो। देखो तो। फिर उतार डालना।'

जरा देख भी लूं कैसी जचती हूँ, लाखी ने सोचा। गहने पहिन लिये। उनकी आभा से वह दमक उठी। उस दमक को उसने अपनी आँखों में अवगत किया। पिल्ली दौड़कर गई और लहँगा चून्हरी उठा लाई। लाखी ने उसको भी पहिन लिया। जब माँडू की भीड़ में स्त्री-पुरुष देखेंगे तो नटनी नहीं कहेंगे, क्योंकि मैं पायजामा नहीं पहिने हूँ और नटनियां ऐसे ज़ेवर नहीं पहिनती होंगी। तमाशे की भीड़ में

स्त्री पुरुष मुझको देखते रहेंगे और मैं हाथियों की लड़ाई को देखती रहूँगी। कोई भी देखे तो क्या, गहने कपड़े तो देखने के लिये ही बनाये गये हैं। वह मन ही मन प्रसन्न होकर सोच रही थी।

पिल्ली ने नृत्य का एक चक्कर काटकर ओज के साथ कहा।

'रानी सी लग रही हो, बिलकुल महारानी सी! कोई कह सकता है कि किसान मजूर हो? अरी, अपना काम तो करना ही चाहिये, पर ऐसे गहने कपड़े कहीं से मिल जायँ तो उन्हें क्यों न पहिनो?'

लाखी के मन में आया अब उतार कर के रखदूं परन्तु अपने सौन्दर्य और उनकी आभा का मेल थोड़ी देर और देखना चाहती थी।

उसने पूछा, 'माँडू में क्या बहुत स्त्रियों के पास होंगे ऐसे गहने कपड़े?'

पिल्ली ने बताया, 'बहुत लोगों के पास कहाँ रक्खे हैं? प्रजा में किसान, कारीगर, मज़दूर ज्यादा हैं। मोटे-झोटे कपड़े पहिनते हैं। उन्हीं को मेले ठेलों में रंग-विरङ्गा कर लेते हैं। थोड़े से सेठ-साहूकार और सरदार हैं, उनके यहाँ भी ऐसे न निकलेंगे। तुमको भीड़ में देखते ही सुल्तान हाथियों की लड़ाई पर से आँख हटाकर तुमको देखने लगेगा।'

'हो सकता है।'

'हो सकता है नहीं, ऐसा ही होगा। वह तो इतना लट्टू हो जावेगा तुम्हारे ऊपर कि हाथी पर से उतर पड़ेगा और पास आकर पूछने लगेगा कि कहां से आई हो?'

पिल्ली हँस पड़ी। लाखी को भी हँसी आ गई। हाथ और गले के दमकते हुये अलङ्कारों पर आँख बार-बार गई। वे उसको अच्छे लगे। उनकी आभा को वह आत्मसात्-सा कर रही थी।

पिल्ली ने सोचा अब समय आ गया।

बोली, 'सुल्तान तो तुमको पास से देखकर बेहोश हो जावेगा।'

'क्यों ?'

'अरी तुम अपने रूप और गुन को क्या जानो। यह तो देखने वाले ही जान सकते हैं।'

'हूँ—ऊँ—हूँ !'

'मैं कहती हूँ मैं सोना मोती हैं कितने, यह तो बरसा देगा तुम्हारे रूप-गुण के ऊपर ढेरों के ढेर। तुम्हारे हाथ चूम लेगा और कहेगा महलों में रहो। वहां उसकी रानी बनकर रहोगी, हुक्म करोगी और वहीं कुँवर जी उसके दीवान बनकर रहेंगे। हम गरीबों को न भूल जाना।'

'क्या !'

'अरी मेरी रानी, झूठ थोड़े ही कहती हूँ। उसकी महारानी बनकर रहोगी। वह तुमको नर्मदा जी का पानी पीने के लिये मँगवाया करेगा, शरम थोड़े ही लेगा तुम्हारा। अपने साथ हाथी पर बिठलाकर जङ्गलों में शिकार खिलवायेगा और तुम्हारे पैरों की धूल को अपने माथे पर चढ़ावेगा। यहां से मांडू चलो तो दो दिन में हो जावेगा यह सब। न हो जाय तो मेरा सिर काट कर फेंक देना।'

[लाखी के दिमाग़ में एक तूफान सा उठा। राई गांव, सांक नदी, राई के पहाड़, खोहें, जङ्गल, शिकार, निन्नी, मानसिंह और हाथियों की लड़ाई एक साथ चक्कर खा गये। ये सब और चमक-दमक वाले गहने और तड़क-भड़कदार कपड़े आँधी के बवण्डर में जङ्गल के सूखे पत्तों की तरह एक दूसरे के साथ लिपट कर उड़ने लगे। निन्नी और मानसिंह कुछ अधिक स्पष्ट हुये तो पहिने हुये गहने-कपड़ों की आभा पर आँख के आते ही फिर उसी बवण्डर में पड़ गये]

पिल्ली ने सोचा लाखी निश्चय में है।

बोली, 'मन में रक्खे रहो। किसी से कहने की जरूरत नहीं है। जब जैसा मौक़ा आवे तब तैसा करना।'

लाखी के दिमाग़ की आँधी कुछ हलकी पड़ी। परन्तु उसके मुंह से कुछ नहीं निकला।

पिल्ली ने कहा, 'अरी रानी तुमको थोड़े ही कुछ करना पड़ेगा अपनी तरफ से। किसी तमाशे में जाने की तुमको जरूरत नहीं पड़ेगी। जैसे ही सुल्तान को खबर लगी कि तुम सरीखा हीरा किसी कुटिया में छिपा पड़ा है कि वह खुद हाथ जोड़ता हुआ आयगा, हाथी पर बिठला कर महल में ले जावेगा और छाती से लगा कर अपने भाग्य को धन्य समझेगा।'

लाखी के मन के भीतर की आँधी झटका खाकर यकायक बन्द होगई और उसको कुछ साफ़ सा दिखलाई पड़ा। उसने यकायक प्रश्न किया, 'ये गहने कपड़े तुम्हारे पास कहाँ से आये? क्या सुल्तान ने दिये थे?'

'मेरे कहाँ ऐसे भाग?' उसने सावधानी के साथ उत्तर दिया, 'मुझको तो तुम सरीखे लोगों का ही आसरा है। कपड़े चोरी के नहीं हैं, इस बात की बड़ी से बड़ी सौगन्ध खा सकती हूँ।'

'कहां से आये?' उसने फिर पूछा।

पिल्ली ने बारीकी के साथ लाखी के चेहरे को भांपने की चेष्टा की।

'अच्छा बतलादूं पर मेरे सिर पर हाथ रखकर सौगन्ध खाओ कि किसी से कहोगी नहीं।'

'सौगन्ध खाती हूँ।'

'जैसी आगी और सुगन्धि नहीं छिपती, वैसे ही तुम्हारे रूप का नाम नहीं छिप सका। सुल्तान ने ही तुम्हारे लिये भेजे हैं।'

'किसके हाथों?'

'हमारे ही एक नट के हाथों।'

'या उन सवारों के हाथों जिनमें से दो को हमने मार गिराया था?' उसने अपने मन में प्रश्न किया।

लाखी चुप रही। कई क्षण। पिल्ली ने सोचा तीर जा बैठा। बोली, 'और अधिक मत पूछो। सुल्तान जब तुमको गले लगाकर अपनी बीती घड़ियों को बखानेगा तब सब मालूम हो जायगा। उसने मित्रों के बारे में भी सुना था। चाहता होगा दोनों सखियां साथ ही रहें। अब अकेली ही राज करना।'

लाखी ने कनखियों देखा—कहीं से अटल न आ जाय। फिर गहनों कपड़ों पर ध्यान गया। वह सबको एक एक करके उतारने लगी।

पिल्ली बोली, 'पहिने रहो। तुम्हारे ही तो हैं। कुँवर साहब भी तो देखलें कैसी ऊब रही हो।'

'नहीं', दृढ़ स्वर में लाखी ने कहा। उसने सब उतार दिये और अपने मोटे-झोंटे कपड़े पहिन लिये। अन्तर पर ध्यान गया। कहाँ वे कहाँ ये? उनमें कितनी तड़क-भड़क थी!! देखा जायगा। फिर कभी पहिनूंगी पर उनसे कहकर। क्या सब बतलादूं? आज नहीं, पर एक दिन अवश्य और यहीं मगरोनी में। उसने निश्चय किया।

थोड़ी देर में अटल घबराया हुआ आगया। आते ही उसने सबसे कहा, 'माँडू का सुल्तान नरवर पर चढ़ आया है। चौकियां पड़ती आ रही हैं।'

'माँडू का सुल्तान! हमारा राजा!!' पोटा के मुंह से निकल पड़ा,—'तुम्हें कैसे मालूम? किसने कहा? कहाँ हैं? कितनी दूर?'

अटल ने उसी घबराहट में सूचना दी,—'गाँव में सुन आया हूँ। हड़बड़ी मच गई है। लोग नरवर नगर में भाग जाने की तैयारी में जुट पड़े हैं। चलो, हम सब नरवर चल दें।'

नट एक दूसरे की तरफ़ देखने लगे।

नायकिन बोली, 'अपुन लोगों का लड़ाई वाले क्या करेंगे? नरवर के कोट में घिर जाने से तो बड़ी मुश्किल पड़ जायगी। यहां से निकल चलो

बोली, 'मन में रक्खे रहो। किसी से कहने की जरूरत नहीं है। जब जैसा मौक़ा आवे तब तैसा करना।'

लाखी के दिमाग़ की आँधी कुछ हलकी पड़ी। परन्तु उसके मुंह से कुछ नहीं निकला।

पिल्ली ने कहा, 'अरी रानी तुमको थोड़े ही कुछ करना पड़ेगा अपनी तरफ से। किसी तमाशे में जाने की तुमको ज़रूरत नहीं पड़ेगी। जैसे ही सुल्तान को खबर लगी कि तुम सरीखा हीरा किसी कुटिया में छिपा पड़ा है कि वह खुद हाथ जोड़ता हुआ आयगा, हाथी पर बिठला कर महल में ले जावेगा और छाती से लगा कर अपने भाग्य को धन्य समझेगा।'

लाखी के मन के भीतर की आँधी झटका खाकर यकायक बन्द होगई और उसको कुछ साफ़ सा दिखलाई पड़ा। उसने यकायक प्रश्न किया, 'ये गहने कपड़े तुम्हारे पास कहाँ से आये? क्या सुल्तान ने दिये थे?'

'मेरे कहाँ ऐसे भाग?' उसने सावधानी के साथ उत्तर दिया, 'मुझको तो तुम सरीखे लोगों का ही आसरा है। कपड़े चोरी के नहीं हैं, इस बात की बड़ी से बड़ी सौगन्ध खा सकती हूँ।'

'कहां से आये?' उसने फिर पूछा।

पिल्ली ने बारीकी के साथ लाखी के चेहरे को भांपने की चेष्टा की।

'अच्छा बतला दूं पर मेरे सिर पर हाथ रखकर सौगन्ध खाओ कि किसी से कहोगी नहीं।'

'सौगन्ध खाती हूँ।'

'जैसी आगी और सुगन्धि नहीं छिपती, वैसे ही तुम्हारे रूप का नाम नहीं छिप सका। सुल्तान ने ही तुम्हारे लिये भेजे हैं।'

'किसके हाथों?'

'हमारे ही एक नट के हाथों।'

'या उन सवारों के हाथों जिनमें से दो को हमने मार गिराया था?' उसने अपने मन में प्रश्न किया।

लाखी चुप रही। कई क्षण। पिल्ली ने सोचा तीर जा बैठा। बोली, 'और अधिक मत पूछो। सुल्तान जब तुमको गले लगाकर अपनी बीती घड़ियों को बखानेगा तब सब मालूम हो जायगा। उसने निन्नी के बारे में भी सुना था। चाहता होगा दोनों सखियां साथ ही रहें। अब अकेली ही राज करना।'

लाखी ने कनखियों देखा—कहीं से अटल न आ जाय। फिर गहनों कपड़ों पर ध्यान गया। वह सबको एक एक करके उतारने लगी।

पिल्ली बोली, 'पहिने रहो। तुम्हारे ही तो हैं। कुँवर साहब भी तो देखलें कैसी ऊब रही हो।'

'नहीं', दृढ़ स्वर में लाखी ने कहा। उसने सब उतार दिये और अपने मोटे-झोंटे कपड़े पहिन लिये। अन्तर पर ध्यान गया। कहाँ वे कहाँ ये? उनमें कितनी तड़क-भड़क थी!! देखा जायगा। फिर कभी पहिनूंगी पर उनसे कहकर। क्या सब बतलादूं? आज नहीं, पर एक दिन अवश्य और यहीं मगरोनी में। उसने निश्चय किया।

थोड़ी देर में अटल घबराया हुआ आगया। आते ही उसने सबसे कहा, 'माँडू का सुल्तान नरवर पर चढ़ आया है। चौकियां पड़ती जा रही हैं।'

'माँडू का सुल्तान! हमारा राजा!!' पोटा के मुंह से निकल पड़ा,–

'तुम्हें कैसे मालूम? किसने कहा? कहाँ हैं? कितनी दूर?'

अटल ने उसी घबराहट में सूचना दी,—'गाँव में सुन आया हूँ। हड़बड़ी मच गई है। लोग नरवर नगर में भाग जाने की तैयारी में जुट पड़े हैं। चलो, हम सब नरवर चल दें।'

नट एक दूसरे की तरफ़ देखने लगे।

नायकिन बोली, 'अपुन लोगों का लड़ाई वाले क्या करेंगे? नरवर के कोट में घिर जाने से तो बड़ी मुश्किल पड़ जायगी। यहां से निकल चलो

सुल्तान की छावनी में, खेल तमाशे दिखलायेंगे और टक्के कमायेंगे। नरवर के भीतर क्या रक्खा ?'

नटों ने उसका समर्थन किया। लाखी ने प्रतिवाद,—'नहीं। हम तो नरवर के कोट के भीतर जायेंगे।' अटल चुप रहा!

पिल्ली लाखी का हाथ पकड़कर एक ओर ले गई।

उसने लाखी को मनाया,—'मेरी रानी मौके को मत छोड़ो। मुझको दिखता है सुल्तान यहां तक तुम्हारी खोज में आया है। यहां से मांडू गधों या बैलों पर बैठकर नहीं जाओगी, हाथी पर बैठकर झूमती हुई जाओगी।'

'नहीं।' लाखी ने धीमे स्वर में कहा और वह हाथ छुटाकर सामान इकट्ठा करने में लग गई। अटल उसकी सहायता करने लगा। नट एक जगह सिमिटकर कुछ क्षण परस्पर सलाह करते रहे। अन्त में उन्होंने भी कोट के भीतर जाना तै किया। उनमें से पोटा और पिल्ली को लाखी ने थोड़ी देर बाद वहां नहीं देखा। शेष नट अपना सामान बांध रहे थे, परन्तु ढिलाई के साथ, धीरे धीरे।

लाखी और अटल उन लोगों की ढिलाई पर कुढ़ रहे थे। अटल ने, कहा, 'नायकिन, देर मत करो। यदि तुर्क आ गये तो फिर कहीं के न रहे।'

वह इत्मीनान के साथ बोली, 'फिकिर मत करो। अभी तो थोड़े से गांव वाले ही चले हैं गांव से।'

इतने में कुछ गांव वाले गठरी-पोटली बांधे भागते हुये आये और नरवर की दिशा में चले गये।

अटल ने कहा, 'देखो न, लोग सिर पर पैर रखकर भागे जा रहे हैं।'

वह इतराई,—'ओ हो हो! ये तो डरपोक किसान मजदूर हैं। सेठ लोगों को तो आने दो जिनके साथ हथियार बन्द सिपाही भी होंगे। इतना नहीं सोचते कि वह इतनी रूपवाली लाखी साथ में है, अकेले दुकेले नहीं

जाना चाहिए, कोई रास्ते में आ घेरा तो क्या होगा? पिल्ली और पोटा को आ जाने दो, वे किसी खोज में ही तो गये हैं।'

व्याकुलता के साथ इधर उधर देखकर अटल बोला, 'सेठों का क्या। तुर्कों को कुछ दे लेकर वहीं के वहीं पड़े रहेंगे। बर्तन बेचेंगे और टके सीधे करेंगे। उनको कोई नहीं मारेगा। आफत तो हम सरीखे लोगों पर रहेगी।'

'अरे तो प्राण क्यों दिये देते हो मरद हो कर ? और अपने पास ऐसा क्या रक्खा है जिसके लिए तुर्क आवेंगे ?' नायकिन ने उपेक्षा के साथ कहा। अटल की आंख लाखी पर गई !

लाखी ने नायकिन को संकेत किया, 'है तो। हमारे पास नहीं है, पर तुम्हारे पास तो है गहना कपड़ा। सोना, मोती।'

'सोना, मोती !' अटल के मुंह से आश्चर्य के साथ निकला।

'हाँ !' लाखी ने दुहराया।

नायकिन ने उपेक्षा की--'मैं कहती हूँ हमारी चिन्ता मत करो। है जरूर हमारे पास, पर वह ऐसा छिपा कर रख लिया है कि कोई भांप तक नहीं सकता।'

'मगर सोना और मोती !' अटल के मुंह से फिर निकला।

गाँव से ठिगने कद का अधेड़ अवस्था वाला, मोटा, भारी भरकम पेट को हांफों के साथ हिलाता हुआ, एक पुरुष निकला। उसके साथ कुछ व्यक्ति, घूंघट डाले हुए स्त्रियां, रोते-किलपते बच्चे और कई गधों की पीठ पर लदा हुआ सामान, पीछे बर्तनों की भरी बैलगाड़ी आती हुई दिखलाई दी।

लाखी ने कहा, 'इन्हीं के साथ चल दो। यह कोई सेठ है।'

नायकिन बोली, 'पोटा और पिल्ली को तो आ जाने दो।'

उस मोटे पुरुष के काफ़िले के पीछे से एक भीड़ का प्रवाह सा फूट पड़ा। भीड़ भाग कर उस पुरुष के आगे निकल आई।

मोटा घिघियाया,—'भाइयो, हमारे साथ ही चले चलो।'

भीड़ में से एक कहता गया, 'तुम्हारी गिरस्ती की रखवाली में अपनी जान दे देवें ! हुं !!'

अटल ने लाखी से कहा—'हम तुम इसी के साथ चलें। न जाने इनके पोटा पिल्ली कब तक आवेंगे।'

वे दोनों चल पड़े। बैल चरने के लिए कहीं भटक गये थे इसलिए घबराय हुए अटल ने उनकी खोज नहीं की। नायकिन ने भी विलम्ब नहीं किया। जल्दी जल्दी सामान बांधा और अपने पशुओं सहित नरवर की ओर सब नट पीछे पीछे चल पड़े। सिन्ध नदी को पार करके थोड़ी ही दूर गये होंगे कि ये नट उन दोनों से जा मिले। नरवर नगर में पहले ही समाचार पहुँच गया था। फाटक बन्द कर लिए गये थे परन्तु इस भीड़ की विनय-प्रार्थना पर फाटक खोल दिये गये। और इन सब को भीतर ले लिया गया। सन्ध्या के पहले पहले जितने लोग आये उन सब को इसी प्रकार भीतर ले लिया गया परन्तु सूर्यास्त होते ही फाटक बन्द कर लिए गये और फिर किसी को भीतर नहीं आने दिया। सूर्यास्त तक पिल्ली और पोटा नही आये।

[३२]

उसी दिन सवेरे से ही यकायक ठण्डी हवा चली और तीसरे पहर तक चलती रही। चौथे पहर झंझावात तो रुका परन्तु ठण्ड बढ़ गई। पच्छिमी पहाड़ियों के ऊपर सूर्य दमदमाती हुई बड़ी बिन्दी की तरह लग रहा था। किरणों का तीखापन मानों ठण्डी हवा के साथ कहीं उड़कर चला गया था। ग्वालियर के उत्तर-पूर्व और उत्तर-पश्चिम की पहाड़ियां धूमरे कुहासे में रहस्यमयी हो रही थीं। पूर्व की दिशा की आड़ी पहाड़ियों तक मैदान में किरणो ने मानों सुनहरी रज छिड़क दी हो।

मृगनयनी और मानसिंह महल की छत पर थे। ऊँची मुड़ेरों की खिड़कियों और झिझरियों में होकर किरणों के चौक से पुर रहे थे। एक मञ्च पर दोनो बैठे हुये थे। कोई और वहां न था।

'वीणा का बजाना बहुत दिनो में आ पावेगा मुझको ऐसा लगने लगा है।' मृगनयनी झिझरी से झरने वाली किरणों की ओर मुंह करके बोली।

मानसिंह ने धीरे से उसकी ठोढ़ी को उँगलियों से अपनी ओर किया और उसकी मुस्कान में अपनी मुस्कान को घोलते हुये कहा, 'मैंने पूछा था तुम्हारी मुस्कानों के साथ सूर्य की किरणें क्यों खेलने लगती हैं, सो तुमने उसका यह उत्तर दिया!'

'मुझको तो किरणें कहीं खेलती नहीं दिखलाई पड़तीं। आपको जो कुछ भी दिखलाई पड़ जाय सो थोड़ा है', मृगनयनी बोली। एक बार बरोनियों को भौंह तक छुलाकर फिर आँखें नीची कर लीं।

मानसिंह ने उसको अंक में भर लिया।

'अब कहो क्या कह रही थी।'

'मैं कभी कुछ कहने भी पाती हूं? आप सदा इस तरह मेरा मुँह बन्द कर देते हैं।' मुस्कराई।

'हां, कर देता हूँ और करता रहूँगा !'

'तो अब मैं क्या कहूँ ?'

'वही जो कह रही थीं। अब अच्छी तरह सुनूंगा।'

'जब मैंने वीणा का बाजा सुना तो अचम्भे में पड़ गई। सोचा थोड़े से तारों का बाजा है, चार-पाँच दिन में बजा लूंगी, पर दिखता है कि बरसों में सीख पाऊँगी। लगता है कि गाना स्यात् जल्दी सीख लूं।'

मैंने सुन लिया, अब मेरे प्रश्न का उत्तर दो।'

'कौन से प्रश्न का ?'

'किरण की ओर मुंह करो।'

'कर लिया। पूछिये।'

'किरणें तुम्हारी मुस्कानों के साथ क्यों खेलने लगती हैं ?'

'आप खेलते हैं किरणों के साथ। लीजिये हो गया उत्तर। अब आप बतलाईये मैं गायक बैजनाथ सा कितने समय में गाने लगूंगी ?'

'समय के साथ तुमको मैं बाँध ही नहीं सकता। बैजनाथ कहते थे कि जिन तानों को और लोग एक महीने में सीख पाते हैं, उनको तुम एक दिन में सीख लेती हो। उनकी चेली कला की कारीगरी को तो तुम एक महीने में ही पीछे छोड़ दोगी।'

'नहीं, वह बहुत चतुर है परन्तु जब तक मैंने उससे बढ़कर और कम से कम गायक बैजनाथ के बराबर नहीं सीख लिया है, मेरे मन को चैन नहीं मिलने का। मैं सङ्गीत को अधिक समय देना चाहती हूं। कला यदि यहीं मेरे पास रहने लगे तो बड़ा सुभीता रहेगा। नगर में रहती है। आने-जाने में ही बहुत समय लगता है। फिर कभी-कभी मैं घण्टों उनके निकट नहीं पहुंच पाती हूं।'

'क्यों ? क्या करती रहती हो ?'

'हूँ। आप अपने से पूछिये। न जाने क्यों इतना पास बिठलाये रहते हैं मुझको।'

'किरणों के साथ मुस्कानों के खेल की बात पूछने और समझने के लिये।'

'फिर गाना-बजाना कैसे सीखूंगी। और चित्रकारी भी ?'

'तुम्हारा कण्ठ-स्वर ही मुझको वीणा की झङ्कारों से बढ़कर मधुर लगा करता है।'

'तो मैं गँवार की गँवार ही बनी रहूंगी। मैं पढ़ूंगी, चित्रकारी सीखूंगी और गाना-बजाना तो इतना अपनाऊँगी, इतना अपनाऊँगी कि जब कभी आप सुनें तो ध्यान-मग्न हो जायें।'

'अभी क्या कम मस्त रहता हूँ ?'

'मैं अभी जानती ही क्या हूँ ?'

'मेरे लिये सब कुछ हो। मेरी जीवनसर्वस्व, मेरी प्राणेश्वरी, मेरी जन्मसङ्गिनी।'

मानसिंह के आठ रानियाँ थीं, नवीं मृगनयनी। ग्वालियर आकर मृगनयनी को मालूम हुआ। परन्तु परिपाटी थी; उसको बात असाधारण नहीं लगी और न अखरी ही। तो भी उसके मन में प्रश्न उठा, जब इन्होंने पहली स्त्री से ब्याह किया होगा तब उससे भी इसी तरह का प्रेमालाप करते होंगे, फिर दूसरा, तीसरा और आठवाँ ब्याह किया; हर एक रानी के साथ आरम्भ में इसी प्रकार की चिकनी और मीठी बातें करते रहते होंगें; क्या मेरे साथ सदा ऐसा ही बर्ताव करेंगे या किसी दसवीं के साथ विवाह करेंगे और मुझसे वैसे ही बर्तेंगे जैसे इन आठ के साथ आज कल बर्त रहे हैं ?

'भगवान मुझको इस योग्य बनावे कि मैं सदा इसी तरह आपकी कृपा पाये रहूँ।' मृगनयनी ने कहा।

प्रेम के उस उफान में भी मानसिंह को शंका हुई जैसे वे आठों किसी झिलमिली में से, छिपे–छिपे ताक रही हों। मानसिंह दृढ़ स्वर में बोला,

'जङ्गल में शिकार के समय जो वचन दिया था वह अखण्ड और अमर है।'

'क्या फिर कभी नाहर, अरने इत्यादि का शिकार खेलने को मिलेगा?'

'अवश्य। जब चाहे तब। कहो तो कल प्रबन्ध कर दूं वहीं राई के पीछे की खोहों और पठारों में?'

'नहीं। अभी नहीं। वैसे ही कहा। पहले कुछ सीख लूं तब जाऊँगी राई की ओर। मैंने प्रण किया है कि सीखकर लाखी को सिखलाऊँगी।'

'यहीं बुलालो न। कला को अपने से मिलती-जुलती पाकर उसको अचरज होगा।'

'वह अभी नहीं आवेगी। लाऊँगी कभी उसको। मैं चाहती हूँ पढ़ना लिखना, गाना-बजाना और चित्रकारी बहुत शीघ्र सीख लूं, पर आपके मारे जब सीख पाऊं तब तो।'

'अरी महारानी, मैं विचारा करता ही क्या हूं?'

'विचारे! बड़े विचारे हैं न आप!! अब मुझको अलग बैठ जाने दीजिये।'

'मैंने तुम्हारा बोलना तो बन्द किया नहीं।'

'एक बात कहूं?'

'एक नहीं दस।'

'मैं चाहती हूं आपका शरीर, उत्साह, यश और सूरमापन दिनदूना बढ़ और चमत्कार से भरा हुआ बना रहे।'

'जिस राजा में ये गुण न हों उसका राज आजकल दो महीने भी नहीं टिक सकता।'

लेकर आई हूँ, जिनके भरोसे मरे हुये सुअर को पीठ पर लाद कर गांव तक लाई थी, जिनके बूते अरने भैंसे को—'

मानसिंह ने उसको आगे बात नहीं कहने दी। गले से लगाकर उसके होठों को अपने कपोल से सटा लिया।

बोला, 'मैं वचन देता हूँ प्राणप्यारी मृगनयनी। समझ गया कि मन में तुमको जीवनपर्यन्त बसाये रखने के लिये नियम-संयम ही बल दे सकेगा। तुमको कलाओं के सीखने के लिये पूरा पूरा समय दिया करूँगा और तुमको सदा अपने निकट समझता हुआ इतना काम करूँगा, इतना कि काम को पूरा करते करते घनी उमङ्ग बनी रहे तुम्हारे दर्शन प्राप्त करने की।'

'आप मेरे स्वामी हैं।'

'बस ! स्वामी ही !!'

'प्राणनाथ, मेरे प्राणनाथ।' बहुत धीमे, रिपटते हुये स्वर में मृगनयनी ने कहा।

मानसिंह बोला, 'मुझको सदा ध्यान रहेगा—जैसे तुम बहुत दूर रहते भी मेरे कान में कह रही हो 'मानसिंह, सावधान !'

'हूँ ऊँ। ऐसा तो मैंने कभी नहीं कहा !'

'अरी महारानी जी, मेरे हृदय के भीतर इसी तरह बोलोगी।'

'आप कलाओं के जानकार हैं सो न जानें बात को कैसा उमेठ–उमाठ कह लेते हैं !'

'तुम थोड़े ही समय में सारी कलाओं को अपने अंचल के छोर में बांध लोगी, मुझको विश्वास है। फिर कैसी कैसी बातें करोगी उसकी कुछ कल्पना ही कर सकता हूं। अच्छा, यह तो बतलाओ कि यह बात तुमको किसने सिखलाई ? नियम-संयम इत्यादि वाली बात ?'

'जङ्गल में शिकार के समय जो वचन दिया था वह अखण्ड और अमर है।'

'क्या फिर कभी नाहर, अरने इत्यादि का शिकार खेलने को मिलेगा?'

'अवश्य। जब चाहे तब। कहो तो कल प्रबन्ध कर दूं वहीं राई के पीछे की खोहों और पठारों में?'

'नहीं। अभी नहीं। वैसे ही कहा। पहले कुछ सीख लूं तब जाऊँगी राई की ओर। मैंने प्रण किया है कि सीखकर लाखी को सिखलाऊँगी।'

'यहीं बुलालो न। कला को अपने से मिलती-जुलती पाकर उसको अचरज होगा।'

'वह अभी नहीं आवेगी। लाऊँगी कभी उसको। मैं चाहती हूँ पढ़ना लिखना, गाना-बजाना और चित्रकारी बहुत शीघ्र सीख लूं, पर आपके मारे जब सीख पाऊं तब तो।'

'अरी महारानी, मैं बिचारा करता ही क्या हूं?'

'बिचारे! बड़े बिचारे हैं न आप!! अब मुझको अलग बैठ जाने दीजिये।'

'मैंने तुम्हारा बोलना तो बन्द किया नहीं।'

'एक बात कहूं?'

'एक नहीं दस।'

'मैं चाहती हूँ आपका शरीर, उत्साह, यश और नूरमापन दिनदूना दृढ़ और चमत्कार से भरा हुआ बना रहे।'

'जिस राजा में ये गुण न हो उसका राज आजकल दो महीने भी नहीं टिक सकता।'

'तुम ठीक कहती हो, मैंने गाँठ बाँधी।'

'नियम-संयम के साथ रहिये और मुझको रहने दीजिये। मैं चाहती हूँ कि उन गुणों के साथ मेरी देह में भी वही बल बना रहे जिसको राई ने

उमड़ आई हैं, जिनके भरोसे मर डूबे सूरज को गोद पर [illegible] तक राज [illegible] थी, जिनके [illegible] अपने [illegible] का—'

मानसिंह ने उसको आगे बात नहीं कहने दी। [illegible] उसके ओठों को अपने ओठों से बंद किया।

बोला, 'मैं वचन देता हूँ प्राणप्यारी मृगनयनी! [illegible] कि [illegible] मैं तुमको जीवनपर्यन्त [illegible] के लिये नियम-संयम [illegible] करूँगा। तुमको कलाओं के सीखने के लिये पूरा पूरा समय दिया करूँगा और तुमको सदा अपने निकट समझता हुआ इतना काम करूँगा, इतना कि काम को पूरा [illegible] तुम्हारे [illegible] करने की।'

'आप मेरे स्वामी हैं।'

'बस! स्वामी ही!!'

'प्राणनाथ, मेरे प्राणनाथ।' बहुत धीमे, लिपटते हुये स्वर में मृगनयनी ने कहा।

मानसिंह बोला, 'मुझको सदा ध्यान रहेगा—जैसे तुम बहुत दूर रहते भी मेरे कान में कह रही हो 'मानसिंह, सावधान!'

'हूँ ऊँ। ऐसा तो मैंने कभी नहीं कहा!'

'अरी महारानी जी, मेरे हृदय के भीतर इसी तरह बोलोगी।'

'आप कलाओं के जानकार हैं सो न जानें बात को कैसा उमेठ—उमाठ कह लेते हैं!'

'तुम थोड़े ही समय में सारी कलाओं को अपने अंचल के छोर में बांध लोगी, मुझको विश्वास है। फिर कैसी कैसी बातें करोगी उसकी कुछ कल्पना ही कर सकता हूं। अच्छा, यह तो बतलाओ कि यह बात तुमको किसने सिखलाई? नियम-संयम इत्यादि वाली बात?'

'किसी ने नहीं सिखलाई। सब स्त्रियां जानती होंगी। कहती न हों, या कह न पाती हों, यह और बात है।'

'तुमने बहुत बड़ी बात कही। आज की संध्या से ही तुम्हारी शिक्षा का पक्का प्रबन्ध करता हूँ। कला और बैजनाथ गायन-वादन, चित्रकारी सिखलायेंगे। विजयजङ्गम से कहे देता हूँ पढ़ाने के लिये। वह कल आरंभ कर देंगे।'

'मेरे प्राणनाथ!'

'तो अब उस सवाल का जवाब दो।'

'हूं,—किसका?'

'किरणें अब तुम्हारे मुख पर और भी छा गई हैं। तुम्हारी मुस्कान में जो चमत्कार है उसमें से कितनों को ये किरणें ले-लेकर भागती जा रही हैं?'

'मेरे प्राणनाथ!!'

संध्या के उपरान्त कला और गायक बैजू आ गये। उनको प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। मृगनयनी ने दत्तचित्त होकर सीखना शुरू कर दिया।

कला और लाखी के थोड़े से सादृश्य में मृगनयनी को बहुत अचम्भा नहीं हुआ था। वह वही है,—मृगनयनी की भावना थी।

उसी दिन तै होगया कि कला अधिकांश समय उसके निकट रहा करेगी। विजयजङ्गम को लिखाने-पढ़ाने का काम सौंप दिया गया और उसी पाठ्यक्रम में वीणा-वाद्य के अभ्यास को और भी बढ़ाने का। वह जुट पड़ी।

मृगनयनी के शिक्षण-समय में मानसिंह बड़ी रानी के पास गया। नाम उसका सुमनमोहिनी था। जैसा नाम उससे उल्टा स्वभाव—प्रचण्ड।

उसके मनचलपन से जैसे ही मानसिंह उकता कर पहुँचा रानी ने रीति के अनुसार आरती उतारी, आसन दिया और हाथ जोड़ कर खड़ी हो गई।

धीरे से बोली [illegible]। महाराज कुछ [illegible] दिया था।'

'नहीं तो एक प्रार्थना करने आया हूँ।'

'आज्ञा ?'

'नई रानी—मृगनयनी—का मन नहीं लगता होगा, सो [illegible] इत्यादि कलाओं के सीखने का प्रबन्ध कर दिया है। आप का समर्थन है न इसमें ?'

'मेरा बड़ा भाग्य जो महाराज मुझको इतना आदर दे रहे हैं। [illegible] इतनी जल्दी [illegible]? कहाँ गई [illegible] राजा, अच्छे घोड़े, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] ग्वालियर के किले का पत्थर! यहाँ न नदी है, न [illegible] है और न [illegible] के किसान!! न गाय, न गोबर!!!'

व्यङ्ग स्पष्ट था। मानसिंह चिढ़ कर कुछ कहना चाहता था परन्तु उसने सोचा इससे कटुता ही और बढ़ेगी।

कहा, 'आप ठीक कहती हैं। यह लक्ष्यवेध ऐसा अच्छा करती है कि बड़े-बड़े धनुर्धारी लज्जित हो जायें।'

सुमनमोहिनी ने व्यङ्ग को जारी रक्खा, 'हाँ महाराज आप सरीखे पुरुषों को जो नारी पराजित करदे उसके सामने संसार भर के पुरुषों को सिर झुकाना पड़ेगा।'

'महारानी, आप भी किसी दिन उनका लक्ष्यवेध देखियेगा।'

'जब से आई है, नित्य, प्रतिक्षण अपना और हम सब का, लक्ष्यवेधती रहती है। और कुछ देखना पड़ेगा, देखूँगी।'

'महारानी, उन्होंने एक ही बाण से एक बड़े नाहर को मारा और अपने भुजबल से अरने भैंसे को मोड़ दिया।'

'सुना है महाराज, और यह भी सुना है कि एक दिन जब घर में खाने को कुछ नहीं था तब सुअर के एक घिटल्ले को मार कर अपनी पीठ पर बाँध लाई थीं। उनमें बहुत बल है, बहुत शक्ति है।'

'वह क्षत्रिय कन्या है। सब को एक दिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। आप देखना वह पढ़-लिखकर और विविध कलाओं में पारङ्गत होकर, हमारी आप की सब की, कीर्ति ध्वजा को ऊँचे फहरावेंगी।'

'महाराज ने बिलकुल ठीक कहा, अभी जो नये-नये बहुमूल्य रेशमी वस्त्र पहिनने को मिले हैं, उन्हीं की ध्वजा को अपने इस छोटे से कर्ण-महल के कँगूरे–कँगूरे और शिखर–शिखर पर कूदती फुदकती फहराती फिरती हैं।'

यह व्यंग मानसिंह को गड़ गया। सौतिया डाह ने बिचारी सीधी सादी मृगनयनी को, जिसका प्रमोद–क्षेत्र अभी तक जंगल और खेत-खलियान था और अब संकुचित सीमाओं से घिरा हुआ छोटा-सा कर्ण महल रह गया था, बन्दर बनाया है। इतना अधिक न उछले कूदे तो कोई हानि होगी? उसको प्यार के साथ सावधान कर दूंगा। जिसमें सुमनमोहिनी इस प्रकार का आक्षेप न करे। मानसिंह ने सोचा। उसकी शेष सात रानियाँ आज्ञाकारिणी पतिव्रतायें थीं। उन्होंने अपना दमन-शमन कर लिया था। परन्तु सौतिया डाह एक दूसरे के प्रति उन सब में था। मृगनयनी के आते ही उन आठ का परस्पर डाह एक धारा में प्रवाहित होकर मृगनयनी से जा टकराया। डाह का नेतृत्व सुमनमोहिनी के प्रचंड स्वभाव को अपने आप प्राप्त हो गया। मानसिंह को समझने में जरा भी देर नहीं लगी। उसका अभिमान कहता था—इतने बड़े राज्य की व्यवस्था करने वाला क्या आठ स्त्रियों का भी शासन नहीं कर सकेगा?

उसके विवेक ने समझाया, एक स्त्री का शासन ही पुरुष के लिए कठिन काम है, आठ का आठ व्यक्तित्व-भावनाओं की समस्या के समान है। फिर क्या करूँ? करूँ क्या, विनय, शील और मृदुलता से काम लो—सब झुठलाओ, कटुभाषिता सब हँसी के साथ सहो। इसी में कल्याण है, मानसिंह ने सोचा।

एक दो क्षण चुप रहने के उपरान्त मानसिंह बोला, 'आप सबके शिक्षण, अनुशासन और आदर्श से वह भी अपने को ढाल लेगी, जैसा मैंने अपने को ढाल लिया है।' मानसिंह हँस पड़ा। सुमन मोहिनी को भी हल्की सी हँसी आ गई।

यह मन ही मन प्रसन्न थी—यह मेरा लोहा तो मानते हैं।

'अब मुझको अनुमति मिले, जाकर बैजनाथ से कुछ बात करूँ। मन्त्री आने वाले होंगे। दिन में उन से राज-काज की चर्चा नहीं हो पाई थी।' मानसिंह ने कहा।

यह अनुमति माँगना नहीं था, आदेश देने का अर्थ रखता था।

सुमनमोहिनी ने फिर व्यङ्ग किया, 'महाराज को आजकल अवकाश ही कहाँ मिल पाता है। बिचारा मन्त्री राज्य की चिन्ताओं के मारे सिर धुनता रहता होगा। यहाँ तक आने का आपने अवकाश न जाने कैसे निकाल लिया।'

राजा ने परवाह नहीं की। हँसकर बोला, 'अवकाश मिल जाया करेगा, बहुत मिलेगा। मुजरा करने आया करूँगा।'

समाचार पाकर बाकी सातों रानियों ने आकर आरती उतारी। एक-दो चलतू बातें करके मानसिंह उस अन्तःपुर से चला आया।

मृगनयनी को उस दिन की शिक्षा देकर बैजनाथ अलग बैठा हुआ था। कला मृगनयनी के पास दूसरे कक्ष में थी।

मानसिंह ने आते ही पूछा, 'कहिये आचार्य, आपके नये शिष्य की प्रगति का क्या हाल है?'

बैजू ने उत्तर दिया, 'महाराज' वह पूर्व जन्म में सङ्गीत का अवतार रही होंगी। मुझको अपना आचार्य–पद बनाये रखने के लिये विशेष अभ्यास करना पड़ेगा।'

बैजू के होठों पर मुस्कान थी, परन्तु उस मुस्कान के भीतर सचाई की छाप थी और आंखों में उसका समर्थन था।

'वीणा के वादन पर अधिकार करने में समय कुछ अधिक लगेगा?' मानसिंह ने पूछा।

'बहुत कम। इतना कम कि मुझको आश्चर्य होगा। महारानी ने आज ही कहा कि गाने और बजाने की ऐसी कोई परिपाटी निकालो जिसमें समय कम लगे।' बैजू ने बतलाया।

मानसिंह हर्ष-मग्न होकर भीतर गया। मृगनयनी कला से वीणा के सम्बन्ध में बड़े उत्साह के साथ बात-चीत कर रही थी। उसको देखते ही मानसिंह के मन में उमड़ा—क्या यह कँगूरो और शिखरों पर बन्दर की तरह कूदती-फुदकती होगी? यह! कितनी सरल, सुन्दर और दिव्य है यह!! मैं इसकी स्वतन्त्रता को हथकड़ी बेड़ी नहीं पहिनाऊँगा।

मानसिंह के आते ही उन दोनों की चर्चा बन्द हो गई। कला की आंखों पर पट्टी नहीं थी, लगभग अच्छी होगई थी। डोरे कुछ लाल थे। मृगनयनी के होठों पर मुस्कान आई और गई।

'कला'—मानसिंह ने कहा,—'महारानी का अभ्यास लगातार चालू रहे। देखूं यह थकती है या तुम। तुम्हारी बराबरी पर आजायँगी तभी इनको कुछ चैन मिलेगा। कब तक इतना अभ्यास कर लेंगी?'

कला विनय के साथ बोली,—नम्रता में काफी बनावट थी,—'मेरी बराबरी पर तो महीने दो महीने में ही आजायंगी। फिर आचार्य जो कुछ बतलाते रहेंगे उसको मैं कितना सीख पाऊँगी, सीख भी पाऊँगी या नहीं इसमें सन्देह है। क्योंकि महारानी जी तो बहुत जल्दी जल्दी सीख लेंगी,

में सिखाऊं-सी आऊंगी। स्वर भी मुझसे बहुत अच्छा है। तुमको सेवा करने का पुण्य मिल जायगा यहाँ बहुत है। फिर चित्रकारी का सब [illegible]'

मानसिंह को अच्छा लगा।

'और चित्रकारी का अभ्यास कब से करोगी?' मानसिंह ने पूछा।

'बहुत शीघ्र' [illegible] ने उत्तर दिया।

दासी द्वार की ओट से आयी। मानसिंह ने मुजरा किया।

'क्या है?' उसने पूछा।

दासी ने उत्तर दिया,—'अन्नदाता महाराज, मन्त्री जी और आचार्य विजयजङ्गम आये हैं। मन्त्री जी ने तुरन्त दर्शन की प्रार्थना की है। बहुत आवश्यक कार्य है।'

'अभी आता हूं। कह दो।' मानसिंह ने कहा।

दासी चली गई।

मृगनयनी बोली, 'काम इकट्ठा हो गया है। निपट आइये।'

मानसिंह हँसा, 'तुम्हारा समय पढ़ने, संगीत और चित्रकारी सीखने में लगेगा, इसलिये मेरा समय मन्त्री जी बांटेंगे ही। थोड़ी देर में विजयजङ्गम वीणा बजायेंगे उसको भी सुनना।'

'सुनूँगी,'—मृगनयनी बोली,—'आज जो कुछ सीखा है उसे मैं भी आपको सुनाऊंगी। पहले मन्त्री जी की बात सुन आइये।'

मानसिंह उल्लास के साथ उस खण्ड में गया जहाँ मन्त्री, विजयजङ्गम और बैजू बैठे थे।

आते ही मानसिंह ने विजयजङ्गम से कहा, 'आचार्य, आपको नई महारानी के पढ़ाने-लिखाने और शास्त्रों का ज्ञान, कराने का काम सौंपता हूं। महारानी बहुत उत्सुक हैं। कल से आरम्भ कर दीजिये। आज थोड़ा सा वीणा वादन हो जाय।'

वे तीनों मुंह लटकाये बैठे थे। मन्त्री व्यग्र था।

विजय पहले बोला, 'महाराज, वीणा की झंकार का नहीं, धनुष की टङ्कार का समय आ गया है—'

'क्या ?' मानसिंह के मुंह से निकला।

मन्त्री ने बात पूरी की, 'मांडू के सुल्तान ग़ियासुद्दीन ने नरवर पर आक्रमण किया है।'

'यह समाचार कब आया ?' मानसिंह ने धैर्य के साथ प्रश्न किया।

मन्त्री ने उत्तर दिया, 'अभी, घड़ी भर पहले। आसपास के गांव उजड़ गये हैं। मगरोनी नष्ट कर दिया गया है। नरवर के चारों ओर घेरा पड़ गया है।'

'सिकन्दर लोदी किधर है ? किस दिशा में ? कहाँ ?'

'सिकन्दर लोदी दिल्ली में अपने सरदारों से उलझा हुआ है।'

'गुजरात का बघर्रा ?'

'बघर्रा सौराष्ट्र के ठाकुरों और पुर्तगालियों में व्यस्त है।'

'चित्तौड़ के महाराणा रायमल की सन्धि माँडू के सुल्तान से है। इधर महाराणा को हम अपना अगुआ मानते हैं। महाराणा जी सुल्तान का निवारण नहीं कर सके सो कोई बात नहीं, क्योंकि सुल्तान जब स्वयं सन्धि-पत्र को मान्यता नहीं देता; तब कोई उससे निर्वाह भी कैसे करा सकता है ? मैं कल कूच कर देना चाहता हूं। तुम महाराणा जी को समाचार भेजो। यह भी लिख दो कि दिल्ली के बादशाह सिकन्दर से सावधान रहें। यदि इस बीच में वह सिकन्दर से लड़ जायं तो हमारा उद्योग शीघ्र सफलता की ओर बढ़ेगा। चम्बल की सीमाओं को सतर्क रखना। मैं नरवर का उद्धार करके शीघ्र लौटूंगा।

मन्त्री की व्यग्रता चली गई। चेहरे पर उत्साह छा गया! बोला, 'सेना की तैयारी का इसी समय ढिंडोरा पिटवाता हूं। रात भर में तैयारी हो जायगी।'

राजा ने स्वीकृत की ।

बैजू सिपाही की भूषा में था । राजा ने देखा ।

कहा, 'आचार्य बैजू, तुम कुछ कहना चाहते हो ।'

बैजू की इच्छा न रहते हुए भी उसके मुंह से निकला, 'महाराज, चन्देरी से सुल्तान का घुड़सवार लश्कर भी चढ़कर आयेगा । मालूम नहीं वह नरवर पर ही आ टूटेगा या ग्वालियर की ओर आवेगा ।'

राजा बोला, 'मैं जानता हूं । चन्देरी के राजसिंह की आँख नरवर पर है । परन्तु मैं सावधान हूं । ग्वालियर की पूरी रक्षा का प्रबन्ध करके ही कूच करूँगा ।'

'कल से मैं अपने वाणों का आयोजन कर दूंगा । युद्ध में कोई बाधा नहीं डाल सकेगा ।' विजय ने कहा ।'

'नहीं डाल सकेगा ।' राजा ने समर्थन किया ।

'तो कुछ क्षण आपकी वीणा और आचार्य बैजनाथ के गले का साथ हो जाय ।' मानसिंह ने अनुरोध किया ।

मन्त्री ने उन दोनों की ओर निहोरे के साथ आँख फेरी, जैसे विनती कर रहा हो कि टाल दो ।

विजय बोला, 'महाराज, धनुषों की प्रत्यञ्चा का निरीक्षण करिये, वाणों की नोकें टटोलिये, कहीं मोथरी तो नहीं पड़ गई । वीणा के वाद्य की ध्वनि और आचार्य बैजनाथ की तानों की भांई सैनिकों के कान में भी पड़ेगी, फिर वे कल कूच करने की तैयारी न करके किसी न किसी बाजे को लेकर अपने राजा का अनुकरण करेंगे ।'

मानसिंह ने हठ नहीं किया, तुरन्त मान लिया । वे तीनों चले गये । मानसिंह मृगनयनी के पास पहुँचा । मन्त्री के आने का कारण बतलाया । युद्ध की बात को सुनकर मृगनयनी को अपने तीर कमान और बर्छे का स्मरण हो आया ।

बोली, 'महाराज की आज्ञा मिल जाय तो मैं भी युद्ध में अपने लक्ष्य वेध की परीक्षा वैरियों पर करूँ।'

मानसिंह ने उल्लास के साथ कहा, अभी नहीं। युद्ध तो आये दिन होते रहते हैं। मांडू के सुल्तानों को नरवर की ही घाटियों में तोमरों ने कई बार हराया है, सो आशा है अबकी बार भी सुल्तान का मुंह मोड़कर आऊंगा। 'तुम्हारी स्मृति मुझको जितनी शक्ति देगी उतना तुम्हारा साथ न देगा।'

मृगनयनी को शंका हुई—राजपूत स्त्रियाँ युद्ध में लड़ने नहीं जातीं, वरन् उनको जौहर करने के लिये घर पर तैयार रहना पड़ता है। मुंह नीचा कर लिया।

'मेरी एक प्रार्थना है,'—राजा ने विनय की,—'तुम अपने कार्यक्रम को जारी रखना। गायन-वादन इत्यादि सब, अच्छी तरह चलता रहे। चाहता हूँ जब लौटूं तुमको खूब मोद-मग्न पाऊँ। कला तुम्हारे सङ्ग साथ के लिये है ही। काम में लगी रहोगी तो उदासी नहीं आयेगी। आचार्य विजय काम को ही सबसे ऊपर मानते हैं।

मृगनयनी को लाखी का स्मरण हुआ। उत्कट कामना हुई, कहीं आज लाखी यहाँ होती।

आह को न दबा सकी, भरकर बोली, 'लाखी को और भाई को राई से बुलवा लीजिये।'

मानसिंह ने तुरन्त हामी भरी, 'अभी लो सांड़िनी सवार और उनके साथ तेज ऊंट भेजे देता हूँ। रात में ही दोनों आजावेंगे।'

मानसिंह ने अविलम्ब सांड़िनी सवार और ऊंटों के भेजने का आयोजन कर दिया। फिर कूच की तैयारी में लग गया। रात भर तैयारी करके सूर्योदय के उपरान्त सेना चल पड़ने के आदेश की प्रतीक्षा करने लगी।

एक घड़ी दिन चढ़े राई से सांड़िनी सवार लौट आये। एक ऊंट पर उनके साथ केवल बोधन पुजारी आया। उसने मानसिंह को उन दोनों के

'तुम सरीखे मूढ़ ही मिले राई के उन अन्धों को !'

'महाराज क्रोध करें तो, और न करें तो भी, सच्चा ब्राह्मण और प्राचीन काल के शास्त्र-पुराण अटल हैं और रहेंगे ।'

हे भगवान् क्या हमारे समाज के इन अन्धे—बहिरों को कभी सूझता सुनता करोगे ? या हम सबको डुबोकर ही रहोगे ?'

'मैं जानता हूँ, महाराज को यह सब भ्रम उस अधर्मी विजयजंगम ने दिया है । बुला लीजिये उसको और करा लीजिये अपने सामने मेरा और उसका शास्त्रर्थ ।'

'कितना समय लगेगा शास्त्रार्थ में ?'

'एक दिन, दो दिन, चार दिन जितना समय जाय । यह उनके हठ और हम दोनों के शास्त्रज्ञान पर निर्भर है ।'

'तो ये तुरही, रम्मट, धौंसे और घोड़ों की हीसें जो नरवर पर आये हुये वैरी का सामना करने के लिये पुकारों पर पुकारें लगा रही हैं, उनको बन्द कर दूँ ?'

'शास्त्र तो महाराज शास्त्र ही है । प्राण चाहे चले जायं परन्तु शास्त्र की बात नहीं जा सकती ।'

'तुम्हारे अन्धविश्वास ने उन दो सुन्दर प्राणियों का विध्वंस किया ! उनकी हत्या तुम्हारे ऊपर है !!'

'महाराज की जय हो । धर्म के लिये यह निरीह ब्राह्मण अपना प्राण देने को तैयार है । दीजिये दण्ड ।'

'मूर्खों को ब्रह्मा भी नहीं समझा सकते । मैं सीधी बात कर रहा हूँ, तुम उल्टे बोले जा रहे हो । अभी तो मैं जा रहा हूँ । नरवर से लौटकर तुमको और तुम्हारी बात को समझूँगा ।'

बोधन पुजारी के हृष्ट विचलित मन में समाया, राजा ने दण्ड को स्थगित कर दिया है, पर देगा दण्ड अपने साले और मन्त्रिन की पश्चात करके ।

[illegible]—[illegible] की ओर से प्रश्न होकर बोला, 'तो मैं यहाँ क्यों न रहूँ? अच्छा जाऊँगा कहीं [illegible]।'

राजा खुश हो गया। तीव्र स्वर से कहा, 'चले जाओ यहाँ से [illegible]। एक मूर्ख तो कम हो जायगा इस राज्य से।' फिर कुछ सोच कर बोला, 'तुम यहाँ आ जाओ [illegible] का मन्दिर [illegible] हूँ।'

बोधन के विराग की बढ़ती हुई [illegible] कुछ [illegible]। चुप रहा। राजा को आज्ञा की जल्दी थी। बोधन आशीर्वाद का हाथ उठा कर चला गया। राजा को उसके जाते ही अपने [illegible] पर परिताप हुआ। लाख की [illegible] का चित्र आँखों में घूम गया—गले में मोतियों का हार डाला था, मृगनयनी के प्रथम मिलन के समय सुमन और [illegible] आई थी; और अटल कितना भोला अल्हड़ सुन्दर था! अच्छा किया इस पुजारी की करतूत ने!! कितना ढीठ मूर्ख है यह!!!

पुजारी आँख की ओझल हो गया और परिताप गल गया।

मानसिंह मृगनयनी के पास विदा लेने के लिए गया। अटल और लाखी का वृत्तान्त सुनाया। मृगनयनी की उन बड़ी आँखों में से दो बड़े बड़े आंसू उमड़ कर टपक गये। मानसिंह की विदाई ने उसको सँभाल दिया।

गद्‌गद् कण्ठ से मृगनयनी ने याचना की, 'यदि उस ओर उनका कुछ पता लग जाय तो आप अपने साथ लिवा लायेंगे?'

मानसिंह ने दृढ़ता पूर्वक उत्तर दिया, 'अवश्य। उस युद्ध के बाद ही जात पांत के इस युद्ध से भी लड़ूंगा।'

सजल-नयन मृगनयनी ने आरतियों के साथ मानसिंह को विदा किया।

सबकी आरतियों और असीसों में मानसिंह ग्वालियर से उसी दिन मोर्चों की योजना बना कर नरवर की दिशा में चल दिया।

[३३]

गियासुद्दीन खिलजी ने नरवर के पश्चिमी और दक्षिणी बाजुओं पर चौकियाँ बिठला दीं और अपनी सेना के बहुतान्श को उत्तर और पूर्व की ओर फैला लिया। पश्चिमी और दक्षिणी दिशाओं में लम्बे और ऊँचे पहाड़, विशाल जङ्गल और बड़ी बड़ी घाटियाँ थीं। नरवरगढ़ का एक ही फाटक—जंगलपोल—दक्षिण की दिशा में था। नरवर की बस्ती, परकोटे से घिरी हुई, क़िले के नीचे, पूर्व से जङ्गलपोल नामक दक्षिणी फटक तक फैली हुई थी। क़िले का ले लेना टेढ़ी खीर था परन्तु नगर के मिटाने में कम बाधा थी।

नरवर के दक्षिणी पश्चिम से बहती हुई सिन्ध नदी उत्तर का करवट लेती हुई पूर्व की ओर चली गई है। नगर और क़िले को सिंध ने जैसे तीन ओर से घेर रक्खा हो। नदी की पूर्व वाली मोड़ पर गियास का शिविर था। चन्देरी से सूबेदार एक बड़ा दस्ता लेकर उसी दिन आ मिला था। एक ही दो दिन बाद गियास ग्वालियर पर आक्रमण करने के लिये जाने को था। नरवर का घेरा चन्देरी का सूबेदार डाले रहता। जहाँ ग्वालियर अधिकार में आया कि नरवर तो वैसे ही हाथ जोड़कर सामने आ खड़ा होगा। गियास उसका बड़ा मुल्ला, चन्देरी का सूबेदार और मटरू सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँच गये। उस समय तक सुराही और प्याले गियास के सामने नहीं आये थे। अभी संध्या होने में कुछ देर भी थी।

मुल्ला ने सुझाव पेश किया, 'जहाँपनाह शहर को कब्जे में करके वहाँ मन्दिर और बुतों को तोड़ दें। इसके बाद सूबेदार के हाथ में घेरे को सौंपकर ग्वालियर की तरफ़ कूच करें तो बहुत अच्छा होगा।'

गियास को यह बात नहीं रुची। बोला, 'शहर के मंदिर और बुत तो हमारे बुजुर्ग पहले ही तोड़ चुके हैं।'

'लेकिन नये तामीर हो गये हैं जहाँपनाह।'

'क्या फ़ायदा इस बेकार काम से ? [illegible] अच्छा [illegible] गया ।'

'जहाँपनाह हिन्दुओं को अपनी [illegible] यकीन [illegible] है । बुर्ज को तोड़ दीजिए, उनका यकीन टूट जायगा फिर [illegible] की तरह बिलबिलाते फिरेंगे इधर और पनाह माँगते [illegible] ।'

'पर सही है कि हिन्दुओं का दीन ईमान और यकीन [illegible] देवताओं में बटा हुआ है, इसलिए एक पत्थर का [illegible] के मिटा देने से उस यकीन को कैसे [illegible] किया जा सकता है ?'

'[illegible] असर पड़ेगा, जहाँपनाह किसी भी आफ़त के [illegible] वे बुतों की पनाह पकड़ते हैं । बुत टूटे, यकीन उखड़ा और [illegible] ।'

'और मौक़ा पाते ही फिर लग पड़े मन्दिर बनाने पर । [illegible], यों ही आप हिन्दुओं को चिढ़ाने से क्या फ़ायदा ?'

'जहाँपनाह से मैंने अर्ज़ कर दिया है । दिल्ली के मुल्लाओं का यही फ़तवा है ।'

गियास कुछ कुढ़ कर रह गया—दिल्ली के मुल्ला मुझसे भी बढ़कर है ! काम बने चाहे बिगड़े इनके फ़तवे के सामने सिर को झुकाना पड़ेगा ! ! कठमुल्लों के सामने ! ! !

गियास ने कहा, 'मैं रात में गौर करूँगा । सबेरे हुकुम दूँगा । इतना अभी तै किये देता हूँ कि शहर पर जोरदार हमला किया जायगा । शहर को काबू में कर लेने के बाद क़िले की फ़तह या घेरा ज्यादा आसान हो जायगा । अगर शहर को जल्दी हाथ में न कर सके तो सूबेदार को यहाँ छोड़कर ग्वालियर चल देंगे ।'

चन्देरी का सूबेदार ठण्डी प्रकृति का आदमी था । बोला, 'जहाँपनाह शहर के हमले को कल रात के लिये तै करदें ताकि मैं अभी से उसकी जुगत में लग जाऊँ । राजसिंह के पास एक दस्ता राजपूतों का है । वह हमले के लिये तड़प सा रहा है ।'

'उसका यकीन किया जा सकता है ?'

'जहांपनाह, पूरा। उसका भाट उसे चैन न लेने देगा।'

'भाट !'

'जहांपनाह, भाट दिन रात उसके कान में भरता रहता है कि दुश्मन से बापदादों के बैर का बदला न चुकाया, और बापदादों से छीनी हुई ज़िमीन को दुश्मन से वापिस न लिया तो राजपूत ही नहीं; कुछ और है।

ख्वाजा मटरू अर्थ भरी दृष्टि से सुल्तान की ओर कई बार देख चुका था। सुल्तान की निगाह गई।

बोला, 'ख्वाजा तुम कुछ कहना चाहते हो ?'

'जहांपनाह, ऐसी तो कोई खास बात नहीं है',—मटरू ने कहा,—'एक छोटा सा ख्याल उठा था, उसको हुजूर कल तै ही कर देंगे। गुलाम की समझ में मन्दिर और मूरतों का तोड़ना बेवक्त होगा, यों ही आम हिन्दुओं का दिल दुखाना फ़िज़ूल है।'

गियास बोला, 'यही मै सोचता हूँ।'

मुल्ला ने बेधड़क उज्र किया, 'जहांपनाह, आम हिन्दुओं की हिम्मत को पस्त करने की यही तरकीब सब से अच्छी है।'

मटरू ने फिर अर्थ भरी आँख घुमाई।

'कुछ और कहना चाहते हो ?' गियास ने पूछा।

मटरू ने उत्तर दिया,—'कुछ नहीं जहांपनाह, बातें करीब-करीब सभी तै हो चुकी है। नमाज़ का वक्त आ रहा है।'

गियास समझ गया कि एकान्त में ही कुछ कहेगा। मजलिस खतम कर दी गई।

दो घण्टे के बाद सुराही और प्याले के एक दो दौर होते ही मटरू और गियास मांडो के उस खण्ड में अकेले रह गये।

[illegible]

'हाँ जहाँपनाह,'—मटरू ने जवाब दिया—[illegible]—[illegible] [illegible] हूँ। लाखी नरवर में है।'

[illegible] वहाँ [illegible] पर है? [illegible] नरवर की [illegible]'

'नरवर वहीं है जहाँपनाह। लाखी [illegible] के लिये [illegible] तैयार हो गई है। [illegible] और [illegible] और [illegible] पहुँचे थे।'

'वाह वाह! वाह वाह!! इसी [illegible]'

'जल्दी न की जाय गरीब परवर। दोनों नट [illegible] शहर में किसी तरकीब से घुस जावेंगे। वहाँ उनके बाकी साथियों के बीच में होगी नट। ये जब वहाँ पहुँच जावें तब रात एक [illegible] हुआ इशारा करेंगे। समझ लिया जावेगा कि लाखी उन लोगों के साथ उस मुकाम पर है। फिर शहर पर कब्जा करने की उसी वक्त पूरी कोशिश की जावे।'

'शाबाश मेरे मटरू! मजलिस में जाहिर करने लायक न थी यह बात।'

'शहर को ले लेने के बाद मन्दिर मूर्तियों को हाथ न लगाया जावे जहाँपनाह। हिन्दुओं को फुसलाने का यही तरीका, शायद, सबसे अच्छा रहेगा। लाखी आखिर हिन्दू ही है। मगर मुल्लाजी की समझ में यह बात नहीं आवेगी।'

'गधा है। बेवकूफ है!! नालायक है!!! जाहिल है वह मुल्ला!!!! मुल्ला नहीं कठमुल्ला है। निकाल दो उसको छावनी में से। माँडू से भी करदो उसका काला मुंह। सल्तनतों की बरबादी की जड़ में ये मुल्ले ही तो रहे हैं।'

'जहाँपनाह कसूर माफ़ करें और गुलाम के सिर को बख्शें। यह मौक़ा मुल्लाजी के निकालने का नहीं है। सिपाही नाराज़ और बेदिल हो जायँगे। माँडू चलकर ज़रूर हुज़ूर कुछ अमल करें।'

'मैं कसम खाता हूँ, ख्वाजा, कि माँडू लौटने पर इन सरकश काज़ी मुल्लाओं को निकाल कर ही दम लूँगा।'

मटरू मन ही मन बहुत प्रसन्न था। सिर नीचा करके प्रसन्नता को छिपानें का प्रयत्न करने लगा।

ग़ियास ने कहा, 'तो फिर कल की रही।'

मटरू ने बड़ी नम्रता के साथ विनय की, 'जहाँपनाह ने जो तै किया है वही होगा। मैं नटों से सारी तरक़ीब और फ़ितरत को ब्यौरेवार तै करके चौथे पहर के करीब अर्ज़ कर दूँगा।'

ग़ियास बोला, 'ठीक है। फौज तैयार रहेगी। शाम के पहले ही मोर्चों की बात तै हो जायगी। फौरन नक़्शा बनाकर काम शुरू कर दिया जायेगा।'

'हुज़ूर।'

'अच्छा ये नट कैसे आ गये यहां तक?'

'उसको समझा बुझाकर माँडू लिये आ रहे थे कि हमले की खबर पाकर रुक गये। उनमें से दो खबर देने और मदद लेने के लिये दस्ते की तलाश में इधर आये, उधर लाखी बाक़ी नटों के साथ शहर में चली गई।'

'क्यों?'

'जहांपनाह, इस बात का पूरा पता तो उन लोगों के मिलने पर ही लग सकेगा।'

'सब बेवकूफ हैं। काम करने का ढंग नहीं जानते।'

'जहांपनाह।'

'तुम भी वफादार हो! समझ गये।'

मटरू ने सिर नीचा किये हुए हाथ जोड़े।

निजाम एक क्षण बाद बोला, 'और, कल को काम बहुत होशियारी के साथ किया जाय।'

मटरू ने कहा, 'जहाँपनाह!'

'जहाँपनाह कसूर माफ़ करें और गुलाम के सिर को बख्शें। यह मौक़ा मुल्लाजी के निकालने का नहीं है। सिपाही नाराज़ और बेदिल हो जायँगे। माँडू चलकर ज़रूर हुजूर कुछ अमल करें।'

'मैं कसम खाता हूँ, ख्वाजा, कि माँडू लौटने पर इन सरकश काज़ी मुल्लाओं को निकाल कर ही दम लूँगा।'

मटरू मन ही मन बहुत प्रसन्न था। सिर नीचा करके प्रसन्नता को छिपाने का प्रयत्न करने लगा।

गियास ने कहा, 'तो फिर कल की रही।'

मटरू ने बड़ी नम्रता के साथ विनय की, 'जहाँपनाह ने जो तै किया है वही होगा। मैं नटों से सारी तरक़ीब और फ़ितरत को ब्यौरेवार तै करके चौथे पहर के करीब अर्ज़ कर दूँगा।'

गियास बोला, 'ठीक है। फौज तैयार रहेगी। शाम के पहले ही मोर्चों की बात तै हो जायगी। फौरन नक़्शा बनाकर काम शुरू कर दिया जायेगा।'

'हुजूर।'

'अच्छा ये नट कैसे आ गये यहां तक ?'

'उसको समझा बुझाकर माँडू लिये आ रहे थे कि हमले की खबर पाकर रुक गये। उनमें से दो खबर देने और मदद लेने के लिये दस्ते की तलाश में इधर आये, उधर लाखी बाक़ी नटों के साथ शहर में चली गई।'

'क्यों ?'

'जहांपनाह, इस बात का पूरा पता तो उन लोगों के मिलने पर ही लग सकेगा।'

'सब बेवक़ूफ़ हैं। काम करने का ढंग नहीं जानते।'

'जहांपनाह।'

'कुछ भी कठिनाई हो । सफल होंगे ।'

अटल ने सिर नीचा किये हुए हाथ जोड़े ।

सिपाही एक क्षण बाद बोला, 'और, कल का काम बहुत होशियारी के साथ किया जाय ।'

अटल ने कहा, 'महाप्रसाद ।'

[३८]

नरवर के नगर-कोट में तीन फाटक थे : एक उत्तर की ओर और दो पूर्व दक्षिण में। दीवारें ऊँची थीं और फाटक मज़बूत। हाथियों के कवच-रक्षित माथे को फोड़ने के लिये फाटकों के बाहरी ओर बड़े मोटे नुकीले लोहे के कीले जड़े हुये थे। खाद्य-सामग्री नगर और क़िले के भीतर कम से कम एक वर्ष के लिये पर्याप्त थी। स्वच्छ मीठे पानी के बहुत से अच्छे कुयें नगर में और अनेक तालाब क़िले के भीतर। रक्षा के लिये लड़ने वाले और आक्रमणकारियों का भुर्ता कर देने के लिये फाटकों की बुर्जों और कोट मीनारों पर भारी-भारी चट्टानें जिनको नीचे ढकेल दिया जाय तो गाज सी टूटे। नरवर वालों को विश्वास था कि साल भर तक तो शत्रु उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकता, फिर राजा मानसिंह सहायता के लिये न आ पहुँचेंगे क्या ?

सुल्तान की सेना को अपने पुराने अनुभवों के आधार पर विश्वास था कि हिन्दुओं में लड़ने वाले दस प्रतिशत से भी कुछ कम होते हैं। ये दस भी आपसी लड़ाई झगड़ों के कारण एक दूसरे की गर्दन काटने में व्यस्त।

पर उन दस में से प्रत्येक को गर्व था, मैं अकेले ही शत्रु को मार भगाऊँगा, अपने सगोत्री की सहायता क्यों लूँ जिससे अपने पुरखों की बापौती वापिसी लेनी है और ऊपर की किसी अठारवीं पीढ़ी वाले पुरखे के अपमान का जिससे प्रतिशोध करना है ?

नरवर के इस दशांश में लड़ाई की उमङ्ग थी, शत्रु का आवाहन करने, उस पर टूट पड़ने, और मार कर मर मिटने का ओज और उत्साह था। वह अपने पुराने करतब और नई तेजस्वी लहर की भाषा में बाकी के नब्बे को स्फूर्ति, साहस और धैर्य देने का प्रयास पर प्रयास कर रहा था। रम्मट, धौंसों और तुरहियों के पहर-पहर पर होने वाले नादों द्वारा जनता की स्नायुओं को प्रबलता और स्पन्दन दिया जा रहा था।

चमचमाते हथियारों, मूंगिया रंग के कपड़े पहिने दमकते हुये घोड़ों पर सवारों और हृष्ट-पुष्ट ऊंचे पूरे जवानों को देख-देखकर जनता को [illegible] मिल गया था।

परन्तु साधारण जनता के मन में छिपा बैठा हुआ कोई कभी कभी कह देता था—पहले भी युद्ध आये हैं यहाँ कितना सामना [illegible] के योद्धाओं ने किया और कट मरे, नगर लुटा, [illegible] बार भी ऐसा ही हो सकता है। परन्तु हमारा राजा मानसिंह [illegible] है, वह आयगा—[illegible]

फाटक बन्द कर दिये गये थे, बाहर भीतर के लोगों का आना निषिद्ध कर दिया गया था। नगर की अनावश्यक भीड़ तो घट गई परन्तु इतनी नहीं कि अन्न के लिये कोई विशेष चिन्ता न करनी पड़े। फिर भी दो दिन के भीतर ही अन्न का भाव चढ़ गया। दुगुने मोल बिकने लगा। व्यापारी माथे को ठोक-ठोक कर, मूंड हिला-हिला कर कहते थे सब व्योपार चौपट हो गया! उनका मन भीतर ही भीतर गुदगुदाता था; कहता रहे ऐसा दो चार महीने तो एक-एक के सौ-सौ ढूंड पर उठे हैं! और अगर नगर ही जीत लिया गया तो अन्न वस्त्र इत्यादि उसको भी चाहिये, बहुत सस्ता भी खरीदेगा तो दुगने में तो कहीं लगने को नहीं।

नगरपाल और किलेदार के पास शिकायत पहुंची। उन्होंने समाधान किया, लड़ाई के युग में ऐसा हो ही जाता है, धीरज से काम लो, ज्यादा मजदूरी करके कमाओ खाओ। वे दोनों और शासकवर्ग सोचते थे, सेठ साहूकारों को नाराज नहीं किया, कि भूखों मरने की नौबत आई।

लाखी, अटल और नटों के पास अपने निज का अन्न वस्त्र था। इसकी चिन्ता नहीं थी। कम से कम कुछ दिन। जब चुक जायगा तब क्या होगा? कब तक इस अनजानी जगह में घिरे रहना पड़ेगा यह समस्या अटल और लाखी को असमंजस में डाले हुये थी। परन्तु उस समय प्रश्न वर्तमान का था।

वे दोनों नटों के साथ ही नगर के एक खुले स्थान में पेड़ों के नीचे जा ठहरे थे। उनके आस-पास इधर-उधर से आये हुये कुछ और लोग ठहरे हुये थे। यह दक्षिणी फाटक के निकट था। भद्र लोगों की बस्ती में इन लोगों को स्थान नहीं मिल सका। अटल और लाखी नटों के समूह में होते हुये भी उनसे कुछ विलग, एक अलग ही इकाई बनाये थे।

पास के ठहरे हुये लोगों ने जान लिया था कि यह समूह नटों का है, परन्तु अटल और लाखी को अलग इकाई ।ने उनके मनमें सन्देह उत्पन्न किया—ये कोई और हैं। प्रचलन और अभ्यास के अनुसार एक नें इन दोनों की जातपांत पूछी।

अटल नें बतलाया गूजर ठाकुर है।

नायकिन के होठों पर बरबस मुस्कराहट कौंध गई और आंखों की पुतलियाँ घूम गईं। पूछने वाले का जातपांत-विवेक सशंक हुआ।

वह बड़ी दीनता के साथ बोला, 'दोनों जनें गूजर ठाकुर हो। नट नहीं हो, यह तो मैं पहले ही समझ गया था।'

नटिनी ने पीठ फेर ली मानों असहमति प्रकट कर रही हो।

बोली, 'कोई सही, नट नहीं हैं, ऊँची जात के हैं। क्या करोगे पूछकर ?'

कुछ न बतलाकर वह बहुत कुछ कह गई।

प्रश्नकर्ता ने नम्रता के साथ कहा, 'माई री, मुझको क्या करना है। पर यह तो पूछा ही जाता है। सब पूछते हैं। कठिन समय में जान लेना पड़ता है कि किसके हाथ का छुआ पानी पियें और किसके हाथ का न पियें। मुझे और करना ही क्या है। मैंने पूछ लिया तो कौन कुछ बुरा किया, दूसरे लोग पूछेंगे।'

नायकिन पीठ फेरे ही बोली, 'वह गूजर ठाकुर है और जनी भी ऊँची जात की है। जाओ अपना काम देखो।'

वह अपना काम देखने लगा—अर्थात् उसने अपने साथियों से कह दिया कि दोनों भिन्न भिन्न आदमियों के हैं और कुछ काम में आ सकते हैं। नृत्य का काल था। लोगों को अपनी-अपनी [illegible] की [illegible] सूझती थी। 'देखा जायगा।' कहकर वे अपनी चिन्ताओं को दूर उड़ाने लगे।

नगर की भीतरी बस्ती की तरफ से कुछ शोर की आवाज़ आई। लाखी और अटल ने कान लगाये। कुछ लोग भागते हुए आये।

'टूट गये! मर गये!!'

'भागो! छिप जाओ!!'

'तुर्कों ने मार डाला!!!'

'घायल कर दिया! खून की नदी बहा दी!!'

नटों ने जल्दी जल्दी एक दूसरे की ओर देखा और इत्मीनान के साथ अपने खुले सामान को ढकने लगे। नायकिन ने धीरे से एक नट के कान में कहा, 'इन दोनों को देखे रहना कहीं चुक छिप न जावें।'

नट ने सतर्कता का सिर हिलाया।

अटल का चेहरा विकृत हुआ। लाखी ने होंठ सटाये और कमर में पड़ी हुई छुरी पर हाथ डाला। सोचा, 'पहले भी बहुत सी राजपूतनी चिता पर भस्म हो चुकी हैं। भगवान की दया से मैं छुरी का पकड़ना और चलाना भी जानती हूं। तुर्क मुझको नहीं छू सकेंगे।' अटल के विकृत चेहरे पर उसका ध्यान नहीं गया।

चीख पुकार करने वाले जैसे ही निकट आये उनसे अटल ने और कइयों ने प्रश्न किये,

'तुर्क किस फाटक से घुस आये हैं?'

'कहां लूटमार कर रहे हैं?'

'कितनी दूर हैं यहां से?'

'तुम कहाँ जा रहे हो ?'

'अब कहाँ छिपें ?'

परन्तु वे किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं दे पा रहे थे। उसी क्षण दो राजपूत सवार दौड़ते हुये आये।

एक चिल्लाया, 'घबराओ मत ! तुर्क नहीं आये हैं। तुर्क दूर हैं।'

लोगों के जी में जो आया। सबों ने उन सवारों को घेर लिया। अटल आगे था।

अटल ने पूछा. 'क्या बात हुई ? किसने किसको घायल किया है ?'

सवार ने उत्तर दिया, 'कुछ भी नहीं हुआ। यों ही जरा सी बात का बवण्डर हो गया। कितने निकम्मे हैं ये लोग ! व्यर्थ की भाग-दौड़ चिल्ल-पुकार मचा दी !!'

'फिर भी ? क्या बात थी ?' अटल ने प्रश्न किया।

सवार ने बतलाया, 'बात यह हुई कि बीच वाले फाटक पर जङ्गल की ओर से एक स्त्री और पुरुष रोते-चिल्लाते आये। उनको तुर्कों ने पीटा-पाटा होगा। घायल है। फाटक खुलवाने के लिये हाहा-देया की। बिचारे निहत्थे हैं। हम लोगों ने फाटक खोलकर उनको भीतर कर लिया और फाटक ज्यों के त्यों बन्द कर दिये। वे भीतर आने पर भी रो रहे हैं। कहते हैं नट हैं। यहां कोई नट ठहरे है ?'

अटल ने संकेत से दिखलाया। नायकिन भीड़ चीर कर आगे आई आंखों से कांइयापन चला गया था। चेहरे पर मुर्दनी सी छा गई थी पुतलियां निकल पड़ने को।

'कहां हैं वे दोनों ?' नायकिन ने भराये हुये गले से पूछा।

'उस घर की ओट में तिगलिये पर बैठे हैं। उनको पानी पिला दिया गया है।' सवार ने उत्तर दिया।

नायकिन और नट उन्हीं दिशा में दौड़ गये।

सवार ने अटल से प्रश्न किया, 'तुम नट नहीं हो क्या ?'

अटल बोला, 'नहीं मैं गूजर ठाकुर हूँ।' उसके स्वर में कम्पन था।

'कहाँ से आये हो ?'

'मगरौनी से।'

'मगरौनी से ! मैंने तो कभी पहले नहीं देखा। मैं भी गूजर ठाकुर हूँ। यहाँ गूजरों की बड़ी बस्ती है। [illegible] में आकर देखो आस पास तो गूजर ही गूजर रहते हैं। तुम मगरौनी से कहाँ से आये ?'

'ग्वालियर से आये थे मगरौनी।'

'फिर नटों में कैसे ?'

'साथ पड़ गये।'

सवार ने अपनी जानकारियों का बखान शुरू किया और अटल की भी पूछताछ परन्तु उधर से दो नट दो घायलों को अपने बीच में थामे हुये ले आये।

अटल का सन्देह उन दोनों के निकट आने पर पुष्ट हो गया—वे पिल्ली और पोटा थे। खून में तर।

जब वे सब अपने डेरे के पास आ गये पिल्ली ने नीची निगाहों, एक आंख की कनखी को मिचका कर संकेत किया। नायकिन का चेहरा खिल गया परन्तु उसने अपने हर्ष को तुरन्त दबा लिया। उन्हें आस-पास के लोगों की भीड़ घेरे चली आ रही थी।

नायकिन ने दृढ़ स्वर में प्रतिवाद किया, 'हम लोगों के पास दवाइयां हैं और जन्त्र—मन्त्र। जल्दी ठीक कर लूँगी। अपने-अपने डेरे पर जाओ।'

लोग हट गये। घावों को देखना चाहते थे परन्तु न देख पाये। सोचा दूर से ही देख लेंगे।

नायकिन ने एक ओर पोटा को लिटा दिया और दूसरी ओर पिल्ली को। फटे-कटे पुराने कपड़ों की छाया और आड़ कर ली।

अटल पोटा के पास जा बैठा और लाखी पिल्ली के पास। नायकिन और अन्य नटों ने उन दोनों के रक्त को धोया-पोंछा। घावों का कहीं कोई निशान न था। दूर से देखने वाले आड़ और छाया के कारण अपना कुतूहल शान्त न कर सके।

एकान्त पाकर लाखी ने पिल्ली से स्नेह के स्वर में पूछा, 'किसने मारा? चोटें कहां लगी हैं? कहां थीं तुम? कहाँ रह गई थीं?'

पिल्ली ज़रा सी मुस्कराई। उत्तर दिया, 'चोट पोटा को लगी है मुझको नहीं लगी है। उसका खून मेरे कपड़ों में भिड़ गया।'

'पोटा को कैसे लगी?'

'एक पत्थर से फिसल पड़ा। जाँघ में पेड़ का सूखा ठूंट घुस गया। बस इतनी ही तो चोट है। लेकिन खूँन बहुत निकला है।'

'फिर तुर्कों के हाथ घायल हो जाने की कहानी! वह सब क्या है?'

'वैसे फाटक खुलते नहीं, इसलिये मकर बनाना पड़ा।'

लाखी हँसने को हुई। पिल्ली ने हाथ के संकेत से बरज दिया।

लाखी ने पूछा, 'तुम दोनों रह कहाँ गये थे?'

'अरी रानी, सब बतलाऊँगी। थोड़ी देर में बतलाये देती हूँ। ज़रा सबर पकड़ो।'

कोई और काम था नहीं। लाखी सुनने के लिये अधीर हो गई। पिल्ली स्थगित कर रही थी। उसने विषयान्तर किया।

बोली,' यहाँ कोई कष्ट तो नहीं है?'

लाखी ने कहा, 'खुली जगह, ठाठ के दिन। वैसे कोई बात नहीं रास्ते में सहा, अब तो नगर में ही हैं।'

'वहां आसपास तो नहीं पूछा किसी ने ?'

'पूछा था। उन्होंने कह दिया गूजर है।'

'और तुम्हारी जात ?'

'मेरी किसी ने नहीं पूछी। पर कुछ लोगों को सन्देह हो गया। डर की कोई बात नहीं। मैंने गूजर बतलाई है।'

'कैसे मालूम हुआ ? क्या सुमन पूछ-ताछ करते थे ?'

'नहीं। उनको एक सवार से बातचीत करते हुए मालूम पड़ा। मैंने सुन लिया।'

'तुम्हारी जात के भी लोग होंगे यहां ?'

'हो सकते हैं।'

'चिन्ता मत करो। मैंने पक्का प्रबन्ध कर लिया है।'

'कैसा ?'

'बतलाऊँगी। अपुन को यहां नहीं रहना है।'

'न जाने क्या कह रही हो। खोलकर सब बताओ।'

'किसी से कहोगी तो नहीं ?'

'नहीं कहूँगी।'

'कुँवर साहब से भी ?'

'हां—कहो भी, मैं तो सुनने को अकुला रही हूँ।'

'तुम अगर जाहिर कर दोगी तो तुम्हीं को नुक़सान होगा।'

'कैसा ? मैं किसी से नहीं कहूंगी।'

'कह दोगी तो यह बात फैल जायगी कि तुम और कुँवर जी अलग अलग जाति के हो। घर से भाग निकले हो। पाप किया है, इसलिये दंड के भागी हो। लड़ाई के दिन हैं। क़िलेदार और नगरपाल किसी अंधेरी कोठरी में डाल देंगे। फिर आगे की सब आशायें सूनी पड़ जायेंगी।'

नायकिन ने एकओर पोटा को लिटा दिया और दूसरी ओर पिल्ली को। फटे-कटे पुराने कपड़ों की छाया और आड़ कर ली।

अटल पोटा के पास जा बैठा और लाखी पिल्ली के पास। नायकिन और अन्य नटों ने उन दोनों के रक्त को धोया-पोंछा। घावों का कहीं कोई निशान न था। दूर से देखने वाले आड़ और छाया के कारण अपना कुतूहल शान्त न कर सके।

एकान्त पाकर लाखी ने पिल्ली से स्नेह के स्वर में पूछा, 'किसने मारा? चोटें कहां लगी हैं? कहां थीं तुम? कहाँ रह गई थीं?'

पिल्ली ज़रा सी मुस्कराई। उत्तर दिया, 'चोट पोटा को लगी है मुझको नहीं लगी है। उसका खून मेरे कपड़ों में भिड़ गया।'

'पोटा को कैसे लगी?'

'एक पत्थर से फिसल पड़ा। जाँघ में पेड़ का सूखा ठूंट घुस गया। बस इतनी ही तो चोट है। लेकिन खून बहुत निकला है।'

'फिर तुर्कों के हाथ घायल हो जाने की कहानी! वह सब क्या है?'

'वैसे फाटक खुलते नहीं, इसलिये मकर बनाना पड़ा।'

लाखी हँसने को हुई। पिल्ली ने हाथ के संकेत से बरज दिया।

लाखी ने पूछा, 'तुम दोनों रह कहाँ गये थे?'

'अरी रानी, सब बतलाऊँगी। थोड़ी देर में बतलाये देती हूँ। ज़रा सबर पकड़ो।'

कोई और काम था नहीं। लाखी सुनने के लिये अधीर हो गई। पिल्ली स्थगित कर रही थी। उसने विषयान्तर किया।

बोली,' यहाँ कोई कष्ट तो नहीं है?'

लाखी ने कहा, 'खुली जगह, ठण्ड के दिन। वैसे कोई बात नहीं रास्ते में सहा, अब तो नगर में ही हैं।'

'यहां जानपान का नहीं पूछा किसी ने ?'

'पूछा था । उन्होंने कह दिया गूजर है ।'

'और तुम्हारी जात ?'

'मेरी किसी ने नहीं पूछी । पर कुछ लोगों को सन्देह हो गया । पर डर की कोई बात नहीं । यहां गूजर बहुत हैं ।'

'कैसे मालूम हुआ ? क्या गूजर पूछ-ताछ की थी ?'

'नहीं । उनको एक प्रकार से बातचीत करते हुए मालूम पड़ा । मैंने सुन लिया ।'

'तुम्हारी जात के भी होंगे लोग यहां ?'

'हो सकते हैं ।'

'चिन्ता मत करो । मैंने पक्का प्रबन्ध कर लिया है ।'

'कैसा ?'

'बतलाऊँगी । अपुन को भय नहीं रहना है ।'

'न जाने क्या कह रही हो । खोलकर सब बताओ ।'

'किसी से कहोगी तो नहीं ?'

'नहीं कहूँगी ।'

'कुँवर साहब से भी ?'

'हां—कहो भी, मैं तो सुनने को अकुला रही हूं ।'

'तुम अगर जाहिर कर दोगी तो तुम्हीं को नुक़सान होगा ।'

'कैसा ? मैं किसी से नहीं कहूंगी ।'

'कह दोगी तो यह बात फैल जायगी कि तुम और कुँवर जी अलग अलग जाति के हो । घर से भाग निकले हो । पाप किया है, इसलिये दंड के भागी हो । लड़ाई के दिन हैं । क़िलेदार और नगरपाल किसी अँधेरी कोठरी मे डाल देंगे । फिर आगे की सब आशायें सूनी पड़ जायेंगी ।'

'कह दिया कि नहीं कहूँगी। वैसे ही डरवा रहीं हो!' उसी समय उसकी आंखों में मानसिंह और निन्नी का चित्र घूमा। अटल राजा के नातेदार हैं फिर भी हम लोगों के साथ अत्याचार किया जावेगा? राजा ने भी इसी तरह का बाहर-जात ब्याह किया है। पर वह राजा हैं और हम लोग ग़रीब! राजा ने किया तो पाप नहीं हुआ, हमने किया तो पाप बन गया! इस विकट पहाड़ी क़िले की किसी अन्धी कोठरी में डाले जायँगे। क्या पिल्ली सच कह रही है! जातपांत के नियम कठोर होते हैं, सच कहती होगी। लाखी ने सोचा। मन में फिर कुतूहल उठा। कहाँ रहे ये दोनों इस बीच में? कौनसा पक्का प्रबन्ध किया है जिसका अभी-अभी इसने संकेत किया था?

पिल्ली चुप थी। लाखी उसका मुंह निहार रही थी।

'ज़रा दम ले लूँ फिर बताऊँगी।' पिल्ली ने कहा और आंखें बन्द करलीं।

[[illegible]]

थोड़ी देर के बाद अटल और पिल्ली का [illegible] के लिये आया। [illegible] करने के उपरान्त वह [illegible] हो [illegible] था। पिल्ली एक चादर को ओढ़ [illegible] गई। [illegible] परन्तु पीड़ा का कोई चिह्न न था।

बोली, 'मैंने लाखी को सारी कहानी बतला दी है। [illegible] नहीं पाते। पीठ को [illegible] बात क्या है, [illegible] कोई [illegible] आई है। किसी ने कहा था।'

'मुझे क्या पता है।' अटल ने कहा।

'सारी बात अभी कहीं बतलाई है,' लाखी बोली, '[illegible] भी बतलाओगी। वह बाहर कुछ [illegible] आई है, पर अभी बतलाया नहीं है।'

अटल रुक गया। सुनने के लिये उत्सुक था।

पिल्ली ने लाखी की ओर मुंह करके कहा, '[illegible] को किसी बहाने से चुपचाप बुला लाओ।'

लाखी के पीठ फेरते ही पिल्ली ने वक्ष पर से चादर को नीचे खिसकाया और अटल पर आंख चलाई। अटल ने ग्लानि के मारे सिर नीचा कर लिया। लाखी की आंख में कपड़े के खिसकने की झाईं पड़ी और उसने गर्दन को जरा सा मोड़कर कनखियों देखा—सब देख लिया। चली गई।

पिल्ली ने कपड़ों को जहां का तहां कर लिया। मुस्कराकर बोली, 'यहाँ से चल देना चाहिये, कुंवरजी। बहुत बड़ी आफत आने वाली है।'

'सो तो दिखलाई ही पड़ रही है।'

'नहीं, जो दिखलाई नहीं पड़ रही है वह।'

'कौन सी ? कैसी ?'

'तुम हमेशा रूखे-रूखे ही बोलते हो।'

'नहीं तो विपद-काल है न।'

'अच्छा, अच्छा। यहाँ से निकल चलें तब कभी बात करूँगी।'

'सुल्तान खुद आया है। हम लोग पता लगा आये हैं। बहुत बड़ी फ़ौज साथ में है। हाथी, घोड़े, आदमी अनगिनते। आज नहीं तो कल शहर और क़िले पर चारों तरफ़ से चढ़ाई होगी और हम सब कतर डाले जायेंगे। इस बीच में जाँतपाँत के किस्से की उखाड़-पछाड़ हो गई तो न इधर के रहे, न उधर के। यहाँ से निकल चलो।'

लाखी नायकिन को लेकर आ गई।

'कैसा जी है बेटी?' उसने दुलार के साथ पूछा।

पिल्ली ने अपने छल की कथा सुनाई और नगर बाहर हो जाने की योजना को बतलाया,—'दक्षिण फाटक के पास दीवार से लगे हुये ऊँचे-ऊँचे पेड़ चले गये हैं। इन्हीं पर होकर बाहर निकल चलना चाहिये। दक्षिण की तरफ़ पहरे चौकी नहीं हैं। रात चलकर सवेरे तक साफ़ जगह पर पहुँच जायेंगे।'

अटल ने पूछा, 'तुम्हारे इन जानवरों का, अपने अनाज का क्या होगा?'

उसने उत्तर दिया, 'अपने पास गहने और टके हैं, बहुत से खरीद लेंगे। दो दिन के खाने भर के लिये अन्न ले लेंगे। बहुत है। प्राण तो बच जायेंगे। इस नरवर में अपना क्या रक्खा है जिसके लिये अपने को बलि कर दें?'

अटल के मुंह से निकला, 'और यदि हम लोग न जायें तो?'

नायकिन अविलम्ब बोली, 'तो हम लोग चले जायेंगे।'

'तुमको यहाँ छोड़ जाने में दुख होगा। और कोई बात नहीं। किसी से कहना नहीं कुँवर जी, नहीं तो हम लोगों को यहाँ के सिपाही मार डालेंगे।'

अटल ने कहा, 'नहीं हम नहीं करेंगे। सोचना है हम दो जने कहाँ पड़े रहें? पर निकल कैसे जायेंगे यह समझ में नहीं आता। दूसरे उतना इतना पागल है कि वह कैसे जायगा? उसको क्या यहीं छोड़ जाओगी?'

'नहीं,' पिल्ली ने उत्तर दिया,—'मेरे पास ऐसी जड़ी-बूटियाँ और मन्त्र हैं कि सांझ-सांझ तक उसको अच्छा कर दूँगी। हमारे पास रस्सा है। कोट के कंगूरे से एक छोर अधिकार पाने वाले किसी पेड़ पर दूसरे छोर का फंदा डाल दिया जायगा और उसके सहारे उतर जायेंगे। भीतर-बाहर कोई भी न जान पायगा। कोट के नीचे यदि बाहर घूम रहे होंगे तो पेड़ पर पहुँच जाने के कारण वे भी खटखट नहीं सुन पायेंगे। दूसरे ऊपर से इधर-उधर की टटोल करके फिर उतर कर आगे बढ़ जायेंगे। मैं दोनों जगहों को और रास्ते को अच्छी तरह देख आयी हूँ।'

अटल सोचने लगा।

एक क्षण बाद बोला, 'बड़ी जोखिम का काम है। रात में होगा। सोचकर सांझ तक बतलाऊँगा।'

पिल्ली ने कहा, 'तबतक जरूरी सामान की पोटलियाँ बाँध लो नायकिन, जिसमें रात में गड़बड़ न करनी पड़े।'

अटल ने पूछा 'रात में कब चलना है?'

पिल्ली ने उत्तर दिया, 'सन्नाटे में, आधी रात के लगभग। आज ठंड है नायकिन, ईंधन कुछ ज्यादा इकट्ठा कर लेना। इतना कि एकदम बहुत उजेला हो जाय और घण्टे-आध घण्टे में जलकर अँधेरा छा जाय। लोग सो जायँगे, चाँदनी डूब जायगी और हम लोग चुपचाप चल देंगे।'

'कहीं वैसे में पहरे वाले आ गये तो?' अटल बोला।

'पहरे वाले बुर्जों और मीनारों पर रहते हैं। देख तो रहे हैं। आ जायेंगे तो कह देंगे कि हम लोग बाहर वालों की आहट लेने के लिये कोट पर गये थे। जब वे चले जायेंगे, तब हम लोग खिसक देंगे।'

नायकिन और अटल वहां से चले आये। पिल्ली ने लाखी को रोक लिया,—'थोड़ी देर यहीं वैठो। बातें करूंगी।'

वह थम गई। चेहरे पर वहुत उदासी थी।

पिल्ली बोली, 'घबराओ मत और न नन को गिराओ। अच्छे दिन आरहे हैं।'

लाखी का चेहरा तमतमा गया। 'आग लगे इस जात-पांत में। जानती नहीं थी मैं।' उसने कहा।

'मान लो कुंअर जी हम लोगों के साथ न गये और तुमको यहीं रह जाना पड़ा, फिर आ पड़ी अहीर गूजरों की लड़ाई, तब क्या करोगी?'

'मर जाऊँगी और क्या करूंगी?—जात वालों या तुर्कों के हाथों मारी जाने से तो अपनी छुरी से मर जाना अच्छा।'

'राम! राम!! कैसी बात करती हो!!! ये दिन तुम्हारे मरने के हैं!!!! मर जायें तुम्हारे वैरी। जिओ, मौजें करो और किसी बड़े राज की रानी बनो।'

'रानी बनना जिसके भाग में लिखा था सो बन गई।'

'तुम्हारे भाग में और साफ लिखा है। ऐसी रानी बनोगी कि जात पांत वाले पैरों को धूल चाटते चाटते निहोरे करेंगे।'

लाखी के नथने फूल गये। श्वास-प्रश्वास के वेगों के बीच में छाती उठने-गिरने लगी। गले की नसें उभर आईं। आँखों में आंसू आ गये।

पिल्ली ने बड़े प्यार के स्वर में कहा, 'कैसी चम्पा-चमेली सी हो मेरी लाखी! तुम्हारे रोने से मेरा कलेजा फटा जा रहा है।'

लाखी के आंसू भरे नेत्रों के भीतर पुतलियों में से चिनगारियां सी छूटकर वहीं विलीन हो गईं।

पिल्ली कहती गई, 'यहां से चल ही देना चाहिए, आज ही रात में। न तो यहां बात छिपेगी और न जान बच पावेगी। हम लोगों को कसम धराई

आयेगी तो हम भी सब नाचना पड़ेगा। फिर जान बचे तो [illegible]। उधर मुझे सिपाही भूल पर भी कुर्बान हो जायेगी। सुल्तान बड़ा जल्लाद है, पर पाने के समय वह हर एक सिपाही के साथ तो रहता नहीं।'

पिल्ली ने उसकी ओर देखा। कुछ क्षण चुप रही। लाखी धीरे-धीरे शान्त हो रही थी।

पिल्ली अचानक बोली, 'तुम्हारे भाग्य बदल से दोनों दिन अब अधिक दूर नहीं है।'

लाखी ने आँखें पोंछीं। सहज प्रश्नसूचक दृष्टि से पिल्ली की ओर देखा।

पिल्ली ने आत्मगौरव से कहा, 'तुम इतनी सुन्दर छोकरी हो कि मांडू का सुलतान तुमको अपनी गोद में बिठलाने के लिये पलक-पाँवड़े बिछा देगा। वह तो तुम्हारे ऊपर प्यार बरसाने के लिये लालायित बना रहा होगा।'

लाखी के कानों में सनसनाहट आ गई। आँखें विस्फारित हो गईं। देह हिल गई। पिल्ली ने सोचा, वार भर कर गया। बोली, 'मैं झूठ नहीं कह रही हूँ। यही बात तो बतलानी थी जिसको अभी तक मैं अपने मन में रखे हुई थी।'

लाखी के बैठे हुये गले से निकला,—'क्या?'

पिल्ली ने उमङ्ग के साथ कहा, 'खबरदार तब तक किसी से न कहना जब तक कि काम पूरा न हो जाय। कह दोगी तो हमारा कुछ भी नहीं बिगड़ेगा। कुँवर जी तुमसे नाराज़ हो जायेंगे। जाति में यों ही न रह पाओगी। मरना तुमको चाहिये नहीं। निन्नी मौज के साथ ग्वालियर की रानी बनी रहे और तुम मारी-मारी फिरो!'

लाखी ने अनुरोध किया, 'पूरी बात कहो। अभी तो कुछ भी समझ में नहीं आया।'

'पूरी ही सुनाती हूँ,'—पिल्ली बोली,—'पूरी सुनलो। मैं और पोटा जब तुमसे बिछुड़े तो एक चौकी पर पकड़ लिये गये। चौकी वाले सुल्तान

के सामने ले गये। उनको हम लोगों ने सारी कथा सुनाई। तुम्हारा हाल सुनकर सुल्तान को बड़ी दया आई। जब तुम्हारे रूप का बखान सुना तो वह उछल पड़ा। बोला, 'मैं ऐसी रूप वाली को छाती से लगा लूंगा और अपनी रानी बनाकर रक्खूंगा। हम कह आये हैं कि दो तीन दिन में लिये आते है। रात को यहाँ से बाहर होते ही जङ्गल में सवारी के लिये हाथी मिलेगा और बात की बात में सुल्तान के सामने पहुँच जाओगी, जहाँ सोने मोतियों के ढेर और मखमली पलङ्ग तुम्हारी बाट जोह रहे हैं। हम लोगों को तो अब यहाँ रहना नहीं है। न भी जा पाय तो सुल्तान के सिपाही हमको नहीं सता पायेंगे। जैसे ही उनको बतलाया कि हम कौन हैं हमको छुयेंगे भी नहीं। तुम्हारी तुम जानो। सारी बात बतला दी। जल्दी से तै कर लो जो कुछ करना हो।'

लाखी ने पीठफेर ली और कुछ क्षण तक नाक और गले को साफ करती रही। जब उसने पिल्ली के प्रति मुंह फेरा, आँखें लाल थीं और चेहरा फीका।

लाखी ने कहा, 'उनका क्या होगा?—कुँवर जी का?'

पिल्ली ने उत्तर दिया, 'सुल्तान के दीवान बनेंगे और क्या होगा?'

लाखी ने चेहरा नीचा कर लिया। होठ हिल रहे थे और भौंहें फड़क रही थीं। पिल्ली ने इतना ही देख पाया। थोड़ी देर बाद जब सिर उठाया उसका चेहरा लाल था और आँखें झुकी हुईं।

इधर-उधर देखकर लाखी ने धीरे से कहा, 'चलूंगी तुम्हारे साथ। और उनको भी ले चलूंगी। आज ही चल दो। एक बात पूँछूं तो बतलाओगी?'

'पूछो।'

'वह तुमको चाहते हैं?'

'ठीक नहीं कह सकती। शायद चाहते हैं।'

'तो तुम उनके पास बनी रहना, उनको सुख पहुंचाना।'

'मैं भी यही चाहती हूं। उनसे इस मामले की कोई बात नहीं कह सकूंगा। बाहर निकल चलने पर सब अपने आप खुल जायगा। इतने में नरवर के सवार जैसे ही पथ पर पहुंचे, मुझ को सोचो कि हाथी सवारी के लिये आ गये। उधर हम लोग सुल्तान के पास पहुंचेंगे, इधर [illegible] और [illegible] के सहारे सुल्तान की सेना का एक बड़ा भाग नरवर में घुस आवेगा। फिर, सुन लेना कि सुल्तान नरवर का भी राजा हो गया और तुम राजा और नरवर की महारानी।' पिल्ली का उत्साह [illegible] पर था।

लाखी के होठों के एक कोने में मुस्कान थी। आंख दबा के वह सूखी उन्हीं की मुस्कान में पकड़ गई।

लाखी ने बहुत प्यार से कहा,—'मैं उनको चलने के लिये तैयार कर लूंगी। अभी भेद की कोई बात नहीं बतलाऊंगी। पक्की रही?'

'बिल्कुल पक्की।' पिल्ली ने लाखी का हाथ छोड़ा।

लाखी ने गर्दन मोड़ी। मुसकुराते हुये स्वर में बोली, 'यदि सब बातें ठीक ठीक होती चली गईं तो नरवर का आधा राज तुमको।'

हर्ष की हिलोर को बड़ी कठिनाई से दबाकर पिल्ली ने कहा, 'हम गरीब नट राज का क्या करेंगे? भाग में राज कहां धरा है! पर हां, दो चार गांव जागीर में मिल गये और कुंवर जी, तो राज ही मिला समझेंगे हम सब।'

लाखी ने पीठ फेर ली। पिल्ली को लगा न केवल सुन्दर और सलोनी है वरन लाजवाली भी—कहां वह निन्नी उतनी ढीठ!

बड़े चाव के साथ बोली, 'जब वहां चलो तब हाथी पर सवार होने के पहले सब गहिने पहिनकर चलना, अच्छी से अच्छी चुनरी ओढ़कर, नई दुलहिन सी बनकर।'

'सब साज सिंगार-बाहर, अब और बात मत करो।' लाखी ने पीठ फेरे हुये ही कहा।

[३६]

अटल अनिश्चय में था। लाखी निश्चय कर चुकी थी। सन्ध्या के उपरान्त नट बटोरे हुये ईंधन का चुन-चुनकर ऊंचा ढेर करने लगे जैसे होली जलाने को हों। लाखी अटल को एक ओर हटा ले गई।

'अब ढील-ढाल का काम नहीं है।' लाखी ने कहा।

अटल बोला, 'इधर कूदता हूँ तो बावड़ी है, उधर फांदता हूँ तो कुआँ है। माँडू में पहुंचने पर जात-पांत के बाघ क्या पीछा छोड़ देंगे ?'

'जो कुछ होना होगा, देखा जायगा। चिन्ता मत करो। जब स्त्री कुएँ में कूदकर या चिता पर बैठकर प्राण देने का निश्चय कर लेती है, तब वह कोई आगा पीछा नहीं सोचती। तुम तो पुरुष हो। जो कुछ होने वाला है उसके लिये मन पक्का करलो।'

'क्या होने वाला है ?'

'सब कुछ पांच छ: घण्टे के भीतर हो जायगा। हाथ-पैर कांप गये तो हाथ में आया हुआ रस्सा छूट जायगा।'

'नहीं हाथ पैर नहीं कांपेगे। मैं डरपोक नहीं हूँ।'

'तो मन में से ढील को निकाल दो। अब जो कुछ होगा सब अच्छा ही होगा। आगे सामने जो कुछ भी आवे उसको कड़ी आंखों और कलेजा पक्का करके देखने में ही कुशल है।'

'रस्से को मैं मजबूती के साथ पकड़कर कोट से उतर जाऊँगा। फिर क्या होगा कुछ नहीं कह सकता। पर यह ठीक है कि यहां अधिक ठहरना उचित नहीं है। बात देर-सवेर उघरे बिना न रहेगी। लोगों को मालूम हो जायगा कि मैं राजा का कौन हूँ और तुम कौन हो। हँसी होगी और बुराई होगी, न जाने क्या क्या न होगा। परदेश में निकल जाने पर फिर उतनी आफ़त न रहेगी।'

'अब जो कुछ होगा सो सामने आवेगा। चिन्ता मत करो। यह बात भी सोचें, तो क्या करेगा कोई ?'

'ये नट चले जायें और हम दोनों यहीं बने रहें तो ?'

'इन लोगों ने विचार बदल दिया है, कहते हैं कि बिना हम दोनों के यहाँ से नहीं टलेंगे। इस तरह बने रहने में अब सिवाय बुराई के और कुछ नहीं दिखलाई पड़ता।'

'हाँ, हाँ, मैं जानती हूँ! जा अब हँसी-खुशी के साथ इन लोगों से बातचीत करो। मैं रोटी बनाकर सामान बाँधूँगी।'

अटल नटों के पास चला गया।

कुछ रात गये नटों ने सूखे हुये ईंधन से आग लगाई। हवा नहीं चल रही थी। धुयें का एक ऊँचा फव्वारा आकाश की ओर गया। फिर आग फैली, उसकी लौ धुयें को चीर-चीर कर आकाश को चूमने लगी। इतना उजाला हुआ कि मुहल्ले के मकानों के खपरे गिन लिये जायँ। बहुत से लोग तापने के लिये आ गये और ताप-ताप कर आँच के कारण पीछे हटने लगे। ईंधन सूखा और पतला था, इसलिये घड़ी दो घड़ी का प्रकाश देकर एकायक कम होने लगा। थोड़ी देर में हलकी-हलकी लपटें, ढेरों राख और ढेर के बीच में अङ्गारे रह गये। तापने वाली भीड़ धीरे-धीरे कम हो गई। नट, लाखी और अटल अपने बिस्तरों में जा लेटे। एक पहर रात बीते ईंधन के स्थान पर राख से ढकी हुई कुछ चिनगारियां ही रह गईं। लोग ऊँघने और सोने लगे। नट वर्ग जाग रहा था।

आधी रात के पहले ही सन्नाटा छा गया। केवल गश्त लगाने वाले सिपाहियों की आवाजें नगर की सड़कों और कोट की बुर्जों,मीनारों पर से सुनाई पड़ रही थीं। कोट ऊंची दीवारों का था और पहाड़ी की टेकड़ियों पर। नरवर वालों का विश्वास था कि शत्रु फाटकों को तोड़ कर ही प्रवेश कर सकता है, दीवार को लाँघकर नहीं। दीवार के चारों ओर गहरी खाई थी।

कुछ नट ताकते-झांकते उठे और एक नसेनी को कोट से जा टिकाया। नसेनी खेल वाले वांसों के योग से बना ली गई थी। नसेनी के डण्डों का काम रस्सियों के बँधों से लिया गया था। नट अपना ले जाने लायक सामान ऊपर चढ़ा लाये, फिर बड़े रस्से को ले गये। एक एक करके सब कोट पर पहुंच गये।

पोटा की चोट अच्छी हो गई—कभी लगी ही न थी। रस्से के एक सिरे को कोट के कँगूरे से बाँध दिया और दूसरे पर सरकफूंद का बड़ा फन्दा बनाया। निकटवर्ती ऊँचे पेड़ पर, जो गहरी सकरी खाई के पार की ढी पर जा फँसा। उसको खींच कर देख लिया। जकड़ पक्की थी।

पहले कौन जावे इसका निर्णय तुरन्त हो गया।

नायकिन ने खुसफुस की,—'मैं जाती हूँ, पहुँच जाने पर रस्से को हिलाऊंगी, तब पोटा आवे।'

अटल ने पूछा, 'दो दो नहीं जा सकते?'

लाखी ने कहा, 'एक एक करके ही जाना चाहिये। रस्सा मोटा नहीं है।'

पिल्ली ने अनुरोध किया, 'ठीक है, ठीक है। पोटा के पहुँच जाने पर लाखी जावे। फिर हम सब, अन्त में कुँवर जी और मैं। बहुत हल्की हूं मैं। इनको रस्सी का काम मालूम नहीं। अपने साथ लिवा लाऊंगी।'

'मैं तो जानती हूँ रस्सी का काम, लेती आऊंगी साथ,'—लाखी दृढ़ता के साथ बोली,—'पर रस्सी इतनी मजबूत नहीं कि उस पर दो-दो जा सकें। न होगा तो मैं और पिल्ली अन्त में काम को बाँट लेंगी।'

नायकिन चली गई। वे एकाग्रता के साथ उसकी क्रिया को देखते रहे। थोड़े से समय उपरान्त रस्सी उस छोर से हिलती हुई मालूम पड़ी।

पोटा गया। पेड़ पर पहुँच जाने के बाद रस्सी फिर हिली। क्रम से अन्य नट भी गये।

उसके उस पार पहुँच जाने पर पिल्ली बोली, 'तुम जाओ लाखी अब।'

'मैं नहीं तुम।' लाखी ने कहा।

वह बोली, 'अकेली मैं ही जाती हूँ। वहाँ पहुँच कर जैसे ही रस्सी हिलाऊँ तुरन्त आ जाना, फिर कुँवर आ।'

लाखी बोली, 'चिन्ता न करो कुँवर जी की।' वाक्य के अन्तिम शब्द इतने धीरे से कहे गये थे कि पिल्ली ने नहीं सुन पाये।

पिल्ली ने स्मरण दिलाया, 'आगे की बात याद रखना। सब तैयार मिलेगा।' और चलती हुई।

लाखी ने कहा, 'नहीं भूलूँगी जाओ।' पिल्ली चल पड़ी।

लाखी आँख गड़ाकर देखने लगी। पिल्ली जल्दी-जल्दी जा रही थी।

लाखी ने तुरन्त छुरी निकाली।

अटल बिना कुछ सोचे ही निवारण के लिये हाथ बढ़ाता हुआ एक क़दम आगे बढ़ा। 'क्या कर रही हो?' धीरे से उसके मुह से प्रश्न छूटा।

लाखी ने दबे धीमे स्वर में डांटा, 'पीछे हटो।' और कँगूरे पर से झुककर, सधकर, भरपूर बल के साथ रस्सी पर छुरी को छोड़ा। अटल ने तारों के धुंधले प्रकाश में छुरी की चमक भर देख पाई।

रस्सी खस्स से कट गई। दीवार के नीचे खाई में किसी के गिरने का धम्म से शब्द हुआ। एक तीव्र आह निकली। खाई पर के पेड़ से 'ओह!' हाय!!' की आवाजें आईं। पेड़ की डालियाँ खड़खड़ा उठीं। पेड़ की पीछे की झुरमुटों में चलने फिरने की आहटें आईं और एकदम बढ़ीं। खाई में थोड़ी सी छपछपाहट सुनाई पड़ी और फिर—पिल्ली समाप्त।

'यह क्या किया तुमने?' घबराये हुये स्वर में अटल बोला।

लाखी के मुंह से भराये हुये स्वर में निकला, 'डायन ! चुड़ैल!! सुल्तान की गोद में बिठलाना चाहती थी !!! अब ले ले नरवर का आधा राज !!!!'

'क्या कह रही हो ? अटल ने घबराहट के साथ पूछा। पास की बुर्ज पर जङ्गल की झुरमुटों से आने वाली आवाजें पहुँचीं। पहरे वालों ने ललकारा और मशालें हाथ में लीं।

'चलो नीचे सब बतलाती हूँ। उतर पड़ो संसार में कमर कसकर, और सिर उठाकर निन्दाचारें का सामना करो !' वह बोली।

वे दोनो नसेनी पर से नीचे उतर गये। इतने में मशालें लिये हुये पहरेवाले आ गये।

'क्या है ? क्या है ?' उन लोगों ने प्रश्न किया।

लाखी ने उत्तर दिया जैसे क़िले की रानी हो, 'कोट के नीचे तक बैरी फौज फांटा लेकर आ जाय और तुम्हें पता न लगे ! बाजे बजाओ और तैयार हो जाओ !! तुर्क हमला करने वाले हैं !!!'

पहरुओं ने नसेनी की तरफ़ देखा और नटों के उजड़े हुये डेरे को, जिसमें बकरे, गधे और बन्दर मशालों की झूलती लौ के कारण फड़फड़ा रहे थे।

लाखी ने कहा, 'भोर होते ही सब प्रकट कर दूँगी। अभी काम देखो।'

बाजे बज पड़े। दौड़ धूप हुई। सारा नरवर जाग गया। क़िले की सेना सावधान हो गई। नगर के योधा जूझ पड़ने के लिये तैयार हो गये।

लाखी और अटल को एक बुर्ज के भाग में स्थान दे दिया गया। वे ठण्ड के मारे ठिठुर गये थे।

लाखी ने थके हुये स्वर में कहा, 'ये लोग फाटक खोलकर क्यों नहीं लड़ जाते ?'

'तुम क्या जानो,—अन्धेरे में कहीं छाया माना जा सकता है ? किले में बैठकर रहना अच्छा लगता है।'

लाखी को यह बात भली लगी। परन्तु उसने विवाद नहीं किया। रात भर धुकुर-पुकुर मची रही। लाखी और अटल भी नहीं सोए।

अटल के मन में कुतूहल की बाढ़ सी आ गई थी। उसने कहा, 'मेरी समझ में नहीं आया कि यह सब क्या हुआ ? सुल्तान की गोदी में बिठलाने की बात क्या थी ?'

'भूल गये क्या राई में पेड़ के नीचे [illegible] के पास किसके हाथ को अपने हाथ में पकड़ कर क्या कहा था ?'

'कभी नहीं भूल सकता।'

'उसी को भुलाने और मिटाने के लिये इस [illegible] और इन [illegible] ने यह सब जाल रचा था। तुम्हारी गोदी में अङ्गारे रखकर दिल्ली जाती और मुझको राख बनाकर सुल्तान के पैरों में डाल दिया जाता।' लाखी हिलकियों रोने लगी।

'ओफ़ ! यह बात थी !!' अटल ने कहा।

शान्त होने पर लाखी ने पूरी कहानी सुनाई।

अन्त में बोली, 'इससे तो जातपांत का अपमान भला।'

[३७]

प्रातःकल के उपरान्त चहल-पहल और भी बढ़ गई। क़िले में किले के नीचे नरवर नगर में और बाहर सुल्तान की छावनी में। पिल्ले की लाश, रस्सी के टुकड़े को जो कँगूरे से बंधा हुआ था और नसैनी को नगर वालों ने देखा। नट सुल्तान के जासूस थे और उसके दस्ते को किले के भीतर लाना चाहते थे, कथा का यही भाग उन्होंने जान पाया। लाखी के प्रति उनके मन में आदर का भाव उत्पन्न हुआ। केवल कुछ स्त्रियों ने सोचा ही नहीं बल्कि कहा भी 'चण्डी है, चण्डी !'

सुल्तान की छावनी में चहल-पहल आक्रमण करने की तैयारी की थी ! चन्देरी का सूबेदार फाटकों के तोड़ने का प्रयत्न करे और ग़ियासुद्दीन ग्वालियर की ओर प्रयाण। नट बेघर द्वार से, छावनी में, रो झीप रहे थे।

सुल्तान कुढ़ा हुआ था।

मटरू से कहा, 'नटों ने सारी तरकीब चौपट कर दी। बिलकुल गधे हैं।'

'जहांपनाह उन लोगों को शक है कि किसी ने रस्सी काट दी' मटरू डरते-डरते बोला।

'बिल्कुल ग़लत,'—ग़ियास ने भर्त्सना की,—'वह आने को तैयार हो गई, सब बातें मान लीं, मशालों की रोशनी बहुत देर बाद हुई, इस पर भी कहते हो कि किसी ने रस्सी काट दी ! अहमक़ हो। उन नालायकों ने सड़ी रस्सी से काम लिया ! कमबख्त कहीं के। भगा दो छावनी में से उनको।'

आज्ञा पालन के संकेत में मटरू ने ज़िमीन तक सिर नीचे झुका दिया।

'आप राजसिंह को हुक्म दें कि आज-रात के चौथे पहर में दक्खिनी फाटक पर हमला करें। बाकी के फाटकों को लड़ाई की तरकीब समझाये देता हूं।' सिकन्दर ने कहा।

'जो हुक्म जहाँपनाह।' भट्ट बोला।

सिकन्दर ने आज्ञा दी,—'मैं ग्वालियर की तरफ आज कूच नहीं करूंगा, शायद यहीं मुझे अटकना पड़ जाय। फौज यहीं तैयार रहे।'

भट्ट आज्ञाओं को लेकर छावनी में चला गया। राजसिंह के साथी बहुत नहीं थे, परन्तु उन सबों ने अपना एक अलग शिविर बना रक्खा था। जैसे ही भट्ट ने सुल्तान का आदेश सुनाया राजपूत जूझने के लिये फड़क उठे।

भाट ने राजसिंह से कहा, 'वीरसिंहदेव तोमर ने आपके पुरखों से नरवर को छीना था। अभी यों ही तरस रहे हैं, जैसे कल की बात हो। पुरखों के अपमान का बदला चुकाओ और नरवर को वापिस लो। नरवर कछवाहों का है, तोमरों का नहीं है।'

'आज तोमरों के छक्के छुटा दूंगा,' राजसिंह ने आश्वासन दिया।

भाट ने उत्तेजित किया, 'या तो सिर को फाटक पर कटवाकर पुरखों में जा मिलिये या नरवर के किले पर अपना झंडा फहराइये।'

राजसिंह और उसके साथियों ने अमल—नशा—किया और सुल्तान की सेना के आगे हो गये।

नरवर के तीनों फाटकों पर एक साथ ही आक्रमण किया गया। राजसिंह उत्तरीय फाटक पर था।

नगर के मकानों में जलती हुई मसालों के तीर छोड़े गये। कवच रक्षित हाथियों ने चिघाड़-चिघाड़ कर फाटकों पर सिर दे दे मारा। भीतर से तीरों, जलती हुई मशालों और चट्टानों की वर्षा की गई।

हाथी, घोड़े, पैदल मरे और घायल हुये, परन्तु एक भी फाटक न टूट सका और तीसरा पहर होने को आया।

सिन्ध उस पार उत्तर में मगरोनी और पूर्व की ओर धूल के बादल से उड़ते हुये दिखलाई पड़े।

चौकी वालों ने सुल्तान को रणक्षेत्र में समाचार दिया, 'ग्वालियर से राजा मानसिंह एक बड़ी फ़ौज लिये चला आ रहा है।'

सुल्तान ने घेरे को हटाकर पीछे चल पड़ने की आज्ञा दी। राजसिंह ने नहीं माना।

'आज या तो अपना सिर दूँगा या नरवर को लूँगा।'

और वह फाटक पर अंधाधुन्ध लड़ता रहा। घायल हो गया। परन्तु अभी सिर धड़ से अलग नहीं हुआ था। तीरों से तीर खनखना रहे थे और मशालों से मशालें लड़ रही थीं। राजसिंह का हाथी उसी रणोन्माद में जान पड़ता था। लोहूलुहान हो जाने पर भी फाटक को टक्करें पर टक्करें दे रहा था।

सुल्तान ने फिर कहलवाया, 'मानसिंह तोमर आ गया है, तुरन्त आकर उसको ललकारो और सामना करो।'

तब फाटक को जलती हुई आँखों देखता हुआ राजसिंह लौटा।

ग्वालियर की सेना सिन्ध पर आ गई और तीरों का युद्ध शुरू हो गया। राजसिंह मानसिंह के निकट पहुँचने के लिये पागल हो उठा था, पर मानसिंह को न पा सका।

दोनों सेनायें उलझ गईं। मानसिंह की ताज़ी सेना की ठोकर को मांडू की सेना पी-पी जा रही थी।

नरवरवालों को मालूम हो गया कि उनका राजा आ गया है और लड़ाई के पलड़े में विजय अपनी ओर झुकाई जा सकती है। फाटक खोलकर चुने हुये पाँच हजार सवार नरवर से निकल पड़े और उन्होंने मांडू की सेना के पिछले बाजू पर प्रचण्ड वेग के साथ आक्रमण कर दिया। उत्तर और पूर्व से ग्वालियर की सेना दबाव पर दबाव डाल ही रही थी

सुल्तान ने कहा केवल दक्षिण-पूर्व के कोने से निकल जाने का रास्ता है। सब सरदार, जहाँ-तहाँ का पीछा छूट गया।

मानसिंह के सामने समय ही रह गई। सुल्तान का साथ उसको भी छोड़ना पड़ा।

'फिर आऊँगा, बहुत जल्दी आऊँगा', दाँत पीसकर सुल्तान ने अपने आप कहा।

सूर्योदय के पहले ही मांडू की सेना अपनी छावनी से काफी सामान छोड़कर कोसों पीछे हट गई।

किले के मुख्य फाटक से मानसिंह और सेना का एक बड़ा भाग भीतर आ गया। बाकी सेना बाहर छोड़ दी गई, यदि मांडू की सेना लौट पड़े तो युद्ध में किसी प्रकार की असुविधा न हो।

विश्राम स्थान पर पहुँचते पहुँचते मानसिंह को सन्ध्या हो गई।

घायलों की देखभाल,—सैन्य-शिविर की व्यवस्था, बैरी की छावनी में पाये गये माल की गिनती और संभाल तथा आक्रमण से रक्षा की योजना संगठित करते-करते काफी रात चली गई। तब निहालसिंह, मानसिंह के पास आया।

निहालसिंह थका हुआ था, परन्तु उत्साह में कोई कमी नहीं आई थी।

आते ही बोला, 'महाराज, नरवर नष्ट होने से बालबाल ही बचा है।'

'हाँ हम लोग ठीक समय पर आ गये। सम्भव है सुलतान कल लौट पड़े। रात भर विश्राम किये लेते हैं सैनिक। कल फिर भिड़ जायंगे। कोई चिन्ता नहीं।'

'नहीं महाराज, मैं आज के युद्ध की बात नहीं कह रहा हूँ। नगर के भीतर आकर मालूम हुआ कि एक स्त्री ने अपनी वीरता से नगर को महासंकट से कल रात बचाया।'

'स्त्री ने ! कैसे ?'

'नगर में सुल्तान के भेजे हुये कुछ नट आ गये थे। उन्होंने कोट के कँगूरों से रस्सी बाँधकर मांडू की सेना को भीतर चढ़ाने का प्रयत्न किया। उस स्त्री ने नटों को मार गिराया और रस्सी को तालवार से काट दिया ।'

'कौन है वह स्त्री ? कहाँ है ?'

'यहीं कहीं नगर में है। भोर पता लग जायगा।'

कौन है वह ? उसने बहुत बड़ा काम किया है।'

'लोगों ने बतलाया कि गूजर है। पति-पत्नी मगरौनी से आये हैं, यहां कहते हैं कि ग्वालियर के रहने वाले हैं।'

'ओह ! अच्छा !! वे ही होंगे, वे ही दोनो होंगे। धन्य भगवान, यहां हैं वे दोनों !'

'कौन महाराज ?'

'लाखारानी और अटलसिंह, इतना साहस लाखी में ही हो सकता है।'

'परन्तु लाखी तो महाराज, अहीर है।'

'तो क्या हुआ ? किस ठाकुर से कम है ? भोर होते ही ढूंढो उन दोनों को। मैं भेंट करूँगा।'

[[illegible]]

लाखी और अटल [illegible] दालान में आ गये। [illegible] [illegible] बिल्ली [illegible] [illegible] [illegible] फाटकों के [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] जनता के मन में [illegible] [illegible] इसी [illegible] [illegible]।

जब उन्होंने फाटक पर [illegible] बार-बार [illegible], तब उनके साहस और शौर्य को देखकर [illegible] रक्षकों का हृदय धुक-धुक करने लगता था। परन्तु मानसिंह के [illegible] आ जाने से वे [illegible] हो गये और शत्रु की पराजय में संदेह न रहा।

फाटक के खुलते ही लाखी और अटल को मानसिंह के प्रवेश का हाल मालूम हो गया।

हर्ष को उदासी के सांचे में ढालने का प्रयत्न करते हुये लाखी बोली, 'अब क्या होगा ?'

अटल ने कहा, 'होगा क्या ? जो होना था वह हो चुका। नरवर को बचा लेने का पुण्य तुम्हें मिलना चाहिये। पर हम उनसे मांगने नहीं जायँगे और न बतलायेंगे कि हम लोग यहां हैं। बुलाया तो सामने जा खड़े होंगे, बस।'

'राजा हम लोगों को चाहते होंगे। अब कोई बाधा भी नहीं रही—नट सब समाप्त हो चुके हैं।' लाखी बोली।

लाखी जानती थी कि नायकिन ने कुटिलता के साथ कहा था कि अटल गूजर हैं और यह भी ऊंची जाति की है; परन्तु जिनसे कहा

'स्त्री ने ! कैसे ?'

'नगर में सुल्तान के भेजे हुये कुछ नट आ गये थे। उन्होंने कोट के कँगूरों से रस्सी बाँधकर मांडू की सेना को भीतर चढ़ाने का प्रयत्न किया। उस स्त्री ने नटों को मार गिराया और रस्सी को तलवार से काट दिया।'

'कौन है वह स्त्री ? कहाँ है ?'

'यहीं कहीं नगर में है। भोर पता लग जायगा।'

कौन है वह ? उसने बहुत बड़ा काम किया है।'

'लोगों ने बतलाया कि गूजर है। पति-पत्नी मगरौनी से आये हैं, यहां कहते हैं कि ग्वालियर के रहने वाले हैं।'

'ओह ! अच्छा !! वे ही होंगे, वे ही दोनो होंगे। धन्य भगवान, यहां हैं वे दोनों !'

'कौन महाराज ?'

'लाखारानी और अटलसिंह, इतना साहस लाखी में ही हो सकता है।'

'परन्तु लाखी तो महाराज, अहीर है।'

'तो क्या हुआ ? किस ठाकुर से कम है ? भोर होते ही ढूंढो उन दोनों को। मैं भेंट करूँगा।'

[३८]

लाखी और अटल बुर्ज के खंड से हटकर एक निकटवर्ती मन्दिर के दालान में आ गये। उन पर जनता की श्रद्धा चू पड़ी। गूजर की नारी तक कितनी दिलेर होती है। यह निष्ठा साधारण जन के मन में छा गई। दिन भर फाटकों पर धावे होते रहे। सैनिकों का विश्वास था कि फाटकों के तोड़ने वाले ने अभी जन्म नहीं लिया है—नगर निवासी और क़िले वाले भूखों मर कर ही आत्मसमर्पण कर सकते हैं। साधारण जनता के मन में उतनी आस्था नहीं थी। भाग्य में जो बदा होगा, इसी कुटे–पिसे आसरे में सन्तोष था।

जब उत्तरीय फाटक पर राजसिंह कछवाहा ने पागलों की तरह वार पर वार किये, तब उसके साहस और शौर्य को देखकर नरवर रक्षकों का हृदय धुक–धुक कर उठता था। परन्तु मानसिंह की सेना के आ जाने से वे सुस्थिर हो गये और शत्रु की पराजय में सन्देह न रहा।

फाटक के खुलते ही लाखी और अटल को मानसिंह के प्रवेश का हाल मालूम हो गया।

हर्ष को उदासी के साँचे में ढालने का प्रयत्न करते हुये लाखी बोली, 'अब क्या होगा ?'

अटल ने कहा, 'होगा क्या ? जो होना था वह हो चुका। नरवर को बचा लेने का पुण्य तुम्हें मिलना चाहिये। पर हम उनसे माँगने नहीं जायँगे और न बतलायेंगे कि हम लोग यहाँ हैं। बुलाया तो सामने जा खड़े होंगे, बस।'

'राजा हम लोगों को चाहते होंगे। अब कोई बाधा भी नहीं रही—नट सब समाप्त हो चुके हैं।' लाखी बोली।

लाखी जानती थी कि नायकिन ने कुटिलता के साथ कहा था कि अटल गूजर हैं और यह भी ऊंची जाति की है; परन्तु जिनसे कहा

था वे छोटे छोटे से किसान मजदूर हैं, बात उनसे आगे न गई होगी और न जा सकेगी।

जो बात उसके मन में उखड़-उखड़ पड़ रही थी पूछ डाली, 'क्या उस पिल्ली पर कुछ मन चल गया था ?'

अटल की गर्दन झटके के साथ ऊपर उठ गई और आंखें निकल सी पड़ीं।

'ऐसी बेसमझी की बात क्यों कही ?'

'अरे तो बुरा क्यों मान गये ? ऐसा तो होता ही रहता है। पुरुष तो चूक ही जाते हैं।'

'क्या बकती हो ? अब याद आया तुमने रात में कहा था। पिल्ली मेरी गोद में अङ्गारे बनकर आती। उस समय समझ में नहीं आया था। तुमने क्यों कहा ? मेरी सौगन्ध है बतलाओ।'

'यों ही सौगन्ध धरा दी ! क्या कोई स्त्री बिना साँठ–गाँठ के अपनी छाती किसी पर पुरुष के सामने उघाड़ेगी ? मैंने कल देख लिया था।'

'वह स्त्री थी ! घूरे पर मंडलाने वाली तितली को स्त्री कहा जाता है ? बहुत से मन्दिरों के द्वारों पर जवान स्त्रियों की जो बेहूदी मूर्तियाँ बनाकर खड़ी कर दी गई हैं, वे क्या किसी देवता के हुकुम से घड़ कर खड़ी की गई है ? मैं क्या कोई मक्खी हूं जो मैले पर जा गिरूँगा ? मैं क्या–'

'अरे यों ही बरस पड़े। मैं कभी सोच भी नहीं सकती थी कि स्त्री इतनी निर्लज, ऐसी चुड़ैल हो सकती है ?'

'और मैं क्या कोई भूत हूँ या पलीत हूं ?'

'अरे तो मुझको माफ़ करो, कुंवर जी। भ्रम में पड़ गई। पर उसको मार दिया तो अच्छा किया न मैंने ?'

'अच्छा नहीं, बहुत अच्छा किया। मुझको सब बातें मालूम हो जाती तो मैं दिन में ही उन सबों को मार डालता।'

'उनके भाग में मरने के लिये दिन नहीं वदा था, रात ही वदी थी। दिन में कुछ कर डालने से सब काम बिगड़ जाता। अच्छा तो तुमने क्षमा कर दिया न मुझ बेसमझ को ?'

'बेसमझ तो नहीं हो—समझ तो तुममें मुझसे अधिक है। तो, वचन दो कि ऐसी बात आगे कभी नहीं कहोगी।'

'कभी नहीं कहूँगी, कभी नहीं कहूँगी। बस या कुछ और ?'

वे दोनो एक दूसरे से लिपट गये—और रोये। दिन चढ़े निस्तार के उपरान्त दोनों उसी दालान के एक कोने में आ बैठे।

'अब क्या होगा ?' मन में यह प्रश्न था।

पड़ौस की एक अधेड़ स्त्री मन्दिर में जल चढ़ाने के लिये आई। देवार्चन करने के उपरान्त उन दोनों से कुछ अन्तर पर आ बैठी। मुस्कान और घूँघट की सम्भाल के साथ उसने कहा, 'तुम्हीं हो न वह गूजर ठाकुर जिन्होंने रात में तुर्कों को कोट पर से मार भगाया ?'

अटल ने उत्तर दिया, 'वे गूजर ठाकुर हमीं लोग हैं, तुर्क आ नहीं पाये थे; आने को ही थे, नटों ने उनको बुलाया था। नटों को मार भगाया सो वे भी भाग गये।'

'सुनते हैं, इन्होंने बहुत से तुर्क मार दिये। नटों को मारा होगा, कौन जाने। नट बेड़िये तुर्कों से कुछ कम थोड़े ही होते हैं। तलवार चलाई थी इन्होंने ?'

'हाँ—आँ छुरी।'

'देखने में तो दुबली छरेरी हैं, पर बड़ी विकट हैं। राजा इनाम देगा।'

'देगा तो ले लेंगे।'

'वाह ! वाह !! मांग न लो जाकर। घर बैठे थोड़े ही कोई जागीर लगाने आता है। कहाँ के रहने वाले हो ?'

'दूर के।'

'यहाँ नातेदारी होगी ?'

'नहीं तो !'

'गूजर तो बहुत हैं यहाँ। अहीर भी हैं।'

'होंगे।'

'इनकी जाति के अहीर तो यहां पड़ौस में ही रहते हैं।'

'किनकी जाति के ?'

उस स्त्री ने दांत निकाल कर लाखी की ओर संकेत किया। लाखी ने उसको तिरछी करारी दृष्टि से देखा, वह सहमी नहीं।

अटल के मुंह से प्रश्न निकला, 'तुम्हें कैसे मालूम ?'

उसने कहा 'हमें कैसे मालूम ! सच्ची बात कहीं छिपती है भैया !! अपना वरन क्यों छिपाते हो ? बस्ती भर में खबर है कि तुम गूजर हो और—'

'मैं अहीर हूँ', लाखी ने कड़वे स्वर में कहा, 'किसी अहीर के यहाँ या तुम्हारे यहाँ नातेदारी करने नहीं आये हैं हम यहाँ।'

स्त्री उठ खड़ी हुई। बोली, 'राम ! राम !! मुझको क्या करना है। मैंने तो बस्ती की बात सुनाई। तुम्हें यह ठाकुर रक्खे हैं सो रक्खे रहें, हमको क्या पड़ी।'

'रक्खे नहीं है, बाई, ब्याहता है यह मेरी ! भांवर फेरे वाली ब्याहता।' अटल ने कहा।

स्त्री चलने को हुई। बिरबिराई,—'भगवान, कैसा घोर कलजुग आ गया है। गूजर और अहीर का ब्याह !!'

मोड़ से टापों का शब्द सुनाई पड़ा। स्त्री रुक गई और वे दोनों आहट की दिशा में देखने लगे। एक क्षण उपरान्त आगे-आगे मानसिंह पीछे-पीछे निहालसिंह और कुछ सवार आ रहे थे! उनके पीछे नगर-निवासियों की भीड़। उन दोनों पर निगाह पड़ते ही लाखी और अटल

उठ खड़े हुये। सिर नीचे कर लिये। सोचा मानसिंह बाहर जा रहे हैं, एक क्षण में निकल जायेंगे।

मानसिंह मन्दिर के सामने आते ही घोड़े से नीचे कूद पड़ा। निहाल भी कूद पड़ा। सवारों ने दोनों के घोड़े थाम लिये। मानसिंह दालान के सामने आकर खड़ा हो गया।

मुस्करा कर लाखी से बोला, 'ऐसा छिपाया अपने को जैसे किसी की चोरी की हो।'

लाखी ने गर्दन नीची करली।

'नरवर को बचाने वाली तुम्हीं हो या कोई देवी यहाँ आ गई थी?'

लाखी ने ऊँची सांस को धीरे धीरे दबाया। मन्दिर के सामने भीड़ इकट्ठी हो गई!

'तुम वैसे थोड़े ही सिर उठाने की हो।'

लाखी ने नीचा सिर किये हुये ही आंखें ऊपर उठा कर नीची करलीं। कुछ गीली हो गई थीं।

मानसिंह ने अपने गले से सोने मोतियों का कण्ठा निकाला, दोनों हाथों से पकड़ा और बोला, 'सिर ऊँचा करो।'

लाखी ने धीरे धीरे सिर ऊँचा किया। होठ कांप रहे थे। आंखें आंसूओं से भर गई थीं। राजा ने उसके गले में हार डाल दिया। आंखों से आँसू बहकर गले में पड़े हुए हार के मोतियों पर ढलकने लगे मुंह को गदेलियों से ढककर लाखी सिसकने लगी! अटल अपने सूखे हुये होठों पर जीभ फेर रहा था।

'लाखारानी घोड़े पर चढ़ना जानती हो?'

लाखी ने कोई उत्तर नहीं दिया। नाहीं का सिर हिल दिया।

'हाथी पर बैठकर ग्वालियर जाओगी।' कहकर मानसिंह अटल के सम्मुख हुआ।

हँसकर बोला, 'श्रीमान कुँवर जी, आपको यह सब क्या सूझा ? बिना किसी से कुछ कहे सुने ही चल दिये ! और यों ही भटकते फिरे !!'

अटल कुछ उत्तर देने के लिये गले को सँभालने लगा और सूखे होठों को गीला करने में और भी प्रयत्नशील हुआ।

उस समय बोधन पुजारी का चित्र मानसिंह की आंखों के सामने फिर गया, अटल की आंखों में तो था ही।

मानसिंह गम्भीर हो गया। विहाल से कहा, 'हाथी मँगवाओ।'

'कांपते हुये टूटे धीमे स्वर में लाखी ने प्रतिवाद किया, 'ऐसे ही चली जाऊँगी।'

उसका प्रतिवाद नहीं सुना गया।

थोड़ी देर में हाथी आगया। चढ़ने के लिये महावत ने हाथी को बिठला दिया। सीढ़ी लगादी गई। लाखी नीचे नीचे इधर-उधर देखने लगी, जैसे बगलें झांक रही हो।

राजा ने कहा, 'वह नसैनी कहां है जिस पर होकर नट तुर्कों को नरवर के भीतर लाना चाहते थे ?'

लोगों ने बतलाया, तोड़ फोड़ डाली गई है।

राजा बोला, 'बैठो लाखारानी हाथी पर और चलो मेरे डेरे पर। तुम भी बैठो कुँवर जी। नरवर को निस्संकट करके फिर ग्वालियर चलेंगे।'

लाखी ने अपने मैले-कुचैले मोटे कपड़ों को देखा। एक क्षण के लिये ध्यान उन रँग-बिरँगे कपड़ों की ओर गया जो उसने नगरोनी में कुछ समय के लिये पहिने थे। चढ़ने के लिये उसका पैर नहीं उठ पा रहा था।

मानसिंह ने हंसकर अटल से कहा, 'उठालो इनको और बिठाला दो हाथी पर। व्याह किस दिन के लिये किया था ?'

अटल ने आई हुई हँसी को रोका। चलने के लिये लाखी को हाथ का हलका सा संकेत किया।

लाखी का चेहरा लाज के मारे लाल हो गया। कांपते हुये होठों पर मुस्कान आई। एक आँख से मानसिंह को देखा—कृतज्ञता टपक गई उस चितवन में—और हाथी पर जा बैठी। अटल भी।

उपस्थित जनता ने मानसिंह का जयजयकार किया। वे सब मानसिंह के साथ उसके डेरे पर चले गये।

तमाशा देखने वाली स्त्रियों में से एक ने दूसरी से कहा,

'अपना राजा है बहुत अच्छा। बड़ा रसिया है। है न ?'

'रसिया न होता तो उसको हाथी पर कैसे चढ़ा देता ? सलहज है उसकी। साले को भी हाथी पर चढ़ा दिया ! अच्छा तो रहा।'

'बाई ! रूप-सरूप ने बिठला दिया हाथी पर। क्या सचमुच तुर्कों की सेना को रस्सी और उस नसेनी पर से नट उतार लाते नगर में ?'

'की तो लाखी ने बहादुरी। इतना तो कहना पड़ेगा।'

'इतनी कि राजा घोड़े पर और वह छोकरी हाथी पर ! पर हाँ रूप लुनाई है उसमें। तुमने लखा या नहीं, जब हाथी पर चढ़ने को जाने लगी, तब कैसी आँख उठाई थी राजा पर ?'

'राजा उसको ग्वालियर ले जा कर महलों में डाल लेगा।'

'राजा जो ठहरा, चाहे जो करे। पर है अच्छा। ठीक समय पर आगया नहीं तो नरवर राख हो जाती। उसी ने बचाया।'

हाथी पर चढ़ा अटल सोचता जाता था, मेरे बैल कहां होंगे। सुभीते में चुपचाप खोज करवाई परन्तु पता नहीं चला।

मानसिंह कई दिन तक नरवर में रहा। जब मालूम हो गया कि ग़ियासुद्दीन मांडू पहुँच गया तब ग्वालियर की ओर चला। ग्वालियर जाने के पहले उसने नरवर नगर के कोट बाहर जयतिखम्भ की शिला पर मांडू के सुल्तान की पराजय की बात खुद वादी। यह स्थान वही था जहाँ से मांडू की सेना के पैर उखड़े थे और हार कर पीछे हटी थी।

नरवर से ग्वालियर जाने के पहले मानसिंह आदेश दे गया,–'नरवर का किला और नगर कुँअर अटलसिंह की जागीर में समझा जायगा। किलेदार, सेनानायक सब वे ही रहेंगे, प्रबन्ध भी वही रहेगा। कागजों में जागीर पर नाम कुँअर अटलसिंह का लिखा जायगा। वह मेरे साथ ग्वालियर में रहेंगे।'

ग्वालियर पहुँचने पर लाखी को मृगनयनी से जो प्यार स्वागत, और आल्हाद मिला उससे वह अपनी सब व्यथाओं को भूल गई। कला को अपने से मिलता-जुलता पाकर आश्चर्य तो कम हुआ, कुढ़न अधिक हुई।

अटल से अकेले में कहा, 'फिर कहीं वैसे न बौखला जाना जैसे कला को मेले में देखकर हो गये थे।'

अटल हँस पड़ा,—'मैं—क्या मूर्ख हूँ जो तुम्हारे उसके अन्तर को न पहिचान पाऊँगा?'

लाखी की कुढ़न विलीन हो गई।

अटल ने अपने मन में कुछ पहिचानें बनालीं और फूँक-फूँक कर पैर रखता हुआ सा चलने लगा।

कुछ दिनों यह सादृश्य मृगनयनी के विनोद का कारण रहा। इस विनोद में कला उन सब के निकटतर सम्पर्क में आ गई।

[३०]

माँडू पहुँचने के बाद गियासुद्दीन ने नायकिन के वर्ग को अपनी सल्तनत से बाहर निकलवा दिया ! मटरू को कोड़ों से पिटवा दिया ! ! और अपने अखबार नवीस—दैनिकी या इतिहास लेखक को आज्ञा लिखने को दी—सुल्तान गियासुद्दीन खिलजी ने मानसिंह तोमर को नरवर के मैदान में हराया और उसे ग्वालियर की ओर खदेड़ कर खुद माँडू चला आया। किसी किसी गुप्पे चुप्पे ने लिख कर रख लिया कि सुल्तान गियासुद्दीन नरवर को जीत नहीं सका और थक कर लौट आया। नरवर के जयस्तिम्भ में जो कुछ खुदवाया गया, वह कुछ और था।

राजसिंह कछवाहा घायल होकर चन्देरी लौटा। स्वस्थ होने में उसको बहुत दिन लगे। वैर प्रतिशोध और नरवर के पुनः प्राप्त करने का हठ और भी पक्का हो गया। उसको मालूम हो गया था कि कला और गायक बैजू ग्वालियर से नहीं लौटे। वह उनकी प्रतीक्षा में था।

मटरू के शरीर ने कोढ़ों की मार चुपचाप सह ली। क्रोध के चले जाने पर गियासुद्दीन ने अपने हुजूर में उसके आने की खुलासी कर दी और मटरू फिर उसी हँसी खुशी के साथ गियास के पास आने जाने लगा जैसे पहले आता जाता था। लुक-छिपकर वह गियास के बेटे नसीरुद्दीन के पास भी हो आता था।

'जानआलम के लिये न मालूम कितनी परियाँ तरसती तड़पती हैं। समझ में नहीं आता कैसे यहां तक आ पावें।' मटरू ने एक रात लम्बी आह भरके नसीरुद्दीन से कहा।

'भाई ख्वाजा, इन मौलवियों के मारे तो बेहद परेशान हो गया हूँ। कमबख्त दिन-रात पीछे पड़े रहते हैं। मुश्किल से आज तुमको अकेले में बुला पाया।' नसीर बोला।

'मुल्ला, मौलवी, काजी जहांपनाह से भी कुढ़े हुए से हैं।'

'इन सब को मरवा दें तो अच्छा रहेगा।'

'जानआलम ने ठीक फरमाया, मगर मुनासिब नहीं है। आम सिपाही तो इन्हीं लोगों का मुंह ताकते हैं।'

'फिर क्या हो? कैसे हो? अब्बा जान को पूरे तीस बरस हो गये हैं राज करते करते और इन मुल्लों की खुशामद करते करते।'

'जो कोई भी हिन्दुस्तान में सल्तनत कायम करना चाहे या कायम रखना चाहे उसको मुल्लों की दुआ अपने साथ रखनी होगी, मगर जहांपनाह ने हमेशा मुल्लों को गालियां दीं।'

नसीर उखड़ पड़ा।

'गालियाँ तो मैं भी देना चाहता हूँ। मेरी जान सांसत में दबोच रक्खी है।'

'बिचारे मुल्लों का क्या कसूर है। किसी के हुक्म पर ही तो वे चलते हैं।'

'तो अब तो बर्दाश्त की हद हो गई।'

मटरू ने नीची गर्दन और भी नीची कर ली।

'जानआलम, बन्दा ठहरा गुलाम, क्या अर्ज कर सकता हूं! सुनते हैं घूरे के भी कभी न कभी दिन फिरते हैं।'

मटरू ने नीचे ही नीचे कनखियों आँखें चलाईं। नसीर के तमतमाये चेहरे को देखा।

जिर्मात पर माथे को टेक कर बोला, 'जान आलम कभी कभी तकदीर से तदबीर बड़ी हो जाती है।'

नसीर तकिये से टिककर कुछ सोचने लगा। मटरू माथा टेके हुए था।

नसीर बोला, 'अच्छी तरह बैठ जाओ, मटरू। तुम अच्छे आदमी हो।'

मटरू फिर ज्यों का त्यों बैठ गया।

नसीर ने कहा,'तक़दीर और तदबीर की बहस को मैंने भी पढ़ा है। मगर लिखी हुई बहसों से तो दिमाग़ सड़ने लगा।'

'बहस नहीं, जहांपनाह तवारीख देख लें। तदबीर की मिसालों पर मिसालें मिलेंगी। दिल्ली की बादशाहत की, गुजरात की सल्तनत की बहमनी खानदान की।'

'मुझको कमबख्तों ने यह सब कभी नहीं पढ़ाया। तुम एकाध सुनाओ।'

'जानआलम गुलाम तो जाहिल है और ज़बान कट कर गिर जाय अगर कोई बेजा बात मुंह से निकल जाय।'

'तुम बेखटके कहो। मैं ग़ौर के साथ सुनूंगा।'

'जानआलम ने गुजरात के पहले सुल्तान मुज़फ़्फ़रशाह का हाल तो सुना ही होगा।'

'सुना है, पढ़ा नहीं है। मुज़फ़्फ़रशाह को उसके पोते अहमदशाह ने ज़हर देकर खतम कर दिया था।'

'कुछ ऐसा ही गुलाम ने भी सुना है। और ज़ूनाखां मुहम्मद तुग़लक, बादशाह दिल्ली का भी हाल जानआलम ने सुना होगा।'

'सुना है, कुछ ऐसा ही उसने भी किया था।'

'तवारीख भरी पड़ी है जानआलम, मगर झूठी भी हो सकती है।'

नसीर तकिया पर से सिर उठाकर अकड़कर बैठ गया।

'अगर तवारीख ग़लत हो सकती है तो मुल्लों ने मुझको जो कुछ पढ़ाया है, वह सब दिमाग़ पच्ची ही रही।'

दोनो थोड़ी देर चुप रहे।

नसीर बोला, 'परियों वाली बात जो तुमने सुनाई थी वे कहां हैं? कैसे आवें यहां तक?'

'जानआलम',—मटरू ने बतलाया,—'सोना-चांदी और हकूमत, अख्तियार हाथ में हो तो चाहे जितनी परियां हाथ जोड़कर सामने ...

खड़ी होंगी। यहाँ हैं बहुत सी तो। एक से एक बढ़कर और मालवे की सल्तनत में बहुत जगह। बाहर भी हैं। सोना चांदी और जवाहिरात उनको बात की बात में हुजूर के क़दमों में ला सकते हैं।'

'मेरी सलाह में शामिल होने को तैयार हो ?'

'जान आलम गुलाम की बोटी-बोटी को अपना समझें।'

'देखो, अगर भेद खुल गया तो तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कुत्तों को खिला दिये जायँगे और मैं—मारा तो नहीं जाऊँगा, मगर तकलीफ़ भुगतनी पड़ेगी। लेकिन, जितनी भुगत रहा हूँ उससे शायद ही ज्यादा हो।'

'मेरा दिल जानता है जैसा कुछ बरदाश्त किया है, जानआलम।'

मटरू रोने लगा। नसीर ने शान्त किया।

'तुम्हारे दिन भी फिरने को हैं, मटरू। अब्बा जबसे नरवर को जीत कर आये हैं तब से जशन पर जशन मनाये जा रहे हैं। मैं भी जशन करूँगा।'

'हाँ जानआलम, जीत तो जरूर आये हैं मगर नरवर के शहर में दाखिल नहीं होसके। तवारीख में वाक़या जरूर दर्ज करलिया गया है।'

'अस्लियत तो, हुजूर मानसिंह के साथ रही और वाक़या अखबार नवीस के काग़जों में आ गया है। यानी वह परी हाथ नहीं लगी।'

'मैं हो महरूम रक्खा जा रहा हूँ, अकेला मैं ही, दुनियां के आराम से ! मैंने क़सम खाई है कि जब मैं सुल्तान हो जाऊँगा तब—'

नसीर चुप रह गया। मटरू उसकी तरफ नीची निगाहों ताकने लगा।

'एक पखवारे में कितने दिन होते हैं मटरू ?' नसीर ने पूछा।

अकबकाहट के साथ उसने उत्तर दिया, 'जानआलम कभी चौदह, कभी पन्द्रह।'

'मेरे पखवारे में पन्द्रह दिन होंगे एक-एक दिन के लिये एक एक हजार परियां। तब चैन लूंगा जब पूरी पन्द्रह हजार हो जायँगी। क़सम खाली है माँडू को आलीशान परिस्तान बनाने की। क्या कहते हो?'

'जानआलम सब कुछ कर सकते हैं और करेंगे। मांडू का तख्त मिलने भर की देर है। सब आसान हो जायगा।'

'तुम मेरी मदद करोगे न?'

'जानआलम से पहले ही गुजारिश कर चुका हूं कि बोटी-बोटी हाजिर रहेगी।'

मुट्ठी को कसकर नसीर ने कहा, 'एक आदमी के लिये तीस बरस के राज का जमाना बहुत होता है। तख्त अब मुझको बुला रहा है और अब्बाजान को बहिश्त। मैंने तै कर लिया है।'

मटरू ने अपने हर्ष को पी लिया।

बोला जानआलम, होशियारी से काम लें। मुल्लों को नाराज न करें।

'हर्गिज नाराज़ नहीं करूँगा। वे भी घड़ियां गिन रहे होंगे। उनके मन की सी करता जाऊंगा और मौके को हाथ से न जाने दूंगा।'

'मुल्ले परेशान हैं, हुजूर का साथ देंगे।'

'मैं तुमको कभी-कभी सलाह के लिये बुला लिया करूँगा।'

'जानअलाम की खिदमत में जान हाज़िर रहेगी, मगर गुलाम को ठीक मौके पर ही बुलाया जाय तो मिहरबानी होगी।'

'मौके की तलाश जशन में ही करूँगा।'

'हथियार न चलाया जावे, जानआलम।'

'तुमने अभी अभी कहा था कि गुजरात के मुजफ्फरशाह पर उसके पोते ने हथियार नहीं चलाया था, कुछ और चलाया था। वही बेहतर रहेगा। और फिर जैसे अहमदशाह ने अहमदाबाद बसाया, इमारतें बनवाईं, मैं भी कुछ कर-धर लूंगा और तवारीख़ में नाम करा लूंगा।'

[४०]

लल्ली और अटल को ग्वालियर के क़िले के भीतर कर्णमहल के—जिसको कर्ण–मन्दिर भी कहते थे—एक भाग में निवास स्थान दे दिया गया। मानसिंह ने एक नये महल का निर्माण आरम्भ कर दिया था परन्तु अभी भूमि के नीचे का केवल एक खण्ड कुछ आकार प्रकार पा सका था।

सुमनमोहनी सोचती थी, मृगनयनी भी रहेगी इस नये महल में और साथ में उसकी लाखारानी !

मृगनयनी संगीत सीखती है, लिखना, पढ़ना, चित्रकारी और न जाने क्या क्या, सो क्यों ? राजा उसके पास अधिक नहीं बैठते-उठते। तब अच्छा लगता है। परन्तु उस बीच में कहाँ रहते हैं, क्या करते हैं, यह नहीं मालूम हो पाता है। मृगनयनी के अन्तःपुर में कम जाते हैं, तो मेरे में और भी कम आते हैं। एक नहीं कई लड़ाइयाँ जीत चुके हैं, इससे महल की शोभा कितनी बढ़ी है ? जब आ जाते हैं तब लगता है, मेरे सिवाये यह और किसी के नहीं। तभी तो चार कड़खे सुना देती हूँ। न सुनाऊँ तो राजा किसी गांव से एकाध सुन्दरी का संग्रह और कर लायें। क्या ठीक है इनका। ब्याह के बाद जब मैं आई तो कितना प्रेम दरसाते थे ! अस्तु। अब तो इस तगड़ी गाँव वाली को छकाना है। एक से दो हो गईं ! तो क्या हुआ, हम आठ हैं। नया महल इतना बड़ा और ऐसा बनवाना चाहते हैं कि हम सब उसमें रह सकें। कैसे निभाव होगा ? मृगनयनी और लाखी की चबड़-चबड़ चलेगी। कहां तक सहूँगी ? कितना बड़ा बनेगा यह महल आखिर ? क्या मेरे अन्तःपुर से दूर रहेगा मृगनयनी का अन्तःपुर ? कितना भी दूर रहे, रहेगा तो आंखों और कानों के निकट ही। राजा से इसकी क्या बातें होती हैं ? मेरी दूती मृगनयनी के पास ठहर नहीं सकती। समाचार देने वाला कोई तो होना चाहिये। इस लड़की कला को—साधूँ-साटूँ तो कैसा रहेगा ?

वह मृगनयनी की चेरी या दूती नहीं है; कलायें सिखलाती है; मैं भी क्यों न सीखने लगूं ? और यदि राजा ने किसी और सिखाने वाली को मेरे लिये लगाया तो ? तो मैं कदापि नहीं मानने की। राजा को मेरा हठ रखना पड़ेगा। लाखी को भी सिखलाने लगी है, तब मैं क्या उससे भी गई बीती हूँ ? आने दो आज राजा को, देखूंगी। परन्तु वे आते भी तो जबतब ही हैं। कभी तो आयंगे। नहीं आयेंगे तो मैं बुलबाऊंगी। कला मेरे निकट भी उतने ही समय तक रहेगी, जितने समय तक वह मृगनयनी के पास रहती है। लाखी और वे सङ्ग में सीखती हैं। परन्तु मैं तो उन के आवास में जाकर नहीं सीख सकती। कला मुझको सिखलाने के लिये अकेली ही आयगी। सुमनमोहिनी ने निश्चय किया।

राजा मानसिंह ने हर्ष के साथ स्वीकार कर लिया। कला सुमन-मोहिनी को भी संगीत की शिक्षा देने लगी।

मानसिंह ने एक दिन प्रस्ताव किया, 'बैजनाथ संगीत का आचार्य है। उससे सीखो।'

'मैं सीखूंगी पुरुष से संगीत ? क्या हो गया है, महाराज, आपको ? रानी मृगनयनी की और बात है, गांव की ठहरी। कुछ दिन पहले तक गांव और जंगल में सब के सामने निकलती थीं, पर मेरे घराने की रीति यह नहीं रही है।।'

राजा के चिउँटी लगी परन्तु उसने उपेक्षा की।

बोला, 'आपकी जैसी इच्छा हो। आप खूब परिश्रम करिये वीणा के तारों पर और अपने गले के स्वरों पर। कुछ समय के लिये कला ही काफ़ी है। फिर देखा जायगा। कई घण्टे नित्य परिश्रम करेंगी तो आप भी आगे निकल जायेंगी।'

सुमनमोहिनी ने चुटकी काटी, 'कई घण्टे परिश्रम करूँ, आपको इधर आने की उतने समय तक चिन्ता न रहे ! आज कितने दिन उपरान्त पधारे हैं आप यहाँ !!'

'महारानी जी, मैं आजकल व्यस्त रहता हूँ।'

'हाँ सो तो मैं जानती हूँ। महल जल्दी-जल्दी बन रहा है। दिन भर उसी की देख भाल रहती होगी?'

'महल नहीं, उसका नाम मानमन्दिर होगा।'

'बहुत बड़ा बनेगा क्या?'

'बहुत बड़ा बने या न बने, बहुत सुन्दर अवश्य बनाना चाहता हूँ। आपको उसका मानचित्र दिखलाऊँगा, तैयार हो रहा है।'

'भूल गये क्या? आपने दिखलाया तो था। परन्तु वह ब्याह के पहले की बात थी! अब कोई नया बन रहा है?'

'हाँ उस में बहुत परिवर्तन कर दिये हैं।'

'क्यों न करें परिवर्तन? युग का ही परिवर्तन हो गया है! नाम बदल दीजिये उसका। उसका नाम रखिये मृगेन्द्र मन्दिर।'

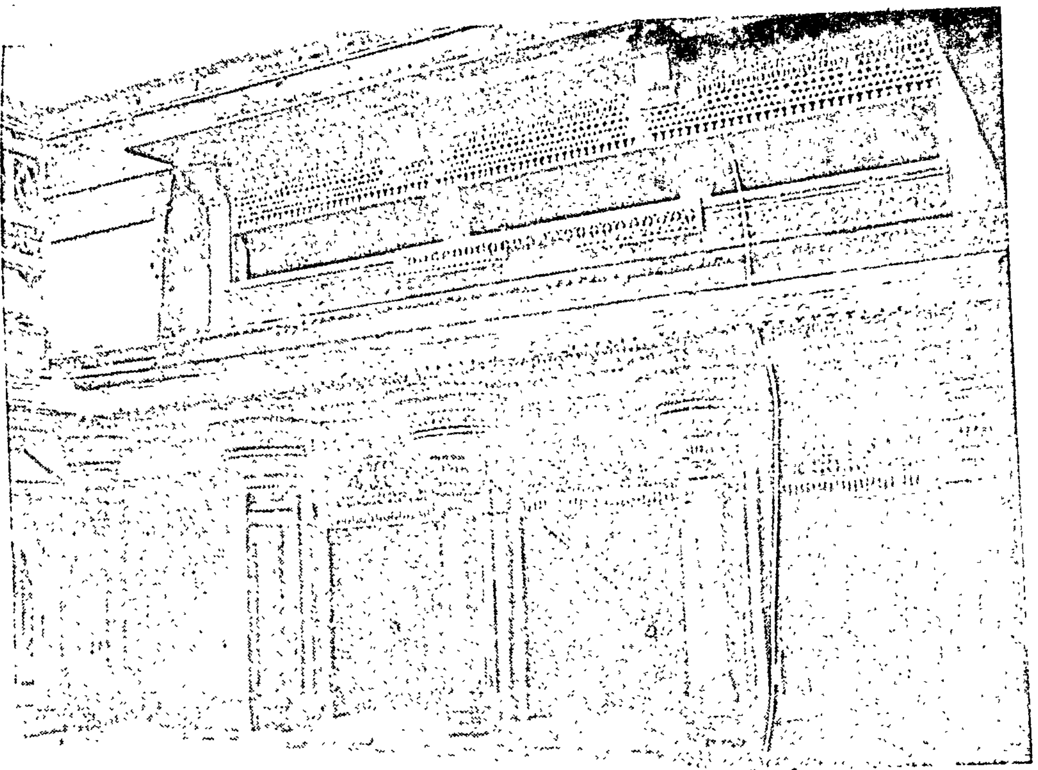
'या सुमनेन्द्र मन्दिर?' मानसिंह हँस पड़ा।

सुमनमोहनी ने आई हुई मुस्कान को होठों की सिकुड़न में समेट लिया।

कहा, 'इसी उल्टा-पुल्टी में बहुत समय लगा रहता है आपका! समझ गई मैं!'

मानसिंह बोला, 'केवल यही नही है महारानी जी। दिल्ली का सिकन्दर लोदी ग्वालियर पर फिर चढ़ाई करने वाला है। उसका सामना करने की तैयारी में अधिक समय लगा रहता है।'

'उँह! उसके बाप को हराया, उसको भी हरा चुके हैं और हाल में मांडू के सुल्तान को ठोकपीट कर आये ही हैं। आपके लिये यह सहज है। अब तो महल बनाने में लगे रहिये जैसा नई रानी कहें।'



मान-मन्दिर, (ग्वालियर का भीतरी आंगन)

सर्दी अपने यौवन पर थी। अस्ताचल की ओर जाने वाले सूर्य की किरणें क्षीणता पर। उन किरणों से गरमी पाने की वाञ्छा करने वाले को ठिठुरन और भी अधिक मिल रही थी। अपने कक्ष की छत पर झरोखे के सहारे मृगनयनी खड़ी हो गई। साथ में लाखी। सूर्य के डूबने में अभी दो घड़ी का विलम्ब था। मृगनयनी की दृष्टि पश्चिमी पहाड़ियों के पीछे की किसी पहाड़ी, किसी नदी और किसी गाँव की तरफ़ गई। राई में क्या हो रहा होगा—वह सोच रही थी। फिर महल के उत्तरवर्तीय बगीचे पर आँख जा पड़ी। केले के बड़े-बड़े पत्तों की गहरी हरियाली पर किरणें कल्लोलें सी कर रही थीं। उसको लगा पत्तों की वीणा सी बज रही है।

हुलास के साथ बोली, 'चलो न लाखी बगीचे में घूम आवें। वहां पहाड़ियों के पीछे का कुछ दिखलाई पड़ेगा। उस कोने से देख लेते हैं, बड़ी महारानी या कोई और तो नहीं है वहां।'

'मैं देखे आती हूँ।' लाखी ने कहा और जाने लगी। मृगनयनी ने उसका हाथ पकड़ लिया।

निषेध किया, 'जो काम मैं स्वयं कर सकती हूं तुमसे नहीं कराया जायगा।'

'यह तो कोई बात नहीं, पैर घिस थोड़े ही जायेंगे मेरे।'

'मेरे तो मन्द-कुन्द पड़ जायेंगे।'

मृगनयनी लपक कर चली गई। देख लिया। बगीचे में कोई नहीं था।

वे दोनो बगीचे में चली गईं और घूमने लगीं।

मृगनयनी ने राई के जङ्गल में विशाल वृक्ष देखे थे परन्तु केले के छोटे से पेड़ का गोल-मटोल, सुडौल, चिकना-तना और बड़े-बड़े गहरे

हरे झूमते पत्ते वहां कहाँ ? ये उसको सदा आकर्षक और विलक्षण लगते थे। वह उनको अवसर पाते ही देखती और कभी न अघाती।

केले की कतारें उसको सखी-सहेलियों सी लगीं। मुस्कराई, उल्लसित हुई, नसों में लहर दौड़ी और मन चाहा कि पत्तों की हिलडुल की ताल में नाच उठूं।

सूर्य धीरे-धीरे क्षितिज में समाने जा रहा था।

एक पहाड़ी की ओर इंगित करके मृगनयनी बोली, 'यह होगा राई का पहाड़।'

'कह नहीं सकती। नदी दिखलाई पड़ती है ?'

'नहीं तो।'

'तो समझ लो होगा वह राई का पहाड़ और वहीं कहीं साँक नदी होगी। जङ्गल में अरने, नाहर, सुअर, सांभर इत्यादि जानवर भी होंगे। पर जब तक वहीं जाकर न देख लें तब तक कैसे मान लें ?'

'जी तो चाहता है, अपने उन ठौरों को देखने का, पर जब किसी योग्य हो जाऊँगी तभी जाऊँगी वहाँ। है न ठीक ? तभी तो तुम भी जाओगी ?'

'मैं तो कभी नहीं जाऊँगी। जब चली थी तब लौट कर भी नहीं देखा था।'

'अब कोई कुछ नहीं कहेगा।'

'मुंह से न कहे। उन लोगों की आंख तो कहेगी। धरा भी क्या है वहां ? नरवर की घाटियों में चलना, हाथियों और नाहरों के झुण्ड के झुण्ड हैं।'

'नरवर तुम्हारी जागीर है न, इसलिये।'

'जागीर तो मेरी निन्नी और—'

'निन्नी के भैया हैं।'

वे दोनो हँस पड़ीं। दोनों के दांत मोती जैसे। हँसी जैसे शरदकालीन नदी की निर्मल धारा। आंखों में अल्हड़पन। अङ्गों की थिरकन जैसे किसी राग की सीधी सच्ची तान हो। धीमी झूम वाले कदली-पल्लवों पर से मृगनयनी की आंख लाखी के वस्त्रालंकारों पर गई। रेशम के वस्त्र, सोने और मोती के गहने। लाखी खिल रही थी।

'कैसी भली-सलोनी लगती है मेरी भावी। भैया न जाने मन में कितनी कविता बनाते रहते होंगे।'

लाखी ने चुटकी ली,—'कविता तो नन्देऊ राजा बनाते होंगे, जो कवि हैं। सच बतलाओ उन्होंने बनाई है न कविता? गायक बैजू से कभी करायँगे तुम्हारी लुनाई का गुणगान।'

'अरी हिष्ट! मैंने जो गाने सुने हैं उनमें ऐसा लगा कि राधा और गोपियों पर ढाल-ढालकर सब कुछ खड़ा कर लिया गया है। उन गीतों को सुनकर कभी कभी मन नाचने को चाह उठता है। कला जानती है नाचना भी। उससे हम तुम दोनो सीखेंगी।

'सीखूंगी।' लाखी बोली और उसकी दृष्टि अपने पैरों पर गई। वह पैरों में चांदी के गहने पहिने थी।

मृगनयनी के पैरों में सोने के गहने थे। वह रानी थी। पैरों में सोना रानियाँ ही पहिन सकती थीं, या राजा जिसको वरदान स्वरूप, अनुमति दे दे वह। नरवर का क़िला और नगर नाममात्र के लिये अटलको जागीर में मिला था। असल में नरवर नगर की आय का एक अंश उसको दिया गया था। स्त्री को जागीर नहीं मिल सकती थी। इसलिये अटल के नाम रही। लाखी को पैर में सोना पहिनने का वरदान अभी इसलिये भी नहीं मिला था कि वह अहीर जाति की थी और सार्वजनिक मत की सम्पूर्ण अवहेलना, भले ही वह प्रकट नहीं थी, मानसिंह के बस की नहीं थी।

लाखी की दृष्टि मृगनयनी के पैरों के स्वर्णालङ्कार पर भी गई और फिर तुरन्त गले पर। उसको कुछ भी नहीं आँसा। मृगनयनी गले में चांदी की पतली हँसुली पहिने थी जिसको ब्याह के पहले एक दिन अटल मोल ले आया था।

मृगनयनी तुरन्त गम्भीर हो गई।

बोली, 'मैं चाहे नंगे पैर रहूँ कल से सोने के गहने नहीं पहिनूंगी; तुम चाँदी के पहिनो और मैं सोने के! यह नहीं हो सकता।'

'पागल हो गई है क्या?'—उसने कहा,—'यह सोना निन्नी के पैरों में नहीं है, राजा की रानी के पैरों में है।'

'मैं महाराज से कहूँगी। उनको सोना प्रदान करना पड़ेगा।'

'रानियों का जैसा बर्ताव तुमको इतना तो सिखाया गया, पर आया कुछ नहीं! बिरथा हठ कर रही हो। बड़ी महारानी और वे सात जो और हैं, उनकी दीठ खराद पर चढ़ जायगी।'

'मैं नहीं जानती थी कि महल में आठ पहले से है, नहीं तो—'

'यह बात तुम्हारे मुंह के लायक़ नहीं है, ननद महारानी। अब कहा सो कहा, आगे कभी मुंह से न निकले।'

'नहीं कहूंगी, कभी नहीं कहूंगी। यह सब होते हुए भी महाराज का अटूट और पूरा प्रेम है। परन्तु बड़ी महारानी! क्या तो नाम है और कैसा स्वभाव है!!'

'अभी तो जङ्गल में करधई, करौंदी, झरबेरी और खैर के कांटों से अङ्ग नुचवाये-खरोंचवाये हैं, सो वह अभ्यास कभी काम आवेगा या नहीं?'

उपमा पर मृगनयनी हंस पड़ी।

बोली, 'भैया का मन कविता करता हो या न करता हो, पर तुम तो भोली, सचमुच कवि हो।'

लाखी के मन में कुछ और गड़ा हुआ था।

'तो देखो मेरी भली निन्नी, मेरी महारानी मृगनयनी जी, मेरी ननद जी, तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ, पैर पड़ती हूँ, हा हा खाती हूँ—'

मृगनयनी ने तुरन्त टोका,—'चुप, चुप।'

'बात तो सुनो पूरी,'—वह कहती गई,—'पैरों के चाँदी-सोने के गहनों के बारे में कोई छेड़छाड़ मत करना। इतना सब जो मान लिया गया है, वही बहुत है। जल्दी मत करो। फिर कभी देखा जायगा।'

मृगनयनी बोली, 'मुझको बुरा लगता है, बहुत खटकता है। मैं नहीं कहूँगी, तुमसे बिना पूछे नहीं कहूँगी परन्तु एक दिन तुम्हारे पैर में सोना देखना चाहती हूँ।'

'तुम्हारे गले में चांदी की हँसुली है, क्यों है?'

'मैं अपनी राई को, अपने उन दिनों को जब स्वतन्त्र थी, अपनी उस सांझ को जब भैया यहाँ से लौटकर इसे ले आये, कभी नहीं भूल सकती। महाराज ने उतार डालने के लिये कहा, पर मैंने नहीं माना।'

'तो मेरे पैरों में जो चांदी है वह भी अनुचित नहीं है। वह इस बात की याद दिलाती है कि जातपाँत के भूत के साथ बहुत अधिक छेड़छाड़ नहीं करनी चाहिये।'

'आचार्य विजयजङ्गम जातपांत के बिलकुल विरुद्ध हैं। महाराज बतलाते थे। आचार्य को बहुत मानते हैं।'

'यह सब ठीक है परन्तु विजय महाराज भी जातपाँत को कुछ न कुछ तो मानते ही हैं। और, एक विजय महाराज के दबाने के लिये न जाने और कितने विजय फट पड़ेंगे।'

चार-पाँच दासियाँ दूर एक पेड़ के पास आकर खड़ी हो गईं। मृगनयनी ने देख लिया। नाक भौं सिकोड़ी।

लाखी से कहा, 'ओढ़ने के लिये मोटा कपड़ा इतनी दासियां लाई है ! मुझको तुमको सर्दी लग रही होती तो क्या साथ न ले आ पातीं ? या ठिठुरने लगी होतीं तो कमरे को लौट न पड़तीं । इनकी भीड़-भाड़ को देखते ही मेरे तो कांटे उठ आते है ।'

लाखी बोली, 'उनका काम है, क्या किया जाय ?'

'मुझको तो विजय जी की बात अच्छी लगती है। वह कहते है सब को अपना अपना आवश्यक काम अपने हाथ से ही करना चाहिये । वह स्वयं ऐसा ही करते हैं । उनका कहना है कि इस देश को भिखमङ्गों और निकम्मों ने डुबोया है ।'

'तो इन बिचारियों को वहीं खड़ी रहने दें ?'

'खड़ी रहें किसने बुलाया था ?'

'स्यात् कुछ बात कहने आई हों ।'

'बात आधी होगी, कपड़े लाई हैं गाड़ी भर । मुझको डूबते हुये सूर्य की आभा अच्छी लगती है, पश्चिम की पहाड़ी पर लाली की छिटकी उसको देखती हूँ पीठ फेर कर । खड़ी रहें तब तक वे । मुझको नहीं ओढ़ने हैं कपड़े ।'

एक दासी कुछ जोर के साथ खांसी ।

लाखी ने कहा, 'अभी ऐसा योग तो तुमने साध नहीं पाया है कि वे पीठपर सवार रहें और तुम आनन्द के साथ डूबते सूर्य का दर्शन करती रहो ।'

'तो बुलाये लेती हूं भोजी रानी, कौन जीते तुमसे !'

मृगनयनी ने दासियों को सङ्केत से बुला लिया ।

उन्होंने कपड़े दिये । एक ने हाथ जोड़कर कहा, 'एक पहर पीछे सभा भवन में आचार्य बैजू का गायन और आचार्य विजय का वीणा-वादन महाराज करवा रहे हैं । बड़ी महारानी और सब रानियों को भी निमन्त्रण है । आपको भी पधारना है ।'

मृगनयनी बोली, 'अच्छी बात है।'

दासियां नीचा सिर किये खड़ी रहीं।

'और कुछ?' मृगनयनी ने पूछा।

दासी ने उत्तर दिया, 'ठिठुराने वाली वायु चल रही है। भीतर सिकड़ी में कोयले जला दिये गये हैं। वहीं चलकर तापना होवे।'

'सुन लिया। जाओ। सूर्यास्त के उपरान्त आयेंगी।' मृगनयनी ने कहा।

दासियां चली गईं। हँसी रोकने के लिये मृगनयनी ने होठ को दांत से दबाया और लाखी ने दूसरी ओर मुंह फेर कर अञ्चल मुंह पर रख लिया, मानो ठण्ड से अपनी रक्षा कर रही हो।

दासियों के चले जाने पर वे दोनो खिलखिलाकर हँस पड़ीं। मृगनयनी बोली, 'इनकी बोली कैसी मँजी-पुती है! इसके भी सिखलाने वाले होंगे कहीं।' सूर्य की ओर देखने लगी।

लाखी ने सूर्य की ओर मुंह करके कहा, 'न कहीं सीखी होगी तो काम ने सिखला दी।'

कुछ क्षण बाद लाखी ने खिन्नता प्रकट की,—'मन नहीं लगता, चलो न।'

'मेरा भी नहीं लगता। चलो। फिर कभी सही।'

[४२]

एक पहर रात जाने के पहले ही कर्ण मन्दिर के सभा भवन में गायन-वादन का आरम्भ होने वाला था। ऊपर के खंड की झिझरियों के पीछे मृगनयनी और लाखी आ बैठीं। जगमगाती हुई वेषभूषा में। मृगनयनी को लग रहा था जैसे उसके वस्त्रालङ्कारों पर कोई आक्षेप प्रकट करने वाला हो और वह अपनी परिस्थिति का पक्ष समर्थन करने पर आरूढ़ हो, जैसे कोई उसके सौन्दर्य की स्तुति भी करने वाला हो और वह उस स्तुति को अपना सहज अधिकार समझकर एक मुस्कान द्वारा उपेक्षा की 'उंह' कह कहकर टालने वाली हो। चेहरे पर गुलाबी रंग नहीं था, कुछ पीलापन था। लाखी मोद-मग्न थी।

उन दोनों के आने के बाद सुमनमोहिनी और अन्य रानियां आईं। मृगनयनी ने रीति के अनुसार सुमनमोहिनी का पद-स्पर्श किया उसके सिर पर आशीर्वाद का हाथ फेरते हुये बड़ी रानी ने बारीकी के साथ उसकी वेशभूषा को निरखा। चांदी की हँसुली दृष्टि से न चूकी। वे आठों एक ओर बैठ गईं। मृगनयनी और लाखी कुछ अन्तर पर। दासियों का ठठ इन सबके पीछे खड़ा था।

नीचे सभा भवन में मानसिंह एक थोड़े ऊँचे मञ्च पर था। जरा नीचे एक ओर निहालसिंह और दूसरी ओर अटल। सामने बैजू, विजय, कला और पखावजी इत्यादि।

बैजू ने प्रबन्ध की गायकी शुरू की। विजय ने वीणा बजाई और कला ने तम्बूरे और अपने स्वर से साथ दिया। मानसिंह पहले ही आलाप और वीणा की झङ्कार पर मुग्ध होने लगा—उसने मुग्ध होने के लिये ही उस रात जमाव किया था।

गायन के आरम्भ होते ही सुमनमोहिनी की इच्छा कुछ बात करने की हुई। परन्तु अन्य रानियां संगीत के प्रारम्भिक उत्साहदान को मन

में भर रही थीं, इसलिये बड़ी रानी कुछ समय तक मौन रहीं। फिर उनसे न रहा गया।

पास बैठी हुई एक रानी से कहा, 'इतने सोने और मणिमुक्ताओं से तृप्ति नहीं है नई दुलहिन को!'

छोटी रानियों ने कनखियों देखा, जरासा मुस्कराईं, बड़ी रानी से आंखें मिलाकर डाह की हँसी हँसी और नीचे सभा-भवन में होने वाले सङ्गीत के प्रति उन्मुख हो गईं।

मृगनयनी और लाखी ने नहीं देखा।

सुमनमोहिनी ने निकटवर्ती छोटी रानी के चुटकी काटी। वह ज़रा सी खिदकी।

बड़ी रानी बोली, 'अरी यह गीत तो आधीरात तक चलता रहेगा। उधर देखो, नई दुलहिन गले में चाँदी की पतली खंगोरिया किस तपाक के साथ डाले है! मणिमुक्ताओं वाले हार उस खंगोरिया को निरन्तर हाथ जोड़े बिलबिला रहे हैं।'

छोटी रानी ने देखा। कुछ क्षण देखते रहने के उपरान्त चांदी का वह गहना आंख की पकड़ में आ गया। मुंह दाबकर हँसी।

लाखी ने देखा, मृगनयनी ने भी।

बड़ी रानी ने छोटी की हँसी को उत्तेजित किया, 'हँसुली को विचारी छोड़े भी कैसे! जब मिट्टी के घड़ों में पानी भर कर नदी से सिर पर भर कर लाती होगी, तब यह हंसुली गले में हिलती डोलती होगी, गाय भैंस दोहने के समय और मट्ठा भावने के समय हँसुली नाचती होगी, उपले पाथने के समय गले से टन्नाती—खन्नाती होगी और खेतों को रखाने के लिये मचान पर से जब लम्बी भारी भुजाओं से गुथने घुमा-घुमाकर, चिड़ियों को भगाने के लिये 'हरिया! हरिया!!' कहती होगी, तब हँसुली खट से कभी ठोड़ी को और पट से कभी गले की नसों को गांव के गीत सुनाती होगी!'

बड़ी रानी अपनी कल्पना पर हंस पड़ी। छोटी रानी कपड़े को और भी अधिक मुंह पर रगड़–रगड़कर हंसने लगी। दूसरी रानियों को कुतूहल हुआ। बड़ी के परिहास को सुना, मृगनयनी की ओर देखा और हँस पड़ीं।

मृगनयनी और लाखी ने यह सब देखा, बात का कोई भी अंश सुनाई नहीं पड़ा।

हमारे ऊपर फबती कसी जा रही है, हम ही हैं इस हँसी का कारण उन दोनों ने तुरन्त समझ लिया। ठठोली का विषय मैं हूँ। जातपांत के बन्धन की उपेक्षा करके मैं ब्याही गई हूँ; निन्नी के ब्याह सम्बन्ध के कारण राजा के साले—मेरे पति—को जागीर मिली है; पहले भूखों मरती थी, ढोर चराती थी, अब सोना–चाँदी पहिनने को मिल गया है; पहले गाढ़े के कपड़े थे अब रेशमी वस्त्र हैं, और पहले गाँव के गीत सुनती और भोंड़े रसिये गाती थी अब बैजू और विजय सरीखे आचार्यों का सङ्गीत सुनने को मिल रहा है! पहले—और आगे लाखी नहीं सोच सकी। शरीर में दाह हुआ। कान तक जल उठी। मृगनयनी की ओर आंख फेरी। उसका चेहरा तमतमा गया था परन्तु वह सभा-भवन के दृश्य को झिझरी में से देखती जान पड़ी।

मृगनयनी देखकर भी कुछ नहीं देख पा रही थी। मेरी दिल्लगी की जा रही है! मैंने ऐसा क्या किया है? पूरा शिष्टाचार किया था, फिर भी यह सब क्यों? क्या मैं इनसे कम सुन्दर हूँ? क्या मैंने कोई गहना दिखावटी तरह पर पहिन रक्खा है? नहीं तो। क्या किसी वस्त्र की समेट लपेट में होकर मेरा कोई अङ्ग भोंड़ेपन से झांक रहा है? मृगनयनी ने अपने पहिनावे का निरीक्षण किया। एक पैर थोड़ा सा खुला हुआ था, जैसे किसी सरोवर के नीले जल पर एक बड़ा कमल खिला हो और उस पर ओस की बूंदें प्रातःकालीन रवि-रश्मियों के साथ मन्द-मन्द झूल रही हों। मृगनयनी ने रत्नजटित स्वर्ण नूपुरों को ओढ़नी से ढक लिया। हँसी का कारण शायद ये हैं! सौभाग्य–चिन्हों को छोड़कर बाकी सबको उतार कर

रख दूंगी—फिर जब लाखी पहिनेगी, तब पहिनूंगी और तब ये सब हँसेंगे नहीं। अपने को तुच्छ समझकर चुप रह जायेंगी। उसने निश्चय किया।

गले में पड़ी हुई चांदी की हँसुली पर यकायक उँगली गई और फिसल आई। मेरी यह पतली हँसुली इनके सब आभूषणों की अपेक्षा अधिक मूल्यवान है। उस समय इसी को पहिने थी जब नाहर को एक तीर से मार गिराया, जब अरने को सींग पकड़कर मोड़ने का प्रयास किया, जब राजा ने पहिली बार देखा, जब उन्होंने इसी हँसुली के ऊपर हीरे सोने का जड़ाऊ हार गले में डाला, जब वह प्यार के साथ गले में बाहें डालकर मुझसे न जाने किस कविता में बोलने लगते हैं। सोचते ही ध्यान सभा भवन में मञ्च पर बैठे हुये प्रसन्न मानसिंह की ओर गया। अब उसको सब कुछ स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगा। यह हैं मेरे राजा, मेरे !

मृगनयनी ने कनखियों उन रानियों को देखा। उनकी हँसी अभी समाप्त नहीं हुई थी।

मृगनयनी ने होंठ जरा से सिकोड़े और मनमें कहा, 'उँह ! रानी हुई तो क्या, गँवारों से भी गई-बीती हैं ! अरे ! ! मैं इनको गँवार क्यों कहूं ? गाव की तो मैं हूं। हँसे जाओ, हँसे जाओ, किसी दिन मैं तुमसे कहीं अधिक हँसूंगी। और अकेली नहीं हँसूगी तुमको भी हँसाऊँगी। अपनी गाय का दूध अकेले अकेले नहीं पिऊँगी, तुमको भी पिलाऊँगी। शायद ये मेरे ऊपर न हँस रही हों। संगीत की किसी बात पर हँस पड़ी हों। मैं तल्लीन होकर सुन रही थी, मेरी समझ में कोई बारीक बात नहीं आई, इनकी समझ में आ गई, आपस में कुछ चर्चा की और मुझको गढ़ी मूर्ति की जैसी देखकर हँस पड़ीं। ओह ! यही हो सकता है। परन्तु मेरी ओर सैन कर-करके क्यों मुंह को इतना दाब-दाबकर हँस रही थीं ? उँह ! थोड़ी हल्की है न।'

सभाभवन में मानसिंह के कण्ठ से निकला, सुनाई पड़ा, 'वाह ! वाह ! ! वाह ! ! ! वाह ! ! ! !'

मृगनयनी ने देखा, गायक बैजू वीणा–वादक विजय की ओर देख–देखकर मुस्करा रहा है, उस मुस्कराहट में विजय का तीखापन और चिनौती है। विजयजङ्गम को भी देखा—उसके चेहरे पर क्षोभ और आंख में बैजू की विजय की प्रतिक्रिया और चिनौती के स्वीकार करने की दृढ़ता थी।

कला बैजू के उस विजय-प्रदर्शन पर प्रसन्न थी और विजय की मुस्कराहट को अपनी मुस्कान का सहयोग दे रही थी।

सङ्गीत के किस दाव पेच पर यह हर्ष और क्षोभ हुआ? मैं ध्यान दिये होती तो क्या समझ में वह दांव पेच आ जाता? क्या इसके पहले कोई एकाध ऐसा ही हो चुका है? क्या ये रानियां उसी पर हँसी थीं? परन्तु कोई वाह वाह तो नहीं हुई थी। और अब भी उस पहले ही प्रसंग को लिये हुये हँस रही होंगी। ऊँह! होगा। सङ्गीत के दावपेच सब के सब न समझ डाले, तो मेरा नाम पलट दिया जाय। चाहे जितना भी समय क्यों न लग जाय। तब मैं हँसा करूंगी और ये रानियां झेंपा करेंगी!

थोड़ी देर बाद बैजू की फिर जीत हुई। फिर बैजू के चेहरे पर विजय की मुस्कराहट और कला के होठों पर सहयोग की मुस्कान। विजयजङ्गम की आकृति फिर क्षोभमयी और मानसिंह की फिर वही 'वाह! वाह!!'

मृगनयनी की समझ में नहीं आया। अन्य रानियां नहीं हँस रही थीं। लाखी की दृष्टि में प्रश्न का लक्षण था।

अब ये रानियां क्यों नहीं हँस रही हैं? कदाचित उस समय में ही इनकी चर्चा और हँसी का प्रसङ्ग थी। कोई बात नहीं, देखा जायगा।

उसी एक प्रबन्ध का गायन दो ढाई घण्टे चलता रहा। मृगनयनी उकताने लगी परन्तु अपने को समझाने लगी, अवश्य इस गायन-वादन में कोई विशेष बात है तब राजा इतने सजग और हर्षमग्न हैं। मैं भी ध्यान के साथ सुनती रहूंगी और किसी दिन इससे बढ़कर गाऊँ बजाऊँगी।

लाखी झोंके लेने लगी थी। बड़ी रानी सो गई थी और अपनी पड़ोसिन के कन्धे पर सिर लटकाये हुई थी। पड़ोसिन रानी भी सोना

चाहती थी, पर बड़ी रानी भार के कारण मन को पोसपास कर संगीत की भनभनाहट को सुन रही थी और मुंद-मुंद जाने वाली आंखों को खोल-खोल दे रही थी। शेष रानियां तकियों के सहारे खुर्राटों और धीमी निश्वासों के बीच में स्वप्न लोक की सैर कर उठी थीं। दासियाँ बैठ गई थीं और सो गई थीं।

मृगनयनी ने लाखी के कन्धे को जरा हिलाकर और कुछ ऊंचे स्वर में, जैसे अन्य रानियों को फटकार देना चाहती हो, कहा, 'अरी देखो कैसा अच्छा चल रहा है!'

लाखी उचट कर देखने-सुनने लगी।

मृगनयनी बोली, 'कितना बारीक काम हो रहा है नीचे! बड़ी बड़ी सुन्दर तानें झड़ी सी लगाकर बरस रही हैं!! दोनों आचार्यों के बीच में संगीत विद्या का द्वन्द चल रहा है। जरा देखो, भेड़-बकरियों की तरह मत सोओ।'

वाक्य का अन्तिम अंश उन रानियों की ओर आंख फेरते हुये मृगनयनी ने पूरा किया। लाखी को अच्छा लगा। वह हँसी।

'तुम बहुत जल्दी समझने लगी हो', लाखी ने कहा,—'अभ्यास करते-करते मुझको भी कुछ न कुछ आ जायगा। कान को अच्छा लग रहा है। ध्यान के साथ सुन रही हूँ।'

बड़ी रानी की नींद नहीं उचटी परन्तु जिस रानी के कन्धे से टिकी हुई वह सो रही थी उसने इस वार्तालाप को सुन लिया और कुढ़ गई।

सभा भवन में बैजू का गायन और विजयजङ्गम का वादन एक घण्टे और चला। इस बीच में जीत हार के कुछ अवसर और आये। विजयजङ्गम खीज उठा। वीणा को नीचे रख दिया।

बोला, 'अब मैं गाऊँगा। गायक बैजू वीणा बजावें।'

मानसिंह ने कहा, 'अवश्य। अभी समय ही कितना हुआ है? विहाग के गाने का समय तो अब आया है।'

'आचार्य जङ्गम गावें,—बैजू बोला,—'परन्तु आज एक होड़ है।'

'क्या ?' राजा ने पूछा।

बैजू ने उत्तर दिया, 'मैंने इनको अभी अभी वीणा-वादन में कई बार चुकाया है। यदि इनके गाने के समय मैंने इनको अपनी वीणा के बजाने में हरा दिया तो इनकी वीणा को छीन लूंगा। सड़ियल सी तो है, फोड़कर रख लूंगा।'

'क्या बैजू पागल है ?' मृगनयनी ने सोचा।

उस रानी ने अपना बोझ दूर करने के लिये बड़ी रानी को झटका दिया। बड़ी ने जोर के साथ पैर फटकारा। पैर का एक स्वर्णजटित आभूषण मृगनैयनी की बैठक की दिशा में जा गिरा परन्तु किसी ने देखा नहीं।

छोटी रानी ने बड़ी से कहा, 'महारानी जी देखिये, बड़ा मल्ल-युद्ध होने वाला है !'

बड़ी रानी ने हड़बड़ाहट के साथ आँखें मलीं। सोचा मृगनयनी अपनी लम्बी, पुष्ट, सशक्त भुजाओं से किसी को पीस डालने के लिये टूट पड़ी है ! उत्सुकता के साथ उसकी ओर देखा। वह ध्यानपूर्वक सभा भवन की ओर देख रही थी।

बड़ी रानी ने निराश होकर छोटी से पूछा, 'क्या बात है ?' छोटी ने प्रसङ्ग को बतलाया।

बड़ी अंगड़ाई लेकर बोली, 'मैं थोड़ी देर के लिये सोई थी ! अब जागती रहूंगी।'

छोटी ने सोचा, 'थोड़ी देर के लिये सोई थी ! दो घण्टे तो मेरे ही कन्धे तोड़ती रहीं !!'

संगीत का पुनरारम्भ हुआ। एक घड़ी के उपरान्त ही बैजू को विश्वास हो गया कि विजयजङ्गम को अब मारा, अब पछाड़ा। राजा ने भी समझ

लिया। सोचा ऐसे दो बड़े कलाकारों का परस्पर सिरकटौअल बरकाया जाना चाहिये।

बोला, 'थोड़ा ठहरिये।' विजयजङ्गम रुक गया। बैजू गाता रहा। कुछ क्षण उपरान्त पखावज बन्द हो गई। कला ने भी अपने सहयोग को स्थगित कर दिया। परन्तु बैजू आंखें मीचे गाता रहा।

मृगनयनी ने देख लिया था कि बड़ी रानी जाग पड़ी है। उसको सुनाते हुये लाखी से कहा, 'वाह! क्या बात है!! कैसा गला है! और कैसी गायकी है!! कितना तन्मय होकर गा रहे हैं आचार्य!!! उनको अपने आसपास की बिलकुल ही सुधि नहीं। कला और कलाकार इनको कहते हैं।'

'ओहो, यह बड़ी जानकार है!' बड़ी रानी ने सोचा, चेहरे की रेखाओं को घटाया बढ़ाया परन्तु चुप रही।

राजा कुछ क्षण चुप रहने के बाद ऊँचे स्वर में बोला, 'वाह! वाह!! वाह!!! वाह!!!!'

दासियाँ जाग पड़ीं और सावधान हो गईं।

बैजू के चेहरे पर विजय की मुस्कराहट आई। और होठों पर अपना छोटा सा अवशेष छोड़ कर छा गई। आँखें खोलकर चिनौती भरी दृष्टि से विजयजङ्गम को देखा। वह मुस्करा रहा था और वीणा नीचे रक्खी थी।

तो क्या यह वीणा को बजा नहीं रहा था? कब बन्द कर दिया? और कला का तम्बूरा नीचे रक्खा था। उसने कब रख दिया। पखावज भी रुकी पड़ी है! कब रुक गई? विजय मुस्करा क्यों रहा है? क्या वह हारा नहीं? और मैं क्या गा रहा था? तो क्या कर रहा था?

बैजू ने गाना बन्द कर दिया।

मानसिंह ने उमङ्ग भरे स्वर में कहा, 'आचार्य बैजनाथ, धन्य हो! कितने तन्मय हो गये थे तुम अपने रस में!! हम सब भी तल्लीन हो गये।

उन्होंने तुम्हारे रस का पूरा स्वाद लेने के लिये अपनी वीणा ही रख दी, कला ने तम्बूरा और उन्होंने पखावज ! हम सब डूब गये तुम्हारी रस धार में !! मैं तुमको नमस्कार करता हूँ ।'

बैजू असली कारण ढूँढ़ने की चिन्ता में नहीं पड़ा ।

बोला महाराज, 'आज मैं सब पा गया । जीवन का सब कुछ पा गया । कलावन्त को और चाहिये ही क्या ?'

'परन्तु हमको तो तुमसे अभी बहुत कुछ चाहिये है ।'

'मेरे पास है ही क्या । जो कुछ है महाराज का है ।'

'तुम अभी जिस ध्यान में मग्न थे उसमें से कुछ हम लोगों को भी दो ।'

'ह ! ह !! ह !!! सो कैसे ? और मैं तो गा रहा था, ध्यान तो सवेरे के समय करता हूँ । अभी क्या मैं सो गया था ?'

'सोये तुम नहीं थे । हम लोगों के भीतर वाले को जगा रहे थे ।'

बैजू कुछ गुनगुनाता हुआ झूमने लगा ।

एक क्षण बाद बोला, 'आरम्भ करता हूँ । आज होड़ को जीतकर ही रहूँगा ।'

विजयजङ्गम ने वीणा को उठा लिया । कला ने तम्बूरे को । पखावजी ने थाप दी ।

मानसिंह ने कहा, 'मेरा एक अनुरोध है ।'

सब स्थिर हो गये ।

मानसिंह ने अनुरोध सुनाया,—'प्रबन्ध और छन्द की गायकी को जो पसारा बहुत दिनों से मिलता आ रहा है, उसको थोड़ा सा समेट लिया जावे और माज मांजकर और भी अधिक सुन्दर बुना लिया जावे तो कैसा रहे ?'

'अनुपम तो है ।' विजयजङ्गम ने अपनी जानकारी प्रकट की ।

मानसिंह बोला, 'हां है, पसर काफी वह भी गया है। सुन्दर है परन्तु उसकी सुन्दरता को और भी अधिक बढ़ाने और निखारने की आवश्यकता है।'

विजय ने कहा, 'महाराज, जो कुछ नाद-नाद पहले से चला आया है, वही दुर्गम है, उसमें घटा-बढ़ी अब कौन कर सकता है ?'

चिनौती के स्वर में दृढ़ता के साथ बैजू बोला, 'हो सकता है, हुआ है और होगा। भगवान शंकर की दया से मैं करूँगा।'

विजय को भगवान शङ्कर का नाम अच्छा लगा परन्तु बात बुरी लगी ; खटकी।

देखा जायगा।' विजय के मुंह से उपेक्षा के साथ निकला।

'हाँ हाँ, देख लेना, करके दिखला दूंगा।' बैजू ने अपने हठ का समर्थन किया।

विजय ने सोचा, बैजू पागल है।

राजा ने कहा,'समय अतीत हो गया है। इस विषय का गहरा चिंतन हम सब को करना होगा।'

बैजू ने तुरन्त कामना प्रकट की,—'मेरा और आचार्य विजय का अखाड़ा तो इसी समय हो जाय।'

'अभी नहीं,'—राजा ने टाला, 'फिर कभी।'

दांत पीसते हुये बैजू ने विजय पर दृष्टिपात किया। राजा ने सोचा उत्पात बरक गया।

बोला, 'तो मैं यह चाहता हूँ कि गायन की कोई नवीन, मधुर और चमत्कारपूर्ण परिपाटी निकाली जाय'।

उपेक्षा और प्रतिवाद में होठ सिकोड़कर विजय ने सिर नीचा किया।। कला मुस्कराई। जमुहाई आने को थी कि उनको छोटी सी अँगड़ाई में

परिवर्तित कर लिया, कन्धे हिल गये। निहालसिंह ने देखा और कला ने भी निहालसिंह की निरख की।

बैजू ने कहा, 'मैं समझ गया। निकालूंगा परिपाटी। ऐसी कि जिसके द्वारा ध्रुवपद मनको आरम्भ से अन्त तक अपनी कोमल फांसों में पकड़े रहे और समय इतना ही लगे कि मन चाहता रहे, कुछ और कुछ और भी होता।'

'कर चुके!' धीरे से विजय के मुंह से निकला। कला ने बैजू के तमतमाये चेहरे को देखा। आँख मानसिंह पर से फिसलती हुई निहालसिंह पर जा अटकी। वह नीचे ही नीचे उसको कुछ अधिक गड़ाकर देख रहा था। कला ने क्षणखण्ड के अवान्तर से फिर निहालसिंह को देखा। फिर दोनों की दृष्टि मिली।

बैजू के सटे हुये होठ फड़के और गरम निस्वासके साथ धीरे से शब्द निकले, 'किसी दिन तुम्हारी वीणा को न फोड़ा तो मेरा नाम नहीं।'

राजा ने नहीं सुन पाया परन्तु विजय ने सुन लिया। राजा की इच्छा सभा विसर्जित करने की थी परन्तु कलावन्त अखाड़े को नहीं छोड़ना चाहते थे।

मानसिंह ने समस्या का समाधान निकाला,—'कला का एक छोटा सा नृत्य हो जाय और उसके उपरान्त सभा विसर्जित हो।'

कला ने बैजू के गाये हुये प्रबन्ध को सार्थक करने वाला नृत्य किया। बीच बीच में कला और निहालसिंह ने एक दूसरे को कई बार छिप छिपके देखा।

नृत्य के समय तक अन्य कई रानियां भी जाग चुकी थीं।

उन सबको सुनाने के लिये मृगनयनी ने लाखी को कहा, 'महाराज ठीक कहते हैं। बड़ी बात को थोड़े में कहना ही तो चतुराई है। बैजू का कहना नहीं है कि ऐसा हुआ है और आगे भी होगा। बड़ी चट्टान के

डोंके से नाहर को कुचलने की अपेक्षा छोटे चोखे तीर से सुला देना ज्यादा अच्छा। अभ्यास किया जाय तो सब हो सकता है।'

बड़ी रानी ने हँसकर मुंह फेरा। दूसरी रानियों ने दोनों की ओर देखा। हँसने की चेष्टा की परन्तु हँसी क्षीण मुस्कान का रूप लेकर ही रह गई। वे सब नृत्य को देखती रहीं।

'मैं नृत्य भी सीखूँगी,' मृगनयनी ने लाखी के कान में कहा।

उसने भी उसी तरह कान में फूंका,—'हां, हाँ, सब हो सकता है।'

एक घड़ी पीछे नृत्य समाप्त हो गया और सभा विसर्जित।

आठों रानियां जाने को हुईं। मृगनयनी और लाखी ठिठकी रहीं। उन दोनों का नमस्कार लेकर वे सब चली गईं। उनकी दासियां भी साथ। ये दोनों अकेली रह गईं। मृगनयनी की निगाह सुमनमोहिनी के उस गहने पर गई जो उसके पैर से उतरकर गिर गया था और जिसको वह भूल गई थी। मृगनयनी ने उसको उठाकर परखा और जोर के साथ फेंक देने की इच्छा हुई। सभा-विसर्जन के उपरान्त मानसिंह की दृष्टि ऊपर झिंझरी की ओर गई। दिखलाई तो वहां से कुछ नहीं पड़ता था परन्तु उसने नमस्कार किया और चला गया। था शिष्ठाचार ही परन्तु मृगनयनी को वह बहुत कुछ लगा। उसने समझा कि अकेली मुझको ही राजा ने नमस्कार किया है। उस गहने को लिये हुये वह अपने कक्ष में चली गई। जब हाथ में गहने को देखा तो क्षुब्ध हुई। एक ऊपर के गहरे आले में फेंककर डाल दिया और पलङ्ग पर जा लेटी।

बड़ी रानी क्या है! एक विडम्बना है!! कदाचित् वह मेरा उपहास करने के लिये ही हँसी थी। और वे सातों अपना कोई निजत्व ही नहीं रखतीं। हर बात में उसकी अनुहार करती हैं! परन्तु महाराज मेरे और अकेले मेरी सम्पदा हैं। मैं उनकी, वह मेरे। कितने गहरे हैं। मैं भी ऐसी ही बनूंगी और इतना हँसूंगी इन आठों के ऊपर कि हां! नाहरों और अरनों की परवाह नहीं की, तो ये किस खेत की मूली हैं!! कैसे

परिवर्तित कर लिया, कन्धे हिल गये। निहालसिंह ने देखा और कला ने भी निहालसिंह की निरख की।

बैजू ने कहा, 'मैं समझ गया। निकालूंगा परिपाटी। ऐसी कि जिसके द्वारा ध्रुवपद मनको आरम्भ से अन्त तक अपनी कोमल फांसों में पकड़े रहे और समय इतना ही लगे कि मन चाहता रहे, कुछ और कुछ और भी होना।'

'कर चुके!' धीरे से विजय के मुंह से निकला। कला ने बैजू के तमतमाये चेहरे को देखा। आँख मानसिंह पर से फिसलती हुई निहाल-सिंह पर जा अटकी। वह नीचे ही नीचे उसको कुछ अधिक गड़ाकर देख रहा था। कला ने क्षणखण्ड के अवान्तर से फिर निहालसिंह को देखा। फिर दोनों की दृष्टि मिली।

बैजू के सटे हुये होंठ फड़के और गरम निस्वासके साथ धीरे से शब्द निकले, 'किसी दिन तुम्हारी वीणा को न फोड़ा तो मेरा नाम नहीं।'

राजा ने नहीं सुन पाया परन्तु विजय ने सुन लिया। राजा की इच्छा सभा विसर्जित करने की थी परन्तु कलावन्त अखाड़े को नहीं छोड़ना चाहते थे।

मानसिंह ने समस्या का समाधान निकाला,—'कला का एक छोटा सा नृत्य हो जाय और उसके उपरान्त सभा विसर्जित हो।'

कला ने बैजू के गाये हुये प्रबन्ध को सार्थक करने वाला नृत्य किया। बीच बीच में कला और निहालसिंह ने एक दूसरे को कई बार छिपे लुके देखा।

नृत्य के समय तक अन्य कई रानियाँ भी जाग चुकी थीं।

उन सबको सुनाने के लिये मृगनयनी ने लाखी को कहा, 'महाराज ठीक कहते हैं। बड़ी बात को थोड़े में कहना ही तो चतुराई है। बैजू का कहना सही है कि ऐसा हुआ है और आगे भी होगा। बड़ी चट्टान के

ठोंके से नाहर को कुचलने की अपेक्षा छोटे चोखे तीर से सुला देना ज्यादा अच्छा। अभ्यास किया जाय तो सब हो सकता है।'

बड़ी रानी ने हँसकर मुंह फेरा। दूसरी रानियों ने दोनों की ओर देखा। हँसने की चेष्टा की परन्तु हँसी क्षीण मुस्कान का रूप लेकर ही रह गई। वे सब नृत्य को देखती रहीं।

'मैं नृत्य भी सीखूंगी,' मृगनयनी ने लाखी के कान में कहा।

उसने भी उसी तरह कान में फूंका,—'हां, हाँ, सब हो सकता है।'

एक घड़ी पीछे नृत्य समाप्त हो गया और सभा विसर्जित।

आठों रानियां जाने को हुईं। मृगनयनी और लाखी ठिठकी रहीं। उन दोनों का नमस्कार लेकर वे सब चली गईं। उनकी दासियां भी साथ। ये दोनों अकेली रह गईं। मृगनयनी की निगाह सुमनमोहिनी के उस गहने पर गई जो उसके पैर से उतरकर गिर गया था और जिसको वह भूल गई थी। मृगनयनी ने उसको उठाकर परखा और जोर के साथ फेंक देने की इच्छा हुई। सभा-विसर्जन के उपरान्त मानसिंह की दृष्टि ऊपर भिझरी की ओर गई। दिखलाई तो वहां से कुछ नहीं पड़ता था परन्तु उसने नमस्कार किया और चला गया। था शिष्टाचार ही परन्तु मृगनयनी को वह बहुत कुछ लगा। उसने समझा कि अकेली मुझको ही राजा ने नमस्कार किया है। उस गहने को लिये हुये वह अपने कक्ष में चली गई। जब हाथ में गहने को देखा तो क्षुब्ध हुई। एक ऊपर के गहरे आले में फेककर डाल दिया और पलङ्ग पर जा लेटी।

बड़ी रानी क्या है! एक विडम्बना है!! कदाचित् वह मेरा उपहास करने के लिये ही हँसी थी। और वे सातों अपना कोई निजत्व ही नहीं रखतीं। हर बात में उसकी अनुहार करती हैं! परन्तु महाराज मेरे और अकेले मेरी सम्पदा हैं। मैं उनकी, वह मेरे। कितने गहरे हैं। मैं भी ऐसी ही बनूंगी और इतना हँसूंगी इन आठों के ऊपर कि हां! नाहरों और अरनों की परवाह नहीं की, तो ये किस खेत की मूली हैं!! कैसे

हरे-भरे खेत थे वे और कैसा बड़ा और हरा जंगल !!! मचान, धान का खेत और खलियान। तोते, मोरें और नीलकण्ठ। यह आया, वह गया। न वे थकते और न मैं थकती। मचान पर कैसी हिलोड़ें लेती हुई हवा आती थी और मैं कितना गाती थी ! बैजू सरीखा ही गाने लगूंगी। अरे उससे भी कुछ अधिक मिठास भरा, तब लाखी भी कहेगी तुमने ठीक कहा था सब हो सकता है, सब हो सकता है—वह सो गई।

[८३]

स्वर्ण-संचय की कामना, मारकाट की आकांक्षा, स्त्रियों के अपहरण की वासना, राज्य स्थापित करने के लोभ और किसी भी प्रकार अपने मजहब के विस्तार के मोह को लेकर पठान और तुर्क आक्रमक भारत में घुसे थे। इन सब का, एक सामूहिक नाम था उनका बहिश्त। इस बहिश्त की तलाश में ही शेरशाह के पहले भारत में जगह-जगह सल्तनतें क़ायम हुईं—दिल्ली, मालदा, गुजरात, जौनपुर, गोलकुण्डा, बङ्गाल इत्यादि में। सल्तनतें क़ायम होने पर, बाप ने बेटे को और बेटे ने बाप को, सल्तनत के तख्त और मुकुट का मार्ग–कंटक समझ कर ज़हर के ज़रिये या किसी और सुलभ उपाय से अलग किया। उस बहिश्त की प्राप्ति ने सुलतानों को और उनके सरदारों तथा सिपाहियों को निर्बल और निकम्मा बना दिया। हिन्दू यदि परलोकभय, निराशावाद, आपसी लड़ाइयों के कारण उतने दुबले न पड़ गये होते, तो, या तो वह स्वर्ग उनको मिलता ही नहीं और यदि मिल ही जाता तो धर्मराज उनको बहुत समय तक उसमें रहने न देते।

परन्तु उस बहिश्त को भी बहुत ज्यादा मुफ्तखोरी बरदाश्त न थी। मौलवी और मुल्ले लगातार चेतावनी देते रहते थे। मुल्ले-मौलवियों ने इस्लाम को जैसा और जितना समझा था, उसके अनुसार वे अपने इन चेले-चांटों को जगाया, उँकसाया और भड़काया करते थे। सुलतान न सुनता तो सरदारों को, सरदार न सुनते तो सिपाहियों को, ये मुल्ले–मौलवी, धर्म–युद्ध जिहाद के लिये भड़काया करते,षड़यन्त्रों में भाग लेते और जब तक कुछ कर न गुजरते तब तक दम न मारते। परन्तु इस जिहाद का अनिवार्य परिणाम वही स्वर्ग ही हो जाता था; जिसको पा–पाकर सुलतान, सरदार और सिपाही अनवरत गति से चले जाते थे। यही उनका सबसे बड़ा जोर और सबसे बड़ी कमजोरी थी।

मालवा सल्तनत के मुल्लों ने गियासुद्दीन के लड़के को अपना

कृपापात्र और भविष्य की आशाओं का केन्द्र बनाया, क्योंकि गियासुद्दीन अपने स्वर्ग की तलाश में इन मुल्लों-मौलवियों के बतलाये हुये स्वर्ग की परवाह नहीं करता था।

नरवर से लौटे हुये गियास को छः महीने हो गये। जाड़े आये, वसन्त-ऋतु आई, गई, और अब गर्मियां समाप्त होकर बरसात लगने वाली थी परन्तु गियास न मरा, न मरा।

नसीर ने मुल्लों की हिदायतों पर अमल किया,—जशन मनाये, षड्यंत्र किये, सभी तरह के अभ्यास किये—परन्तु चूक-चूक गया। उसके लिये भला इतना ही हुआ कि गियास को उसके किसी भी अभ्यास का पता न चला। मटरू उसका सहयोगी था इसलिये शायद नसीर बार-बार बचा। फिर एक दिन घड़ी आ ही गई।

गियास की एक खवासिन मटरू की कोशिशों से नसीर के फेर में आ गई और काम बन गया। दो दिन से यकायक बादल और शीतल समीर। सन्ध्या के उपरान्त का समय। महल के झरोखे से ठण्डी हवा के झोंके आये और हलकी बूंदें भी। खवासिन जाम ले आई। मटरू तख्त के नीचे बैठा था।

'सुलतान सिकन्दर लोदी ने ग्वालियर पर चढ़ाई करने की जो ठानी है वह मेवाड़ के राना के जरिये वहीं की वहीं ठप क्यों न कर दी जाय?' गियास ने चुसकी लेते हुये कहा।

नीची गर्दन को और भी नीची करके मटरू बोला, 'जहांपनाह। दो मूज़ी आपस में उलझ जावें तो इससे बिहतर और कुछ नहीं।'

'मैंने राना रायमल जी को सन्देशा भेज दिया है कि सिकन्दर ग्वालियर का बहाना करके असल में मेवाड़ की तरफ़ रवाना हुआ पहुँचेगा, इसलिये वह उसको आगे बढ़कर रोक लें।'

'अपने लड़के सांगा को भेज दें, तो वह सिकन्दर को वहीं के वहीं तोड़ देगा।'

'तुम तो हो गधे ! राणा अपने ढङ्ग से लड़ेंगे, तुम्हारे बतलाये ढङ्ग से थोड़े ही लड़ेंगे। मैंने उनके एक भाट को हुस्का दिया है, वह उतरवा देगा बात को ठीक घाट पर।'

'जहाँपनाह, यह बहुत सही रहा।'

'और, उधर सिकन्दर और राना जूझे कि इधर मैंने कालपी के रास्ते से ग्वालियर पर धावा बोल दिया। अबकी बार नरवर होकर नहीं जाऊँगा। मैं पहुँचूँगा ग्वालियर उत्तर की राह से और चन्देरी का सूबेदार आवेगा ग्वालियर पर से दक्षिन से। क्या समझे?'

'सही फ़रमाया जहाँपनाह ने। उत्तर में जहाँपनाह और दक्खिन से चन्देरी का सूबेदार शेरखाँ।'

'बस फिर बन गया काम। वे दोनों ग्वालियर में ही हैं जानते हो न?'

भटरू ने क्षण-खण्ड के लिये आंख ऊँची करके नीची करली। उसने देखा गियास की पुतलियाँ कुछ अधिक फैल गई हैं।

कहा, 'कौन जहाँपनाह?'

प्याले को ढालकर वह बोला,—सुराही में से प्याले को भरता रहा —'अबे अहमक़ इतनी जल्दी भूल गया! मृगनयनी और लाखी—ये दोनों। इनको अबकी बार माँडू लाये बिना चैन नहीं लेने का।'

गियास की आंखें फैलकर कुछ और भारी हुईं।

'आज मेरा हाथ इतना क्यों कांप रहा है?'

'जहाँपनाह, हवा में कुछ सर्दी है।'

'तो अब राना रायमल या उनके लड़के साँगा को सिकन्दर से उ···ल···झ··ने में कितनी दे···र···है?'

'बहुत थोड़ी सी जहाँपनाह।'

'दोनो लड़ जायें···क···म···ब···ख्त।'

गियास के हाथ मे प्याला छूट पड़ा। खवासिन किवाड़ की ओट में खड़ी हुई थी। जरा और ओझल हो गई। गियास तकिये के सहारे पड़ गया। मटरू खड़ा हो गया।

धीरे से बोला, 'जहांपनाह।'

गियास ने कोई जवाब नहीं दिया। मुंह से झाग आने लगे। मटरू ने ताली बजाई। खवासिन तुरन्त आ गई।

मटरू ने धीरे से कहा, 'शहज़ादे के पास इत्तिला भेजो कि जहांपनाह की तबियत यकायक ख़राब हो गई है। किसी और को ख़बर न होने पावे।'

खवासिन चली गई। थोड़ी देर में गियासुद्दीन तड़पने लगा और नसीर के आने के पहले ही उसका प्राणान्त हो गया।

नसीर आते ही डरते-डरते गियास की तरफ़ दृष्टि फेरी, फिर मटरू की तरफ़ देखा। मटरू ने सिर और हाथ के हलके से संकेत द्वारा सब कुछ बतला दिया—मानो, कह रहा हो, योजना सफल हो गई, समाप्त हो गया।

कांपते हुए स्वर में नसीर बोला, 'बाहर खबर यह फैलाई जाय कि सुल्तान सलामत बहुत बीमार हैं। असल बात किसी को न मालूम होने पावे।'

स्थिर-कण्ठ से मटरू ने कहा, 'जहांपनाह सुल्तान नसीरुद्दीन ज़िन्दाबाद! सिवाय मुल्ले मौलवियों के और किसी को नहीं मालूम होने पावेगा। हुज़ूर सुल्तान मरहूम के जांनशीन हैं, हुकूमत करें। दरबार का अखबार नवीस इन्तकाल की बात को महीनों बाद दर्ज कर सकेगा।'

'खवासिन कहां है?' नसीर ने पूछा।

खवासिन पीछे ही खड़ी थी इनाम के लोभ में आगे आ गई। नसीर ने तुरन्त तलवार निकालकर उसका सिर काट डाला। मटरू अचेत होने को हुआ। नसीर ने तलवार म्यान में डाल ली।

बोला, 'होशियार ख्वाजा मटरू ! होशियार !!'

मटरू सम्भला।

'मैंने इस कमबख्त खवासिन को इसलिये खतम कर दिया, कि कहीं इधर-उधर बकती न फिरे। अगर राज़ खुल गया कि सुल्तान अब जिन्दा नहीं है, तो मुझे और तुमको कहने को तो होगा कि इस बदकार औरत ने सुल्तान को किसी रंजिश की वजह से जहर दिया इसलिए मैंने इसको सजा दे दी। इसके मार दिये जाने से हमारा तुम्हारा, दोनों का रास्ता साफ हो गया। महल में चर्चा इस औरत को सज़ा दिये जाने की होगी तो अच्छा होगा। सब चुपचाप अपना अपना काम देखेंगी। क्या समझे?'

'सब समझ गया, जहांपनाह सब समझ गया।'

'अभी जहांपनाह नहीं, बेवकूफ, सिर्फ जानआलम, जैसा पहले कहता था।'

हां, जानआलम, जानआलम।'

थोड़ी देर बाद मुल्ला-मौलवियों और सरदारों को भी मालूम हो गया। हठ के साथ गियास की बीमारी का समाचार साधारण जनता और सिपाहियों में फैल गया ! लाश तेल में रख दी गई। नसीर के हाथ में हुकूमत आ गई। अख़बार नवीस ने गियास के प्राणान्त के वृत्त को कागजों में बहुत दिनों दर्ज नहीं किया।

नसीर अपनी प्रचण्ड भूख, स्त्रियों की भूख—कामवासना—की तृप्ति में जुट पड़ा। ख्वाजा मटरू और न जाने कितने मटरू उसकी सहायता के लिये फट पड़े।

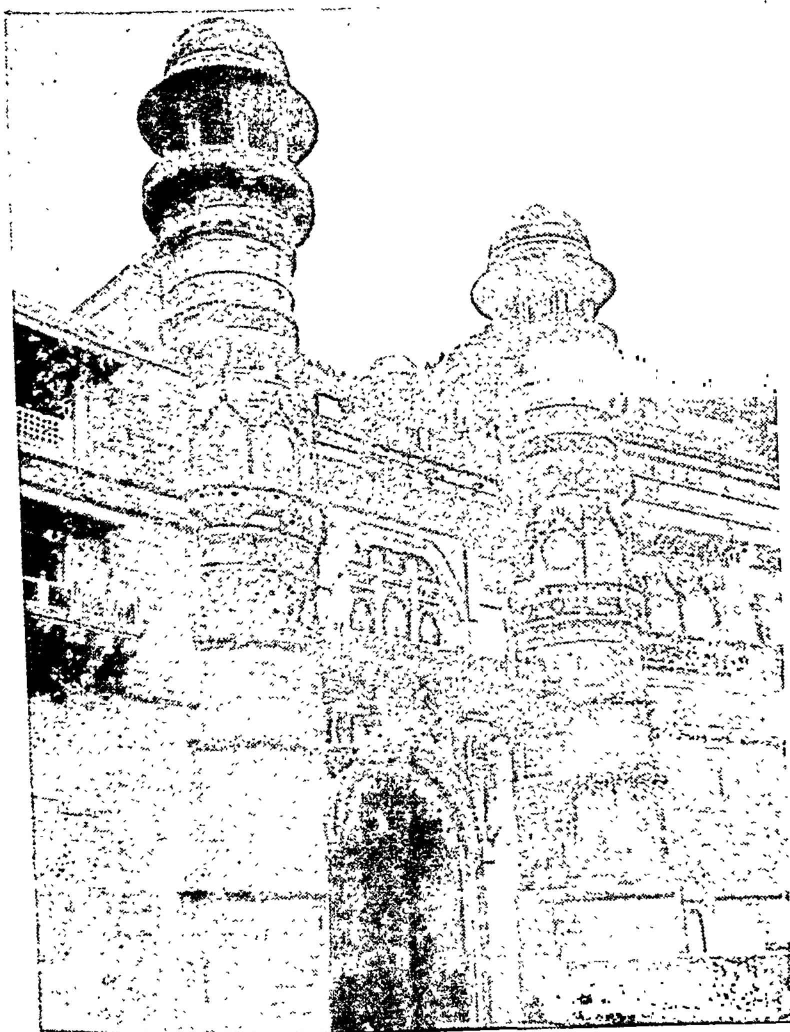
[४४]

सिकन्दर लोदी मेवाड़ नरेश राणा रायमल के राजकुमार सांगा—संग्रामसिंह—की एक छोटी सी मुठभेड़ को ओढ़कर ग्वालियर की ओर मुड़ आया। धौलपुर पर हमला किया और घेरे के लिए अपनी विशाल सेना का एक भाग छोड़कर चम्बल को पार करके ग्वालियर की दिशा में उन्मुख हुआ। धौलपुर उस समय एक तोमर वंशी राजा के आधिपत्य में था, जो राजा मानसिंह का सहायक था। परन्तु सिकन्दर मेवाड़ की ओर से धौलपुर पर इतनी तेजी के साथ चढ़ दौड़ा था कि ग्वालियर से सहायता न आ सकी। आक्रमण की छोटी-छोटी टुकड़ियां आगे-आगे चलती थीं जो समाचार देने के साधनों को नष्ट करती जाती थीं। समाचार देने के साधन इतने ढीले और स्वल्प हो गये थे कि प्रायः विलम्ब के साथ पहुँच पाते थे। ग्वालियर जो समाचार आया उसका सार यह था कि सिकन्दर लोदी धौलपुर पर एक छोटा सा वार करके मेवाड़ की दिशा में लौट गया है। सिकन्दर चम्बल की घाटियों और भरकों में होकर ग्वालियर पर आ रहा था।

मानसिंह अपने नये महल के नीचे वाले दो खण्ड बनवा चुका था। सुमनमोहिनी की डाह के कारण वह नये महल को बहुत जल्दी बनवा रहा था। जानता था कि कर्णमहल में अल्प स्थान होने के कारण नवीं रानी के साथ सुमनमोहिनी और सात रानियों की बढ़ती हुई खटपट अधिकाधिक होती चली जावेगी, नये महल के बन जाने के बाद उनके सम्पर्क कम हो जावेंगे और अधिक शान्ति स्थापित हो जावेगी।

ऊपर के खण्ड किस प्रकार के बनें यह वहम थी।

विजयजङ्गम ने सुझाया, तैलङ्ग शैली के बनवाइये। ऊपर के दोनों खण्डों में वन—उपवन की निखरी पूर्ण विपुल शालीनता, छोटी-छोटी पहाड़ियों की प्रतिमालय नदियां, बड़े पहाड़ों सरीखे आड़े शिखर और आड़े शिखरों पर पहाड़ों के अनेक तुङ्गों के प्रतीक, मन्दिर के चारों पार्श्व



मान-मन्दिर, ग्वालियर का गज-द्वार

त्रिभुजाकार, इन कमल-गुंजित त्रिभुजों के शिखर पर सूर्य का गोल मण्डल।'

मानसिंह स्पष्ट नहीं समझा।

विजय ने व्याख्या की, 'ऊपर के पहले खंड से दूसरे खंड को समोने के लिये पहले खंड से ही चारों दिशाओं से विशाल त्रिभुज बनते जायं जो ऊपर जाकर दो समानान्तर पटरियों को बनाते हुये मिल जायगे। अपने किले के भीतर तैल-मन्दिर में जैसा समन्वय पहाड़, शिखिर, तुंग, मण्डप, मड़िया, आम के पेड़ की गोल गुम्मट और नदी-नालों की लहरों तथा शिव के त्रिशूल का हुआ है वैसा ही बड़े पैमाने पर। जब बन चुके तब नाम उसका रक्खा जाय, मान-मन्दिर।'

'यहां उत्तर के शिल्पियों की समझ में यह नहीं आवेगा, क्योंकि इनकी परम्परा कुछ भिन्न है।'

तैल-मन्दिर को इन्हीं लोगों के पुरखों ने ही बनाया होगा?'

'छः सौ वर्ष से उपर हो गये जब ग्वालियर के राजा ने एक तैलंग राजकुमारी के साथ व्याह किया। दक्षिण के कुछ शिल्पी उस राजकुमारी की प्रेरणा से आये। उनके और उत्तर के शिल्पियों के सहयोग से वह मन्दिर बना। तैल-मन्दिर का शिखर तैलंग राजकुमारी की वाञ्छा का प्रतीक है और शिखर के नीचे का सारा खंड उत्तर की परम्परा की मूर्ति है। अब वे कारीगर नहीं हैं।'

'हां, तैल-मन्दिर' विष्णु के शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म के सौन्दर्य और शिव के ऊंचे, लम्बे, तीक्ष्ण त्रिशूल तथा नन्दी की महत्ता का समन्वय है।'

'ठीक कहते हो आचार्य, मन्दिर के चारों ओर गणेश और मयूर-गामी कार्तिकेय की मूर्तियां भी हैं।'

'महाराज, यह वैष्णवों का अत्याचार है।'

'परन्तु मन्दिर को उत्तर के वैष्णव और दक्षिण के शैवों ने मिल कर बनाया होगा।'

'आप भी क्या कुछ इसी प्रकार का मिश्रण अपने भवन के निर्माण में करेंगे?'

'मैं तो टांकी के हथौड़े की कविता और संगीत के ताल और गान को मूर्त करना चाहता हूँ इस भवन में। किन उपादनों और साधनों से हो, यह आप सरीखे विद्वान बतलावें; मैं भी कुछ सोच रहा हूँ परन्तु निर्णय नहीं कर पाया हूँ।'

'शिल्पी और कारीगर बतलावेंगे यहां के?'

'शिल्पी और कारीगर निर्माण-कला के शब्द और व्याकरण हैं। उनकी योजना, शब्दन्यास, पदलालित्य और अनुपात को कविता तथा मंजुल-मंगल की फुरफुरी देना हमारा आपका काम है।'

'सोचूंगा। आप क्या किसी काव्य को पत्थरों में साकार करने जा रहे हैं?'

'आप ही तो बतलाते रहते हैं कि जीवन को कल्याणमय और सुन्दर बनाने से ही मृत्यु भी शुभ बन सकती है, मैं जीवन के उसी भाव को पत्थरों में उतार देना चाहता हूँ।'

'मैं महाराज, गुरुवचन को तो दुहराता रहता हूँ। परन्तु गुरु-वचन में कायक-श्रम-पर अधिक बल दिया गया है। उसको भवन निर्माण में कैसे व्यक्त किया जायगा?'

'उसकी विशालता से कायक धर्म का मर्म प्रकट हो जावेगा।'

'उसकी विशालता, देखने वालों को आतङ्कित न करेगी?'

'सौन्दर्य की विशालता सीधे ऊंचे ताड़ वृक्ष की जैसी विशालता नहीं।'

'देखने वाले को जीवन में श्रम को गौरव का पद देने की प्रेरणा भी मिलेगी क्या उसके सौन्दर्य से ?'

'चाहता तो हूँ कि हम सब और आगे आने वाले लोग भी उसको देख-देखकर आह्लादित हों, गाने के लिये लहरा उठें और उस लहर से कर्मठ बनने की स्फूर्ति और शक्ति को पाकर जीवन को अपने श्रम से भर दें।'

'सोचूंगा किस प्रकार यह कल्पना पत्थरों की योजना द्वारा प्रकट हो सकेगी, आप तो सोच ही रहे हैं।'

[८२]

सांझ से ही बादल घिर आये। बिजली कड़क तड़क हुई और गरगराहट के साथ पानी बरसने लगा। चन्द्रमा ऐसा छिपा कि घोर अमावस्या की रात प्रतीत होने लगी। मृगनयनी और मानसिंह कर्णमहल के एक ऊपरी कक्ष की खिड़की के सामने मञ्च पर बैठे हुये थे। मानसिंह कुछ चिन्तित सा था, मृगनयनी हर्षमग्न और प्रफुल्ल।

मानसिंह ने कहा, 'इस वर्ष बरसात नाम ही नहीं ले रही है अन्त होने का।'

'खेती–पाती के बिगड़ जाने का डर लग रहा है क्या?' मृगनयनी हँसती हुई बोली।

उसके दाँतों में बिजली का कुछ साम्य देखकर मानसिंह की चिन्ता छूट गई।

'राज्य के किसानों की खेती-पाती अपनी खेती-पाती के ही समान तो है। परन्तु इस समय चिन्ता भवन–निर्माण के काम में बाधा होने के कारण हुई।'

'जब राई गाँव में थी, एक रात कुछ मैंने भी सोचा था।'

'तुमने अवश्य कोई कविता या तान सोची होगी, मुझको बतलाओ क्या सोचा था।'

'न कविता थी और न तान। मैं उन दिनों जानती ही क्या थी? पर सोचा अवश्य था कुछ।'

'बतलाओ न? मैं सुनने के लिये बहुत उत्सुक हूँ।'

मृगनयनी ने बड़ी–बड़ी आंखों चलाते हुये देखा। मुस्कराई। कुछ क्षण चुप रही।

'तुम ऐसे नहीं बतलाओगी। करूँ बुलवाने का कोई उपचार? मुझको अनेक आते हैं।'

मृगनयनी हँस पड़ी।

'वैसे ही बतलाये देती हूँ',—उसने कहा,—एक रात मेरे मन में चाह उठी थी कि चाँदनी में चमकती नदी की दमक को समेट कर अंचल में बांध लूं, खेत की ऊँघती हुई बालों और पहाड़ की उस ऊँचाई को एक ही ठौर पर इकट्ठा करलूँ, बड़े-बड़े पेड़ों के वन्दनवार बनाऊँ और डालियों पत्तों के झरोखें सजाऊँ, उन झरोखों में होकर मोतियों के हार को पहिने हुये नदी की लहरों को गीत सुनाऊँ, और फिर एक ऐसा घर बनाऊँ जिसमें यह सब आ जाय। मैंने और लाखी ने मिलकर एक घरोंदा बनाने का प्रयत्न किया। वह आधी घड़ी में कुछ न बनकर बिगड़ गया। आपने तो बहुत बना लिया है और बहुत बड़ा। एक दिन पूरा भी हो जावेगा।'

'वह गीत कौनसा है जिसे नदी की लहरों को सुनाती थीं?'

'अरे यों ही सा कुछ—भूल गई।'

'बतलाओ जल्दी, नहीं तो फिर हाँ...'

'गीत था; जाग परीं मैं पिया के जगाये।'

'मुझको सुनाओ।'

'सुनाया तो था पहले।'

'आज फिर सुनाओ।' उसने हठ किया।

मृगनयनी ने सुनाया। उसने गीत को इतना सुरीला गाया कि वह स्वयं आनन्द-विभोर हो गई। अपनी ही तानें उसको कभी पहले ऐसी मीठी नहीं लगी थीं।

मानसिंह बोला, 'भवन-निर्माण के सम्बन्ध में इसी समय मुझको कुछ नई सूझें मिली हैं।'

बादल फट गये और चांदनी धुली-धुली छिटक आई। पानी कुछ पहले रुक गया था। प्रकाश में निकट की पर्वत-श्रेणी स्पष्ट दिख गई।

दूर के पहाड़ धूमिल, ऊँघते, सोते से।

मानसिंह ने कहा, भवन को सौन्दर्य, लालित्य और आस्था का मन्दिर बनाऊँगा। कोमल भावनाओं का सदन, तुम्हारी चाह, शक्ति और बड़प्पन का प्रतीक! तुम्हारी कल्पना के वन्दनवार, ऊँचे वृक्ष, पल्लवों के झरोखे, नदी की दमकती हुई लहरें, सबों को, उसमें संजो दूंगा। उस मन्दिर की प्रबल मञ्जुलता आधी रात की चांदनी में आकाश से गाकर कहेगी—जाग परी मैं पिया के जगाये।'

'पत्थर गावेंगे कैसे?'

'जैसे तुम्हारे गांव के पेड़, पहाड़ खेत की ऊँघती हुई बाल और चांदनी में चमकती नदी की लहरें गाती हैं।'

मृगनयनी के मन में उठा, मैं रहूँगी उस में; एक कक्ष में लाखी रहेगी, सुमनमोहिनी भी आया करेगी और छींटे भी कसा करेगी! कसने दो। मैं कान बहरे कर लूँगी अनसुनी करती रहूँगी, तब क्या करेगी वह? परन्तु उसकी आंखें? और वह उपहास! असह्य हो जाता है। सहूंगी। ऐसा सुन्दर मन्दिर बनेगा वह और हम सब उसमें ओछे बनकर रहेंगे! मैं खीझा नहीं करूंगी, वह अपने आप झुक जायगी। अरे! उसका वह अलंकार!! उसको एक आले में फेंककर मैं बिलकुल ही भूल गई!!! क्यों भूल गई? इतने दिन क्यों भूली रही? अब उसको लौटा दूंगी। उसको उठाया ही क्यों था? हाथ में क्यों बना रहा? मैंने उसको आले में क्यों डाल दिया? वह सोचती होगी मैंने या मेरी किसी चाकरिन ने चोरी की! ओफ!! बहुत बुरा हुआ। उसको कहीं फेंक दूं? नहीं, कभी नहीं। क्या वह उसी आले में पड़ा होगा? देखती हूँ, वहीं पड़ा होगा। अभी लौटा दूंगी।

'क्या सोच रही हो? मैंने ठीक कहा न कि पत्थर इसी प्रकार गावेंगे?' मानसिंह ने पूछा।

मृगनयनी उठ खड़ी हुई। बोली, 'मैं अभी आती हूँ।' मानसिह प्रश्न नहीं करने पाया, वह आतुरता के साथ चली गई। जिस आले में उसने सुमनमोहनी के गहने को फेंक डाला था, वहीं मिल गया। वह उसको उठा लाई।

उसने कहा, 'भूल से आले में पड़ा रहा यह बड़ी महारानी का गहना।'

'मैं समझा नहीं। यह क्या है?' मानसिंह बोला।

मृगनयनी ने महीनों पहले की कहानी बतलाई।

'कैसे स्मरण हो आया?' मानसिंह ने पूछा।

'यों ही,' उसने उत्तर दिया।

एक क्षण चुप रहकर मानसिंह ने कहा, 'अब क्या करोगी?'

'मैं इसको लौटा देना चाहती हूँ।'

'बड़ी भूल करोगी। अनर्थ हो जायेगा।'

'अब तक स्मरण नहीं आया, इसलिये कोई बात नहीं, परन्तु यदि रक्खे रहूँगी तो चोर समझी जाऊँगी।'

'तो क्या तुम समझती हो कि वह उदारता बर्तेंगी?'

'कुछ भी हो मैं इसको नहीं रक्खूँगी।'

'न रखो तो कहीं फेंक दो, परन्तु लौटाओ मत।'

'मेरे ऊपर छोड़ दीजिये, चिन्ता मत करिये।'

'वह तुमको चोर कहेंगी।'

'मैं तो न कहूँगी अपने को चोर। वह कहेंगी तो सह लूँगी।'

'तुम जानो, मैंने सावधान कर दिया है।'

'जब पत्थर उस प्रकार गावेंगे तो क्या हम कुछ भी न गा सकेंगे?'

[४६]

दूसरे दिन मानसिंह को समाचार मिल गया कि सिकन्दर लोदी अपनी विशाल सेना सहित पश्चिम-दक्षिण की दिशा से ग्वालियर पर आरहा है। बरसात के कारण भवन निर्माण में बाधा पड़ ही चुकी थी, सिकन्दर की चढ़ाई के समाचार नें उसको और भी विपन्न कर दिया। सङ्गीत, चित्रकारी और निर्माण के काम को युद्ध के कारण न जाने कितने समय तक स्थगित किये रहना पड़ेगा यह उसको बहुत गड़ रहा था। लड़ाई के साधनों को प्रचुर, प्रबल और प्रखर बनाने की अपेक्षा उसका ध्यान कलाओं के प्यार पर अधिक जा रहा था।

नगर में खलबली मच गई। सम्पत्ति वाले लोग अपने सामान और बालबच्चों को लेकर किले में आ गये। किसान और मजदूर कुछ नगर-कोट के भीतर रह गये और कुछ भागकर पास और दूर के जंगल-पहाड़ों में छिपने लगे।

सिकन्दर इसके आठ-नौ वर्ष पहले एक करारा आक्रमण ग्वालियर पर कर चुका था। सिकन्दर के पहले उसका बाप बहलोल भी चढ़ाई कर चुका था। मानसिंह ने दोनों अवसरों पर आक्रमण को विफल कर दिया था। नगर के भागने वाले लोग अबकी बार निराश थे।

'राजा नाच-गान में ज्यादा उलझ गया है। अब वह उतना सावधान नहीं रहा!' कुछ लोग कहते थे।

दूसरों की शिकायत थी, 'रात रात भर जागेगा, दिन दिन भर सोयेगा, तब तुर्कों को पीछे हटाने का समय कब और कहाँ से निकलेगा?'

'ग्वालियर की सीमा को बिल्कुल असावधान कर दिया! चौकियाँ सब ढीली हो गईं!!'

'रहने के लिये एक महल क्या कम था जो दूसरे के बनवाने में इतना डूब गया?'

'अच्छे धनुर्धारी नहीं रहे अब ग्वालियर में !'

'तुर्कों का राज हो जायगा क्या अब ? वे गुलाम बनायेंगे।'

'तोमर राजपूत अफ़ीम खाने लगे हैं।'

'जब से यह नई रानी आई, तब से राजा का शौर्य चौपट हो गया। निहालसिंह शायद कुछ कर सके।'

'जब राजा ही ढीला है तब सामन्त क्या कर सकेंगे ?'

'अब जब सिर पर आ गई है, तब राजा कुछ न कुछ अवश्य करेगा।'

'तुर्क जैसे पहले मुंह की खाकर लौट गये थे, वैसे ही अब भी लौट जायेंगे।'

'राजा को सजग कैसे किया जाय ?'

क़िले के भीतर बढ़ती हुई भीड़ ने मानसिंह की युद्ध भावना को उत्तेजित किया। क़िले में जहाँतहां अस्त्र-शस्त्रों की व्यवस्था की, सैनिकों को सन्नद्ध किया, भाग जाने से जितने लोग नगर में बचे थे उनको घर घर जाकर आश्वस्त किया। सिकन्दर की सेना को दूर ही अटकाये रखने के लिये निकटवर्ती पहाड़ों और घाटियों में सैनिकों की टुकड़ियाँ लगादीं।

सन्ध्या समय मृगनयनी को तैयारी का सब समाचार जा सुनाया। थक गया था, तो भी उसके मन में शिथिलता नहीं थी।

'समय पड़ने पर मैं भी लड़ूंगी,' मृगनयनी ने कहा।

'तुमको लड़ना पड़ा तो हम पुरुष काहे के लिये हैं ?'

'और स्त्रियां काहे के लिये हैं ? क्या वे वाञ्छा और कामना की शृङ्गार मात्र हैं ?'

'नहीं जीवन की प्रेरणा, प्रातःकाल की ऊषा जैसी सजग करने वाली।'

'मैं कविता नहीं जानती परन्तु मैं पूछती हूँ कि क्या यही ऊषा दोपहर की प्रचण्ड किरण नहीं बन जाती ? बड़ी रानियों ने एक समाचार

भेजा था कि यदि बुरी से बुरी घड़ी आ गई तो हम सब जौहर करेंगी। क्या ऊषा प्रचण्ड किरण न बनकर, गगन में ऊपर न उठकर, फिर नीचे धस जायगी ?'

'उन रानियों को यह सम्वाद नहीं भेजना था।

'महल के उत्तर-पश्चिम में जो जौहरताल है उसने यह सम्वाद भिजवाया है। रानियों को ऐसे समय में वही याद आया, क्योंकि उनकी बाहों ने तीर कमान और तलवार को कभी अपनी सखी नहीं बनाया। पहले की सतियों ने आग और चिता को जितना प्यार किया उसके बराबर तीर और तलवार के साथ भी करना चाहिये था। आने दीजिये वैरी को किले के निकट फिर देखिये मेरा और लाखी का काम।'

'मुझको विश्वास है परन्तु मैं चाहता हूँ कि जब दिन भर की लड़ाई से थककर तुम्हारे कक्ष में आऊँ तब तुम्हारी मृदुल मुस्कान और मीठे स्वरों की ललित तान को अपने भीतर भरकर फिर ज्यों का त्यों सबल हो जाऊँ।'

'और हमारे चलाये तीरों की सनसनाहट क्या आपकी भुजाओं को कम फड़कन देगी ? आपका भवन बनकर खड़ा हो गया होता तो क्या वह सोने के लिये ही आपको न्योता देता या यह भी कहता कि मेरे बाहर से लड़ो और भीतर बैठकर लड़ो ?'

'बन जायगा, तब वह यही सन्देसा देगा परन्तु बन नहीं पा रहा है। कोई न कोई विघ्न बीच में आ जाता है। चाहता हूँ तुर्कों की बला किसी तरह टल जाय तो बिना विलम्ब के भवन को बनवा कर खड़ा करलूँ, बैजू के द्वारा संगीत में नया प्राण फूक दूँ, चित्रकारी, साहित्य इत्यादि को पूरी ऊंचाई पर पहुँचा दूँ।'

'तुर्कों की बला किसी तरह से टल जाय ! कैसे टलेगी ? सोना चांदी देकर टाल दीजिये।'

'मैं भी सोच रहा हूं।'

'क्या सचमुच आप यही सोच रहे हैं ?'

'क्यों ? राजनीति में साम, दाम, दण्ड, भेद—चारों को यथा अवसर काम में लाना पड़ता है। सोचने में क्या बुराई है।'

'कलाओं की बहुत अधिक पूजा ने ही क्या आपके ध्यान को राजनीति के दाम वाले अङ्ग पर अधिक जा बिठलाया है ? दण्ड की बात आप क्यों नहीं सोच रहे हैं ?'

'सभी अङ्गों को सोचना पड़ता है।'

'मैं राजनीति को नहीं जानती। किसान की लड़की ठहरी। केवल इतना जानती हूँ कि मचान पर जागते-सोते जैसे ही भोर की लाली को देखा कि मन में लहर दौड़ी; चिड़ियों की चहक को सुना कि उमङ्ग छा गई और दिन के काम पर पिल पड़ी। जब भोर की लाली, चिड़ियों की चहक, नदी की धार की दमक, पहाड़ों की ऊँचाई और लम्बे-तगड़े पेड़ों की हरियाली और झरोखों वन्दनवारों को मिट्टी के घरोंदे में नहीं उतार पाया, तब उस पर से ध्यान को हटाकर अपने काम में लग गई।'

'परन्तु मिट्टीके घरोंदे और काटे तराशे पत्थरों के बनाये अधूरे भवन में तो बड़ा भारी अन्तर है।'

'वीणा को बजाते-बजाते, काम पड़ने पर, यदि तुरन्त तलवार न उठ पाई, कोमल सेज पर सोते-सोते, संकट आने पर, यदि तुरन्त ही उछलकर कमर न कसी, ध्रुवपद को गाते-गाते शत्रु के सामने आखड़े होने पर, यदि तुरन्त गरज कर चिनोती न दे पाई, जिन कानों में मीठे स्वरों की रस-धार बह-बह कर जा रही थी, उन्हीं कानों में यदि रणवाद्यों और कड़खों की धुन न समा पाई तो ऐसी वीणा, सेज और ध्रुवपद की तानों का काम ही क्या ?'

मृगनयनी उत्तेजित हो गई थी। मानसिंह को रोमाञ्च हो आया। उसको अपने अंक में भर लिया।

'छोड़िये मुझको',–मृगनयनी ने कहा,—'क्षत्रिय के लिये इस समय जो उचित है उसी के करने में जुट जाइये। रनवास की रक्षा की चिन्ता को दूर कर लीजिये––मैं उसकी रक्षा का प्रबन्ध करूँगी।'

मानसिंह गद्गद् हो गया।

बोला, 'सचमुच, अब मुझको अपने भीतर बहुत बल प्रतीत हो रहा है। विलक्षण और प्रचण्ड। शत्रु को सोना चांदी दे–दिवाकर टाल देने की बात मैंने अपने मन से बिलकुल निकाल दी। सचमुच वह कला क्या जो कर्तव्य को लंगड़ा करदे, और, और वह कर्तव्य भी क्या जो कला का अङ्ग–भङ्ग हो जाने दे ?'

मृगनयनी ने मानसिंह के ऊँचे भरे वक्ष पर पड़ी हुई मणिमाला को उँगलियों में खिलाते हुये मुस्कान के साथ कहा, 'अभी कवच कर्तव्य की बात को सोचिये।'

'यही होगा, यही होगा, प्राणधन। पहले कर्तव्य, कला की बात पीछे।' मानसिंह के मुँह से दृढ़ता के साथ निकला।

[४७]

वड़ी रानी से मानसिंह को एक पुत्र था। नाम विक्रमादित्य। वह युवावस्था में पैर रखने वाला था। मानसिंह ने अपने हाथों उसकी कमर में तलवार वांध कर सिकन्दर का मुकावला करने के लिये क़िले से वाहर भेज दिया। निहालसिंह को दूसरी दिशा से आक्रमण करने का आदेश दिया और समझाया, मुझको आशा है सिकन्दर को लौटा दिया जायगा। जव लौट पड़े तव तुम जैसे वने उसके सामने जाना और टिकाऊ संधि की चर्चा करना। कहना मालवे के सुल्तान का होश ठीक करने के लिये ग्वालियर ही है। यदि सिकन्दर अपने किसी सरदार से लड़ाई में उलझा तो हम उसकी सहायता करेंगे। केवल मेवाड़ अपवाद है। यदि मेवाड़ से उसका युद्ध हुआ तो हम उसकी कोई सहायता न करेंगे।

'कुछ देने दिवाने की वात आई तो?' निहाल ने पूछा।

मानसिंह ने उत्तर दिया, 'तो मुझसे विना पूछे कुछ तै मत करना। फिर देखा जायगा।'

उसके सामने मृगनयनी की खिची हुई भौंहों का चित्र खिच गया। निहाल चला आया। मानसिंह नगर और क़िले की रक्षा के लिये भीतर रह गया।

वह आदेश लेकर कर्णमहल से वाहर होने को ही था कि एक मोड़-दार गैल के एकान्त में कला मिल गई। कला मुस्कराई। निहाल ठिठक गया। कला ठिठककर खड़ी हो गई, जैसे मार्ग न पा रही हो।

निहाल ने कहा, 'वहुत दिनों से कुछ कहने की सोच रहा था।'

कला ने ज़रा सा कटाक्ष किया और वोली, 'अवसर ही नहीं मिला। अव कह लीजिये।'

'क्या करती रहती हो?'

'चित्रकारी और गायन वादन?'

'किसकी चित्रकारी ?'

'क़िले के मन्दिरों की और जो कोई बनवावें उसकी ।'

'चित्रकारी से बढ़कर तुम्हारा संगीत है ।'

'आपकी कृपा ।'

'उस रात तुम्हारा गायन और नृत्य न जाने मन में क्या क्या छोड़ गया ।'

'गाया तो नहीं था मैंने ।'

'बैजू के साथ में तो गाया था ।'

'मेरे नृत्य ने आपके मन में क्या छोड़ा था ?'

'तुम्हारी मुस्कान, चितवन, और गीत के अभिनय को जिसने कभी साथ नहीं छोड़ा, सपनों में भी नहीं छोड़ा ।'

'तो अब जाइये, भगवान फिर मिलायेंगे ।'

'तुमको एक बार हृदय से लगा लेता—बड़ी साध है ।'

'मेरे दो एक प्रण हैं, जब तक वे पूरे नहीं हुये, देह को नहीं छूने दूंगी, यदि छुआ तो आत्मघात कर लूंगी ।'

'ऐसे वे कौन से प्रण हैं ?'

'इस लड़ाई को आप निश्चय ही जीतकर आवेंगे ।'

'आशा तो है ।'

'जीतकर आने पर नरवर की जागीर आपको मिलनी चाहिये । हम सबने सुन लिया था कि नरवर को आपके पराक्रम ने ही जीता था । नरवर आपको मिलना चाहिये था ।'

'हां, खैर । नरवर राजा के साले के हाथ में है ।'

'बिलकुल अकारथ; आपको मिले नरवर, मैं तो यह चाहती हूं ।'

'लौटकर देखूंगा। लड़ूंगा, विकट लड़ाई लड़ूंगा, सिकन्दर को पिछेडूंगा, महाराज प्रसन्न होंगे तब नरवर को जागीर में मांगूंगा।'

'जैसे लड़ाई की बात आप कहते हैं, वैसी मुझको तो अच्छी नहीं लगी। डर के मारे कलेजा धसकने लगा है। राजकुमार और इतने सामन्त बाहर लड़ने के लिये जा रहे हैं। क़िले में अकेले महाराज रहेंगे। आप उनके साथ ही बने रहें तो बहुत अच्छा होगा।'

'महाराज कहते थे कि नई महारानी भी क़िले के प्रबन्ध में उनके साथ रहेंगी।'

'स्त्री ही तो हैं, कितना कर पायेंगी?'

'मेरे मन में बात उठी थी परन्तु मैंने अनुचित समझ कर मुंह से नहीं निकाली। तुम नई महारानी से कहकर मुझको रुकवा लो, बड़ा अच्छा होगा। यदि मैं किसी प्रकार रुक जाऊँ तो आज रात को कहीं एकान्त में मिल सकोगी?

'मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि आप मेरी देह का स्पर्श उस समय तक नहीं कर सकेंगे, जब तक आपको नरवर की जागीर नहीं मिलेगी।'

'नरवर की न मिले, और कोई जागीर मिले तो?'

'और कोई जागीर मिले तो उसको नरवर की जागीर से बदलवा लेना।'

'नरवर से इतना मोह क्यों है?'

'क्योंकि उसको आपने जीता था और मेरा घर चन्देरी नरवर के निकट बैठता है। बस, यही मोह है।'

'तुम कैसे अवसर पर मिलीं! मन नहीं चाहता है कि क़िले को छोड़ूं। इच्छा है दिन रात सामने तुम रहो और तुमको देख-देखकर सब काम करता रहूँ।'

'यह तो ब्याह हो जाने पर ही सम्भव होगा।'

'न हो व्याह तो क्या ? हमारी तुम्हारी जाति भिन्न-भिन्न है।'

'मैं तो आचार्य विजयजङ्गम के सिद्धान्त को मानती हूं। आपका साथ तो और भी बहुत पहले से है, क्या आप नहीं मानते ? राजा तो मानते हैं।'

'मैं भी मानूंगा।'

'तो अब किले में रहकर ही युद्ध में भाग लीजिये। मुझको कभी-कभी दर्शन मिल जाया करेंगे।'

'तुम तो महारानी मृगनयनी से कहोगी नहीं ? कहोगी न ?'

'नहीं कहूँगी। उनको सन्देह हो जायगा।'

'अच्छा, तो मैं ही कुछ प्रयत्न करूँगा।'

कला मार्ग छोड़कर चली गई। निहालसहि ने प्रयत्न किया परन्तु मानसिंह ने अपनी योजना के किसी भी अंश में हेर-फेर नहीं की। निहालसिंह बाहर चला गया।

[४८]

सुमनमोहिनी ने कला से जो कुछ भी सीखा हो और न सीखा हो, कला उसके पास अकेले में उठने-बैठने ज्यादा लगी।

'तुमको गूजरी रानी बहुत अधिक चाहती हैं!' सुमनमोहिनी ने पूछा।

कला जानती थी कि मृगनयनी को बड़ी रानी रत्ती भर भी नहीं चाहती।

सावधानी के साथ बोली, 'मेरे ऊपर तो आप सभी की कृपा है, आपकी विशेष कर।'

'उनका प्यार लाखी पर, जो अब लाखारानी कहलाने लगी है, अधिक है। क्या तुमको उतना ही चाहती हैं?' बड़ी रानी ने आंख गड़ा कर प्रश्न किया।

कला ने भोलेपन का नाट्य करते हुये कहा, 'लाखारानी से बढ़कर तो गूजरी रानी किसी को नहीं चाहती।'

'तुम मुझको चाहती हो?'

'मैं तो महारानी जी, आदर बहुत करती हूँ। सेविका के मुंह से उतनी बड़ी बात कैसे निकल सकती है?'

'मैं तुमको अपनी सखी बनाना चाहती हूँ; इस ढङ्ग से बर्ताव करूँगी कि मृगनयनी को नहीं मालूम पड़ पावेगा।'

'आपकी इस कृपा को जन्म भर नहीं भूलूंगी।'

'अच्छा, तुम जो किले के भिन्न-भिन्न भागों के इतने चित्र बनाया करती हो, उनसे तुमको क्या मिल जावेगा।'

'कुछ नहीं, महारानी जी, कुछ नहीं। मन्दिरों के ही बहुत से बनाये हैं।'

'उनके भी बनाये हैं? मृगनयनी के?'

'कई बनाये हैं। महाराज के भी बनाये हैं।'

'और मेरे ?'

'आपकी आज्ञा लेने की कामना बहुत बार मन में उठी परन्तु भय के मारे नहीं कह सकी ।'

'अब बताना ।'

'बहुत से बताऊंगी ।'

'कुछ और भी करना जानती हो या केवल चित्रकारी और गाना-बजाना ?'

कला रानी का मुंह ताकने लगी ।

बड़ी रानी ने गूढ़ मुस्कान के साथ कहा, 'मेरी आज्ञा का पालन करोगी ?'

'सिर के बल ।' कला ने उत्साह के साथ उत्तर दिया ।

'गङ्गाजी की सौगन्ध खाकर कहोगी ?' रानी ने धीमे स्वर में पूछा।

कला ने आश्वासन दिया और सौगन्ध खाई ।

कला के मन ने अपने और शपथ के बीच में एक आड़ पहले ही खड़ी कर ली थी—वह सिवाय राजसिंह के और किसी के लिये शपथ का निर्वाह करने की अभ्यस्त न थी ।

रानी ने इधर उधर देखकर कहा, 'काम बहुत टेढ़ा है, चतुराई के साथ करो तो बहुत पुरस्कार दूंगी ।'

'करूंगी', कला दृढ़ता के स्वर में बोली ।

सुमनमोहिनी ने एक सफेद चूर्ण कला को दिया। कला लेकर चली गई।

निस्सन्तान करने की औषधि नहीं हो सकती यह। बहुत करके विष होगा। मृगनयनी को मार देने से कोई लाभ नहीं। यदि कहीं बात उघर गई तो व्यर्थ ही मारी जाऊँगी। मानसिंह को क्यों न किसी तरह खिला दूँ? यदि विष ही हुआ तो राजसिंह का काम बन जायगा और न हुआ तो कोई बात ही नहीं। परन्तु यदि यह प्राणनाशक विष है ही नहीं तो व्यर्थ के जंजाल में क्यों पड़ूँ? क़िले के चित्रों को तैयार कर लिया है, राजसिंह के काम में आ सकते हैं। देर-सबेर ग्वालियर का घेरा पड़ने वाला है, अब ग्वालियर में और अधिक रुकना निरर्थक है। परन्तु यदि वह औषधि विष ही हुई तो मानसिंह को समाप्त क्यों न कर दूँ? राजसिंह को वचन देकर आई थी। और वह विष न हुआ तो? कई बार प्रयत्न किया, सफल न हो पाई। अब की बार? यदि क़िले के चित्रों से काम बन जावे, तो अब इस प्रयोग के लिये और अधिक न ठहरूँ। मानसिंह वैसे भी मारा जावेगा। मैं क्यों यहाँ और अधिक टिकी रहूँ? निहालसिंह होता तो इन सबको, आपस में, खटकवा देती। कौन जाने लौटेगा भी या नहीं। लौटा और घेरे के भीतर मैं भी पड़ गई तो अभी तक का किया कराया, सब यों ही रह जायगा। कला सोच रही थी।

उसने एकान्त में जाकर सफ़ेद चूर्ण फेक दिया।

[५९]

अन्तर्वेद में लड़ाइयों पर लड़ाइयां मची रहती थीं, चम्बल के पश्चिमी उत्तरी किनारों का भी यही हाल था। जौनपुर की शर्की सल्तनत समाप्त हुई तो छोटे-छोटे जागीरदार और बङ्गाल के सुल्तान दिल्ली को युद्ध के लिये आवाहन देने लगे। बोधन पुजारी राई को छोड़ने का मुहूर्त न पा सका। सोचा था थोड़ी सी शान्ति स्थापित हो जाय तो अयोध्या या काशी पहुंच जाऊँ। इतने में सिकन्दर लोदी ने चम्बल के उत्तरी किनारों और घाटियों को आ घेरा। सिकन्दर के ग्वालियर की दिशा में बढ़ते ही राई और आस-पास के गांव उजड़ गये। अनिच्छा होते हुये भी बोधन ग्वालियर नगर में आत्म-रक्षा के लिये आ गया। राई के पड़ोस के पहाड़ों, पठारों और कन्दराओं को उसने अरक्षित समझकर यही निश्चय किया। राजा मानसिंह को जैसे ही मालूम पड़ा कि बोधन ग्वालियर नगर में आ गया है, उसको आदर के साथ किले के भीतर बुला लिया और शान्ति स्थापित होते ही राई में मन्दिर बनवाने के वचन को पूरा करने की बात कही। राई से ग्वालियर को नहर बनती चली आ रही थी इसलिये बोधन को विश्वास था कि मन्दिर भी बन जायगा। राजा अपना ही है, वर्ण के मामलों में उतनी समझ नहीं रखता, किसी दिन सुमार्ग पर ले आऊंगा, कोई बात नहीं; बोधन ने सोचा। किले में उसको एक साफ-सुथरा घर रहने को मिल गया। मृगनयनी का जीवन अब कैसा चलता होगा? रानी जैसा। ठीक भी है। और लाखी का? वह भी यहीं आ गई है। यह बुरा हुआ। देखा जायगा। संसार में न जाने कितने पापी भरे हुये हैं! किस-किस की चिन्ता की जाय? बोधन ने उपेक्षा की। यहीं वह विजयजङ्गम भी है जो राजा को नास्तिकता पर चढ़ाता रहता है। विजय से कभी खटकी तो अबकी बार उसकी अकल ठिकाने लगा दूंगा।

देश के समान था। काटा, खुजलाया और पीछा छुटा लिया। लड़ने वाले जान पर खेल जायेंगे और मानसिंह रक्षा के लिये कुछ उठा नहीं रक्खेगा इसलिये वह ध्रुवपद की गायकी में किसी मनोहर परिष्कार की उधेड़बुन में लगा हुआ था। यदि मैंने किसी मीठी मञ्जुल परिपाटी को चला दिया तो मानो सब पुरखे वैकुण्ठ में पहुँच गये और मेरे लिये तो सुरपुरी के द्वार खुले ही रहेंगे! वैजू इस धुन में था।

रात का समय। वादल दिन में भी रहे थे। अब तो वेभाव उमड़ आये और कड़कड़ाकर वरसने लगे। घर के एक आले में दीपक टिमटिमा रहा था। वैजू एक मोटी दरी पर वार-वार वीणा उठा कर वजाता और रख देता। एक ओर पखावज रक्खी हुई थी। वीच वीच में उसपर, गुनगुनाते हुये, किसी ताल को जमाता। कला गोदी में तम्बूरे को साधे चुप बैठी थी। वह कुछ कहने के लिये उत्सुक थी।

'धा किट किट धा, धा किट धा किट धा', वैजू के मुंह और पखावज से एक साथ निकला। फिर वह ठहर कर कुछ सोचने लगा। गुनगुना नहीं रहा था।

कला वोली, 'अव समय आ गया है, महाराज।'

उसकी तरफ देखे विना ही वैजू ने कहा, 'अभी नहीं आया। कसर है।'

'धकिट धकिट धा, तकिट धा किटध।' उसके मुंह से निकला और हाथ से ताल देने लगा। फिर कुछ क्षण चुप रहा। यकायक दाँत भींचे और मुट्ठियां कसीं।

वोला, 'लोग कहते हैं गाना रोना सभी जानते हैं। मूर्ख कहीं के! अभागे न तो ठीक ढङ्ग से रो सकते हैं और न गा सकते हैं। गाने को तो शंकर ने और भी वहुत दुरूह वना दिया है।'

'अव समय आ गया है।' कला ने दुहराया।

[५१]

अन्तर्वेद में लड़ाइयों पर लड़ाइयां मची रहती थीं, चम्बल के पश्चिमी उत्तरी किनारों का भी यही हाल था। जौनपुर की शर्की सल्तनत समाप्त हुई तो छोटे-छोटे जागीरदार और बङ्गाल के सुल्तान दिल्ली को युद्ध के लिये आवाहन देने लगे। बोधन पुजारी राई को छोड़ने का मुहूर्त न पा सका। सोचा था थोड़ी सी शान्ति स्थापित हो जाय तो अयोध्या या काशी पहुँच जाऊँ। इतने में सिकन्दर लोदी ने चम्बल के उत्तरी किनारों और घाटियों को आ घेरा। सिकन्दर के ग्वालियर की दिशा में बढ़ते ही राई और आस-पास के गांव उजड़ गये। अनिच्छा होते हुये भी बोधन ग्वालियर नगर में आत्म-रक्षा के लिये आ गया। राई के पड़ोस के पहाड़ों, पठारों और कन्दराओं को उसने अरक्षित समझकर यही निश्चय किया। राजा मानसिंह को जैसे ही मालूम पड़ा कि बोधन ग्वालियर नगर में आ गया है, उसको आदर के साथ किले के भीतर बुला लिया और शान्ति स्थापित होते ही राई में मन्दिर बनवाने के वचन को पूरा करने की बात कही। राई से ग्वालियर को नहर बनती चली आ रही थी इसलिये बोधन को विश्वास था कि मन्दिर भी बन जायगा। राजा अपना ही है, वर्ण के मामलों में उतनी समझ नहीं रखता, किसी दिन सुमार्ग पर ले आऊँगा, कोई बात नहीं; बोधन नें सोचा। क़िले में उसको एक साफ-सुथरा घर रहने को मिल गया। मृगनयनी का जीवन अब कैसा चलता होगा? रानी जैसा। ठीक भी है। और लाखी का? वह भी यहीं आ गई है। यह बुरा हुआ। देखा जायगा। संसार में न जाने कितने पापी भरे हुये हैं! किस-किस की चिन्ता की जाय? बोधन ने उपेक्षा की। यहीं वह विजयजङ्गम भी है जो राजा को नास्तिकता पर चढ़ाता रहता है। विजय से कभी खटकी तो अबकी बार उसकी अकल ठिकाने लगा दूँगा।

बैजू को भी राजा ने किले में एक घर दे दिया। बैजू का युद्ध के समाचार से कोई सरोकार न था। उसके लिये युद्ध खटमल और मच्छड़ के

देश के समान था। काटा, खुजलाया और पीछा छुटा लिया। लड़ने वाले जान पर खेल जायेंगे और मानसिंह रक्षा के लिये कुछ उठा नहीं रक्खेगा इसलिये वह ध्रुवपद की गायकी में किसी मनोहर परिष्कार की उधेड़बुन में लगा हुआ था। यदि मैंने किसी मीठी मञ्जुल परिपाटी को चला दिया तो मानो सब पुरखे वैकुण्ठ में पहुँच गये और मेरे लिये तो सुरपुरी के द्वार खुले ही रहेंगे! वैजू इस धुन में था।

रात का समय। वादल दिन में भी रहे थे। अब तो बेभाव उमड़ आये और कड़कड़ाकर वरसने लगे। घर के एक आले में दीपक टिमटिमा रहा था। वैजू एक मोटी दरी पर बार-बार वीणा उठा कर बजाता और रख देता। एक ओर पखावज रक्खी हुई थी। वीच वीच में उसपर, गुनगुनाते हुये, किसी ताल को जमाता। कला गोदी में तम्बूरे को साधे चुप बैठी थी। वह कुछ कहने के लिये उत्सुक थी।

'धा किट किट धा, धा किट धा किट धा', वैजू के मुंह और पखावज से एक साथ निकला। फिर वह ठहर कर कुछ सोचने लगा। गुनगुना नहीं रहा था।

कला बोली, 'अब समय आ गया है, महाराज।'

उसकी तरफ देखे बिना ही वैजू ने कहा, 'अभी नहीं आया। कसर है।'

'धकिट धकिट धा, तकिट धा किटधा।' उसके मुंह से निकला और हाथ से ताल देने लगा। फिर कुछ क्षण चुप रहा। यकायक दाँत भींचे और मुट्ठियां कसीं।

बोला, 'लोग कहते हैं गाना रोना सभी जानते हैं। मूर्ख कहीं के! अभागे न तो ठीक ढङ्ग से रो सकते हैं और न गा सकते हैं। गाने को तो शंकर ने और भी बहुत दुरूह बना दिया है।'

'अब समय आ गया है।' कला ने दुहराया।

वैजू नें एक क्षण रीती दृष्टि से उसकी ओर देखा। मुस्कराकर बोला, 'वह आया ! वह आया !! अब की बार पकड़ कर ही रहूँगा।'

कला ने भयभीत दृष्टि से उधर देखा। वहाँ कहीं कोई न था। उसने चैन की साँस ली।

वैजू ने जोर के साथ सिर हिलाया और गुनगुनाने लगा। 'अच्छा' कहकर उसने वीणा उठा ली और आलाप करने लगा। कला तम्बूरा छोड़कर उसके स्वर का साथ देने लगी।

'ठहरजा !' वैजू चिल्लाया। कला ने तम्बूरे को एक ओर रख दिया और टकटकी लगाकर उसको ओर देखने लगी। वैजू वीणा को नीचे रख कर आँखें मीचे हुये कुछ गुनगुनाने लगा। साथ ही घुटनें और हाथ का हलका ताल देने लगा। किसी गीत को राग और ताल में बिठला रहे हैं, कला ने सोचा।

एक घड़ी गुनगुगाने और ताल देने के उपरान्त वैजू बिजक कर यकायक खडा हो गया।

'अहाहा ! ओं हो हो !!' उसके मुंह से निकला और वह खिलखिला कर हँस पड़ा।

आज बावलेपन की मात्रा कुछ अधिक है, कला ने निर्धार किया।

'थकिट थकिट थी किट, अहा हा ! हा !! अहाहा !!! ह !!! क्या बात है। जय शंकर भगवान की। जय नटराज की।' वैजू ने कहा और वीणा पर गया—'मान खेलै होरी राजा मान खेलै होरी...' उसके बाद उसने पखावज ली और गुनगुनाते हुये बजाने लगा। पखावज को रखकर फिर वीणा को हाथ में लेने ही वाला था कि कला अकुलाहट के साथ बोली, 'गुरु जी महाराज, अब समय आ रहा है।'

उसने हर्षमग्न होकर कहा, आ रहा है नहीं, आगया है, मूर्ख छोकरी! ध्रुवपद से होरी की गायकी की रूपरेखा बना लीं और ताल भी तैयार हो

गया। धमार ताल में गाई जायगी होरी। गीत के बोल भी बना लिये हैं। पानी रुक जाय तो राजा को अभी जाकर सुनादूं। पर उस रूपरेखा में रङ्ग और भर दूं तब सही। हाँ यही ठीक है। ठीक रहेगा न कला ?'

'हाँ महाराज, बहुत ठीक रहेगा। मैं कुछ और कह रही थी।'

'फिर कभी कह लेना, मुझको अवकाश नहीं है अभी तो।'

'अभी ही सुनाना पड़ेगा। बहुत महत्व की बात है।'

'ध्रुवपद और होरी से भी बढ़कर ! फिर तूने सीखा क्या इतने दिनों में ?'

'महाराज को स्मरण होगा जब चन्देरी से हम लोग चले।'

'हां, चन्देरी से चले थे और अब ग्वालियर में हैं। क्या मैं बच्चा हूँ जो इतनी सी बात भी न जानूँगा ?'

'चन्देरी फिर लौटना होगा।'

'काहे के लिये ? चन्देरी के पत्थरों से सिर मारने के लिये ?'

'चन्देरी से चलते समय रावराजा राजसिंह ने कुछ कहा था ?'

'हाँ कहा था कि ग्वालियर के मेले में सब गवैयों-बजैयों को परास्त करना और चन्देरी का नाम रखना, सो हो गया; अब ग्वालियर के नाम को बढ़ाऊँगा।'

'उन्होंने कुछ और भी कहा था।'

'क्या कहा था बतलाओ। मैं राव राजसिंह की बात को मान्यता देता आया हूँ।'

'उन्होंने बहुत कुछ कहा था और यह भी कि जब ग्वालियर को कोई घेरने के लिये आवे तब उसके सैन्यबल आदि का सही पता लगाकर तुरन्त चन्देरी लौट पड़ना और बतलाना। क़िले के चित्र मैंने बना लिये हैं।'

'होंगे चित्र-वित्र ? क्या करेंगे राव राजसिंह यह सब जानकर ?'

'ठीक समय पर नरवर पर चढ़ाई कर देंगे और अपनी बपौती को ले लेंगे। चित्र घेरा डालने वाले के हाथ पहुँच जायेंगे।'

'और राजा मानसिंह जो ध्रुवपद को इतना अच्छा समझता है और इतना अच्छा गा लेता है, चुपचाप बैठा रहेगा ?'

'यह अपने देखने की बात नहीं है।'

'अच्छा, दो–चार दिन ठहर जाओ। तब तक होरी की रूपरेखा में सलोने सुहावने रङ्ग भरे लेता हूँ। फिर पूरे साज–सिंगार के साथ इस होरी को राजा मानसिंह को सुनाऊँगा। उसके बाद राजा से पूछूँगा कि तुम चन्देरी जाओ या यहीं बने रहकर कुछ और सीखो-सिखलाओ।'

कला ने अपने को कोसा—किस घड़ी इस पागल के साथ चन्देरी से चली थी ! परन्तु इतना पागलपन इनको सदा नहीं रहा है; जब दिन में कुछ अधिक सचेत दिखलाई पड़ेंगे, तब सावधान करूँगी।

[५०]

निहालसिंह और युवक विक्रमादित्य सिकन्दर की हरावल से जा भिड़े। सिकन्दर की हरावल राई के पीछे की विस्तृत दूरी तक फैली हुई पठारों और जङ्गलों में नहीं घुस पाई थी।

उन दोनों के दलों ने हाथियों की सहायता से हरावल को मार भगाया। वे और भी आगे बढ़ते परन्तु सिकन्दर ने सन्धि का सन्देसा भेजा। युद्ध रुक गया।

पानी बरस-बरस जाता था। भूमि ऊँची हरियाली और गहरे कीचड़ से भर गई थी। सिकन्दरके लिये एक-एक पग बढ़ना दूभर हो रहा था। उसी समय दिल्ली से समाचार आया कि कुछ सरदार पंजाब में गड़बड़ मचा रहे हैं और पूर्व में जौनपुर के निकट उसका भाई जलाल सिर उठा रहा है। ग्वालियर की अपेक्षा दिल्ली को अधिक महत्वपूर्ण समझ कर सिकन्दर लौट पड़ा। सन्धि की चर्चा के लिये उसने उन दोनों तोमर नायकों को दिल्ली बुलाया। निहालसिंह ने विक्रमादित्य को ग्वालियर लौटा दिया। उसकी वाञ्छा थी कि युद्ध और सन्धि की विजय का श्रेय अकेले उसको मिले। इसलिये ग्वालियर को समाचार भेजकर वह एक छोटे से दल के साथ दिल्ली चला गया।

सिकन्दर को अपने पिता बहलोल की एक बात याद थी। जब बहलोल लाहौर के प्रदेश का सूबेदार था तब दिल्ली, का सिंहासन सूना हुआ। बहलोल महत्वाकांक्षाओं को लेकर दिल्ली की ओर चल पड़ा। दिल्ली के निकट उसको एक फ़कीर मिला।

फ़कीर ने बहलोल से कहा, 'दिल्ली की बादशाहत चाहते हो?'

बहलोल ने सोचा अन्धा क्या चाहे, दो आँखें।

फ़कीर ने बतलाया, 'मैं बेच सकता हूँ दिल्ली की बादशाहत को। खरीदोगे मुझसे? जो कोई भी खरीदना चाहे, बेच दूंगा। जो कोई खरीदेगा, वही तख्त पर जा बैठेगा।'

बहलोल ने बादशाहत के दाम पूछे ।

फ़कीर बोला, 'दो हज़ार टङ्के । बस । खरीद लो और मौज करो ।'

बहलोल ने फ़कीर को दो हज़ार टङ्के दिये । इधर-उधर के बाग़ी सरदारों से लड़ाई लड़ी और दिल्ली के तख्त पर जा बैठा ।

सिकन्दर ने सोचा दिल्ली में फ़कीरों की कमी नहीं है, अगर किसी मनचले सरदार ने किसी लालची फ़कीर से बादशाहत कुछ ज्यादा दामों पर खरीद ली तो सिपाही उसी से जा चिपकेंगे और मैं कहीं का न रहूँगा इसलिये वह अविलम्ब दिल्ली पहुँचा और बाग़ी सरदारों के मूलोच्छेदन में लग गया । जलाल दूर था इसलिये उसकी अधिक चिन्ता न थी ।

बाग़ी सरदारों को उसने बहुत शीघ्र नष्ट कर दिया । इसके बाद ग्वालियर के दूत निहालसिंह से पूछा, 'तुमको अपने राजा की तरफ़ से सब सवालों के तै करने का अख्तयार है ?'

'जी हाँ', उसने उत्तर दिया ।

'तुम्हारे राजा पर हमारा अस्सी लाख टङ्के निकलता है ।'

'कैसे ?'

'अस्सी लाख टके तो उसी वक्त का निकलता है जब पहले बादशाह ने ग्वालियर पर चढ़ाई की । उसके बाद मैंने चढ़ाई की चार साल पीछे । रक़म दुगनी हो गई । फिर अबकी बार वसूली के लिये मुझको खुद जाना पड़ा । इसका खर्च अलग है ।'

'पहली बार हमारे राजा के समय में जब बादशाह बहलोल ने चढ़ाई की तब वह हार कर लौटे । दूसरी बार जब आपने हमला किया, तब आप भी हार कर वापिस आये । अबकी बार कौन जीता, कौन हारा इसका निर्णय होने को अवश्य बाक़ी है ।'

'वेअदवी मत करो सरदार। हमारे काग़ज़ों में सब लिखा-पढ़ा रक्खा है। याद रक्खो वादशाह अल्तमश ने ग्वालियर में क्या किया था?'

'मुझको याद नहीं है।'

'दो सौ साल के क़रीब हो गये, मगर हमारी तवारीख़ में अभी वाक़या ताज़ा है। अल्तमश ने ग्वालियर को फ़तेह किया। सिपाही, सरदार, राजा—सब—मारे गये और राजपूतिनियों ने जौहर किया। तुम्हारे क़िले के एक तालाब का नाम जौहर—तालाब इसीलिये है। अब न भूलना।'

'कैसे भूल सकते हैं? मगर अबकी बार—'

'हां अबकी बार ग्वालियर के क़िले के सारे तालाब जौहर तालाब कहलायँगे।'

'अब की बार सुल्तान जी, दिल्ली के तालाब और कुओं को जौहर का नाम मिलेगा।'

रातपूत भूल गया कि मानसिंह ने क्या कहने और किस तरह वर्तने को कहा था। सिकन्दर लोदी का खून उबल पड़ा।

'जानता है सरदार किससे बात कर रहा है, किसके हुज़ूर में खड़ा है?'

'आपको भी जानना चाहिये कि आप किसी ऐरे—गैरे से बात नहीं कर रहे हैं, तोमर राजपूत से बात कर रहे हैं जिसके पुरखों ने इसी दिल्ली में लोहे की कील गाड़ी थी और जो फिर उससे भी बड़ी कील गाड़ने की दम रखता है। जिसके राजा ने कभी वैरी के सामने सिर नहीं झुकाया उसी का सामन्त सामने खड़ा है। दिल्ली को आपके पुरखे ने दो हज़ार टकों में खरीद लिया होगा, क्योंकि उसके दुर्दिन हैं; परन्तु ग्वालियर को समूचे विन्ध्याचल की तौल सोने के बदले में भी नहीं मोल ले सकोगे।'

'चुप, बदज़बान!'

'सन्धि की चर्चा के लिये आप ही ने बुलाया था, मैं अपने आप नहीं आया।'

'ले जाओ इसको और भेज दो ग्वालियर खबर कि मैं तोमरों का होश ठीक करने आता हूँ। कहला दो एक बार दिल्ली के किसी भी बादशाह ने, किसी भी गुजरे जमाने में जिस किसी जमीन को फ़तह किया वह उसके और उसके जांनशीनों की हमेशा के लिये हो गई।'

दरबार के कुछ रक्षक निहालसिंह को पकड़ कर ले गये। बादशाह ने नहीं कहा था तो भी वे जानते थे कि अब इसका क्या करना है।

राजपूत ने अपनी गर्दन उस समय भी नहीं नवाई। जब धड़ से सिर अलग हो गया तब भी उस तोमर का धड़ एक क्षण के लिये सीधा खड़ा रहा। वधिकों को आश्चर्य था इस तरह तो किसी को मरते नहीं देखा। लोग मारे जाने के पहले घिघियाते-रितियाते और रोते-चिल्लाते देखे गये हैं, पर यह! यह तो जैसे मौत को दुलहिन समझ रहा हो!!

बादशाह को जब निहालसिंह के निधन की बात मालूम हुई, तब उसने राजा मानसिंह के पास खिलत और कुछ घोड़े भेज दिये, मानो पूरा प्रायश्चित्त हो गया।

[५१]

वैजू ने गायन की अपनी परिपाटी को दो-तीन दिन के भीतर साज सँवार लिया। सिकन्दर को दिल्ली की दिशा में हटता हुआ सुनकर मानसिंह की व्यस्तता कुछ कम हो गई। परन्तु विश्वास नहीं था कि वह फिर न लौट पड़ेगा। कई दिन के उपरान्त वैजू ने उसको अपनी नई परिपाटी के सुनाने और उस पर तर्क-वितर्क करने का अवसर ढूंढ़ निकाला। उसी कक्ष में गायन-वादन का आयोजन हुआ। सभा-भवन में और सब थे, केवल निहालसिंह वहां नहीं था। ऊपर के खण्ड में झिझरियों के सामने रानियां यथास्थान आ वैठीं। अपने स्थान पर मृगनयनी और लाखी भी। वैजू ने वड़ी लगन के साथ अपनी नई परिपाटी को व्यक्त करना शुरू किया। विजय ने वीणा रख दी।

वैजू ने कहा, 'वजाइये। वजाइये।'

विजय वोला, 'वजाऊँगा नहीं, सुनूंगा। उठान विलक्षण है। पहले कभी नहीं सुना।'

वैजू मानो विना किसी प्रयास के जीत गया। स्वरों को मधुरता में घोल घोलकर गाने लगा। गीत में वोल थोड़े ही से थे—

मान होरी खेले री राजा मान होरी खेले री...
प्रेम प्रीति की गांठ परी है जो मन भायो सो खेले री—
—री, राजा मान होरी—

गीत की पूरी तानों को लगभग दो घड़ियां लगीं। गीत ऊँचे स्वरों में हुआ।

मानसिंह ने सुझाव दिया, 'वीच-वीच में नीचे के स्वरों पर भी थोड़ी देर ठहरा जाय तो जान पड़ेगा मानो रंग की पिचकारी को फिर से भरने के लिये कोई ठहर गया हो।'

बैजू ने तुरन्त मान लिया और मानसिंह के सुझाव के अनुसार गा दिया।

समाप्ति पर बैजू बोला, 'इस परिपाटी को होरी की गायकी के नाम से विख्यात किया जायगा।'

'किस किस राग में गाई जावेगी ?' विजय ने प्रश्न किया।

'किसी भी मधुर आकर्षक राग में।' बैजू ने उत्तर दिया। और उसने उन्हीं बोलों को कई रागों में गाकर सुना दिया।

मानसिंह ने उत्साह के साथ कहा, 'आज से आचार्य बैजनाथ को नायक बैजनाथ का पद दिया गया।'

'नायक !' बोधन ने आश्चर्य प्रकट किया,—'नायक तो इस युग में कोई भी नहीं हो सकता। नायक तो वह कहलाता है जो किसी नये राग का सृजन करे।'

विजय ने विवाद उठाया,—'आप की जान में तो इस युग में नया कुछ भी नहीं हो सकता। आपको क्या संगीत पर भी अधिकार है, जो बीच में ही बोल उठे ?'

बोधन ने कहा, 'संगीत एक शास्त्र है। गाना न जानने वाला भी सर्वमान्य सिद्धान्त की बात तो कह ही सकता है कि प्राचीन ऋषियों ने जो कुछ किया उसको अब न तो कोई बदल सकता है और न उसमें किसी नई बात को उत्पन्न कर सकता है।'

'करके दिखला तो दी है।' बैजू ने टोका।

बोधन ने हठ किया, 'ऐसे नहीं माना जा सकता। भारत भर के संगीताचार्य इकट्ठे हों, उनके सामने यह परिपाटी प्रस्तुत की जाय और वे सब कह दें कि आचार्य बैजनाथ पुराने ऋषियों के आगे निकल गये हैं तब माना जायगा।'

मानसिंह को अखर गया। बोला, 'तुम तो पुजारी, संगीत का एक अक्षर भी नहीं जानते।'

विजय ने व्यङ्ग किया, 'समय कुसमय कुतर्क तो कर सकते हैं।'

बोधन ने दृढ़ता के साथ कहा, 'आपसे किसी दिन मुझको निबटना है। धर्म और शास्त्रों के सम्बन्ध में आपने जितना भ्रम और असत्य फैला रक्खा है उतना कदाचित ही किसी ने फैलाया हो।'

'अभी विवाद बन्द रक्खो। किसी दिन अवसर और समय दूँगा। कर लेना चाहे जितना व्यायाम, तर्क और विवाद का। गायक और आचार्य बैजू आज से नायक बैजू कहलायेंगे।'

शास्त्रों के किसी भी विषय पर राजा की आज्ञामात्र शिरोधार्य नहीं हो सकती, बोधन ने मन में कहा और धीरे से बोला, 'मैं तो नहीं कहूँगा।'

राजा ने सुन लिया। क्रोध के मारे काँप गया। परिस्थिति को तीखे कड़वेपन से बचाने के लिये उसने विजय से कहा, 'आप वीणा पर निकालने का प्रयत्न करिये, आचार्य।'

विजय प्रयत्न करने लगा। मानसिंह क्रोध के शमन के प्रयास में लग गया।

ऊपर के खण्ड में अन्य रानियां सदा की भांति ऊँघ रही थीं। मृगनयनी और लाखी सजग थीं।

मृगनयनी ने ज़रा सशक्त स्वर में कहा, 'मैं समझ गई गायन की इस रीति को। महाराज से कहूँगी कि इसको थोड़ा सा संक्षिप्त और करवा दें। दीर्घ काल तक गाते रहने में समय बहुत लग जाता है, रस का गाढ़ापन चला जाता है और राग क्षीण हो जाता है।'

ऊँघती हुई रानियों की ओर आंख घुमाती हुई लाखी बोली, 'और सुनने वाले ऊँघ-ऊँघकर सोने लगते हैं।'

लाखी ने यह बात इतने ऊँचे स्वर में कही थी कि बड़ी रानी के कान में झलक पड़ गई। तन्द्रा टूट गई और वह जाग पड़ी। उसने उन दोनों

को कुछ अपने ऊपर सा हँसते देख लिया। उतने ही परिहास से बड़ी रानी का रोम-रोम जल गया। वह अपने निकट ऊँघती हुई रानियों के जगाने का प्रयास करने लगी। उनको जाग पड़ने में देर नहीं लगी।

'सुनने को आई थीं कि सोने को ? देखती नहीं यहां एक से एक बढ़कर जानकार बैठे हैं ?' बड़ी रानी ने व्यङ्ग किया।

सुननेवाली ने अङ्गड़ाई ली और हँस दी।

बड़ी रानी ने एक तीर और छोड़ा, 'ऐसी सोया करोगी तो गहने बराबर खोयेंगे। अबकी बार मिलेंगे भी नहीं।'

यह तीर मृगनयनी के कलेजे में बिंध गया।

मैं क्या गहनों की चोर हूँ ? क्या मैंने चोरी की थी ? कुतूहलवश उस निष्कृष्ट गहने को हाथ में उठाया, फिर वह हाथ में ही रह गया। जब निरख में आया मन में ग्लानि हुई और उसको आले में फेंक दिया। फिर उसके विषय में बिलकुल भूल गई। क्या यह चोरी हुई ? सुमनमोहनी ने चोरी ही का आरोप किया है। क्या मैं चोर हूँ ? हे भगवन् ! जब भूखों मरने की भी बारी कभी कभी आई तब भी किसी की चीज पर आंख तक नहीं पसारी तो अब क्या उस तुच्छ गहने की चोरी करती ? इसने कभी खेती–किसानी की होती तो जानती। कितनी नीच प्रकृति की है यह ! महाराज ने ठीक कहा था इस गहने को लौटाना नहीं चाहिये था, किसी कुएँ में फेंक देना चाहिये था। क्यों ? तब तो मैं अपनी ही आंखों में चोर बन जाती। छि ! छि !! मैंने न तब खोटा किया था और न गहने को लौटाकर बुरा किया। पर अब और अधिक नहीं सुनूंगी।

उसी समय सभा-भवन में गायन बन्द हो गया।

किसी ने सभा–भवन में समाचार दिया था,-–'निहालसिंह को मार डाला गया ! सिकन्दर लोदी ने खिलत और घोड़े भेजे हैं परन्तु वह ग्वालियर पर फिर चढ़ाई करने वाला है।'

सभा-भवन में सन्नाटा छा गया।

मानसिंह भभक उठा। भर्राये हुये स्वर में बोला, 'दूत का वध कर दिया गया! सौग़ात जले पर नमक छिड़कने के समान है। इसका बदला लिया जायगा।'

ऊपर के खण्ड में मृगनयनी ने धीरे से कहा, 'चलो लाखारानी, आगे यहाँ कभी नहीं आवेंगी।'

वे दोनो चली गईं। सुमनमोहिनी सन्तुष्ट थी।

बैजू ने यकायक प्रश्न किया, 'क्या ग्वालियर का घेरा पड़ेगा?'

'नहीं पड़ पावेगा', मानसिंह ने दृढ़ता के साथ उत्तर दिया, 'हम लोग सिकन्दर से चम्बल की घाटियों में लड़ेंगे।'

बैजू बोला, 'घेरा पड़ भी सकता है। ऐसी अवस्था में कला यहां नहीं रहेगी। वह चन्देरी जाना चाहती है।'

कला सकपका गई।

मानसिंह ने विना किसी चाव के पूछा, 'क्यों?'

बैजू ने भोलेपन के साथ वतलाया, 'यह चन्देरी जाकर राव राजसिंह से कह देगी कि ग्वालियर घिर गया है, आप चाहो तो नरवर पर चढ़ाई कर दो और अपनी वपौती को वापिस ले लो। वस।'

'क्या!'

'क्यों? इसमें अचरज की क्या वात है?'

'ओह! यह राव राजसिंह की कौन है?'

'कोई नहीं। पड़ोस में रहती थी।'

'अच्छा! ओह!!'

कला पसीने-पसीने में हो गई। मानसिंह उसको आंख गड़ाकर देखने लगा।

कला के कांपते हुये कण्ठ से निकला, 'झूठ, विलकुल झूठ। नायक जी पागल हैं।'

मानसिंह की भभक हलकी हो गई। नीचा सिर करके कुछ सोचने लगा।

बैजू बोला, 'किसने कहा मुझसे पागल? इसने कहा! इस छोकरी ने!! राव राजसिंह का इतना घमण्ड है इसको!!!'

मानसिंह ने सिर उठाकर निष्कम्प स्वर में कला से धीरे-धीरे कहा, 'तुम अपने घर जाओ। कल ही तुमको रक्षकों के साथ आराम की सवारी में भेज दिया जायगा। तुमको इतना द्रव्य दे दूँगा कि जीवन पर्यन्त बेखटके रहो। राव राजसिंह बड़ा सूरवीर है, परन्तु सूरवीरी का उपयोग अनुचित करता है। कह देना।'

कला सिर झुकाये रही।

बैजू बोला,—जैसे किसी सपने से जाग पड़ा हो—'यह मुझसे पागल कहती है! इतने दिनों की शिक्षा से इसने यह सीखा!! जा, सब भूल जायगी। पागल तू और तेरी सात पीढ़ी!'

सभा विसर्जित हो गई।

ऊपर के खण्ड में बड़ी रानी ने अपनी संगिनियों से जाते-जाते कहा, 'अरी यह नीचे–नीचे देखने वाली बड़ी विकट निकली। समझ गई उन राजसिंह की यह कौन है?'

'कौन है सो तो स्पष्ट ही है। है बड़ी षडयन्त्रिन। अपने गुरु को पागल कहती थी! भरी सभा में!!'

'कितनी बदवादिन है राम!!!'

'असल में पुरुषों के सामने इतना खुलकर गाने-नाचने वाली स्त्रियां फूहड़ हो ही जाती हैं। उन्हीं को देखलो, उनको।'

'हूँ, हूँ।'

'कैसी बिचक के गईं यहाँ से! कितनी बड़बड़ाती हुई!!'

बड़ी रानी ने सोचा, कला यहाँ से टली सो अच्छा ही हुआ।

दूसरे दिन कला को मानसिंह ने सम्मानपूर्वक चन्देरी भेज दिया: वह क़िले के चित्र अपने साथ नहीं ले जा पाई।

'भगवान से पूछो। मैं क्या बतलाऊँ।'

'तो पास तो मैं सकता नहीं। ऐसे ही लेट जाऊंगा? सवेरे मजूरी किसके बिरते करूँगा?'

'न खाओ, एक जून। साधू-सन्यासी कैसे उपास-बास करते रहते हैं?'

'साधु-सन्यासियों को क्या कुछ मजूरी-किसानी करनी पड़ती है? उन्होंने अपना यह लोक बना लिया, फिर लग गये दूसरे लोक के बनाने की चिंता में। यहाँ तो इसी लोक में नित-नई कसर लग जाती है। उठ बैठ। मेरा नहीं, तो इन बच्चों का तो मुंह देख।'

'मुझको देदो बिस और देखते रहो बच्चों का मुंह।'

'अरी डायन, उठती है या नहीं? अभागिन।'

'मार डालो मुझको। ताप घुला-घुलाकर मारेगा, तुम वैसे ही गला घोंट दो। दुःखों से पार तो पा जाऊँगी।'

बच्चे और अधिक रो पड़े। टटिया के पास से किसी के खांसने का शब्द भीतर आया।

पुरुष चिल्लाया, 'कौन है रे?'

बाहर से उत्तर मिला, 'भैया नेंक टटिया खोल दो, परदेशी हूँ, ठण्ड लग रही है, सिकुड़ गया हूँ, गैल भूल गया; थोड़ा सा तापकर और गैल पूछकर चला जाऊँगा।'

'राजा के सदावर्त्त पर क्यों नहीं चले जाते? वहीं अलाव भी जल रहा होगा तापने के लिये!'

'भैया मुझे मालूम नहीं है। आधी घड़ी तापकर और तुमसे बात करके चला जाऊँगा। मजूर मैं भी हूं।'

'राम! अपनी आफत से पीछा नहीं छूटता, तुम जाने कहां से आ गये।'

'भैया, भैया।'

भीतर वाले ने खाँसते-कूँखते उठकर टटिया खोल दी। बाहर वाला भीतर आ गया। उसके लम्बे-तड़ङ्गे शरीर और भारी भरकम साफ़े को देखकर भीतर वाला डर गया। लम्बे-तड़ङ्गे ने टटिया के पास जूते खोल दिये और आग के पास आ बैठा। उसने झोपड़ी में नजर पसारी। एक कोने में चकिया, इधर-उधर मिट्टी और काठ के वर्तन, पीतल की एक थाली, एक लोटा और कुछ नहीं।

मजूर गिड़गिड़ाकर बोला, 'दाऊ, मेरी गांठ में कुछ नहीं है। गरीब हूँ। किसी बड़े घर को ताक लो।'

'डरो मत। मैं चोर-उचक्का नहीं हूँ।'

'कौन हो? कहां से आये हो?'

'राई-नागदा गाँव से आया हूँ।'

'नागदा तो उजड़ गया है। राई में क्या करते हो?

'मजूरी-किसानी। गूजर हूँ।'

'गूजर ठाकुर तो हमारी रानी भी हैं। उन्हीं के पास जा रहे हो क्या?'

'नौकरी ढूंढ़ने आया हूँ। रास्ता भूल गया हूँ। किले में कैसे जाऊँ?'

'वतलाये देता हूँ। चलो बाहर, वहीं से दिखलाये देता हूँ।'

'कुछ खाने को है?'

'अभी तो कुछ नहीं है। हमारे लिये ही नहीं है। इससे कहा कि पीस दे सो यह बहुत बीमार है। मैं पीस नहीं पाऊँगा, क्योंकि बहुत भूखा हूँ।'

कराहते-कराहते स्त्री ने कहा, 'तवे पर भून लो अनाज को, सब के लिये थोड़ा-थोड़ा हो जायगा।'

आगन्तुक बोला, 'राजा के सदावर्त से क्यों नहीं ले आते कुछ आटा-दाटा?'

'अरे हट्ट !' स्त्री के कण्ठ से निकला।

मजूर ने तिरस्कार के स्वर में कहा,'वाह ! हम क्या भिखमङ्गे हैं? सदावर्त पर तो कोढ़ी-अपाहज, साधू-वैरागी जाते हैं। हम तो मजूर हैं।'

आगन्तुक ने दिये की जाती हुई रोशनी की तरफ़ देखकर प्रस्ताव किया, 'अच्छा तो हम पीसे देते हैं तुम्हारा अनाज। इसके बदले में तुम हमको गैल बतला देना, बस। ठीक है न?'

उसने स्वीकार किया, थोड़ा सा बना खा भी लेना। सदावर्त या तो बन्द हो गया होगा, या बन्द होने वाला होगा। खा-पीकर यहीं एक कोने में लेट जाना।'

'अच्छा',-कहकर तड़ंगे ने चक्की पकड़ी और बिने हुये अनाज को पीसनें लगा ! स्त्री कुतूहल के साथ देखने लगी, ज्वर की कराह कम हो गई। स्त्री को प्रतीत हो गया कि आगन्तुक को चक्की पीसने का बिलकुल अभ्यास नहीं है, क्योंकि वह बार-बार इस हाथ से उस हाथ को चक्की की डाँडी से बदल रहा था परन्तु चल रहा था हाथ उसका तेज। स्त्री धीरे से उठ बैठी।

बोली, 'मैं ही पीसे देती हूँ।' आगन्तुक ने सिर हिलाया।

चक्की पीसने में आगन्तुक को भारी-भरकम मुड़ासा बहुत बाधा पहुँचा रहा था। उसने झटके के साथ मुड़ासे को सिर पर से हटाया और एक ओर रखकर जैसे ही तेज़ी के साथ चक्की को चलाया कि लम्बी दाढ़ी एक ओर से खिसक कर ठोड़ी के नीचे लटक आई। जैसे ही उसनें दाढी के इस छोर को सम्भालने का प्रयत्न किया कि दूसरी ओर का छोर लटक कर हाथ में आ गया।

मज़दूर को पहिचानने में देर नहीं लगी, अनेक बार उस चेहरे को देखा था। उछलकर खड़ा हो गया।

चिल्लाकर बोला, 'अपनें महाराज ! अपने महाराज !!'

स्त्री की कूलकराह बिलकुल बन्द हो गई। कुछ बच्चों का रोना रुक गया, कुछ सिसकते रहे।

मानसिंह एक हाथ में दाढ़ी लिये हँसते हुए बोला, 'यह दाढ़ी बड़ी अभागिन निकली। काम पूरा नहीं करने दिया।'

मजदूर पैरों पर गिरने को हुआ। मानसिंह ने दृढ़ता के साथ वर्जित किया।

मजदूर ने हाथ जोड़े हुए कहा, 'महाराज मुझको क्षमा मिले। आपने यह क्या किया?'

'कुछ भी तो नहीं कर पाया। धिक्कार है मुझको जो मैं तो भरे पेट सो जाऊँ और तुम भूखों रोगों मरो! मैं महलों में रहूँ और तुम इस झोपड़ी में भूखे ठण्डों मरो!!'

'हमारा भाग्य है, महाराज!'

'बिलकुल भ्रम की बात। हमारे भाग्य के आधार तुम्हीं सब जन हो। तुम्हारा भाग्य बुरा रहा तो हमारा तो पहले ही खोटा हो चुका।'

स्त्री ने फटे वस्त्र का लम्बा घूँघट डाल लिया और पीठ देकर चक्की के पास आ बैठी।

'मैं पीसे देता हूँ बाई।' मानसिंह ने अनुरोध किया।

स्त्री ने हाथ जोड़े और जुड़े हुए हाथों निषेध का संकेत किया।

दिया बुझने को आ रहा था।

मानसिंह ने कहा, 'मैं अभी तेल भिजवाता हूँ और ज्वर की औषधि भी। मजूरों के लिये अच्छे मकान बनवाऊँगा, औषधालय खोलूँगा और देखूँगा कोई भी मजूर भूखा न रहे।'

स्त्री की ओर देख कर बोला, 'मैं आटा भिजवाये देता हूँ। बीमारी में पीसोगी बाई, तो ढेर हो जाओगी।'

धीरे से स्त्री ने प्रतिवाद किया, 'अब ज्वर नहीं रहा।'

पुरुष ने समर्थन किया, 'मेरी सारी थकावट चली गई। मैं अभी पीसे डालता हूँ। उठरी लेट जा। महाराज की आज्ञा मान।'

स्त्री नहीं उठी। मानसिंह जाने को हुआ।

पुरुष ने अनुरोध किया, 'मैं मार्ग दिखला दूँ, महाराज।'

मानसिंह हँस पड़ा। बोला, 'किले से आया हूँ, राई से नहीं आया हूँ। अपने ग्वालियर को ही न पहचाना तो फिर किसको पहिचानूंगा?'

मजदूर हिल गया था। गद्‌गद् स्वर में बोला, 'सुना था कि महाराज ब्राह्मणों, पंडितों और सेठों के हैं, आज जाना कि मजूरों-किसानों के भी हैं।'

मानसिंह चला गया। एक घड़ी पीछे ही झोपड़ी के लिये दवा, तेल आटा इत्यादि आ गये।

मानसिंह ने दूसरे ही दिन ग्वालियर के दरिद्र मजदूर-किसानों के लिये रहने योग्य घरों के बनाने की राज्य की ओर से व्यवस्था की जगह-जगह औषधालय खुलवाने का प्रबन्ध किया।

[५३]

'एक बड़ा काम अभी करने को पड़ा है।' मृगनयनी ने भोलेपन के साथ मानसिंह को स्मरण दिलाया।

'क़िले की प्राचीर, मोतीसागर झील, तालाब, कुये इत्यादि सब ठीक हो गये हैं।' मानसिंह ने आश्वासन देते हुये कहा।

मृगनयनी ने प्रश्न-सूचक दृष्टि की।

मानसिंह बोला, 'राई की नहर आधे से ऊपर बन चुकी है, घुमाव-फिराव के साथ लाई जा रही है। नलों के सांचों के ऊपर ढाँचे को बना बनाकर लाने के कारण ही विलम्ब हो रहा है। नहर को ढककर लाना इसलिये आवश्यक है कि कोई उसको काट-कूट न सके—सो तुम जानती ही हो।

मृगनयनी ने नीचे-नीचे मुस्कराकर फिर उसकी ओर प्रश्न-सूचक दृष्टि की।

उसके कन्धे पकड़कर मानसिंह ने पूछा, 'कौन सा है वह बड़ा काम, तुम्हीं बतलाओ ?'

'लाखी का व्याह। ईश्वर के सामने उसका व्याह भैया के साथ हो गया है परन्तु अभी समाज के सामने नहीं हुआ है।' उसने बतलाया।

मानसिंह ने उत्साह के साथ कहा, 'हो जायगा।'

'कब ?'

'जब कहो तब।'

'जैसे युद्धों के बीच-बीच दरिद्रों के लिये निवासगृह बनवाये जा रहे हैं, औषधालय खोले जा रहे हैं, वैसे ही एक काम यह सही। स्त्री तबतक अपने को दरिद्र समझती है जब तक उसके सम्बन्ध में समाज मान्यता न दे। इसी अटवारे में कोई मुहूर्त निकलवा लिया जावे।'

'अभी लो मुहूर्त शोधने वालों की अपने यहां कोई कमी नहीं है।' मानसिंह ने विजयजङ्गम से मुहूर्त का शोधन करवाया।

मृगनयनी ने बतलाया कि उसके कुल और गांव का आचार्य पुरोहित बोधन है इसलिये ब्याह को वही पढ़े और भांवर पड़वावे।

राजा ने अपनी शक्ति की सीमा को ध्यान दिये बिना ही हामी भर दी। बोधन को बुलवाया। उन आठ रानियों ने जब सुना, तब उनके विनोद का ठिकाना न रहा।

'इतने दिनों क्या लाखारानी कुआंरी ही बनी रही?'

'गड़े मुर्दे उखाड़ना इसी को कहते हैं।'

'महाराज को क्या अब और कोई काम नहीं रहा?'

'मृगनयनी जो कुछ न करवावे सो थोड़ा है।'

बोधन ने आते ही राजा के प्रस्ताव पर मौन साध लिया। राजा को अब भी अपनी समर्थता की सीमा नहीं दिखलाई दी। दूसरी ओर देखते हुये बोला, 'तुम्हारे मन्दिर का जीर्णोद्धार इसी अठवारे में करता हूँ।'

'आपकी कृपा हो। धर्म ही है महाराज का।'

'आपके रहने के लिये भी अच्छा सा गृह बनवा दूंगा।'

'मैं तो अयोध्या इत्यादि की तीर्थयात्रा के लिये अटका हूँ। बहुत दिनों से संकल्प है। न मालूम कब लौटूं, लौट भी पाऊँ या नहीं। मेरे लिये महाराज कष्ट न उठावें।'

'अभी नहीं जाने दूंगा। इस धर्म-कार्य को पहले कर डालो।'

'महाराज क्षमा करें, यह धर्म-कार्य नहीं है, पहले ही निवेदन कर चुका हूँ।'

'तुम मानसिंह के आचार्य पुरोहित हो। तुम्हें करना चाहिये। अच्छी दक्षिणा मिलेगी।'

'महाराज एक दरिद्र परन्तु निर्लोभ ब्राह्मण से बात कर रहे हैं। धर्म बेचा नहीं जा सकता।'

'क्या तुम यह नहीं सोचते कि कितने हिन्दू तुम लोगों के इस कट्टरपन के कारण धर्म और समाज से दूर जा पड़े हैं ?'

'शरीर में फोड़ा या कोढ़ होने से फिर वह अङ्ग काम का नहीं रहता।'

'तुमको कभी फोड़ा या कोढ़ हुआ ?'

'कभी नहीं।'

'होगा तो क्या करोगे ?'

'अङ्ग को काट कर फेंक दूंगा।'

'विवेक से काम लो, शास्त्री।'

'महाराज से मैं क्या निवेदन करूँ ? इतना तो भी कहना पड़ेगा कि क्षत्रिय ब्राह्मण को उपदेश देने के लिये नहीं बनाये गये हैं, धर्म और गौ–ब्राह्मण की रक्षा के लिये बनाये गये हैं।'

'बनाये गये हैं और फिर बनाये जा सकेंगे। जनक, महावीर, गौतम–बुद्ध कौन थे ? राम, कृष्ण, अर्जुन इत्यादि कौन थे ? परन्तु शास्त्री, मैं इस विवाद को अनुचित समझता हूँ। इस विवाद से परस्पर कलह फैलेगी। मैं आर्यावर्त को अपने पुरखों की भांति प्रबल बनाना चाहता हूँ। मेरी सहायता करो।'

'महाराज, आर्यावर्त वर्णाश्रम धर्म को स्थिर रखने से ही बच सकता है। अन्यथा नहीं।

'शास्त्री सोचो, इस प्रकार का कट्टर वर्णाश्रम हिन्दुओं की कितनी रक्षा कर सका है। रक्षा के लिये ढाल और तलवार दोनो अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं। जातपांत ढाल का काम तो कर सकी है और कर रही है परन्तु तलवार का काम न तो हाल के युग में उसने कर पाया है और न कभी कर पावेगी।'

'महाराज के श्रीमुख से यह वाणी शोभा नहीं देती। इस प्रकार की व्यवस्था देना पंडितों का काम है।'

'मैं यह नहीं कहता कि वर्णाश्रम को नष्ट कर दिया जाय परन्तु उसमें सुधार की आवश्यकता अवश्य है। इसको तो मानोगे न?'

'मैं नहीं मानता। पंडितों से पूछिये।'

'विजयजङ्गम भी पण्डित हैं। उनसे शास्त्रार्थ कर लो।'

'इसी समय तैयार हूँ और अनन्त काल तक तैयार रहूँगा। विजय जिस शास्त्र या पुराण को बाँच-बाँच कर अपने सिद्धान्तों की दुहाई देता है, वह प्राचीन नहीं है। लगभग तीन सौ वर्ष हुये हैं, तब बना था। सो वह भी काशी या मथुरा में नहीं बना बल्कि द्रविड़ देश में।'

और उसी द्रविड़ देश ने हम सबको भगवान शंकराचार्य और भगवान रामानुजाचार्य इत्यादि महात्मा दिये। तभी तो कहता हूं तुम इतने पढ़े-लिखे होकर भी कभी-कभी विवेकशून्य हो जाते हो!'

बोधन क्षोभ के मारे कांपने लगा। चुप खड़ा रहा।

'क्या कहते हो?' मानसिंह ने ठण्डक के साथ पूछा।

कम्पित स्वर में बोधन ने उत्तर दिया, 'महाराज ने वर्ण-व्यवस्था के विरुद्ध ठान ली है इसलिये मैं अब ग्वालियर में नहीं ठहरूंगा। अधर्म के समय और स्थान में नहीं रहूंगा।'

क्रुद्ध स्वर में मानसिंह के मुंह से निकला, 'तुम निरे मूर्ख हो।'

'क्या महाराज का यही निर्णय और न्याय है?'

'बिलकुल।'

बोधन वहां से चला गया। अबकी बार जाते समय उसने आशीर्वाद का हाथ नहीं उठाया।

ग्वालियर को त्याग कर तीर्थयात्रा को चल दिया।

मानसिंह ने लाखी और अटल का पाणिग्रहण-संस्कार विजय जङ्गम से करवाया। अनेक ब्राह्मणों ने उत्सव में भाग लिया। कुछ ऐसे भी थे जो बीमारी-या बीमारी के बहाने-के कारण उत्सव में सम्मिलित नहीं हुये।

मृगनयनी सुखी थी। बोधन के चले जाने का मानसिंह को परिताप नहीं हुआ। विपत्ति के आने पर किसी दिन ग्वालियर आवेगा, मानसिंह को विश्वास था।

[५८]

लाखी और अटल के पाणिग्रहण संस्कार के उपरान्त उत्सवों की धूम मच गई। मानसिंह ने जान-बूझकर उत्सव मनाये—जिसमें जनता जान जाय कि मैं जातपाँत के उतने सिकुड़े-जकड़े बन्धनों को नहीं मानता, दूसरे, मृगनयनी आनन्दमग्न बनी रहे।

सामन्तों और सम्पत्ति वालों ने उन दोनों का निमन्त्रण किया और भेंटें दीं। मृगनयनी और मानसिंह ने भी निमन्त्रण दिया। बड़ी रानी ने हठ किया कि पहले मैं निमन्त्रण दूँगी, पीछे मृगनयनी। मृगनयनी को मानना पड़ा।

अभी तक लाखी के हाथ का बनाया या परोसा हुआ भोजन उन आठ रानियों में से किसी ने नहीं खाया था, यद्यपि उसको ग्वालियर के क़िले में आये हुये बहुत काफी समय हो चुका था। अवसर ही ऐसा कोई नहीं आया था, क्योंकि सबके अटाले अलग-अलग थे।

ऊँची जाति का हिन्दू वही जिसके हाथ का छुआ दूसरी ऊँची जाति वाले खा लें। मृगनयनी ने अपने कक्ष में भोज का आयोजन इसीलिये किया था कि लाखी सबको अपने हाथ से परोसेगी, फिर कोई उसके ब्याह-प्रसङ्ग पर उँगली न उठा सकेगा।

परन्तु बड़ी रानी ने पहले ही निमन्त्रण दे दिया।

खैर, इसके उपरान्त सही—मृगनयनी ने सोचा।

पुरुषों को अलग भोज कराया गया और परपाटी के अनुसार, स्त्रियों के भोज का प्रबन्ध अलग। रानियों के लिये थाल लगकर आ गये। मृगनयनी के सामने भी थाल आ गया। लाखी इसी के पास बैठी थी। बड़ी रानी कुछ दूर। उसकी आँखों में एक सतर्क उत्तेजना थी।

मृगनयनी नें मुस्कान के साथ मीठे स्वर में कहा, 'महारानी जी, अपने यहाँ रीति नई दुलहिन के हाथ के परोस कराने की है। लाखारानी थोड़ा सब को परोस दें न ?'

बड़ी रानी हँसती हुई बोलीं, 'यह रीति रनवासों की नहीं है।'

अर्थात गाँवड़ों की है।

'जब आपने लाखारानी को रनवास का सम्मान दिया है, तब थोड़ी सी गाँव की रीति को भी वर्त जाने दीजिये। हम सबको विश्वास हो जायगा कि वह अब आपकी हो गई।'

'आपकी है तो हमारी पहले हैं।'

'तो थोड़ा सा मुझको परोस देगी और थोड़ा सा आपको। और चाहे किसी को न परोसे।'

'आप इतना हठ क्यों कर रही हैं ?'

'आपको प्रसन्न करने के लिये।'

'मुझको तो इससे कोई प्रसन्नता नहीं मिलेगी।'

'तो आप सब भोजन करें, मैं बैठी रहूँगी।'

'ऐसी अवस्था में हम में से कोई भी भोजन नहीं करेंगी।'

'अच्छा मैं लाखी के छुये भोजन को परोसे देती हूँ। इसमें तो आपको कोई आक्षेप नहीं होगा ?'

'हमको तो किसी में भी कोई आक्षेप नहीं करना है, क्योंकि काँटों में से जीवन को गुजारना है न।'

मृगनयनी के आग सी लग गई। लाखी वस्त्रालंकारों से लदी हुई नीचा सिर किये बैठी थी।

मृगनयनी ने कहा, 'मैं नहीं जानती थी कि निमन्त्रण के बहाने अपमान किया जावेगा।'

बड़ी रानी की उत्तेजित आँखों में चंचलता आ गई। बोली, 'आपका हठ हमारा अपमान कर रहा है।'

मृगनयनी उठ खड़ी हुई। लाखी से कहा, 'चलो भाभी।'

लाखी नहीं उठी। उसने हाथ जोड़ कर संकेत में प्रार्थना की, 'बैठ जाओ, जाने भी दो।'

मृगनयनी ने दृढ़ता के साथ कहा, 'नहीं यहां से चलो। यह अपने को बहुत ऊँचा समझती हैं।'

सुमनमोहिनी कुछ कहना चाहती थी परन्तु उसके होठ ऐसे चिपक गये थे कि मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला।

वे दोनों वहाँ से अपने कक्ष में चली गईं।

सुमनमोहिनी ने दासी को आज्ञा दी, 'इन दोनों थालों का भोजन बाहर फेंक दो।'

दासी ने मृगनयनी और लाखी के थाल उठा लिये और बाहर जाने को हुई।

सुमन ने दूसरी आज्ञा दी, 'ये भोजन मेहतर को भी मत देना। कहीं दूर फेंक आना।'

दासी चली गई। उसने मेहतर को भोजन नहीं दिया। दूर ले जाकर कुत्तों को डाल दिया और चली आई।

जिन कुत्तों ने खाया वे दो दिन के भीतर मर गये। कुत्तों की मौत का ठीक-ठीक कारण किसी को मालूम नहीं होने पाया। जिनके कुत्ते थे उनको अवश्य विष का सन्देह हुआ। कानाफूसी हुई। चर्चा हुई। फैली और बढ़ी, परन्तु साधारण जनता के वृत्त के आगे बहुत कम फूटी।

मृगनयनी और लाखी को इतना अविलम्ब ज्ञात हो गया कि बड़ी रानी ने उन दो थालों का भोजन फिकवा दिया। मृगनयनी को उस बात बड़ा मानसिक क्लेश रहा परन्तु वह यह नहीं जानती थी कि उस भोजन के खाने वाले उन कुत्तों की कैसी कुगति हुई।

[५५]

दूसरे दिन मानसिंह को भी मालूम हो गया। सुमनमोहिनी के साथ उसने वाद-विवाद करना व्यर्थ समझा। डरता-डरता सा मृगनयनी के कक्ष में गया। सोचता था होम करते हाथ जला।

मृगनयनी ने अपनी मानसिक पीड़ा पर अधिकार कर लिया था। मानसिंह को डरता सकुचता सा आता देखकर मृगनयनी विनोदमग्न हो गई।

बोली, 'महाराज तो कुछ ऐसे दिखलाई पड़ रहे हैं, जैसे सिंह की शिकार चुका कर आ रहे हों।'

मानसिंह आश्वस्त हुआ। उसने मृगनयनी को अङ्क में भर लिया। कुछ क्षण चुप रहकर कहा, 'समझ में नहीं आता तुमको कैसे सान्त्वना दूं।'

'काहे की सान्त्वना ? जो हो गया सो हो गया। मैंने निश्चय कर लिया है कि ऐसी बातों पर आगे कभी ध्यान नहीं दूंगी।'

इस प्रकार के निश्चय को मानसिंह पहले भी सुन चुका था परन्तु वह जानता था कि अनवरत प्रयत्न का ही नाम जीवन है।

'तुम बड़ी हो, सचमुच बहुत बड़ी हो। आई हुई कठिनाइयों को परास्त करके आगे आने वाली कठिनाइयों से लड़ जाने के लिये तैयार रहने में मन को आनन्द मिलता है—'

मानसिंह को प्रवचन करने की वृत्ति में देखकर मृगनयनी ने उसकी ओर आंखें ऊँची की; होठों पर मुस्कान खिल गई और चेहरे पर बिखर गई।

टोक कर बोली, 'मन को जो आनन्द मिलता है वह किस आनन्द के समान होता है ?'

'इन मुस्कानों को देखकर जो आनन्द मिलता है उसके समान।'

'इतने निकट से !'

'बड़ी कठिनाइयां भी तो निकट ही आती हैं जिनका सामना निकट ही करना पड़ता है। दूर की कठिनाइयाँ तो थोड़ा सा डर छोड़कर चली जाती हैं।'

'छोड़ दीजिये नहीं तो होठों को समेट कर मुंह लटका लूंगी।'

'तो मैं हँस पड़ूंगा। फिर ?'

'आप बहुत बुरे हैं !'

'और तुम बहुत अच्छी हो। बुरे-भले की जोड़ी का तो नियम ही है।'

नहीं, आप बहुत अच्छे हैं। बड़े भले। अब दूर बैठकर बात करिये।'

'बात तो यों ही चल रही है।'

अच्छा मैं एक बात पूछती हूं।'

'एक नहीं, दो। पूछो! जल्दी-जल्दी पूछो, मैं धीरे-धीरे उत्तर दूंगा।'

'मैं पूछती हूं, जब मेरी अवस्था उतर जायगी और मैं क्षीण हो जाऊँगी, तब भी क्या आप इतना ही प्यार करेंगे ?'

'यह क्या कह रही हो ?'

'आपने दो बातें पूछने के लिये कहा था; दूसरी, यह कि प्रेम को स्थायी कैसे बनाया जा सकता है ?'

मानसिंह की बाहें ढीली पड़ गईं। आकृति गम्भीर हो गई। मृगनयनी उससे अलग होकर जरा दूर बैठ गई।

मानसिंह भी बैठ गया। मृगनयनी मुस्कराने लगी।

मानसिंह की गम्भीरता चली गई

मानसिंह बोला, 'तुम सचमुच बड़ी हो। मुझसे बड़ी और बहुत अच्छी।'

'वाह ! वाह !!'

'ठीक कहता हूँ।'

'कैसे ?'

मानसिंह उसके निकट आने को हुआ। मृगनयनी और अधिक मुस्कराई।

'और निकट आये तो मैं बहुत छोटी रह जाऊँगी।'

मानसिंह स्थिर हो गया।

'तुम संयम से प्रेम को अचल बनाती हो और मैं अपने विकार से उसको चंचल कर देता हूँ। संयम के आधार वाला प्रेम ही आगे भी टिके रहने की समर्थता रखता है।'

मृगनयनी ने गर्दन टेढ़ी की, उँगली ठोड़ी पर फेरी और मुस्कान को बिखेरा।

'मन में उपदेश ज्यादा भरा दिखता है आज !'

'अजी उपदेश देना पण्डितों और आचार्यों का काम है।'

उसी क्षण बोधन का चित्र उसकी आंखों के सामने घूम गया। औंधी खोपड़ी का था वह, मानसिंह ने सोचा। मुस्कराया।

बोला, 'तुम्हारी प्रत्येक मुस्कान, भिन्न-भिन समय पर तरह-तरह का दिखलाई पड़ने वाला सलोनापन, तुम्हारी छवि का हर एक अंश ऐसा मूर्त कर देना चाहता हूँ, इतना साकार कि जीवन के अन्त तक अपने प्रेम का अचल प्रतिबिम्ब बना रह कर दिखलाई पड़ता रहे। अभी-अभी मेरी समझ में आ गया कि यह कैसे सम्भव होगा। जिस भवन को बनवा रहा हूँ उसका नाम मृगेन्द्र—मन्दिर रहे ?'

मृगनयनी ने हँसकर टोका,—'आरम्भ के कौर में ही मक्खी गिर पड़ी ! मेरी बड़ी का नाम रखिये—सुमन मन्दिर।'

'नहीं, यह नाम नहीं रक्खा जायगा। तुम मेरे मन की रानी हो, हम दोनों इस भवन के एक खण्ड में पालनकर्त्ता विष्णु-भगवान का पूजन-ध्यान करेंगे, इसलिये यह भवन मन्दिर कहलावेगा, तुम मेरी मानिनी हो, मैं तुम्हारा मान, इसलिये इसका नाम होगा मान-मन्दिर। तुमको मालूम है तुम्हारी कौनसी छवि मुझको बार-बार उमगाती है ?'

'मैं क्या जानूं ? आप न जाने क्या-क्या करते रहते हैं।'

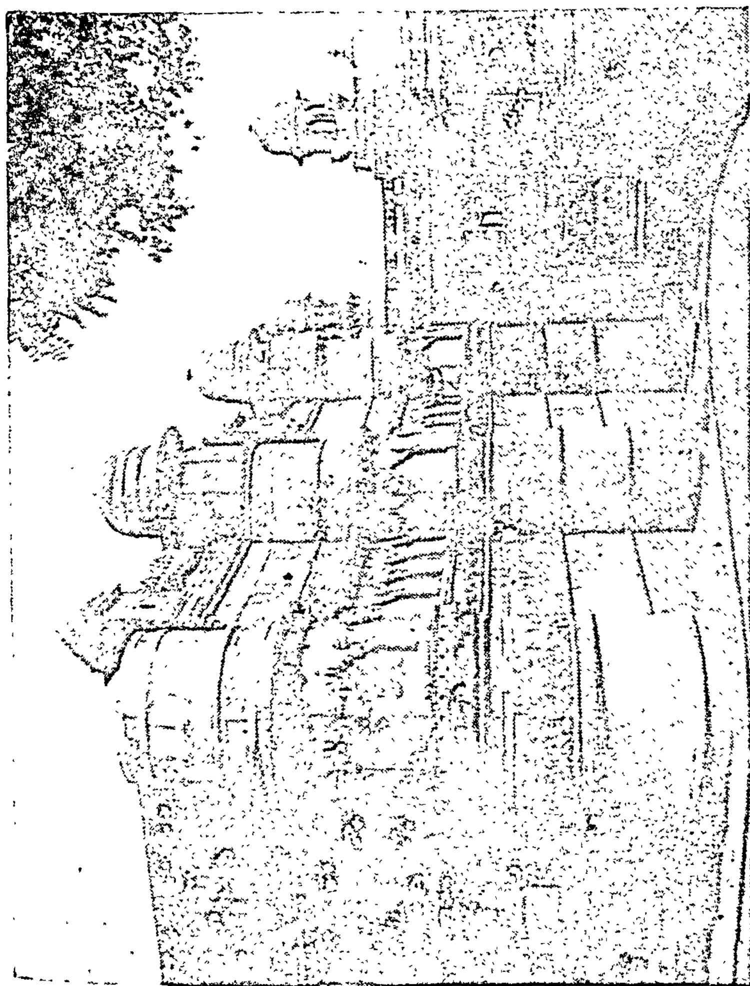
'जिस समय, भांवर पड़ने की घड़ी, मुकुट बांधे, हरे-हरे पत्तों के लता-वितान वाले मण्डप के नीचे तुम उस आँगन में आईं-वह छवि। मान-मन्दिर का द्वार उस घड़ी की छवि को मूर्त करेगा।'

मानसिंह एक क्षण चुप रहा। मृगनयनी ने गर्दन की एक हलकी सी मुरकी ली और एक आँख की चितवन को जरा सा ऊँचा किया। मुस्कराती हुई बोली, 'और क्या ?'

वह कहता गया, 'ऐसे बड़े और छोटे द्वार बनाऊंगा जिनमें होकर आने वाला प्रकाश तुम्हारी हँसी और मुस्कानों को व्यक्त करे। तुम्हारे केश-कुन्तल, कपोलों की दोनों ओर छूट-छूट जाने वाली लटें उन द्वारों की वन्दनवारी सजावटों में उतर आयेंगी। तुम्हारी मुस्कानों के पीछे जो मोती से दमक जाते हैं वे बेलबूटदार झिझिरियों की आभा द्वारा व्यक्त हो जायेंगे। ऊपर के खण्ड के आंगन में निकली हुई गोखें, बारजें और उनकी पतली सुहावनी बड़ेरियां तुम्हारी चितवन और भौंहों को प्रकट करती रहेंगी। उन सबके ऊपर के कंगूरे और कलसे तुम्हारे—'

मृगनयनी ने हंसते हुये टोका, 'और आगे नहीं सुनना चाहती।'

'अच्छा, अच्छा, सुनो', मानसिंह ने कहा, 'बाहर की विशालता और भीतर का सौन्दर्य हमारी-तुम्हारी उपासना और विष्णु की आराधना को मूर्त करेगी।'



'हां, यह कही ठिकाने की वात।'

'तुमको उद्यान का कौनसा वृक्ष सबसे अधिक मोहक लगता है ?'

'केला। उसके हरे भरे डोलते हुये बड़े-बड़े पत्ते, हाथियों के कान से भी वड़े वहुत अच्छे लगते हैं।'

'ये पत्ते, अपने स्वाभाविक रङ्ग में, मान-मन्दिर के ऊपरी खण्ड के ऊपरी भाग पर बराबर टाँक दिये जायेंगे। जान पड़े कि किसी उद्यान के भीतर मन्दिर है। और पत्थर की जालियों में अपने जङ्गलों के हाथी, सिंह, नाहर अन्य पशु और तालाव के बगुले, हंस, सारस इत्यादि पक्षियों को बनवा दूंगा। विष्णु की सृष्टि हैं न वे ? कैसा रहेगा ?'

'बहुत अच्छा। सुना है किसी कलाकार ने चन्देरी के निकटवर्ती देवगढ़ में विष्णुगढ़ की प्रतिमा को ऐसी मुस्कान दी है कि देखने वालों के विकारों को शान्त करके शक्ति के साथ ध्यान को एकाग्र कर देती है। क्या कभी उस मूर्ति के दर्शन कर सकूंगी ?'

मानसिंह ने झटका सा खाया। आधे क्षण के लिये भौंह सिकुड़ गई। आह लेकर बोला, 'वहुत दिन हुये तुर्कों ने उस मूर्ति को खण्डित कर दिया, पर मूर्ति की अनन्त आशीर्वादमयी मुस्कान को कभी कोई नहीं मिटा पाया। देवगढ़ मालवा के सुल्तान के अधीन है। यदि पुरखों की वाणी को निभाने में कभी समर्थ हुआ और कभी देवगढ़ को ग्वालियर के भीतर कर लिया तो दर्शन कर लेना।'

'अपने यहाँ के कलावन्त कारीगर नहीं ला सकते उस मुस्कान को वहां से अपने हृदय की गांठों में बांधकर ?'

'कदाचित ला सकें। कलाकार के भीतर पूरी उपासना, आस्था, श्रद्धा और भक्ति, योग के द्वारा जाग पड़ें, तभी वह उस वरद मुस्कान को टांकी हथोड़े के द्वारा पत्थर में उसका कर पिरो सकता है। प्रयत्न करूँगा। मान-मन्दिर के भीतर ऐसे ही विष्णु की मूर्ति को पधरवाऊंगा जिसके

दर्शनों से हमारे विवेक की मुस्कानें प्रबलता के साथ इतनी बनी रहें कि हम उनको अपने आसपास भी बांट सकें।'

'कविता कर उठे न आप अब!'

'कई बार कह चुका हूं कि साकार कविता तो तुम हो जो उस प्रकार के भाव को मेरे भीतर सदा जगाती रहती हो।'

'साकार कविता तो नायक बैजू हैं।'

'अब लोग उनको बैजू बावरा भी कहने लगे हैं। कविता बावली ही होती है, जैसी तुम।'

मृगनयनी हंस पड़ी।

बोली, मैं बावली हूं! और यह जो तानों, मुस्कानों, फूल-पेड़-पत्तों, हाथियों-नाहरों, सूरज की किरणों और चन्द्रमा की चांदनी को पत्थरों में उमगा देना चाहते हैं, वह कौन हैं?'

मानसिंह भी खिलखिलाकर हंस पड़ा।

कुछ क्षण उपरान्त उसने कहा, 'नायक बैजू आजकल बड़ी साधना कर रहे हैं। परोसा हुआ भोजन एक ओर रक्खा रहता है, पानी तक पीना भूल जाते हैं। किसी राग के बनाने या किसी परिपाटी या नई तानों के सृजन में दिन रात एक करे डाल रहे हैं। कोई रोकटोक करता है तो वीणा लेकर उसको पीट डालने को झपट पड़ते हैं, चिन्ता नहीं चाहे फिर उनकी उस प्यारी वीणा का तुम्बा ही क्यों न फूट जाय! पर अपने आलापों और तानों में मुस्कराते हुये विष्णु का आशीर्वाद सबको बांटेंगे।'

जब इसी तरह की साधना शिल्पी कलावन्त करें, तब विष्णु की मूर्ति में उस प्रकार की मुस्कान टांकी-हथौड़े के द्वारा उतार पायेंगे। ठीक है न?

'बिलकुल, बिलकुल ही ठीक है।' मानसिंह ने उठकर मृगनयनी को अंक में फिर भर दिया।

'यह नहीं होना चाहिये ! कैसी अच्छी बातें करते-करते आप क्या कर उठे ' मृगनयनी ने हँसते हुए कहा।

मानसिंह फिर अलग जा बैठा।

बोला, 'विष्णु के इस सुन्दर मान-मन्दिर में हम दोनो पुजारी बनकर रहेंगे। हम ही दोनो।'

और सुमनमोहिनी और वे सातों कहां रहेंगी? मृगनयनी के अन्तर्मन के नीचे से सहसा किसी ने पूछा। वहीं किसी नें उत्तर दे लिया, बनी रहें, बनी रहें। सब सह लूँगी, सब सहती रहूँगी। सुख दुख की संगिनी लाखी भी तो साथ रहेगी। लाखी को बड़ी रानी अछूत समझती है ! और मुझ को भी !! मेरे और लाखी के थाल का भोजन मिहतर तक को नहीं दिया गया !!! इतनी गई बीती समझी गईं हम दोनो !!!! कितना अपमान !!!!! परन्तु मैंने और लाखी ने उस अपमान को पी जाने का निश्चय कर लिया है। महाराज कितना प्यार करते हैं ! वह अपमान इस प्यार के सामने बिलकुल तुच्छ है। परन्तु यदि नित्य नित्य होता रहा तो उसी के दमन-शमन में उलझा रहना पड़ेगा और मैं कलाओं में कोरी रह जाऊँगी। मृगनयनी सोच रही थी।

मानसिंह ने हँसकर कहा, 'क्या सोच रही हैं महारानी जी ? राई के जङ्गल, पहाड़, आँगन के लतावितानवाले मण्डप के नीचे आने वाली दुल्हन की छवि को ? या बैजू की किसी तान को ?'

'नहीं तो'—धीरे से मृगनयनी बोली,—'अपनी नदी, अपने गांव की नदी के शुद्ध जल की याद करने लगी थी।'

'थोड़ी सी बावली हो न। कहा था न कि नहर के ग्वालियर आने में थोड़ा सा ही समय और लगेगा।'

'यहां किले के ऊपर, आप के मन्दिर तक कैसे चढ़ेगी वह नहर ?'

'हां ऊपर तक तो नहीं आ सकती है। परन्तु उत्तर-पूर्व के कोने वाली टैंक तक तो आ ही सकती है।'

'वहां तक ले आइये और एक भवन वहां भी बन जाय। बन सकता है न ?'

जिस समस्या को मिटाने के लिये मानसिंह मृगनयनी के पास आया था, मानो, उसका हल मृगनयनी के ही मुंह से मिल गया।

उत्साह के साथ बोला, 'बहुत अच्छा ! बहुत अच्छा !! मैं सोचता था, मान-मन्दिर के निर्माण के बाद क्या करूँगा सो तुमने खूब बतलाया !!! यहां मन्दिर बन कर खड़ा हुआ जाता है, वहीं बनेगा महल। उसका नाम होगा गूजरी रानी का महल।'

'उस पर भी अपने नाम की छाप दीजिये।'

'एक हठ तुम्हारा मान लिया। एक मेरा भी मानो। उसका नाम गूजरी रानी का महल ही होगा।'

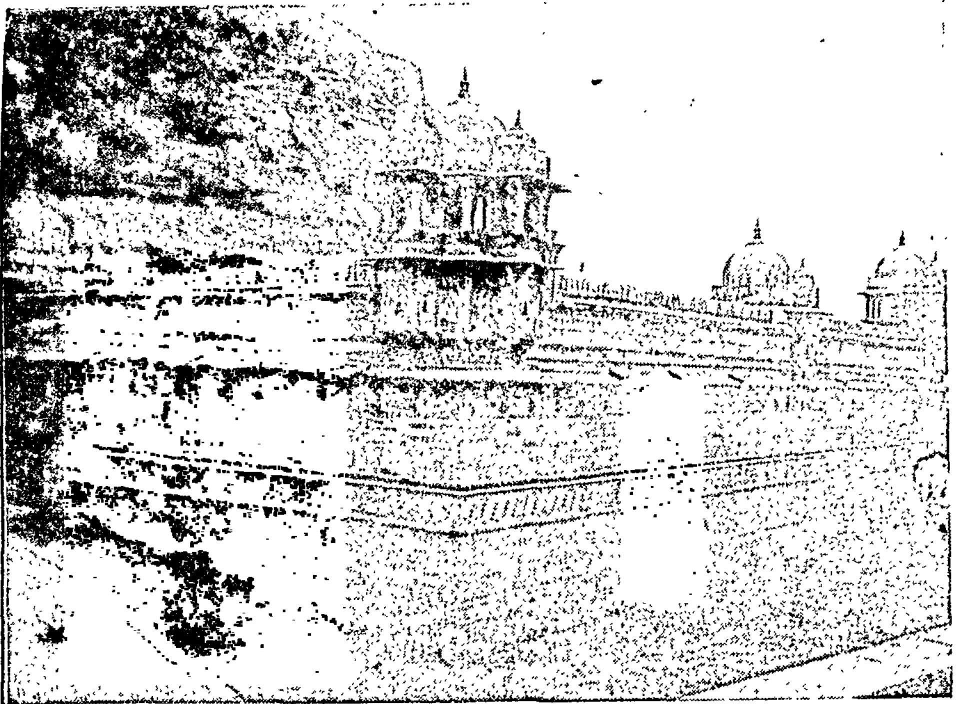
'उनमें भी ये ही सब बातें उतारी जायेंगी क्या ?'

'नहीं, भिन्नता रहेगी; जैसी तुम्हारी छवि की समय-समय पर भिन्नता दिखलाई पड़ती है। तुम्हारे आभूषणों जैसी।'

'मैं कितने आभूषण अपनी देह पर लादती हूं ?'

'नहीं, खिचाई पर आभूषण और आभूषणों के भीतर खिचाई। कल्पना के पीछे जो विचार है उसको लगन के साथ मूर्त करने का प्रयत्न करूँगा। जितना भी सफल हो जाय अपने को कृतकृत्य समझूँगा।'

'देवगढ़ के विष्णु-मन्दिर को फिर अपने हाथ में लाना चाहिये और उसको फिर से ज्यों का त्यों बनवा देना चाहिये। इस काम को आप कब करेंगे।'



रानी मृगनयनी का महल-गूजरी-महल

'वहां तक ले आइये और एक भवन वहां भी बन जाय। बन सकता है न?'

जिस समस्या को मिटाने के लिये मानसिंह मृगनयनी के पास आया था, मानो, उसका हल मृगनयनी के ही मुंह से मिल गया।

उत्साह के साथ बोला, 'बहुत अच्छा! बहुत अच्छा!! मैं सोचता था, मान-मन्दिर के निर्माण के बाद क्या करूंगा तो तुमने खूब बतलाया!!! यहां मन्दिर बन कर खड़ा हुआ जाता है, वहीं बनेगा महल। उसका नाम होगा गूजरी रानी का महल।'

'उस पर भी अपने नाम की छाप दीजिये।'

'एक हठ तुम्हारा मान लिया। एक मेरा भी मानो। उसका नाम गूजरी रानी का महल ही होगा।'

'उसमें भी ये ही सब बातें उतारी जायेंगी क्या?'

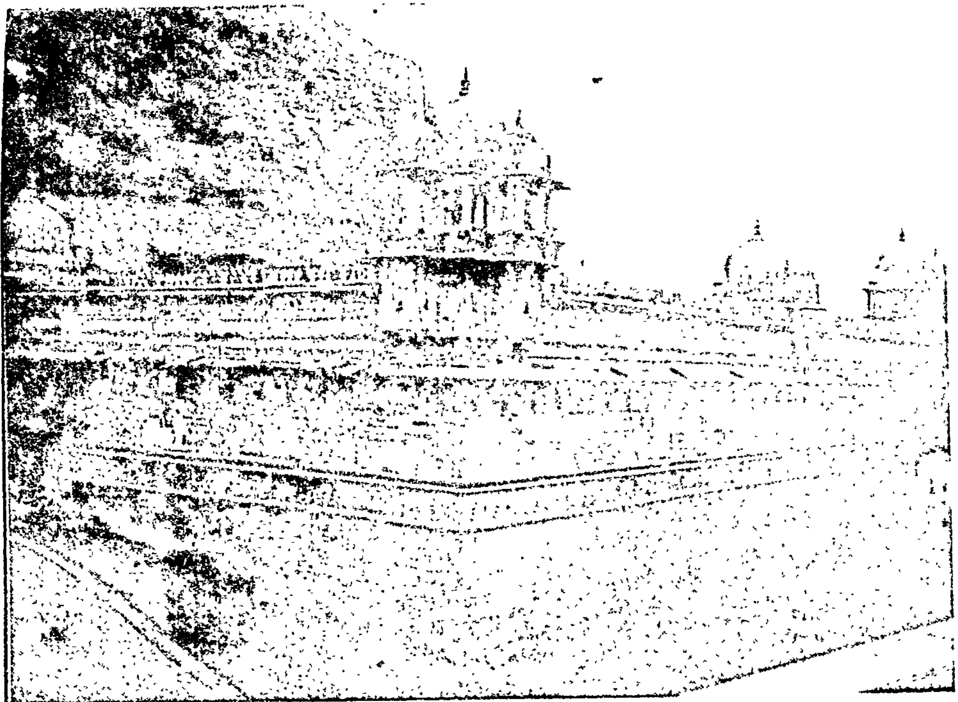
'नहीं, भिन्नता रहेगी; जैसी तुम्हारी छवि की समय-समय पर भिन्नता दिखलाई पड़ती है। तुम्हारे आभूषणों जैसी।'

'मैं कितने आभूषण अपनी देह पर लादती हूं?'

'नहीं, सिधाई पर आभूषण और आभूषणों के भीतर सिधाई। कल्पना के पीछे जो विचार हैं उसको लगन के साथ मूर्त करने का प्रयत्न करूंगा। जितना भी सफल हो जाय अपने को कृतकृत्य समझूंगा।

'देवगढ़ के विष्णु-मन्दिर को फिर अपने हाथ में लाना चाहिये और उसको फ़िर से ज्यों का त्यों बनवा देना चाहिये। इस काम को आप कब करेंगे।

इस कर्तव्य की सुधि नें मानसिंह की कला-कल्पना और ओज की ललित-मधुरता को धक्का दिया, जैसे किसी ने मान-मन्दिर और गूजरी महल के निर्माण को यकायक रोक दिया हो, जैसे बैजू बावरे ने किसी मीठी तान को लेते-लेते यकायक वीणा को पटक कर फोड़ डाला हो।



रानी मृगनयनी का महल-गूजरी-महल

बोला, 'समय आने पर उनको भी करूँगा ।'

मृगनयनी ने कहा, 'कला और कर्तव्य पालन के बीच में तोल का बनाये रखना तो आप जानते ही हैं, मैं क्या कहूँ । कला में कभी कभी मन उचट जाता है तो चाहती हूँ नाहर या अरने पर बाण का सन्धान करूँ । देखना चाहती हूँ, भूल तो नहीं गई ।'

मानसिंह का उत्साह पर्याप्त मात्रा में नहीं जागा,—'किसी दिन इसकी भी योजना कर दूँगा । राई के जङ्गल पास ही तो हैं ।'

'अबकी बार नरवर के जङ्गलों में चलिये । वहाँ हाथियों के झुण्ड दिखलाई पड़ेंगे । उनके साथ गणेश जी जैसे कूदते-फुदकते बच्चे । वहीं से चन्देरी और देवगढ़ को अधीन करने की योजना बनाइये ।'

नरवर, कला और राजसिंह, मानसिंह की कल्पना में झूल गये । राजसिंह नरवर को अपनी बपौती समझता है ! चन्देरी और देवगढ़ सहज ही हाथ नहीं लगने के । फिर भवन-निर्माण और कला–सृजन के कार्य को अधूरा छोड़कर कैसे उतने बड़े काम को यकायक आरम्भ किया जा सकता है ? पहले अपने निकटवर्ती मोर्चों को भली भांति संगठित कर लूँ । निहालसिंह का अन्त कैसे बुरे समय पर हुआ ! कितना अच्छा दल नायक था वह !! ओफ !!!

मानसिंह ने अपने भाव को छिपाकर कहा, 'बहुत शीघ्र प्रबन्ध करूँगा । गूजरी–महल के काम को आरम्भ कर दूँ और मान-मन्दिर के निर्माण की गति को बढ़ा दूँ, फिर शीघ्र उस काम को भी हाथ में ले लूँगा । तब तक शिकार के लिये राई का और अपने यहीं आसपास का जंगल उपयुक्त रहेगा ।'

[५६]

कला चन्देरी पहुंच गई। उसने अपनी विफलता का कारण बैजू को वतलाया। बैजू पर का रोप राजसिंह के भीतर कला के प्रति असंतोप में पटलने को हुआ। क्षुब्ध हो गया।

वोला, 'मैं नहीं जानता था कि बैजू इतना बड़ा गधा है। वह आवरा-बावरा यहां कुछ भी नहीं था। ग्वालियर के पानी ने उसको निकम्मा कर दिया।'

'होरी-ध्रुवपद की परिपाटी को मांजने में लगे हैं वह आजकल और प्रकार-प्रकार की टोड़ी वनाने की धुन में। गूजरी-टोड़ी, मंगल-गूजरी इत्यादि। उनको और कुछ भी नहीं सूझ रहा है।'

'भाड़ में गई टोड़ी। वह ग्वालियर में रह गया सो अच्छा ही हुआ। किसी काम का नहीं निकला। खेद है कि तुम भी कुछ न कर सकीं।'

कला ने जो कुछ प्रयत्न किया था, वतलाया।

फिर वोली, 'आपने यह कहा था कि जब ग्वालियर घिर जाने को हो तब तुरन्त समाचार देना, सो ग्वालियर घिरते-घिरते रह गया परन्तु फिर गिरेगा, तव आप नरवर पर चढ़ाई कर देना।'

'मैंने क्या केवल यही कहा था? इतनी वात तो औरों के ही सामने कही होगी, अकेले में भी तो कुछ कहा था।'

'ठीक ठीक याद नहीं। परन्तु मैंने नई रानी और पुरानी रानियों में काफ़ी फूट डलवा दी; और अधिक कुछ नहीं हो सका। क़िले के चित्र बनाये थे पर वे हाथ से निकल गये। वतलाया है आपको।'

'तुमने नाचने-गाने में ज्यादा ध्यान लगाया, इसलिये तुम्हारा निश्चय विगुल गया। पर खैर, कोई वात नहीं। दिल्ली का वादशाह एक न एक दिन ग्वालियर पर चढ़ाई करेगा और मानसिंह को मारेगा। तुमने नहीं मार पाया तो वैसे मरेगा। इधर हमारा यह सुल्तान इतना निकम्मा है

इतना निकम्मा कि कुछ करता-धरता ही नहीं। नहीं तो मन चाहता है कि नरवर के फाटकों पर फिर अपने हाथों को जा ठेलूं। पर यह सुल्तान! बहुत ही गन्दा है। ग्यारह हजार सुन्दरियों को तो अपने हरम में दाखिल कर चुका है !'

'क्या ! ग्यारह हजार !!'

'हाँ। और उसका प्रण है कि पन्द्रह हजार से महलों को भरके ही दम लूंगा !'

'पुरुषों का कुछ ठीक नहीं। एक पर से उसका मन उचटकर कितनी जल्दी अनेक पर फिसल जाता है।'

'नहीं कला, सब पुरुषों के लिये यह बात लागू नहीं है। मेरे साथ अन्याय मत करो।'

आपने मेरे साथ कौन सा बड़ा न्याय किया ?'

'मैं असल में बैजू पर खीज गया था। कुछ बातें यों ही मुँह से निकल गईं। आगे तुमको इधर-उधर नहीं जाने दूंगा। सुल्तान से बहुत डर लगता है।'

'क्यों ?'

'तुमको मालूम नहीं। सुल्तान ने सुन्दरियों की ढूंढ़-खोज के लिये एक मुहक़मा खोला है। मालवे भर में उसके आदमी नये नये रूपों की पकड़-धकड़ के लिये घूमते रहते हैं। यहाँ भी आये थे और कुछ को ले गये।'

'राजपूत कहाँ जा सोये हैं ?'

'जहाँ राजपूत बहुत हैं वहाँ इस मुहकमे वाले नहीं जाते। जहां थोड़े है वहीं उपद्रव करते हैं।'

'राजपूत इकट्ठे क्यों नहीं हो जाते ?'

'नहीं हो पाते ।' तुरन्त राजसिंह के सामने मानसिंह का चित्र घूम गया। ग्वालियर, तोमरों की सेना, उनका विक्रम। उसी समय नरवर की बपौती आंखों के सामने आ खड़ी हुई और पुरखों का बदला। तोमर और हम कैसे एक ही जगह खान, पान, सम्मान और रहन-सहन कर सकते हैं ?'

कला आँखों के सामने खड़ी थी।

बोला, 'तुम्हारे नाम की भी ढूंढ़ खोज यहाँ हुई थी।'

कला सकपका गई। 'ऐं !' उसके मुंह से निकला।

पूछा, 'अब क्या करूँ ?' कहां जाऊँ ? मेरा तो और कोई कहीं नहीं है।'

राजपूत की बाँह फड़क गई।

उसने कहा, 'मैं तो हूँ। तुम्हारे ऊपर आँच आने के पहले मेरे तन के टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे।'

'आप अकेले क्या कर लेंगे ?'

'बहुत कुछ। हम थोड़े ने ही नरवर के क़िले को कॅपा दिया था। सुलतान ढीला पड़ गया नहीं तो नरवर की ईंट से ईंट बजा देता।'

'पर आप सदा तो घर पर रहते नहीं।'

'मैं तुमको किसी छिपाव के स्थान में रख दूंगा। इसके सिवाय अपना सूबेदार शेरखां मेरा मित्र है। वह कपटी नहीं है। मेरे साथ छल नहीं करेगा। फिर काम पड़ जाने पर अनी के ऊपर अड़ जाने के लिये मेरी देह तो है ही।'

कला ने सोचा, मानसिंह कितना बड़ा है !

[५७]

जाड़े निकल गये । वसन्त आ गई और छा गई । नसीरुद्दीन ने मांडू में बारह हजार स्त्रियां इकट्ठी करलीं; परन्तु अभी उसके प्रण के पूरे होने में तीन हजार की कसर थी । मदक के कारण उसने गियासुद्दीन से भी बढ़कर कृपा बरसाई । खजाने में कोई कमी नहीं थी क्योंकि मालवे का किसान समय पर अपना लगान चुकाता रहता था । इमारतें खड़ी करने का विचार उसने त्याग दिया था जिनपर खर्च होता । मेवाड़ दिल्ली के बादशाह से लड़ता रहता था । गुजरात का महमूद बघर्रा कभी खानदेश, कभी अहमदनगर, कभी सौराष्ट्र के राजपूतों की लड़ाइयों में कई बरस से बंधा हुआ था । यद्यपि उसने मांडू के सुल्तान को कम से कम एक बार धूल चटाने की सौगन्ध खा रखी थी परन्तु वह अवकाश नहीं पा रहा था । नसीरुद्दीन जानता था, लेकिन उसको विश्वास था कि बला अभी बहुत दूर है । इसलिये बाप को मारकर अब मांडू में उस बड़े भारी परिस्तान को स्थापित करने की धुन में लगा हुआ था । जहाँ उसने किसी सुन्दर युवती की खबर पाई कि दूत दौड़ाये । अनेक लोगों का यही पेशा हो गया था । मालवा के राजपूत अपने होंठ काट-काट डाले जा रहे थे किन्तु एक नहीं हो पा रहे थे । मेदिनीराय का जन्म हो चुका था परन्तु उसने मालवा के राजपूतों को अभी अपनी गाँठ में नहीं बांध पाया था । इस आंधी के उठने की बात नसीर को मालूम भी होती तो वह पूरी उपेक्षा करता । और इस प्रकार की आंधी जब उस काल के जर्जर भारत में उठती थी, तब वह भी किसी की अपेक्षा नहीं करती थी । सांगा के सांचे में मेवाड़ ढल ही रहा था । रामानुजाचार्य, चैतन्य महाप्रभु, कबीर इत्यादि ने भक्तिमार्ग की अदमनीय शक्ति को उत्पन्न कर ही दिया था ।

नसीरुद्दीन अपनी इन्द्रपुरी के निर्माण में सिर के बल लगा हुआ था ।

एक दिन उसने मांडू की बड़ी झील कालियादह में अपनी अप्सराओं को उतार कर जल विहार करने की ठानी ।

मटरू ने भी कहा, 'वाह ! क्या कहना है जहाँपनाह, दुनिया किसी भी पर्दे पर ऐसा कभी नहीं हुआ होगा।'

जल-विहार के विस्तृत क्षेत्र में कनातों की आड़ें लगा दी गईं। एक ओर लहराने वाली झील की नीली जलराशि, दूसरी ओर कनातों के भीतर रङ्ग-विरङ्गे वारीक वस्त्रों और झिलमिलाते अलंकारों से सजी हुई वे अप्सरायें, टिड्डीदल की तरह उमड़ रही थीं; अन्तर उनमें और टिड्डियों में इतना ही कि टिड्डियां एक ही रङ्ग की होती हैं। वरसात की तितलियों जैसी परन्तु वरसात में एक ही स्थान पर इतनी तितलियां इकट्ठीं नहीं दिखलाई पड़तीं। सब हंसती-मुस्कराती बातें कर रही थीं। सब अपने वस्त्रों को लहरा-फहरा रही थीं, सब अपने यौवन का प्रदर्शन कर रही थीं। परिणाम-स्वरूप इतना शोरगुल बढ़ा कि नसीरुद्दीन को उसके ठण्डे करने का एक ही उपाय सूझा। उसने सोचा इस शोरगुल को वैसे तो इन्द्र भी वन्द नहीं कर सकता।

इसलिये उसने गायन और नृत्य आरम्भ कराया। उस सङ्गीत के रसास्वादन के लिये वग़ल में सब प्रसाधन थे ही—सुराही, प्याले, मटरू इत्यादि इत्यादि।

अप्सराओं का कराल-निनाद थोड़ी देर के लिये धीमा पड़ गया। नसीर को सन्तोष नहीं हुआ।

सङ्गीत को वन्द करके बोला' 'पानी में कूद पड़ो और आपस में छुआ-छुव्वल खेलो। मैं भी पानी में उतरूंगा, पर खेल को ज़रा देखने के वाद।

आदेश-वाहिकाओं ने इस फ़रमान को अविलम्ब जारी कर दिया। जो युवतियां तैरना जानती थीं वे कपड़ों को उतार संभालकर पानी में कूद पड़ीं। जो तैरना नहीं जानती थीं, वे घाट पर बैठे-बैठे, पानी में पैरों से कलोलें करती हुई, तमाशा देखने लगीं। नसीरुद्दीन कभी इस समूह और कभी उस समूह को वढ़ावा देने लगा।

कुछ स्त्रियां तैरती-खेलती हुईं झील में थोड़ी दूर निकल गईं। थक गईं, डूबने को हुईं और सहायता के लिये चिल्लाने लगीं। पास के समूह की कुछ उनको बचाने के लिये झपटीं। थकी हुई स्त्रियां उनसे उलझकर अपने और उनके भी प्राणों को संकट में डालने के परिस्थिति में आ गईं।

नसीरुद्दीन चिल्लाया,—'इनको बचाओ! इनको बचाओ!!'

अनेक कण्ठों से ये ही शब्द निकले।

नसीर हाथ-पैर नचाने लगा, उछला-कूदा, लेकिन पानी में नहीं उतरा। मटरू ने उससे भी अधिक उछल-कूद की परन्तु और कुछ नहीं।

क़नात के पीछे सुल्तान के बहुत से नौकर खड़े थे। उनमें से कई, जो तैराक थे कनात को चीरकर दौड़ पड़े, पानी में कूदे और डूबतियों को बचाकर किनारे ले आये। वे स्त्रियां अचेत हो गई थीं किन्तु मरणासन्न नहीं थीं। उनका उपचार होने लगा। जिन पुरुषों ने रक्षा की थी वे निगाहें नीची किये हुये थे, चाहते थे कि सुल्तान की दृष्टि उन पर पड़ जाय और पुरस्कार प्राप्त करें।

सुल्तान की दृष्टि उन पर पड़ी। उसने तुरन्त उन लोगों को अपने निकट बुलाया। नीची आंखें किये वे उसके पास आ गये।

'तुम्हारा नाम?'

उन लोगों ने अपने अपने नाम बतलाये।

'तुम क़नात के भीतर कैसे घुस आये?'

उन लोगों की घिग्घी बँध गई।

'किसने बुलाया था? किसके हुक्म से आये? बोलो! बतलाओ।'

उन्होंने मानव की पुकार सुनी थी। पुरुष का शरीर पाया था। इसलिये घुस आये थे।

परन्तु उनमें से एक ही बोल पाया, 'जहाँपनाह ने हुक्म दिया था कि इनको बचाओ।'

'कमबख्तो ! तुमको हुकुम दिया था !!' वह कड़का।

फिर कोई और क्यों नहीं कूद पड़ा ? उनके मन में उठा, आतंक और भय के मारे कुछ न कह सके। थरथराने लगे।

नसीर ने आज्ञा दी, 'इनका वह सिर धड़ से जुदा कर दो जिसकी आंखों से यह सब देखा और हाथ भी काट दो।'

खवासिनों ने उन लोगों को कैद कर लिया। कनात के बाहर ले जाकर उनको मार दिया गया। सुल्तान की आज्ञा का अक्षरशः पालन होगया।

फटे गले से नसीर बोला, 'ख्वाजा मटरू, सब मजा किरकिरा हो गया। कोई और शग़ल सोचो।'

ख्वाजा मटरू के होश कूच कर चुके थे।

नसीरुद्दीन ने कई खेल-खिलवाड़ सोचे और छांटे। स्त्रियां सहम गई थीं। परन्तु उन्हें सुल्तान को प्रसन्न करना था। कई खेल हुये। नीली झील ने वह सब देखा और अपनी अनवरत लहरों के भीतर रख लिया।

[५८]

सिकन्दर लोदी को ग्वालियर काँटे की तरह खटकता था। उसने अनेक बार आक्रमण किये परन्तु वह कभी सफल नहीं हुआ। सिकन्दर के भाई जलाल ने जौनपुर-बङ्गाल की ओर बगावत का झण्डा ऊँचा किया—अर्थात अपनी अलग सल्तनत कायम करने का प्रयास किया। सिकन्दर उधर गया, तो वह अन्तर्वेद की ओर खिसक आया। सिकन्दर जौनपूर को नष्ट कर चुका था। जौनपूर का सुल्तान हुसेनशाह, जिसके नाम पर संगीत का हुसेनी कान्हड़ा चला और विख्यात हुआ और जिसने जौनपूर को सुन्दर इमारतों से सजाया, बङ्गाल की ओर भटक रहा था। सिकन्दर अन्तर्वेद में आने के लिये लखनऊ में ठहर गया। लखनऊ छोटा सा ही नगर था परन्तु उसका क्षेत्र बड़ा और बहुत उपजाऊ था। दिल्ली की आधीनता में जौनपूर के साथ लखनऊ का क्षेत्र भी आ गया।

लखनऊ में ठहरने के समय सिकन्दर के पास बहुत से मुल्ले-मौलवी जमा हुये। सिकन्दर इतना कट्टर पक्षपाती था। वह उसके राजनैतिक महत्व को जानता था।

इन मुल्लों ने अपने बड़प्पन को प्रकट करने के लिये ऐलान करवाया 'यदि किसी हिन्दू में हिम्मत हो तो आकर धर्म के मामलों पर हमारे साथ बहस करे।'

और तो किसी ने इस चिनौती को स्वीकार करने में उपयोगिता नहीं देखी, बोधन ने स्वीकार कर लिया। वह लगभग तीन वर्ष तीर्थ यात्रा करने के बाद अयोध्या से मथुरा वृन्दावन की ओर आ रहा था। शाही लश्कर का तमाशा देखने की वान्छा के साथ बहस करने की कामना उमड़ पड़ी। शास्त्रार्थ करने के लिये तो वह उधार ही खाये बैठा रहता था। मौलवियों की मजलिस में जा पहुँचा।

मोटी धोती, तनीदार मोटी अँगरखी, घुटे सिर, लम्बी चोटी पर मोटे कपड़े की छोटी सी पगड़ी। सब झक सफ़ेद। नङ्गे पैर। छुरा-छुरी

डंडा हाथ में कुछ नहीं। सिपाही उसको देखकर हँसे। मूल्लों ने भौंहें तानी और मुट्ठियां कसीं।

थोड़ी देर में सभा भर गई। सिकन्दर आकर ऊँचे तख़्त पर बैठ गया। बहस शुरू हो गई।

'ख़ुदा एक है या कई हैं ?'

'एक। केवल एक वही सब में रम रहा है।'

'हमारे यहां के सूफी भी यही कहते हैं, पर वे ग़लती पर हैं। हम कहते हैं कि ख़ुदा सबसे अलग है। तुम इसका उल्टा साबित करो।'

परमात्मा सब में है और सबसे अलग भी। हमारे शास्त्र और ऋषि कहते हैं। यहां तक कि कवि भी कहते हैं। सब सीधा है और सब उल्टा।'

'कुछ तो माना तुमने। ख़ुदा के पास पहुँचने का एक ही रास्ता है, सिर्फ़ एक ? या कई ?'

'जितने मनुष्य हैं उतने ही रास्ते हैं। पर पहुँचते हैं सब एक ही ठौर पर।

'यानी पेड़ों, पत्थरों और जानवरों की भी पूजा करके ?

'इनकी या इनमें से किसी को भी अपने भीतर की पूरी श्रद्धा और भक्ति के फन्दों में बांधकर चले तो जरूर उस तक पहुँचने का सुभीता मिल जायगा।'

'यानी मूर्ती की पूजा करके भी ?'

'हाँ।'

'पत्थर के टुकड़े की ?'

'वे पत्थर के टुकड़े नहीं हैं। मनुष्य की मानता के चिन्ह हैं।'

'तुम्हारे योगी, ख़ुदा को निराकार ब्रह्म कहते हैं। फिर उस यक़ीन और इस पत्थर पूजा में कोई फ़र्क है या नहीं ?'

'है और नहीं भी। मानने और जानने वाले की जानकारी और भक्ति के दर्जे पर निर्भर है।'

'बेवकूफ़ी और अक़ल के बीच में कोई फ़र्क़ है या नहीं?'

'बहुत। बेवकूफ़ी अकल का एक दर्जा है और अक़ल बेवकूफ़ी का दूसरा दर्जा।'

'क्या बकता है!' सिकन्दर चिल्लाया।

बोधन ने उत्तर दिया, 'मैंने ठीक ही तो कहा, जहाँपनाह।'

'बहस करने आया है या आलिमों की बेइज़्ज़ती करने?' सिकन्दर चिड़चिड़ाया।

ब्राह्मण निर्भय रहा। निष्कम्प स्वर में बोला, 'बहस करने आया हूँ, सत्य की खोज करने और सच्ची बात बतलाने के लिये। मेरी बात अच्छी न लगी हो तो कहिये यहां से चला जाऊं?'

परन्तु न तो उसके मन में वहाँ से भाग जाने की इच्छा थी और न मौलवी चाहते थे कि वह मूंछें तान के, सिर उठाकर चला जावे। सत्य की खोज किसी का उद्देश्य न था। दोनों एक दूसरे को आतङ्कित करने की प्रेरणा से दीप्त हो रहे थे। बोधन के भीतर निर्भयता थी, मुल्लों की पीठ पर बल।

इधर-उधर खड़े हुये मुसलमान सिपाही उस अकेले ब्राह्मण को पहले तो पागल समझे, फिर उसकी हिम्मत को देखकर उनके मानव-हृदय ने उनसे कहा, 'बहादुर है, सिपाही है, विचारा कहीं पीटापाटा न जाय।'

एक मौलवी बोला, 'चले कैसे जाओगे बिरहमन? हार मान जाओ और इसलाम को क़बूल करो, तब यहां से जा सकोगे।'

'मेरा धर्म किस धर्म से कम है जो मैं अपने को छोड़कर दूसरे का पल्ला पकड़ूं?' बोधन ने निर्भयता के साथ कहा।

'यह कुफ़्र है ! यह कुफ़्र है !!' मौलवी चीख पड़े।

"कहां के रहने वाले हो ?' सिकन्दर ने प्रश्न किया।

उसने उत्तर दिया—'ग्वालियर का।'

'ग्वालियर का ! यानि मानसिंह का जासूस !!'

'मानसिंह का जासूस नहीं हूँ। मानसिंह से तो लड़कर निकला हूं; कई बरस हो गये।'

'ग़लत ! झूठ !!'

वहस बन्द हो गई। सवाल था बोधन का अब क्या किया जाय।

सुल्तान ने मौलवियों को आदेश दिया, 'इसकी तकदीर का फैसला आप लोगों के सुपुर्द किया जाता है। तै करिये।'

बोधन की समझ में अब आया कि क्या होने वाला है। उसको अपने भीतर एक जगमगाहट दिखलाई दी, जैसे उसने अपने जीवन में पहले कभी अवगत नहीं की थी।

मौलवियों को फैसला देने में देर नहीं लगी। थोड़ी देर वे परस्पर बात करते रहे, जिसको बोधन नहीं समझा।

मौलवियों ने फैसला दिया, 'इसलाम क़बूल करो वरना सिर काट कर फेंक दिया जायगा।'

स्पष्ट, निष्कम्प स्वर में बोधन ने निर्णय के सामने सिर झुकाया—'अपना धर्म नहीं छोड़ूँगा। सिर काट कर फेंक दो; क्योंकि वह मेरा नहीं। मैं यह सिर हूँ ही नहीं।

'अब भी सूफियों की सी झक !' सिकन्दर के मुंह से निकला। बोधन सङ्गमरमर की मूर्ति की तरह अचल खड़ा रहा। उसने छाती पर हाथ कस लिये थे।

मुसलमान सिपाहियों के मन में उमझा, 'या अल्लाह, यह क्या हो रहा है ! इस ग़रीब को क्यों यों ही मारा जा रहा है ?'

परन्तु सिकन्दर और मुल्लों के राज्य में सिपाही बेबस थे और वे अपनी बेबसी को जानते थे।

बोधन जल्लादों को सौंप दिया गया।

मरने के समय वह चिर स्थिन था, शान्त था, अडिग और निर्भय। वह सब में रम रहा है, मेरे और जल्लाद के भीतर वही है, जल्लाद की तलवार और मेरे सिर में भी वही है। सब में वही है। सब बराबर हैं। लाखी और अटल में वही है! दोनों में वही है? फिर मैंने उन दोनों के बीच में भेद क्यों किया? पर वह तो वर्णाश्रम की बात थी। जो कुछ भी हो, अब किसी के लिये मन में कोई बुराई नहीं। सिकन्दर के लिये नहीं, मौलवियों के लिये नहीं, किसी के लिये नहीं।

जल्लाद उसकी शान्त-गम्भीर मुद्रा को देखकर एक क्षण के लिये विचलित हुआ।

बोधन ने कहा, 'क्यों विलम्ब कर रहे हो? चलाओ।'

जल्लाद का हाथ निर्बल पड़ा और एक क्षण के लिये तलवार काँप गई।

बोधन को अपने भीतर कुछ और जगमगाहट दिखलाई पड़ी।

'चलाओ,' बोधन ने कर्कशता के साथ जल्लाद को दृढ़ता दी।

तलवार उसकी गर्दन पर चली और वह अपने वाञ्छित लोक में पहुँच गया।

सिकन्दर और मौलवियों को बोधन के प्राणान्त की सूचना दे दी गई।

मुसलमान सैनिकों को उस निरीह ब्राह्मण का क़तल नहीं सुहाया। कुछ मरमराहट हुई। सिकन्दर और मौलवियों में परामर्श हुआ।

फिर उसने जो कुछ किया उससे इतिहास के पन्ने सदा के लिये कलुषित हो गये।

लूटमार के अंशों को सिपाहियों में बांटा और उनकी मरमराहट को कुण्ठित कर दिया।

परन्तु मूर्तियों और मन्दिरों के तोड़ने फोड़ने ने जो आग उत्तर भारत में नहीं फूक पाई थी वह एक बोधन के वध ने फूक दी। अन्तर्वेद और अन्तर्वेद की दोनों दिशाओं के क्षेत्रों की छातियां मानो फ़ौलाद की बन गईं।

सिकन्दर और सिकन्दर के मुल्लों, सरदारों ने सोचा, अब हुआ दिल्ली की सल्तनत का पाया मजबूत। उन्होंने नहीं देख पाया कि पाये कांप गये। दिल्ली की सल्तनत को अखण्ड बनाने में दो बड़ी बड़ी बाधायें और भी थीं–एक ग्वालियर, दूसरा मेवाड़। मेवाड़ कुछ दूर पड़ता था परन्तु ग्वालियर तो छाती का काँटा था। दिल्ली से ग्वालियर आक्रमण करने के लिये आना बहुत समय ले जाता था इसलिये आगरे को बसाने, बनाने और उसको एक बड़ी छावनी का रूप देने का सिकन्दर ने संकल्प किया। यह आगरे को दूसरी राजधानी का रूप देनें पर झुक पड़ा। वहां से ग्वालियर को सहज ही नष्ट कर लिया जायगा और मेवाड़ का दमन भी कर दिया जायगा, सिकन्दर ने सोचा।

[५१]

ग्वालियर किले की पहाड़ी का उत्तर-पूर्व वाला छोर नीचे की ओर कुछ छहर गया है। चार वर्ष में उसके ऊपर मृगनयनी का गूजरी-महल वन गया। ऊपर के कोट से इसके कोट का भी सम्वन्ध जोड़ दिया गया। नीचे वाले कोट के नीचे से राई गांव वाली सांक नदी की ढकी हुई नहर गूजरी महल के नीचे वाले खण्डों में आ गई और उसके पानी के निकास का भी प्रवन्ध हो गया। गूजरी महल लगभग डेढ़ सौ हाथ लम्वा और सवा सौ हाथ चौड़ा। दो खण्ड ऊपर दो खण्ड नीचे। नीचे के खण्ड के वीचों वीच सांक नदी की नहर के जल के लिये हौज और चारों ओर दो खण्डी दालानें। ऊपर के खण्डों के वीच में विस्तृत आंगन चारों ओर सुरम्य अटारियां और छतें। वाहर और भीतर से मृगनयनी के रूप–सरूप का प्रतिविम्व–प्रवल, सीधा, सलौना और छवीला। कक्षों के द्वार, विवाह–मण्डप के लता–वितान और वन्दरवारों के द्योतक। पूरे भवन में वैसी गोखें, मंडियां और साज जैसे थोड़े और सुन्दर आभूषण वह पहिनती थी। पूरा भवन थोड़े से अलंकारों में संजोया हुआ, थोड़े से अलंकारों से पूरा भवन सजाया हुआ।

मृगनयनी दो पुत्रों की माता हो गई थी। एक का नाम राजसिंह, दूसरे का नाम वालसिंह—लाखी उनको खेल में राजे और वाले कहती थी। गूजरी महल ऐसा लगता था मानो कोई सशक्त सुन्दर माता अपनी गोदी में दो होनहार सिंह–सपूतों को लिये शान्ति के साथ वैठी हो। गूजरी महल के ऊपर किले की पहाड़ी की ऊँची खड़ी दीवार और उसके दक्षिणी कोने पर मानमन्दिर। अव यह पूरा वन कर तैयार होने वाला ही था। लगता था जैसे वह दीवार मानसिंह का लम्वा खांडा हो, जैसे मानमन्दिर का मानसिंह वज्र-मुष्टि में उस खांड़े को लिये हुए अपनी प्रजा की रक्षा के लिये खड़ा हो।

वैसे मान–मन्दिर भी तैयार हो गया था, केवल ऊपर के खण्डों के वाहरी पक्षों के कुछ भागों में केले के पत्तों के उभार नहीं विठलाये जा सके थे। एक दिन आया, जव वह काम भी पूरा हो गया।

गृह प्रवेश के लिये होली के उत्सव की रंग-पंचमी का मुहूर्त रक्खा गया। होली के उत्सव में जनता वैसे ही मस्त थी, रंग-पंचमी के दिन तो मस्ती में डूवने उतराने ही लगी। मानमन्दिर और गूजरी महल के साथ जनता के मन का अपनापना स्थापित था।

गृह–प्रवेश का मुहूर्त आने को हुआ।

सैनिकों ने केसरिया साफा वांधे, जो मानसिंह के सूर्यध्वजी ऊँचे केसरिया झण्डे से होड़ सी लगा रहे थे, नगर की स्त्रियां रँग-विरंगेपन में फ़ूट पड़ीं। नायक वैजू ने नये कपड़े पहिनते वदलते पुराने पहिन लिये, पगड़ी जरूर नई जरजराती हुई। वीणा को पोंछ, मांजा, फूलों से सजाया और सरस्वती का पूजन किया। मानसिंह मृगनयनी को गूजरी महल से मानमन्दिर में ले आया। नीचे से मानमन्दिर ऐसा लगता था जैसे गगन वर्ती कदली-कुञ्ज में विष्णु ने मुस्कान के साथ वरदहस्त पसार दिया हो। केले के पत्तों के यथावत रंग और चित्रण ने, पत्थर की जालियों में हाथी, नाहर और अन्य पशुओं के वेखटके विहार ने, मृगनयनी को यही कल्पना दी। भीतर पहुँचकर ऊपर के खण्ड के पहले आंगन में पश्चिम की ओर विष्णु का मन्दिर, उसकी चारों ओर पत्थर में सूक्ष्म अनुपात की विविध प्रकार की जालियां। आंगन की दूसरी ओर विशाल पुस्तकालय और तीसरी ओर सभा भवन, जिसमें गायन-वादन इत्यादि होना था। विष्णु मन्दिर के सामने दूसरा कक्ष था, जिसकी वनावट साज-सिंगार पहले से कुछ भिन्न थी परन्तु उतनी ही सुन्दरता में गुथा हुआ।

मृगनयनी ने कहा, 'वहुत ललित और सुन्दर है। आप की कल्पना में जो कविता रही है वह मानमन्दिर में अपने पूरे वैभव और शृङ्गार के साथ आ वैठी।

'मेरी कविता नहीं, तुम्हारी कविता। और, कारीगरों के ध्यान की कविता। मेरे शब्द कारीगरों को जो सूझ नहीं दे सके उसको तुम्हारे दिये हुये मेरे भाव ने उसको दिया। कारीगरों ने योग साधा, उनके ध्यान में वह भाव मूर्त हुआ और टाँकी हथौड़े ने तुम्हारी कविता और मेरे भाव को पत्थरों में उतार कर बसा दिया।'

मृगनयनी को अपनी उस कल्पना की याद आ गई। रात का समय, मचान पर खेत की रखवाली के लिये बैठी हुई, चांदनी में निकट बहने वाली नदी की लहरों की चमक और अनाज की बालों की ऊँघती झूम, पीछे ऊँचे पहाड़, हरे भरे विशाल वृक्षों के पुञ्ज और जङ्गल में स्वच्छन्द घूमने वाले पशु। उसने सोचा, यह सब साकार हो गया और ऊपर के कलश ऐसे लगते हैं जैसे पहाड़ के लम्बे समतल पटपरे पर गुम्मट बाँधे हुये अचार और खिरनी के पेड़ हों। मृगनयनी आनन्दमग्न हो गई। मानसिंह ने देखा, उसके चेहरे पर यौवन का लावण्य और माता का सौन्दर्य एक दूसरे से होड़ सी लगा-लगाकर परस्पर घुल रहे हैं।

'आज तुमको नायक बैजू की परिपाटी का बहुत अच्छा गायन-वादन सुनने को मिलेगा।' मानसिंह ने कहा।

वह उत्साह के साथ बोली, 'और इसके उपरान्त मैं भी अपने यहां आपको कुछ सुनाऊँगी और ताण्डवनृत्य दिखलाऊँगी। मैंने तैयार कर लिया है।'

'अवश्य, अवश्य, तुम जो कुछ भी न कर डालो वह थोड़ा है।'

'अच्छा! अब आप लगे बनाने!'

'तो तुम मान कर जाओ, मैं मनाने लगूंगा।'

'यहां चलिये मेरे यहां, फिर देखूँगी आपको, कितना मनाते हैं। आज रंगपञ्चमी है, सँभलकर आना।'

'अच्छा तो रही, देखें कौन किसको छकाता है।'

'आपको हरा दूंगी।'

'उस हार में भी मेरी ही जीत रहेगी।'

'वाह! वाह!! चित्त भी मेरा और पट्ट भी मेरा!!!'

वे दोनो हँस ड़े। मानमन्दिर का ऊपरी खंड, जहां वे दोनो खड़े थे, मानो उस हँसी में अपनी हँसी मिला रहा था।

नीचे के खण्ड में चहल-पहल होने लगी।

'मुहूर्त आ गया, अब चलो।' मानसिंह ने कहा।

वे दोनो अपने अपने स्थान पर जा पहुँचे। विष्णु मन्दिर में पूजन हुआ और उसके बाद गायन-वादन।

सभा-भवन के ऊपरी खण्ड में स्त्रियों के बैठने के लिये जालीदार स्थान था। वहां आठों रानियां, मृगनयनी, लाखी और नगर के कुछ बड़े लोगों की स्त्रियां बैठ गईं। लाखी मृगनयनी के निकट बैठी थी। वहीं नगर वासियों की कुछ स्त्रियां।

नायक बैजू ने होरी गाई!

लाड़ली, मान न करिये होरी के दिनन में।
कौन तिहारी बान............
बरस दिना को खेल छाँड़िके बैठी हो
भौंहें तान। लाड़ली, मान न करिये।

नायक बैजू ने अपने गाने में मधुरता और कारीगरी के मेल की पराकाष्ठा कर दी। विजयजङ्गम थोड़ी ही देर उसका साथ कर पाया। 'गले का साथ बाजा नहीं कर सकता,' कहकर उसने हर्ष के साथ अपनी हार को स्वीकार किया और बैजू का साथ देने के लिये तम्बूरे को छेड़ता रहा।

दिन होने के कारण ऊपर के खण्ड में कोई रानी नहीं ऊँघी या सोई परन्तु रसास्वादन के साथ साथ, बीच बीच में उनकी बातचीत का

क्रम नहीं टूटा। जब सभा-भवन में गायन चल रहा था, बड़ी रानी ने एक दासी के द्वारा सोने के थाल में दो बड़े बड़े पान भेजे, एक मृगनयनी के लिये दूसरा लाखी के लिये।

थाल के सामने पहुँचते ही एक पुरवासिनी ने दूसरी से आँखें मिलाईं, नीचे की ओर फिर मृगनयनी की तरफ़ कीं। उनमें अनायास ही वर्जन प्रकट हो गया। मृगनयनी ने देख लिया। थाल में से पान को उठाया, मस्तक से छुलाया और गाँठ में बाँध लिया। लाखी ने गायन की ओर से ध्यान को हटाकर पान को उठाया, मस्तक झुका कर प्रणाम किया और मुँह में डालने को हुई ही थी कि मृगनयनी ने उसका हाथ दबा दिया। बोली, 'आदर के साथ गाँठ में बांध लो।'

आँख के संकेत से लाखी ने पूछा। आँख के ही संकेत की भाषा में मृगनयनी ने समझा दिया कि, उसमे कुछ है, खाओ मत।

बोली, 'सम्मान का पान है, बड़े भागों मिला है, गांठ में बाँध लो।' लाखी ने बांध लिया। दासी सिर नवायें चली गई।

लाखी और मृगनयनी का ध्यान सङ्गीत पर से उचट गया। लाखी जानने के लिये आतुर हो उठी। मृगनयनी की उत्सुकता शान्तिके आवरे में ढकी थी। वह उन पुरवासिनियों से कुछ पूछने के अवसर की खोज में लग गई। लाखी को उसने धैर्य धरे रहने का संकेत किया। जब बैजू का गायन 'वाहवाहों' के बीच में आया, मृगनयनी ने आँख चुराकर सुमनमोहिनी की ओर देखा। वह खिन्न, उदास और चंचल सी थी।

उपयुक्त अवसर पाकर मृगनयनी ने पुरवासिन से धीरे से पूछा, 'क्या बात थी? पान खाने से क्यों रोक दिया था?'

'कहाँ रोका था? रोका तो नहीं था, महारानी जी।' पुरवासिन ने कहा परन्तु आँखें उसकी कुछ कहने के लिये उतावली सी हो रही थीं।

'आँखों से वर्जा था। बतलाओ न। मैं तुम्हारे ऊपर किसी प्रकार की भी आँच नहीं आने दूँगी, वचन देती हूँ।'

'बड़े लोगों की बातों को कौन कहे, महारानी जी।'

'बेखटके कहो। मैं विनती करती हूँ। कोई नहीं जान पावेगा।'

'उन पानों में विष का सन्देह है।'

'क्यों? कैसे?'

'बड़ी महारानी जी का आप पर कोप है।'

'सो तो है, पर आपको सन्देह क्यों हुआ?'

'आप उनके महल में नहीं आतीं-जातीं, वह आपके में नहीं आती-जाती, बस्ती भर जानती है।'

'इतना ही, या और कुछ?'

'आपको नहीं मालूम? बस्ती भर जानती है।'

'क्या?'

'यह कि उन्होंने एक बार विष दिया था परन्तु आपने भोजन नहीं किया। कुत्तों ने खाया सो वे तड़प–तड़प कर मर गये!'

'कब की बात है? बहुत दिन हो गये। याद नहीं पड़ती।'

'जब लाखारानी का ब्याह हुआ और उन्होंने भोज दिया।'

'अच्छा! ठीक है!!'

'मैं हाथ जोड़ती हूँ महारानी जी, किसी को मालूम न होने पावे। नहीं तो हमारा घर भर आफ़त में पड़ जावेगा।'

'विश्वास रक्खो। आपको यह बात कब मालूम हुई?'

'कई बरस हो गये, तभी मालूम हो गई थी। बस्ती भर में फैल गई थी। आपसे किसी ने नहीं कहा!'

लाखी ने भी इन बातों का अधिकांश सुन लिया।

गायन की समाप्ति पर सभाभवन में एक विवाद उठ खड़ा हुआ।

विजय ने अनुरोध किया था कि तराना गाया जाय।

बैजू बोला, 'तराने में गले को नचाने के सिवाय और है ही क्या ?'

विजय ने बतलाया, 'जैसा आपकी नई परपाटी में बहुत कुछ है वैसा ही उसमें भी बहुत कुछ है। गोपाल नायक और अमीर खुसरो ने मिल कर उस परिपाटी को चलाया था।

गोपाल नायक के सिवाय बैजू और किसी को मान्यता नहीं देता था। गोपाल को दो सौ वर्ष हो चुके थे इसलिये उसके नाम पर पुरातन की छाप थी। गुनगुनाने लगा।

थोड़ी देर बाद बैजू ने कहा 'मैंने तराना भी सीखा था परन्तु गाता नहीं हूँ।'

विजय ने हठ किया। मानसिंह ने संकेतों से समर्थन।

'अभी तो नहीं गाऊँगा, चाहे कोई नौ मूड़ का क्यों न हो जाय', बैजू बोला और उठ खड़ा हुआ।

मानसिंह हँस पड़ा। मनाते हुये से कहा, 'बैठिये. बैठिये। नौ सिर वाला नहीं, रावण दस सिर वाला था।'

बैजू बैठ गया। गम्भीरता के साथ बोला, 'रावण का जन्म नहीं हो सकता। रामचन्द्र ने अपने निज के बाण से मारकर उसको तार दिया था।'

सभा को विसर्जित करते हुये मानसिंह ने कहा,—'आपको और आचार्य विजयजङ्गम को गूजरी महल में चलना है।'

सभा विसर्जित हो गई। ऊपर के खण्ड से स्त्रियाँ भी चलने लगीं।

मृगनयनी ने बड़ी रानी के सामने जा कर कहा, 'आप मेरे घर पधारेंगी ?'

'मेरा सिर दूख रहा है। नहीं आ सकूँगी। जब से यहां पान खाये तब से दूखने लगा है।'

'इसी डर से मैंने नहीं खाया। आप उस घर में पधारें तो पान नहीं खिलाऊँगी, उसको भी नहीं जिसको मैंने गाँठ में बाँध लिया है।'

सुमनमोहिनी की दृष्टि एक क्षण के लिये करारी पड़ कर नीची हो गई।

'मैं अब जाऊँगी,' कह कर वह चली गई।

नगर की वे स्त्रियां कनखियों देखती हुई जा रही थीं। बात कहीं उधर तो नहीं गई उनको शंका थी, उपेक्षा की दृष्टि के साथ मृगनयनी ने आश्वासन दिया। गूजरी महल जाकर उसने पानों को खोला। उसमें कुछ था। परन्तु वह घटना को दबाना चाहती थी, इसलिये पान फेंक दिये। राजा से नहीं कहूँगी, उसने निश्चय किया।

[६०]

गूजरी महल के उत्तरीय भाग के पश्चिमी कक्ष में एक खासा बड़ा सभा भवन बनाया गया था। उसके सिरे पर एक छोटा सा मंच रक्खा हुआ था। मञ्च पर नटराज की सोने की मूर्ति। इसको विजयजङ्गम की देख-रेख में बनाया गया था।

नटराज की मूर्ति एक विकसित कमल पर खड़ी थी। गोलाकार कमल की पंखुरियों से झरती हुई आभा का एक मण्डल बनाया गया था। इस मण्डल से मूर्ति की दोनों ओर लौ निकलती हुई रची गई थी। मूर्ति चतुर्भुज थी। एक दायें हाथ में डमरू, दूसरा बायां हाथ वरदमुद्रा में। डमरू वाले हाथ को उस ओर वाली आभा की लौ छू रही थी। एक बायें हाथ में अग्नि, दूसरा कमल के पार्श्व में पड़े हुये एक बौने की ओर संकेत करने वाला। आग वाले हाथ को दूसरे पार्श्व की लौ छू रही थी। कमर में मणियों की करधोनी। कन्धे पर जनेऊ। एक कान में पुरुषों का जैसा कुण्डल, दूसरे में स्त्रियों की जैसी बाली। केश जूट में मुक्तामाला, एक लट अलग झूलती-झूलती हुई। एक जटा में साढ़े चार कुण्डलियां मारे हुये नाग, छोटा सा मुण्ड और गङ्गा का प्रतिबिम्ब और ऊपर चौथ का चन्द्रमा। शरीर के आधे भाग पर व्याघ्रचर्म।

मानसिंह, विजय और बैजू ने मूर्ति को प्रणाम किया। मानसिंह बग़ल वाले कक्ष में गया। सभा भवन और उस कक्ष के बीच पत्थर की जाली ही थी।

मृगनयनी नटराज शिव के वेश में थी और लाखी वीणा लिये हुये सरस्वती के वेश में। मृगनयनी शिव वेश में होते हुये भी अपने सब अङ्गों को भली भांति ढके हुये थी।

मानसिंह ने कहा, 'सभा भवन में चलो। पहले ताण्डव नृत्य होगा, फिर उनका गायनवादन।'

'उनके सामने नहीं होगा ताण्डव नृत्य ।'

'वे तो तुम्हारे गुरुजन हैं । एक से गायनवादन सीखा, दूसरे से शास्त्र ।'

'सिवाय आपके और किसी पुरुष के सामने न मैं नृत्य करूँगी और न लाखी ।'

'तुम पर्दा नहीं करतीं, फिर यह क्या ?'

'पर्दा न करने का यह प्रयोजन थोड़े ही है जो आप कह रहे हैं ।'

'अच्छा तो उनका गायन सुनने के लिये तो वहां चलो ।'

'गायन भी इन दोनो यहीं से सुनेंगी ।

मानसिंह चला गया । मृगनयनी के उस आचरण से वे दोनो संतुष्ट हुये, वैजू विशेष कर ।

गायनवादन के उपरान्त वे दोनो चले गये । तब मृगनयनी और लाखी सभा भवन आईं ।

मृगनयनी ने शिव ताण्डव स्तोत्र को गाया और लाखी ने वीणा पर बजाया । फिर मृगनयनी ने ताण्डव नृत्य किया ।

जैसे सूखे काठ में अग्नि विद्यमान है, उसी प्रकार शिव-शक्ति जड़ और चेतन में निहित है । शिव अपने ताण्डव नृत्य से शक्ति को जड़ और चेतन में स्पन्दित और स्फुरित करते हैं जीवन और आकार प्रकार में शिव की नृत्य-लीला प्रकट होती है । विश्व की समूची क्रिया को अनादि शिव का ताण्डव व्यक्त करता है । चार हाथ चारों दिशाओं में अखिल व्यापकता, डमरू नाद और शब्द जिससे विश्व का विकास बना, वरदहस्त रक्षा, अग्नि विश्वव्याप्त शक्ति, चौथा हाथ नृत्य के लिये उठे हुये चरण के प्रति उठे हुये हाथ के शरण-दान को प्रकट करने वाले । अर्धचंद्र जागते हुये ध्यान-केन्द्र को और नाग धारण की स्थिति को, बतलाने वाले । सत् के साथ सम्बन्ध इसी साधन

द्वारा सम्भव। शिव के हिमालय से आने वाली गङ्गा भारत को समृद्धि और श्रद्धा देने वाली। एक कान का कुण्डल और दूसरे कान की बाली, पुरुष और शक्ति की द्योतक। कमर की मणि मेखला, जागी हुई शक्तियों को कमर के नीचे न जाने देने और ऊपर की ही ओर प्रवाहित कर देने के लिये—ऊर्ध्वरेखा बनाने के लिये—कटिबद्ध। कमल विश्व का सांचा, शिव की अनन्त पावनता का प्रतीक। कमल के चारों ओर का प्रभा-मण्डल शिव के विश्वव्याप्त ओज का प्रतिविम्ब। मुण्ड अहङ्कार के दमन का द्योतक।

मृगनयनी ने ताण्डव की इस सात्विकता को अपने नृत्य द्वारा श्रद्धा के साथ मूर्त किया। नृत्य के अन्तिम भाग की अवस्था में जब मृगनयनी स्थिर हो गई तब मानसिंह के मन में हिलोड़ें आ गईं। अत्यन्त मनोहर मन को बहुत ऊँचे स्तर पर ले जाने वाला; बहुत ही मोहक—हृदय में गाढ़ी श्रद्धा उत्पन्न करने वाला; विलक्षण सुन्दर—वासना को न उकसा कर दृढ़ता को देने वाला। मानसिंह को मृगनयनी के सौन्दर्य में इतना वैभव प्रतीत हुआ जितना उसको प्रथम मिलन की घड़ी में भी अनुभव नहीं हुआ था।

मानसिंह को लगा स्त्री का गौरव, सौन्दर्य—महत्व स्थिरता में है, जैसे उस नदी का जो बरसात के मटमैले, तेज प्रवाह के बाद शरद में नीले जल वाली, मन्थरगति-गामिनी हो जाती है—दूर से बिलकुल स्थिर और शान्त, बहुत निकट से प्रगति वाली।

मानसिंह ने आह्लाद के साथ कहा, 'बड़ी रानी यदि आज यहाँ आतीं तो गाँठ में बांध कर यहां से कुछ ले जातीं।'

'मन्दिर से मैं भी गाँठ में कुछ बांधकर लाई थी', मृगनयनी के मुंह से निकल गया। उसने तुरन्त अपना दमन किया।

'क्या ?' मानसिंह ने पूछा। लाखी मृगनयनी का मुंह ताकने लगी।

मृगनयनी के होठों पर मुस्कान आ गई—जैसे शिव ताण्डव के समय मुस्करा गये हों।

वोली, 'विष्णु की मुस्कान का प्रसाद, सङ्गीत के मिठास का आनन्द।'

मानसिंह को सन्देह हुआ।

उसने प्रश्न किया, 'वड़ी रानी क्यों नहीं आईं ?'

मृगनयनी ने उत्तर दिया, 'अपना-अपना मन। आप अन्तःपुर की सब चिन्ताओं को छोड़कर अव वाहर की वातों पर ध्यान दीजिये।'

आह भरकर मानसिंह ने कहा, 'केवल एक मन्दिर राई में और वनवाना है। वोधन को वचन दिया था। वोधन की प्रेतात्मा को शान्ति मिलेगी।'

वे दोनो ज़रा चौंकीं।

उनके प्रश्न करने के पहले ही मानसिंह ने वतलाया, 'वोधन को सिकन्दर लोदी ने लखनऊ में मरवा डाला।'

मानसिंह ने वोधन के वध की जितनी और जैसी कथा सुनी थी सुना दी।

'समाचार कव आया ?' मृगनयनी ने उदासी के साथ पूछा।

लाखी दूसरी ओर देखने लगी।

'अभी-अभी', मानसिंह ने उत्तर दिया।

'दुष्ट वादशाह को क्या मिल गया होगा उस दीन ब्राह्मण के मार डालने से ?' मृगनयनी धीरे से वोली।

खुसफुसाते स्वर में लाखी ने कहा, 'दीन तो नहीं था वह। वड़ा वातूनी और वहुत हठी।'

मृगनयनी की शान्त-दृष्टि में भर्त्सना कौंध गई,लाखी ने नहीं देखा।

मानसिंह वोला, 'निहालसिंह मर गया, वोधन को मार डाला, अन्तर्वेद के मन्दिरों और मूर्तियों को ध्वस्त किया सिकन्दर ने। देखूंगा।' मानसिंह ने सिकन्दर के अन्य अत्याचार नहीं सुनाये।

फाटक बाहर, कुछ दूरी पर हल्ला सुनाई पड़ा। मानसिंह सुनने लगा।

'रंगपंचमी का हुल्लड़ जान पड़ता है।' उसने कहा।

'इतना!' मृगनयनी ने आश्चर्य प्रकट किया।

मानसिंह ने द्वारपाल को दौड़ाया। उसने लौटकर बतलाया, 'सैनिकों ने भांग पी कर स्वाँग बनाया है, उसी का हुल्लड़ है।'

वे तीनो ऊपर के खण्ड के झरोखे में गये। वहां से उस हुल्लड़ को देखने लगे। भिन्न भिन्न प्रकार के वीभत्स रूपों में सैनिक बौखला रहे थे। कुछ गधों पर सवार थे। एक सवार हाथ में फूटे तूम्बे पर फटे बांस की डांड़ी को खोंसे हुए विजय की वीणा का स्वांग कर रहा था। दूसरा बैजू के गायन का। कुछ मुछाड़िये सैनिक स्त्रियों के विकृत वेश में थे।

मृगनयनी यह कहकर लाखी के साथ हट आई, 'कितने भद्दे हैं ये लोग!'

मानसिंह कुछ क्षण देखता रहा। हुल्लड़ वाले संगीत की बहस का व्यङ्ग करते हुए एक दूसरे के ऊपर फ़ूटी वीणा और टूटे तम्बूरे की मार बरसाने लगे। पहले केवल खेल खिलवाड़ रहा, फिर असली मारपीट हो पड़ी। स्त्री वेशधारी पुरुषों ने भी मारपीट में भाग लिया। कुछ और दौड़ पड़े। दो दल बनने में देर नहीं लगी और सच्ची गुत्थंगुत्था हो पड़ी। सैनिक अपने-अपने हथियारों के लिये चिल्लाने और चिनौती देने लगे।

मानसिंह वहाँ से उतर कर फाटक पर आया। द्वाररक्षक परेशानी में थे, किंकर्तव्यविमूढ़।

मानसिंह हुल्लड़के पास पहुँचा। उसने चिल्लाकर निवारण किया। सैनिक भंग पिये थे परन्तु राजा के आतंक ने उनको थरथरा दिया और वे वहाँ से अपने ठौर-ठियों पर चले गये। मानसिंह प्रबन्ध करके लौट

आया। गूजरी महल के पहले फाटक की बाईं ओर निकटवर्ती हिंडोला फाटक पर कुछ सैनिकों का नाच था। उनको शान्त करके वह मृगनयनी के पास आ गया।

बोला, 'तुम्हारे ताण्डवनृत्य ने बोझिल मन के पक्ष की खिन्नता को दबाया और ललित भाव सजग किये; अब इस हुल्लड़ ने मन को ग्लानि से भर दिया है।'

'होली के ये चार पांच दिन लोगों को मतवाला कर देते हैं।' मृगनयनी ने कहा।

'इतना मतवाला! मान मन्दिर की विशालता और सुन्दरता का इनके मन पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा!! नायक बैजू और आचार्य विजय की नकल उतारी इन अभागों ने!!! और वह भी क़िले के भीतर और तुम्हारे महल के निकट!!!!' मानसिंह ने अपनी खीज प्रकट की।

मृगनयनी कुछ क्षण सोचती रही।

बोली, 'ऐसे लोगों के मन पर कला का आदर धीरे धीरे ही बैठता है।'

'नगर में जगह जगह लोग नायक बैजू की परिपाटी सीखने लगे हैं। उनमें कला की समझ आने लगी है, कला का आदर करते हैं। पर ये मेरे इतने निकट रहते हुये भी उजड्ड और भद्दे ही बने रहे!'

'ये लोग सीखे भी कुछ नहीं हैं।'

'मेरा विचार है, यहां सङ्गीत का विद्यापीठ स्थापित करूँ। नायक बैजू की परम्परा को देश भर के लिये चला दूँ। ये लोग भी सीखेंगे और सुधारेंगे।'

'बड़ा अच्छा विचार है। सङ्गीत विद्यापीठ को स्थापित करिये।'

'तुमने वरद मुस्कान वाले विष्णु भगवान की जिस प्रकार की मूर्ति का सुझाव दिया था, वह मानमन्दिर में प्रतिष्ठित हो गई है। उसीप्रकार

एक मूर्ति और छोटे से सुन्दर मन्दिर का निर्माण राई के लिये कराऊँगा। मैंने बोधन को वचन दिया था।'

'यह भी बहुत अच्छा विचार है। इसे भी पूरा करिये। और भी कहीं मन्दिर बनवाइयेगा ? सङ्गीत के विद्यापीठ ?'

मानसिंह को मृगनयनी के स्वर में व्यङ्ग की झनक सी मालूम पड़ी। उसने भोलेपन के साथ टकटकी लगाई। मृगनयनी मुस्कराई। आंखों में धीरता और स्थिरता थी, मुस्कान में वैभव की परछाहीं।

'आपकी ललित कलायें ग्वालियर के नाम को अमर कर देंगी। इसी लिये पूछा।'

'तुम्हारे मन में जो कुछ हो कहो, तुमको मेरी सौगन्ध है।'

'अपनी सौगन्ध कभी मत रखाया करिये। मैं तो आपकी दासी हूँ, क्या कहूँ।'

'दासी नहीं हो, देवी हो। मेरे हृदय की अधीश्वरी। बतलाओ, मैं कुछ भ्रम में पड़ गया हूँ।'

'मैंने ताण्डव नृत्य की योजना जान बूझकर की थी। कुछ प्रयोजन था।'

'क्या ? मैं जानना चाहता हूँ। तुमको जैसा आज पाया वैसा कभी नहीं देखा था।'

'आप पाण्डव वंश के हैं—अर्जुन की सन्तान। क्या मुझको स्मरण दिलाने की आवश्यकता है ?'

'इसको कोई भी तोमर नहीं भूल सकता है और न इस बात को कि मेरी रानी मृगनयनी कृष्ण के वंशजों से सम्बन्ध रखती है।'

'मैं कुछ भी हूँ, आपकी हूँ जो अर्जुन और भीष्म के हैं। आर्यावर्त की रक्षा के लिये अब आप क्या करना चाहते हैं ? क्या इस तरह के

भंगेड़ी सैनिकों के हाथों उनकी रक्षा होगी जिनके विनोद का रूप वह है जिसको अभी अभी देख आई हूं ?'

मृगनयनी की आँखों में तेज था परन्तु भर्त्सना नहीं थी।

'मैं इन सैनिकों को कड़ा दण्ड दूंगा'—मानसिंह ने आवेश के साथ कहा,—'इस महल के फाटक पर ! और ऐसे समय !'

मृगनयनी को अपने गांव के किसानों की होली की याद आ गई।

'दण्ड देने से कुछ नहीं होगा, महाराज। उनको सदा चौकस वनाये रखने का प्रयत्न किया जाना चाहिये। इधर कलाओं की वृद्धि हुई है, उधर वाण विद्या और युद्ध विद्या का अभ्यास कम हो गया है। अपने सैनिक, किसान-घरों से आये हैं। हमारी कला उनके विवेक में नहीं वैठी इसलिये अपनी जानी पहिचानी को ले उठे और हमारी कला की दिल्लगी उड़ाने लगे। हम कलाओं को अधिक समय देंगे तो वे अवसर पाते ही अपनी वासनाओं पर उतर-उतर आयेंगे।'

इस व्याख्या से मानसिंह का अन्तर्मन सहमत नहीं हुआ। वह सोचने लगा।

मृगनयनी ने कहा, 'मैंने महाभारत में पढ़ा है कि देश की रक्षा शस्त्र द्वारा हो जाने पर ही शास्त्र का चिन्तन हो सकता है। मेरा यही प्रयोजन है और कुछ नहीं।'

'विलकुल ठीक कह रही हो, मैं मानता हूँ। और अव यही करूँगा। इसी ओर ध्यान दूंगा। केवल राई में एक मन्दिर वनवाने की साध है सो यह भी होता रहेगा और वह भी; और केवल एक संगीत विद्यापीठ की स्थापना ग्वालियर में। इसका मुहूर्त हो गया है। मैं घोषणा करके यहाँ आया हूँ।'

'अच्छा है। परन्तु महाराज, कला कर्तव्य को सजग किये रहे, भावना विवेक को सम्वल दिये रहे, मनोवल और धारणा एक दूसरे का हाथ पकड़े रहें। मुझको कुछ और नहीं कहना है।'

'यही करूँगा। मैं प्रण करता हूँ। सुना है कि सिकन्दर आगरे में अपनी छावनी डालकर ग्वालियर पर प्रचण्डता के साथ आक्रमण करने की बात तै कर चुका है। मैं सेना को ठीक करने का अब लगातार प्रयत्न करूँगा।'

'मैंने कुछ अनुचित कहा हो तो क्षमा चाहती हूँ।'

'कुछ भी अनुचित नहीं कहा। कभी भी मुझमें कोई त्रुटि देखो तो बिना संकोच के कह डाला करो।'

मृगनयनी खिलकर मुस्कराई।

बोली, 'नृत्य आपको कैसा लगा?'

मानसिंह प्रफुल्लित हो गया।

'कुछ कहते नहीं बनता। आचार्य विजयजङ्गम ने जितना सिखलाया होगा उससे कहीं अधिक करके दिखला दिया। कितना सजीव और सुन्दर था वह! फिर भी कभी देखूँगा—परन्तु बतलाये हुये कर्तव्य का कुछ पालन करके। यह परिपाटी दक्षिण की है। उत्तर में भी कभी रहीं होगी। या वहाँ से आई होगी जैसे तैल-मन्दिर के शिखर की कला यहाँ दक्षिण से आई; परन्तु अब तो कदाचित ही कोई यहाँ उसको जानता हो। जो कुछ है वह भी गिराव की ओर जा रहा है। मैं उसको ऊपर उठाना चाहता हूँ।'

मानसिंह के भीतर ललित कलाओं का अनुष्ठान फिर जाग पड़ा।

बोला, 'तुमने चित्रकारी में भी बहुत कुशलता पा ली है। थोड़े से बरसों में ही इतना सब सीख लिया! विलक्षण हो!! सिखाने वालों के भी आगे निकल गईं!!!'

मानसिंह की कल्पना में कला का चित्र आया और तिरोहित हो गया।

मृगनयनी लज्जा के साथ मुस्कराई।

मानसिंह को गये, पुराने दिनों की स्मृति आ गई। उसको लगा मृगनयनी का शारीरिक सौन्दर्य भीतर के सौन्दर्य के साथ साथ बढ़ता ही गया है।

मृगनयनी ने कहा, 'चलिये अपनी चित्रशाला में ले चलूं। वहीं आपके ऊपर रङ्ग के कुछ छींटे भी डाल दूंगी।'

'मैं चाहता भी यही हूं। मैं तुमको क्या कोरा छोड़ दूंगा ?' मानसिंह बोला और हंसता हुआ उसके साथ हो लिया।

मृगनयनी की चित्रशाला को वह अनेक बार देख चुका था। अवतारों के, देवताओं के चित्रों के साथ मानसिंह के विविध स्थितियों के चित्र थे। कौमुदी महोत्सव और वसन्तोत्सव के भी। एक ओर राग–रागिनियों के भी चित्र थे। एक चित्र अधूरा था। उसका प्रारम्भ उसी दिन किया गया था। रेखायें तैयार थीं, रङ्ग नहीं भरे गये थे। मानसिंह ने बारीकी के साथ देखा। चित्र दो भागों में विभक्त था। एक भाग में वस्त्राभूषणों से सजी हुई एक सुन्दरी मञ्च पर बैठी है, एक पखावज लिये है। दूसरी स्वर-मण्डल का वाद्य, तीसरी वीणा पर उँगलियां फेर रही है। चौथी नाच रही है, पांचवीं गा रही है। एक स्त्री रङ्ग राग और सुगन्धित द्रव्य लिये मञ्च पर बैठी हुई सुन्दरी के पास सेवा के लिये खड़ी है। सारा दृश्य जैसे किसी रानी का दरबार हो। चित्र के दूसरे भाग में थोड़ी दूर पृष्ठ भूमि में, जङ्गल और पहाड़ हैं। उनमें कुछ सशस्त्र शत्रु छिपे लुके से जान पड़ते हैं। रानी के दरबार के द्वार के बाहर एक योधा अनिश्चय की वृत्ति में खड़ा हुआ है–उसका एक पैर रानी के दरबार में जाने के लिये उठ चुका है, मुँह जङ्गल में छिपे शत्रुओं की दिशा में है और आंखें उस दरबार की ओर फिरी हुई हैं। उसके तरकस में तीर नहीं हैं, कमर में बँधी तलवार म्यान से आधी बाहर है।

मानसिंह ने सोचा, 'क्या इस योद्धा की आकृति मेरी जैसी बनाई गई है ? और क्या मञ्च पर बैठी हुई सुन्दरी की छवि मृगनयनी से मिलती है ? कुछ क्षण की बारीक निरख के बाद उसको विश्वास हो गया कि कोई भी आकृति पहिचाने हुये व्यक्तियों से नहीं मिलती। फिर भी चित्र का प्रयोजन स्पष्ट था।

पूछा, 'रङ्ग कब भरे जायेंगे इस चित्र में ? बहुत सुन्दर बन पड़ा है।'

'किस दिशा से चित्र में रंगों का भरना आरम्भ करूँ ? पहले इस जङ्गल की ओर से या नृत्यशाला की ओर से ?' मृगनयनी ने कटाक्ष के साथ मुस्कराते हुए प्रश्न किया।

मानसिंह हँस पड़ा।

बोला, 'दोनों में एक साथ रंग भरो।'

'एक साथ !' मृगनयनी ने हँसकर कहा।

'तो जैसा जी चाहे। तुम अपने इस चित्र की बात को मेरे मन में पहले ही बिठला चुकी हो'—हँसते हुए बोला,—'चित्र तुमने विलक्षण बनाया है, चित्र के किस अङ्ग को पहले रंग की कूची दोगी इसको तुम्हें ही तै करना पड़ेगा। अभी तो रंग-पञ्चमी का अपना रंग बरस जाय।'

मृगनयनी ने मुस्कान के साथ बड़ी-बड़ी आंखों के पलक उठाये और गिराये। मानसिंह के ऊपर उसने रंग डाला और मानसिंह ने उस पर।

उसको अंक में भर कर मानसिंह ने कहा, 'तुम सचमुच मेरी देवी हो।'

थोड़ी देर के बाद मानसिंह मानमन्दिर को लौट आया।

अभी सूर्यास्त नहीं हुआ था। मानमन्दिर के पत्थरों का रंग संध्या-कालीन प्रकाश से होड़ सी लगा रहा था। कदली पल्लवों का आकार-प्रकार और सही रंग मोहक था। जैसे जैसे निकट पहुँचता गया उसके चमत्कारपूर्ण विपुल वैभव और सौष्ठव के रस में मस्त होता गया। द्वार पर पहुँचकर अपनी कल्पना और शिल्पी के कौशल पर उसको अभिमान हुआ। उसी समय मृगनयनी के चित्रशाला के उस अधूरे चित्र की बात याद आई। कला का अनुशीलन और कर्त्तव्य का पालन साथ साथ चल सकते हैं। मैं सेना को भी सजाऊँगा और ललित कलाओं की भी उन्नति करता रहूँगा। नायक बैजू ने आज होरी को कितने मिठास के साथ गाया था ! कितना महान कलाकार है वह !! मृगनयनी का ताण्डव नृत्य भी कितना सुन्दर, कैसा सलोना था!!! मृगनयनी के अधूरे चित्र की दोनों दशाओं में एक साथ ही रंग भरे जा सकते हैं, उसने सोचा।

[६१]

ग्वालियर के किले में सास-बहू के मन्दिर के पास पूर्व की ओर किले की दीवार के एक कोने पर एक छोटा सा दो-मन्जिला पक्का मकान था।

वैजू इसी में अकेला रहता था। रसोइया राज्य की ओर से खाना पकाने के लिये नियुक्त था। इसलिये बेफ़िक्री के साथ वह संगीत के अभ्यास में निपटा रहता था।

वसन्त ऋतु जाने को थी परन्तु प्रातःकालीन समीर की सुगन्धि और ठण्डक को उसने अभी नहीं बटोरा था।

नायक वैजू, मानसिंह और मृगनयनी के सुझाये हुये, टोड़ी राग के एक भेद को गले के स्वर और वीणा के तारों पर साज और मांज रहा था। निकटवर्ती मन्दिर में भी वीणा के ऊपर कोई उंगलियों के झटके दे रहा था। यह अटल था। ग्वालियर नगर में अनेक गृहस्थ गाने और वीणा बजाने के शौकीन हो गये थे। जिनको वीणा का वाद्य दुरूह जान पड़ा उन्होंने सितार को पकड़ लिया। अमीर खुसरू ने दो सौ वर्ष पहले वीणा को सितार का रूप दे दिया था। ग्वालियर में सितार का चलन उसकी सुगमता के कारण हो गया था।

परन्तु अटल ने सितार को ग्रहण न करके वीणा पर ही हाथ फेरने का निश्चय किया। वीणा उसकी साधारण और छोटी सी ही थी। गुरू से नाम मात्र की शिक्षा पाकर उसने इधर उधर सुने हुए और अपने गीतों को वीणा पर निकालने के अभ्यास में दिन रात एक कर दिये।

उसको लगा मुझको बहुत आ गया। वह वैजू को अपने हाथ की कारीगरी से परिचित करना चाहता था। वैजू को अपने घर बुलाना दुष्कर था। उसके घर पर वीणा ले जाकर दाल भात में मूसलचन्द बनना उसको अच्छा नहीं लगा। सास-बहू के मन्दिर निकट ही थे—बहू वाला

छोटा मन्दिर विशेषकर निकट—इसलिये इसी मन्दिर के बाहरी भाग में बाजे को लेकर जा बैठा। कोई विलक्षण बात न थी। घरों में, चबूतरों और चौराहों पर, मन्दिरों में और पेड़ों के नीचे, यही हो उठा था। यहाँ तक प्रातःकालीन स्नान प्रक्षाल्न के लिये जो लोग नगर बाहर कुआँ, बावड़ी या तालाब पर जाते थे वे भी अपनी वीणा या सितार को कन्धे पर बांध ले जाते थे! और अवसर मिलते ही 'नोमतनोम' में लग जाते थे।

अटल बड़े चाव के साथ वीणा के ऊपर एक तराने को निकाल रहा था। उसको आशा थी कि जैसे ही बैजू का ध्यान इस ओर बटा कि उसने भीतर बुलाया और खूब घुटेगी दो कलाकारों के बीच में—एक गुरू और दूसरा मान्य शिष्य होने लायक तो जरूर ही।

बैजू मकान के ऊपरी खण्ड की खिड़की के पास अपने काम में गहरे डूबा हुआ था। यह तान, वह तान; यह गमक वह गमक। यकायक बैजू के गले से ऐसी तानें बनकर निकलीं कि वह हर्ष की कलोलों में थिरक गया। फिर उसने वीणा के ऊपर उन्हीं तानों के उतारने का प्रयास किया। कई बार असफल हुआ। वीणा को एक तरफ़ रखकर झरोखे से मान-मन्दिर की एक कोर को देखने लगा। कँगूरों के नीचे पत्थरों में बनी हुई बन्दनवारों की उमेठी और मुरक़ी हुई बेलों के बीच में चौकोर झिझरिया और सूंड़ उठाये हुये हाथी पर रिपटी हुई रवि-रश्मियों पर आंख जम गई। एकाध क्षण पीछे पत्थरों की जालियों में बने पुष्पों और हँसों पर जा अटकी।

'अरे! यह मन्दिर भी टोड़ी की इसी तान को ले रहा है! वीणा पर तान और गमक अब यों निकल आवेगी।' वह उल्लास के साथ बोला।

झपट कर उसने वीणा को उठाया, गले से लगाया और उसके कई चूमे लिये। इस आलिङ्गन, चुम्बन में वीणा की एक खूँटी ढीली पड़

गई और तार का तनाव कम हो गया। बैजू को नहीं मालूम पड़ा। जैसे ही बजाने के लिये तार पर उँगली चलाई, वीणा बेसुरी बोली।।

'बैजू ने रिसिया कर कहा, 'क्या करती है ?' तुरन्त समझ में आ गया कि खूंटी का अपराध है। हँस पड़ा।

'ओ हो ! मानमन्दिर की तुमने भी झांकी ली और ढीली पड़ गई। ठीक करे देता हूं।'

अटल के कान में भी आवाज पड़ी। उसने अपने बाजे को और भी ऊँचे स्वरों बजाया।

बैजू जब खूंटी को उमेठ कर तारों को मिला रहा था, तब अटल के बाजे की झंकार उसके कान में पड़ी। अपनी वीणा को गोद में रखकर बैजू ध्यान के साथ उस मन्दिर से आने वाली ध्वनि को सुनने लगा। कुछ क्षण सुनने पर एक हाथ में वीणा लिये हुये खिड़की पर आया। वहाँ से अटल दिखलाई पड़ता था।

बैजू का चेहरा विकृत हो गया।

डपट कर चिल्लाया, 'अबे ओ ! अरे ओ बेसुरे बैताले!! बन्द कर इस कनफोड़ को !!!'

अटल ने खड़े होकर उसको प्रणाम किया। बैजू ने जैसे देखा ही न हो।

बोला, 'क्यों पीछे पड़ा है राग-रागिनियों की हत्या के ! बन्द कर इस पाप को, नहीं तो रौरव नरक में जायगा !!'

'आपसे सङ्गीत के विषय में कुछ बात करना चाहता हूँ। सीखना चाहता हूँ। तराने को बजा रहा था।' अटल ने कहा।

बैजू बरस पड़ा, 'अबे तराने के बच्चे, जाता है यहाँ से या फेकूँ ढेले तेरे ऊपर और फोडूं तेरा सिर !'

'मैं कुंवर अटलसिंह हूं। आपने पहिचाना नहीं !' अटल ने बतलाया।

बैंजू चीखा, 'भाग ! भाग !! भाग !!! बड़ा आया कहीं का सिंह-विह !!!!'

अटल क्षुब्ध होकर मन्दिर के पीछे चला गया। बैंजू अपनी अटारी में।

अटल ने चाहा वीणा को वह या सास किसी के भी मन्दिर के पत्थरों से दे मारूं और टुकड़े-टुकड़े करके चल दूं। वह वीणा को बग़ल में दबा कर वहां से चल दिया।

[६२]

मानसिंह के साथ मृगनयनी कई बार राई के जङ्गलों में शिकार के लिये हो आई थी, पर अबकी बार मनमें विशेष उल्लास प्रतीत हुआ।

लाखी के साथ वह उस स्थान पर बड़े चाव के साथ गई जहाँ कई बरस पहले उसने और लाखी ने दो सवारों को मार गिराया था और दो को भगा दिया था। उसी झाड़ी का कहीं पता न लगा जिसमें वह घटना घटी थी। परन्तु पहाड़ी की मोड़ वही थी जिसके पीछे से चार सवार आये थे, टाकु भी वही था।

मृगनयनी ने सोचा यदि फिर वैसा ही अवसर आ जावे तो सामना कर लूँगी ? तब छोटी सी थी, अब बड़ी हो गई हूँ। हाथ पैर में बल भी पहिले से अधिक ही है, पर क्या साहस भी उतना ही स्फुरणमय है ? क्या उतनी ही मन वाली हूँ ? इसमें कुछ कसर मालूम हुई। क्या कलाओं के अनुशीलन ने सन्तुलन कुछ अधिक दे दिया है ? अब क्या मैं किन्तु-परन्तु कर उठूँगी ? क्या उतनी भाग-दौड़ कर सकूँगी ? क्या मरे हुये सुअर को कन्धों पर लादकर ले जा सकूँगी ? इसको शायद न कर सकूँ।

लाखी ने अपने भीतर कोई क़सर नहीं पाई। परन्तु ऐसा अवसर कभी आने ही क्यों चला, उसने सोचा।

फिर वे दोनों उस स्थान पर भी गईं जहां मानसिंह से प्रथम मिलन हुआ था। मैंने कितनी बेधड़क बात की थी ! क्या वे सब बातें मैंने ही कहीं थीं ? किसान की लड़की ने ! किसान की लड़की राजा से क्या उस तरह बोल सकती है ? पर मैं उस समय जानती भी तो नहीं थी कि राजा कितना बड़ा होता है। और यदि मैं यह जानती कि राजा की आठ रानियाँ पहले से हैं तो क्या मैं प्रेम की बात को मान लेती ? और यह मालूम होता कि सुमनमोहिनी कौन और कैसी है तो निश्चय ही नाहीं कर देती। पर अब क्या ? सुमनमोहिनी और उन सात के होते हुये भी राजा का मैंने पूरा प्रेम पाया और पाये रहूँगी !

शिकार खेलने के उपरान्त राजा उन सबके साथ बोधन पुजारी के स्थान पर गया। बरगद के पेड़ के नीचे डेरा था। फूटे हुये मन्दिर की जगह एक नया सुन्दर मन्दिर बन गया था परन्तु गांव में भक्तों की संख्या अधिक नहीं बढ़ी थी। नया पुजारी गांव के किसानों की उपज में से देवता के लिये बीसवें और अपने लिये तीसवें भाग से अधिक ले लेता था। गांव वालों को अखरता था परन्तु वे धर्म-भीरुता के कारण कुछ नहीं कह सकते थे।

मृगनयनी ने सोचा, इस नये सुन्दर मन्दिर को भी यदि किसी दिन किसी ने आकर फोड़ दिया तो क्या फिर एक और नया मन्दिर बनाया जावेगा? कब तक यह क्रम जारी रहेगा। इसके भक्तों की बाहों में जब तक बल नहीं आया, तब तक यही क्रम रहेगा। किसान जब तक प्रबल नहीं हुये तब तक बराबर यही होता रहना है। किसान कैसे प्रबल बनें? कलाओं की शिक्षा से? उँह! उससे इनकी बाहों को कितना बल मिलेगा? पेट भर खाने को मिले, दूध मट्ठा, घी, कपड़े और कुछ इनके पास बचता भी रहे। तब कलायें इनके बाहुबल को स्थिरता दे सकेंगी? यह सब कैसे हो? राजा सेना को पुष्ट करले तो इस काम के करने के लिये कहूँगी।

मृगनयनी ने गांव में जाने की इच्छा प्रकट की, खास तौर से उस स्थान को देखने की जहां उसने मानसिंह को गांव में आते हुये पहले-पहल देखा था और जहाँ मानसिंह की आरती उतारी थी।

वे दोनों सवारी में उस स्थान पर गये। अटल घोड़े पर था।

उस स्थान को देखकर मृगनयनी के मन में मथानी सी फिर गई। वहाँ बहुत सी नरनारी उसी प्रकार खडे हुये थे। उसी तरह की आरती। थालियों में फूल नहीं थे। नये पुजारी ने फूल के पेड़ नहीं लगा पाये थे।

मृगनयनी उस दिन ऐसी ही पांत में खड़ी हुई थी।

मानसिंह उसके पास आया।

बोला, 'यही है वह स्थान जहां तुमको और लाखारानी को पहले-पहल देखा था।'

लाखी उन नारियों के चेहरे पहिचानने में लगी हुई थी। कुछ पहिचान में आ गये, कुछ नये थे। इन्हीं के दुराग्रह और षड़यन्त्र का मैं शिकार होकर यहां से गई थी। कितने सीधे और विनीत विनम्र दिख रहे हैं इस घड़ी! मेरे और अटल के साथ कितनी दुष्टता की थी इन्होंने!!'

मृगनयनी ने मानसिंह से कहा, 'मैंने अपने देवता पर यहीं फूल चढ़ाया था।'

वह बोला, 'और देवता ने उस फूल को अपनी पगड़ी में खोंस लिया था।'

'फिर क्या किया उस फूल का?'

'सामने जो है।'

'बड़े वैसे हो आप।'

'नहीं पगड़ी में ही खोंसा हुआ है परन्तु उसको कोई देख नहीं सकता।'

'न जाने क्या क्या कह उठते हैं, अब नहीं बोलूंगी।,

थोड़ी दूर मृगनयनी का घर था। वह गिर-गिरा गया था। अटल उसको देखकर लौटा।

राजा को प्रसन्न पाकर बोला, 'घर तो गिर ही गया है। था भी उसमें क्या। परन्तु जन्मभूमि है।'

लाखी ने धीरे से मृगनयनी से कहा, 'क्या कहना इनकी जन्मभूमि का।'

मानसिंह ने अटल से कहा, 'उसमें जो कुछ था, अब गढ़ी के रूप में खड़ा कर दो, कुंवर जी।'

अटल को अचरज हुआ, 'गढ़ी ! कहां बनेगी गढ़ी यहां पर महाराज ?'

मानसिंह ने उत्साहित किया,—'देखो तो पहले। क्या यहां कोई भी स्थान नहीं जहां गढ़ी बन सके ?'

अटल ने नदी के दोनों किनारों की तरफ़ आंख दौड़ाई और पीछे ऊँचे पहाड़ पर जा ठहराई।

'है तो महाराज, यह पहाड़ की चोटी है परन्तु ऊँची बहुत है। फिर वहां पानी की कमी कितनी बनी रहेगी ?' अटल बोला।

मानसिंह ने कहा, 'पहले यहां गढ़ी थी, तालाब था। गढ़ी खण्ड़हल हो गई और तालाब पुर गया। तालाब को उघरवाये देता हूँ और गढ़ी को बनवाये देता हूँ। ग्वालियर की रक्षा के लिये इस पहाड़ी की चोटी पर एक अच्छी गढ़ी का बनवाना बहुत आवश्यक है। अचम्भे की बात है कि आज तक मेरे ध्यान में यह सूझ क्यों नहीं आई यद्यपि जानता इस स्थान को बहुत पहले से हूँ।'

मृगनयनी की कल्पना में उसकी चित्रशाला का अधूरा चित्र घूम गया। रेखाचित्र के जंगल वाले भाग में रंग का भरना शुरू हो गया है। उसने प्रसन्नता के साथ सोचा।

राजा ने गाँव भर के सामने अटल से कहा, 'मैं तुमको यह गाँव और नागदा की भूमि जागीर में सुत-सन्तान के लिये लगाता हूँ। गढ़ी शीघ्र बनेगी। राज्य की रक्षा और प्रजा का पालन चित्त देकर करना।'

आनन्द के मारे अटल फूल गया। अब :बैजू या कोई जू मेरा तिरस्कार नहीं कर सकेगा, उसके अन्तर्मन में उठा और हर्ष में विलीन हो गया।

मृगनयनी ने सोचा क्या गांव के किसान इनके जागीरदार बन जाने से सुखी हो जायेंगे ? हमारे उन खेतों को कौन जोतेगा जिनकी मैं रखवाली किया करती थी ? आजकल कौन जोतता होगा ? पूछूँ ?

व्यर्थ है । फिर भी पूछूं। फिर लाभ क्या ? छोटे छोटे से थोड़े से खेत थे । पूछने का अर्थ कहीं यह न हो जाय कि जिनके पास अभी हैं उनसे छीन लिये जावें । जाने भी दूं ।

लाखी से बोली, 'अब तो तुम अपनी गढ़ी में आकर रहोगी, रावरानी जी ।'

उसने चिहुँक कर उत्तर दिया, 'मैं तो अपने गूजरी महल में रहूँगी, महारानी जी ।'

मृगनयनी हँस पड़ी ।

'भौजी, तुमको यहाँ एक दिन आकर रहना ही पड़ेगा ।'

'ननदजी, मैं तुम्हारी इस बात को नहीं मानूँगी, लड़ पड़ूंगी ।' मृगनयनी के स्वर की नक़ल करते हुये लाखी ने व्यंग किया । वह प्रसन्न थी ।

[६३]

ग्वालियर पर आक्रमण करने और अबकी वार उसको धूल में मिला देने के इरादे से सुल्तान सिकन्दर ने आगरे में बड़ी भारी सेना तैयार की। लगभग एक लाख सवार, दो लाख पैदल सिपाही, दो लाख गुलाम और एक हज़ार हाथी। अरबी और फ़ारसी की शिक्षा के लिये उसने एक बहुत बड़ा मदरसा स्थापित किया था। दरबारी मुल्लों के साथ इस मदरसे के मौलवियों को भी लेने का संकल्प किया। कूच करने में अभी विलम्ब था। उसके जासूसों ने समाचार दिया कि गुजरात का महमूद बघर्रा मालवा की ओर आ रहा है। गुजरात और मालवा के सुल्तानों के युद्ध का परिणाम देखकर ही वह ग्वालियर पर आक्रमण करना चाहता था। मौलवी और लड़ाकू सरदार उसको शीघ्र हमला करने के लिये उकसा रहे थे। कूच के मुहूर्त का निश्चय करने के लिये। एक पहर रात गये आगरे में दरबार हो रहा था। ऋतु सुहावनी थी। लड़ाई के लिये चल पड़ने की धुन का मन में ज्वार उठ रहा था। सिकन्दर का जासूसी विभाग बहुत सुसंगठित था। उसने समाचार दिया था कि राजा मानसिंह तोमर ने संगीत-विद्यापीठ को स्थापित करके नायक बैजू के हाथ में, जो एक पागल है, दे दिया है और अब इमारतों के काम को थोड़ा सा ही चलाता हुआ, बड़े पैमाने पर सेना को तैयार करने में जुट पड़ा है।

'जहाँपनाह, चढ़ बैठने का यही मौक़ा है। बरसात के लिये तीन-चार महीने हैं। कूच करने में देर नहीं लगनी चाहिये।' एक सरदार ने अनुरोध किया।

प्रधान मुल्ला ने कहा, 'मान-मन्दिर को साफ़ कर देने की घड़ी आ गई।'

सिकन्दर बोला, 'महमूद बघर्रा मांडू को खतम करके चन्देरी नरवर होता हुआ ग्वालियर आ सकता है। मैं चाहता हूँ कि ग्वालियर को खतम करके नरवर चन्देरी होता हुआ मांडू को फिर दिल्ली की बादशाहत में

व्यर्थ है। फिर भी पूछूं। फिर लाभ क्या ? छोटे छोटे से थोड़े से खेत थे। पूछने का अर्थ कहीं यह न हो जाय कि जिनके पास अभी हैं उनसे छीन लिये जावें। जाने भी दूँ।

लाखी से बोली, 'अब तो तुम अपनी गढ़ी में आकर रहोगी, रावरानी जी।'

उसने चिहुँक कर उत्तर दिया, 'मैं तो अपने गूजरी महल में रहूँगी, महारानी जी।'

मृगनयनी हँस पड़ी।

'भौजी, तुमको यहाँ एक दिन आकर रहना ही पड़ेगा।'

'ननदजी, मैं तुम्हारी इस बात को नहीं मानूंगी, लड़ पड़ूंगी।' मृगनयनी के स्वर की नक़ल करते हुये लाखी ने व्यंग किया। वह प्रसन्न थी।

[६३]

ग्वालियर पर आक्रमण करने और अबकी बार उसको धूल में मिला देने के इरादे से सुल्तान सिकन्दर ने आगरे में बड़ी भारी सेना तैयार की। लगभग एक लाख सवार, दो लाख पैदल सिपाही, दो लाख ग़ुलाम और एक हज़ार हाथी। अरबी और फ़ारसी की शिक्षा के लिये उसने एक बहुत बड़ा मदरसा स्थापित किया था। दरबारी मुल्लों के साथ इस मदरसे के मौलवियों को भी लेने का संकल्प किया। कूच करने में अभी विलम्ब था। उसके जासूसों ने समाचार दिया कि गुजरात का महमूद बघर्रा मालवा की ओर आ रहा है। गुजरात और मालवा के सुल्तानों के युद्ध का परिणाम देखकर ही वह ग्वालियर पर आक्रमण करना चाहता था। मौलवी और लड़ाकू सरदार उसको शीघ्र हमला करने के लिये उकसा रहे थे। कूच के मुहूर्त का निश्चय करने के लिये। एक पहर रात गये आगरे में दरबार हो रहा था। ऋतु सुहावनी थी। लड़ाई के लिये चल पड़ने की धुन का मन में ज्वार उठ रहा था। सिकन्दर का जासूसी विभाग बहुत सुसंगठित था। उसने समाचार दिया था कि राजा मानसिंह तोमर ने संगीत-विद्यापीठ को स्थापित करके नायक बैजू के हाथ में, जो एक पागल है, दे दिया है और अब इमारतों के काम को थोड़ा सा ही चलाता हुआ, बड़े पैमाने पर सेना को तैयार करने में जुट पड़ा है।

'जहाँपनाह, चढ़ बैठने का यही मौक़ा है। बरसात के लिये तीन-चार महीने हैं। कूच करने में देर नहीं लगनी चाहिये।' एक सरदार नें अनुरोध किया।

प्रधान मुल्ला ने कहा, 'मान-मन्दिर को साफ़ कर देने की घड़ी आ गई।'

सिकन्दर बोला, 'महमूद बघर्रा मांडू को ख़तम करके चन्देरी नरवर होता हुआ ग्वालियर आ सकता है। मैं चाहता हूँ कि ग्वालियर को ख़तम करके नरवर चन्देरी होता हुआ मांडू को फिर दिल्ली की बादशाहत में

मिलाऊँ और फिर गुजरात को। बघर्रा और नसीरुद्दीन की फ़ौजें आपस में उलझ चुकें उस वक्त कूच करना मुनासिब होगा।'

एक सरदार ने समर्थन किया,—'मुमकिन है बघर्रा मालवा में आते आते राजपूताने की तरफ रुख फेर दे और नसीरुद्दीन से लड़ाई न हो, इसलिये देख लेना अच्छा होगा। इन्तज़ार की सलाह ठीक है।'

सेनानायकों और मुल्लाओं का बहुमत तुरन्त चढ़ाई कर देने के पक्ष में था। आगरा में इतनी बड़ी सेना को पड़े-पड़े खिलाते-खिलाते खज़ाना भी कम होता जा रहा था।

सिकन्दर ने मान लिया। उसी समय बड़ी ज़ोर की गड़गड़ाहट का शब्द हुआ और दीवान आम की छत, दीवारें, खम्भे, फ़र्श, तख्त, मसनद तकिये कांपने लगे। लगता था जैसे प्रलय की घड़ी आगई हो। मुल्लों से मुल्लों के, सरदारों से सरदारों के सिर टकरा गये। तख्त के ऊपर बादशाह औंधे मुंह गिर पड़ा और पङ्खा झलने वाला गुलाम उसके ऊपर। मौलवियों और सिकन्दर की आंखों के सामने बोधन के मारे जाने का चित्र फिर गया।

'या अल्लाह,! रहम!! रहम!!!' उन लोगों के मुंह से चीख निकली। शमादान लौट गये। अँधेरा छा गया। मानो परमात्मा ने उनकी पुकार को सुनने से इनकार कर दिया हो। लोग इधर-उधर लुढ़कने लगे।

बड़ा प्रचण्ड भूकम्प आया था।

× × × ×

उस समय के कुछ पहले मांडू से दूर महमूद बघर्रा बेतहाशा पड़ाव पर पड़ाव डालता हुआ नियुक्त स्थान पर रैन-बसेरे के लिये रुक गया। तने हुये तम्बू में जा लेटा। पलङ्ग की एक बाजू ढाई सेर पके हुये चावल और दूसरी ओर भी सोने के थालों में सजे हुये ढाई सेर। रात में नींद

खुली और भूख लगी,—भूख के कारण जाग पड़ने में कोई शक भी नहीं था, रोज का दस्तूर जो ठहरा—तो विचार क्या करता ? क्या प्रातःकाल की प्रतीक्षा करता ? तब तक गरीब आंतों का क्या होता ? क्या न बन आती उन पर ? उस करवट आंख खुली तो ढाई सेर चावलों भरा थाल हाजिर, इस करवट आंख खुली तो उतनी ही तौल के चावलों का दूसरा थाल। आखिर एक ही तरफ पांच सेर चावलों के रखने में तुक क्या ? उस करवट से इस करवट लौटने-पौटने का उतना कष्ट उठाया ही क्यों जाय ? उस करवट आँख खुली, हाथ बढ़ाया और ढाई सेर चावल साफ़। फिर तीन चार घण्टे बाद दूसरे करवट आँख खुली, हाथ बढ़ाया और दूसरा ढाई सेर ग़ायब ! सवेरे सेर भर घी, सेर भर शहद और डेढ़ सौ केलों का कलेवा क्षुधा शान्ति के लिये मौजूद। उसमें कोई मीन-मेख ही नहीं।

पहले पहर की गहरी नींद सोया ही था कि पलङ्ग हिल गया जैसे आंतों में बवंडर आ गया हो। बघर्रा चित्त सो रहा था। पलङ्ग की प्रचण्ड हिलडुल ने करवट दे दी। आँख खुल पड़ी। बघर्रा ने पास रक्खे हुये पीढ़े वाले थाल के चावलों पर हाथ बढ़ाया। पीढ़ा खिसका। बघर्रा ने और हाथ बढ़ाया। वह और भी खिसका। बघर्रा ने कुड़कुड़ा कर एक को बहुत लम्बा किया और दूसरे से आंखें मीड़ीं। परन्तु चावल हाथ न लगा। धम्म से थाल नीचे जा गिरा। भस्स से उसके ऊपर पीढ़ा। उस बग़ल भी यही हुआ। अन्तर इतना रहा कि उस ओर का थाल और पीढ़ा नीचे न गिरकर धच्च से उसकी चौड़ी पीठ पर आ पड़ा। बघर्रा धड़ाम से नीचे। पलङ्ग उसके ऊपर। नीचे गिरे हुये चावलों का तकिया बना, कुछ चावलों ने लम्बी मूछों पर सफ़ेद खिजाब का काम किया। पलङ्ग के ऊपर गिरे हुये चावलों में से कुछ ने मुंह पर और कुछ ने छाती पर सवारी जमाई।

बघर्रा चिल्लाया,—'ओफ़ ! जिन्नों ने मार डाला !! कमबख्तों ने सब लौट-पौट दिया !!! बचाओ, बचाओ !!!!'

सारी छावनी में वही लौट-पौट मची हुई थी। हाथी थानों पर से साँकलें तोड़ कर चिघाड़ रहे थे, घोड़े बिल बिला रहे थे और आदमी लुढ़क-पुढ़क कर हाय-तोबा मचा रहे थे।

पहाड़ों से पत्थर टूट-टूटकर ढहढहाते हुये लुढ़क रहे थे। पेड़ जड़ों से उखड़-उखड़कर चराटे के साथ गिर रहे थे। नदियों और सरोवरों के पानी में खलबली मच गई।

भूकम्प अपने प्रचण्ड वेग पर था।

× × ×

उसी रात मांडू का सुल्तान नसीरुद्दीन अपनी बेगमों की मर्दुमशुमारी की ठान चुका था। अभी पूरे पन्द्रह हजार की गिनती में लगभग डे हजार की कसर थी। बहीखाता रोज खुलता था, लेखा जोखा किय जाता था, इसलिये सही संख्या ज्ञात थी। संख्या के सम्बन्ध में उसक कोई खटका नहीं था, परन्तु उसको समाचार मिला था कि हरम में बहुत से लौंडे भी स्त्रियों के वेश में दाखिल हो गये हैं। उसको सन्देह था कि ये युवक कुछ बेगमों की कामवासना को तृप्त करने के लिये आ घुसे हैं। सन्देह निवारण और दण्ड-विधान के लिये मर्दुमशुमारी की जरूरत पड़ गई।

कई अङ्ग रक्षिकायें अपने अपने जिम्मे का बहीखाता खोले सुल्तान के साथ चल रही थीं। मर्दुमशुमारी में सहायता करने वाली अनेक स्त्रियां अनगिनत मशालों को फहराती हुई सुल्तान के साथ थीं। मर्दुमशुमारी का काम थोड़ा और साधारण नहीं था। स्त्री वेशधारी युवक सहज ही हाथ लगने वाले नहीं थे। जैसे जैसे बहीखाता का पढ़ना अनुसन्धान और समीक्षण चलता वे इधर-उधर खिसकते जाते। अन्त में उनका पकड़ा जाना निश्चित था, क्योंकि महल के चारों ओर सेना का कड़ा पहरा था। नसीर थोड़ी देर बाद थक कर ठहर गया। पैरों के थकने का सवाल ही नहीं था, दासियां कन्धों पर उसके तख्त को लादे चल रही

थीं, परन्तु आंखें पथरा गई थीं। तख्त नीचे रख दिया गया। नसीर मसनद तकियों में समा गया।

गड़ गड़ गड़ गड़ ऊम धूम का गर्जन-तर्जन हुआ। तुरन्त मांडू का किला जो एक ऊँचे दीर्घ पर्वत पर है थर थर कांप उठा। नसीर के मसनद तकिये लौटे, तख्त पलटा और वह मुँह के बल नीचे जा रहा।

वह चिल्लाया,—'बचाओ ! मुझको बचाओ !! अब किसी को नहीं सताऊँगा !!! जिन्न पकड़े लिये जा रहे हैं, कोई बचाओ !!!!

मशालें हाथों से छूट गईं और लुढ़क-पुढ़क कर जुगनुओं की तरह चमकने बुझने लगीं। बहीखाते नीचे गिर गये। उनके पन्ने खुलते बन्द होते फड़-फड़ाने लगे। कुछ के ऊपर मशालें गिरीं और उनकी होली सी जल उठीं। दासियां बेगमों पर और बेगमें दासियों पर लड़खड़ा-लड़खड़ा कर गिरने लगीं। निकटवर्ती महल डिगमगाने लगे मानो कह रहे हों, अब चले और तब चले। बेगमों के रङ्गीन कीमती कपड़े विदा लेने को हुये और उनमें से अनेक सिर के बल गिरीं। सेना के सिपाही कयामत का आना समझ सिर पर पैर रखकर इधर-उधर भागे। स्त्री वेश धारी युवकों को प्रतीति हुई कि हम चले तो चले हमारे साथ हमारी प्रेयसियां भी चलीं और अत्याचारी नसीर भी गया ! भागते, गिरते पड़ते उनको बाहर निकल जाने का मार्ग थोड़ा बहुत सूझा—मानो उन्हीं के भाग्य से वह भूकम्प हुआ हो।

× × ×

मानसिंह मानमन्दिर से गूजरी महल को आ रहा था। चन्द्रमा के धुँधले प्रकाश में मानमन्दिर ऐसा प्रतीत हुआ जैसे ध्यान मग्न हो। थोड़ी देर खड़ा-खड़ा देखता रहा, फिर चल दिया। मृगनयनी के पास पहुँचकर उसने कहा, 'मानमन्दिर मुझको अभी-अभी ऐसा लगा जैसे ध्यानमग्न हो।'

मृगनयनी बोली, 'कभी वह हँसता हुआ जान पड़ता है, कभी गाता हुआ और कभी ध्यान-मग्न। किसी दिन उसको रणभेरी का भी काम करते हुये देखेंगे आप।'

उसी समय गरगराहट सुनाई पड़ी। दोनो सुनने लगे। गूजरी महल काँपने लगा। वन्दनवार वाले द्वार झूमने लगे। ऊपर की सीधी खड़ी पहाड़ी के ऊपर सीधी दीवारें झूला सी झूलने लगीं। वे दोनों एक दूसरे के अङ्क में पड़ गये, लिपट गये और झंझोड़े खाने लगे।

'प्रलय आ रही है!' मानसिंह के मुँह से निकला,—'इसके पहले यदि कुछ और कर लिया होता।'

वे दोनो एक दूसरे से उलझे हुये गिर पड़े। मानसिंह की आंखें मिच गईं। मृगनयनी की खुली थीं। दृष्टि स्थिर। होठ सटे हुये। मुठ्ठियां कसी हुईं।

'कोई बात नहीं। भगवान की मुस्कान का ध्यान करिये। शिव के ताण्डव का। धैर्य और शान्ति के साथ, मेरे प्राणनाथ, अन्त के अनन्त के सामने डट जाइये।'

विजयजङ्गम ने दिन में सात घण्टे काम किया था, जैसा कि उसका नियम था। अब अपने लम्बे केशों में तेल डालकर चाँदी के जनेऊ में बँधे शिवलिंग को हाथ में लेकर प्रार्थना कर रहा था—सूत का जनेऊ उसके सम्प्रदाय में निषिद्ध था। उसी समय गर्जन-तर्जन हुआ। उसने आँखें खोल दीं। घर की दीवारें काँप उठीं। वह अपने आसन पर डुलते-डुलते लुढ़क गया।

बोला, 'शिव का डमरू बजा है। ताण्डव का आरम्भ है। कलियुग का दुराचार अत्याचार तुमको असह्य हो उठा है भगवन्। शरण में लो। तुम्हारे लोक में अभी पहुँचता हूं।'

जीवन भर उसने कायक—काम, पेट भरने के लिये परिश्रम किया था। उसका विश्वास था मुझ सरीखे काम करने वाले सब शैव-वीर शैव कैलाश पर्वत पर अनायास पहुँच जायेंगे।

× × ×

नायक बैजू ने झटपट थोड़ा सा खा-पीकर तम्बूरे को हाथ में लिया और एक नये राग को ध्रुवपद में बिठलाने का प्रयत्न करने लगा। तानों के बीच में गर्जन-तर्जन की हुंकार उसको ऐसी लगी जैसे किसी ने पखावज पर जोर की थापें दी हों; परन्तु उस गर्जन तर्जन का मेल बैजू के गायन की ताल में न बैठा।

चिल्ला पड़ा,—'क्या करता है, बे ?'

आंखें खोलीं तो वहां कोई नहीं। दीवार की खूंटी से टंगी वीणा कांप कर खड़खड़ा उठी।

बोला, 'सरस्वती माता, कहीं बेसुरा हो गया होऊँ तो क्षमा करना। वीणा खड़खड़ा कर झन्नाटे के साथ नीचे गिर पड़ी और वह स्वयं तम्बूरा सहित एक ओर लटक गया।

'कौन है रे, तम्बूरा मत फोड़ डाल मेरा !'

× × ×

सेठ साहूकारों और सम्पत्ति वालों ने अपनी धन-सम्पदा के लिये हाय हाय मचाई; किसान मजदूर अपने बच्चों को गिरते पड़ते अपने तन से ढकने लगे। बहुतेरों की कच्ची मड़ैयां ऊपर से टूटकर आ पड़ीं। रोने किलबिलाने लगे।

वह विकट भूकम्प असाधारण प्रभाव छोड़ गया—रहा थोड़ी देर ही परन्तु धरा को उखाड़-पछाड़ गया। भूकम्प के शान्त होने पर लोगों को विदित हुआ कि भूचाल आया था।

सिकन्दर लोदी के दीवान आम में लोग पछाड़ें खा-खाकर उठे बैठे शमादान रोशन किये गये और तै हुआ कि ग्वालियर पर कुछ दिनों आक्रमण नहीं किया जायगा।

मांडू में नसीरुद्दीन ने बेहोशी से होश में आकर बकवास की, उसकी गिरी-पड़ीं परियों ने माथे टटोले और कपड़े सँभाले; जब तक सिपाही

इकट्ठे हों, तब तक स्त्री वेशधारी छोकरे मार्ग को स्वच्छ पाकर नौ दो ग्यारह हो गये। परियों की शुमार का काम कुछ दिनों के लिये स्थगित हो गया।

गुजरात का सुल्तान महमूद बघर्रा मुश्किल से चावलों, पीढ़े और पलंग से पीछा छुटा सका। जब झाड़ पोंछकर उठा तो लम्बी दाढ़ी और मूछों को बेहाल पाया। कमबख्त ज़लज़ले ने खाना खराब किया सो किया, दाढ़ी मूछ पर भी क़हर बरसा दिया! सवेरे के कलेवे की प्रतीक्षा में और छावनी को यथाविधि स्थित करने में उसने अपलक रात बिताई। आगे बढ़ना मनहूस समझकर गुजरात को लौट गया।

मानसिंह ने देखा सब ज्यों का त्यों है। जब आंखें खुलीं तो मृगनयनी को स्थिर बैठा पाया।

'यह सब क्या था?' मानसिंह ने पूछा।

मृगनयनी ने उत्तर दिया, 'भूकम्प। हम सबको कर्तव्य का स्मरण दिलाने आया था।'

विजयजङ्गम ने देखा कैलाश पर्वत पर नहीं पहुँच पाये। कायक—श्रम—को और भी लगन के साथ अपने जीवन की घड़ियां दूंगा, अन्त में कैलाश की प्राप्ति अप्रतिवार्य है। उसने निश्चय किया।

बैजू ने कहा, 'माता सरस्वती, तुमने अपराध क्षमा कर दिया है! कर दिया न? कभी भूल से बेसुरा या बेताल हो गया हूँगा, आगे कभी ऐसा न होगा, कान पकड़ता हूँ। ग्वालियर में इतने बेसुरे और बेताल बढ़ गये हैं कि ठिकाना नहीं। हो न हो यह उन्हीं के पापों का फल था।

कुछ पक्के मकान टूट गये थे, कुछ दरारें खा गये थे। उनकी थोड़े ही समय में मरम्मत हो गई। गिरे हुये कच्चे मकानों की मरम्मत में ज्यादा दिन लग गये। दरिद्र किसान मजदूरों की झोपड़ियां ऐसी गिर गई थीं कि उनकी मरम्मत हो ही नहीं सकती थी। मजदूरी से जब-जब उनको

अवकाश मिला, तब तब उन्होंने थोड़ा थोड़ा करके मसाला इकट्ठा किया और काफ़ी समय में रहने लायक़ झोंपड़ियां बना पाईं।

मानसिंह ने राई की पहाड़ी पर गढ़ी का बनवाना आरम्भ कर दिया, परन्तु वह काम उतनी शीघ्रता के साथ नहीं हो रहा था, जितनी तत्परता के साथ उसकी कला-सेवा चल रही थी। मृगनयनी की चित्र-शाला का वह चित्र अभी अधूरा था।

[६४]

ग्वालियर भर में समाचार फैल गया कि एक महात्मा रामेश्वर से पैदल चलकर ग्वालियर आये हैं; केवल लंगोटी लगाते हैं, नीम के पत्तों पर गुजर करते हैं और ध्यान में मग्न रहते हैं, ग्वालियर से दो तीन कोस उत्तर की ओर मोती झील पर ठहरे हैं। लंगोटी और नङ्गे पांव! फिर रामेश्वर से ग्वालियर!! उस पर ध्यान!!! जनता पर आतंक छा गया और वह आत्मसमर्पण तथा वर-प्राप्ति के लिये उमड़ पड़ी।

मोती झील को मानसिंह ने तैयार करवाया था। काम पूरा हो चुका था। उससे नहर निकाल कर वह आसपास की भूमि की सिंचा का आयोजन कर रहा था। भूकम्प के कारण झील कई जगह नष्ट हो गई थी। मानसिंह ने मरम्मत ही नहीं करवाई बल्कि कुछ महीनों के भीतर झील के बाँधों को और भी ऊँचा और चौड़ा कर दिया। महात्म इस झील के किनारे आकर ठहरे थे। राजा से मिलना चाहते थे—य जैसा कि मानसिंह से दूत ने कहा महात्मा दर्शन देना चाहते हैं। परन्तु दर्शन लेने के लिये राजा को मोतीझील पर स्वयं जाना चाहिये विजयजङ्गम को भी मालूम हो गया।

राजा महात्मा के पास जाना चाहता था। छः सौ सात कोस की दूरी से महात्मा दर्शन देने के निमित्त पधारे हैं, हम क्या दो तीन कोस भी चल कर न जायँ उनके दर्शन करने?

विजय ने निवारण किया, 'योगी और महात्मा इस तरह मारे-मारे नहीं फिरते। जिनको आतंक कमाने की पड़ती है वे ही करते हैं ऐसा।'

'तपस्वी हैं, मिल लेने में क्या बुराई है?'

'इस प्रकार की तपस्या करने वाले लोगों का केवल एक उद्देश्य होता है। परलोक की प्राप्ति चाहे हो या न हो, वे लोग इस लोक को अपनी इस तपस्या के आतंक से मुट्ठी में दबा लेना चाहते हैं। आपने कई वर्ष हुए

मेरे और एक वष्णव के विवाद पर कुछ इसी तरह की वात कही थी। स्मरण है आप को ?'

'हां कुछ धुंधला सा स्मरण है। वोधन पुजारी ने उस दिन सब से पहले गूजरी रानी की वाण-विद्या का राई से आकर समाचार दिया था। पुराणों में अनेक स्थलों पर पढ़ा है कि योगी राजाओं के पास उपदेश देने के लिये गये और राजाओं ने उनका आदर सत्कार किया।'

'उस युग की वात जाने दीजिये। इस युग की सोचिये। अपनी जनता पर इसका प्रभाव पड़ेगा ? मेले और हाटें लग उठेंगी। तुर्कों से युद्ध होने वाला है, जनता और सैनिकों का ध्यान अपने कार्य को छोड़कर उसके ढोंग की तरफ चल देगा।'

'ढोंग हो और न भी हो ; अभी नहीं जाता हूँ। सोचूंगा।'

मानसिंह दो दिन तक नहीं गया। उसको समाचार मिला कि योगी ने अनशन कर दिया है--'जव तक राजा आकर मुझसे नहीं मिलेगा, तव तक नीम की पत्तियां भी नहीं खाऊँगा।'

मानसिंह अस्थिर हो गया।

विजय ने कहा, 'महाराज, वह मर जायगा तो एक मूर्ख पागल कम हो जायगा।'

वैजू को भी लोग पागल कहते हैं- पर क्या कोई चाहता होगा कि वैजू मर जावे ?'

'वैजू विद्या का पागल है, यह योगी कहलाने वाला मूर्ख अहंकार का पागल है।'

'मैं उसको अनशन करके नहीं मरने दूंगा। उसके इस प्रकार देह का अन्त करने से जनता के ऊपर वहुत बुरा प्रभाव पड़ेगा।'

मानसिंह नहीं माना। योगी से मिलने गया।

योगी दुबले छरेरे शरीर का था। लम्बी कसीली बाहें। देह से जवान और बालों से सौ बरस का। आंखें जलती हुईं। मानसिंह ने सोचा योगाभ्यास के कारण सोने जैसा तप गया।

मानसिंह ने प्रणाम किया। उसने वरदहस्त उठाया। योगी ने कहा, 'इतना घमण्ड है तुझको!'

मानसिंह का स्वाभिमानी क्षत्रियत्व जागा परन्तु कलाओं की विनय ने उसको नियन्त्रित कर दिया। बोला, 'घमण्ड के कारण नहीं, युद्ध की तैयारी में फसा रहने के कारण नहीं आ पाया।'

'उसी के सम्बन्ध में कुछ बतलाना चाहता हूँ।'

'आज्ञा हो। पालन करने की सोचूंगा।'

'कितने सैनिक तैयार हो गये हैं?'

'पचास सहस्र यहां, पच्चीस सहस्र नरवर में। चम्बल नदी की चौकियों पर एक-एक दो-दो सहस्र तैयार हैं।'

'चौकियों की बात जाने दे। और बढ़ा सकेगा?'

'कठिनाई के साथ, परन्तु प्रयत्न करूंगा?'

'ग्वालियर के किले को ठीक अवस्था में कर लिया है?'

'ठीक अवस्था में है।'

'सुरङ्गों को ठीक रखना, कदाचित् आवश्यकता पड़ जावे।'

'साफ सुथरी हैं।'

'कितनी हैं?'

'एक।'

'कहां को गई है?'

जङ्गल पहाड़ को, परन्तु महाराज, पुरखों की आन है कि सुरङ्ग का हाल सिवाय अपने पुत्रों और सेनापति के किसी को भी न बतलाया जाय, इसलिये और आगे कुछ नहीं कह सकता।'

'कोई बात नहीं,कोई बात नहीं। युद्ध की तैयारी की अपेक्षा भजन और पूजा में अधिक लगा रह और अपने सैनिकों को भी लगा। इसी से कल्याण होगा। जा, अब मुझको मत घेर। ध्यान लगाऊंगा।'

मानसिंह चला आया। वह योगी की कसीली देह और सतेज नेत्रों से प्रभावित हुआ था। विजय जानने को उत्सुक हुआ। दूसरे दिन बातचीत हो सकी।

मानसिंह ने उसको सब बात बतलाई। उसने कहा, 'कोई विशेष महत्व की बात नहीं हुई। मुझको उसकी जगमगाती हुई देह और दमकती हुई आंख बहुत अच्छी लगी।'

'कोई महत्व की बात नहीं हुई। आप कहते क्या हैं!! सेना और क़िले का सारा भेद ले लिया उसने!!!'

'सब किसी पर शंका उठाने का तुम्हारा स्वभाव ही है।'

'अब भी आपको उस तपस्वी के ढोंग पर सन्देह है! युद्ध के काल में आपको और सैनिकों को जो भजन-पूजन में ही डूब जाने का उपदेश दे वह कैसा भी कोई हो,मुझको तो नहीं जचता। एक बार दिखवाइये तो उसको, है भी मोतीझील पर या नहीं!

राजा ने खोज करवाई। योगी का पिछली सन्ध्या से ही कोई पता न था।

'महाराज!'—जरा तीखे स्वर में विजय ने मानसिंह से कहा, 'मुझको तो वह शत्रु का जासूस मालूम पड़ता है। सेना और सुरङ्ग का भेद ले गया, सेना की गिनती जान लेने का उतना भेद नहीं है परन्तु सुरङ्ग का भेद हाथ से निकल गया, यह बहुत बुरा हुआ। अब क़िले को अन्न से भर लीजिये। सुरङ्ग अरक्षित हो गई है। अटक भीर पर न तो सुरङ्ग से अन्न इत्यादि प्राप्त हो सकेगा और न कोई सहायता। उल्टे, वहाँ होकर शत्रु के क़िले में घुस पड़ने की सम्भावना हो गई है।'

मानसिंह को बहुत परिताप हुआ। मृगनयनी के उद्बोधन का स्मरण हुआ—क्या कलाओं के परिशीलन ने मेरे मन की चौकसी को ढीला कर दिया है? कलाओं का इसमें क्या दोष? बहुत करके वह कोई योगी ही था। उसका एक स्थान को छोड़कर दूसरे पर चल देना शंका का कारण नहीं होना चाहिये। भजन-पूजन में लगे रहने का उसका उपदेश स्वाभाविक ही था। योगी और किस बात का उपदेश करता? विजय का सन्देह भ्रम पर आधारित है। परन्तु यह ठीक है कि मुझको सेना का सङ्गठन तत्परता के साथ करना चाहिये और उस सुरङ्ग को बन्द कर देना चाहिये। फिर गाढ़े समय पर रक्षा का साधन? रक्षा का साधन भगवान का भरोसा और भुजाओं का बल है। सुरङ्ग को बन्द कर दूँगा।

मानसिंह ने अविलम्ब सुरङ्ग को बन्द कर दिया। तत्परता के साथ युद्ध की तैयारी पर पिल पड़ा। राई की गढ़ी तैयार हो गई। अन्य गढ़ों और गढ़ियों की भी उसने मरम्मत करा ली।

बरसात भर एक दिन उसको समाचार मिला कि सिकन्दर लोदी ने विशाल सेना के साथ चम्बल को पार कर लिया।

[६५]

सिकन्दर ने अपनी सेना के तीन खंड किये। एक को नरवर की दिशा में भेजा और दो खंडों को भिन्न भिन्न दिशाओं से ग्वालियर पर। राई के पास से आने वाले खण्ड के साथ वह स्वयं था। नरवर की ओर जाने वाली सेना का पता मानसिंह को नहीं लगा। उसने समझा ग्वालियर पर ही तीन तरफ से चढ़ाई हो रही है।

मुक़ाबिला करने की योजना शीघ्र बन गई। उत्तरी सिरे को मानसिंह खदेड़ता हुआ बीच वाले खंड को जा दबोचेगा, दक्षिणी सिरे को मानसिंह का एक नायक इसी तरह दबावेगा और बीच वाले को अटल रोक कर पीछे हटावेगा। बीच वाली तोमर सेना के सहारे के लिये राई की गढ़ी अटल के अधिकार में। तैयार होते ही वह उसको मिल गई थी।

राई की गढ़ी में अटल के साथ लाखी को जाना था। लाखी मृगनयनी से विदा लेने आई। वह गढ़ी में एक बार रह आई थी।

'चाहती थी यहीं बनी रहूँ।' लाखी ने कहा। उसके गले में कुछ अटका।

मृगनयनी बोली, 'मैं भी यही चाहती हूँ। भैया से कहे देती हूँ। राई की गढ़ी कुछ बड़ी नहीं है। हम दोनों यहाँ क़िले की रक्षा के लिये एक साथ रहेंगी।'

'वह कहते थे कि उन्हें बाहर-बाहर लड़ना पड़ेगा, मैं गढ़ी की देख-भाल और सहायता के लिये भीतर रहूँ।'

'अकेली वहां क्या करोगी ?'

'अकेली तो नहीं हूँगी। कुछ और सरदारों की भी स्त्रियाँ होंगी। पहली लड़ाई के समय गाँव के नरनारी जंगलों में भाग कर बहुत कष्ट झेलते रहे,—मैंने तुमने ही क्या क्या नहीं भुगता था,—अब की बार वे सब गढ़ी में आ जावेंगे।'

'और तो कोई बात नहीं, कहीं घिर न जाओ गढ़ी में।'

'घिर तो कहीं भी सकते हैं।'

'यहाँ संभावना कम है। पर असल में मोह साथ में रहने का है। सोचती हूँ, भैया के पास तुम्हारा रहना उस छोटी सी गढ़ी में अधिक उपयोगी होगा।'

'मैं भी यही सोचती हूँ, पर न जाने मन क्यों वैसा हो रहा है। अच्छा, अब तुम अपनी उसी मुस्कान के साथ विदा दो जिसके साथ पहले राई गढ़ी को भेजा था।'

मृगनयनी के होठों पर मुस्कान आगई और आँखों में जल। लाखी की आंखों से तो बड़े बड़े आंसू टपक पड़े। दोनों एक दूसरे से लिपट गईं

मृगनयनी अपने को संयत करके बोली, 'कोई संकट आता दिखलाई पड़े तो तुरन्त समाचार भेजना, मैं यहाँ से सहायता भेजूंगी।'

'यदि समाचार भेजने का सुभीता न हुआ तो?' लाखी ने पूछा।

'तो कोई ऐसा संकेत करना जो यहां दिख जाय।' मृगनयनी ने उत्तर दिया।

लाखी ने ऐसे संकेत को सोचा। उसको नरवर का स्मरण हो आया। नटों ने उस रात एक बड़ी होली जलाई थी। लाखी ने नरवर से आकर बतलाया था, फिर सुनाया।

मृगनयनी ने कहा, 'मुझको आशा है कि शत्रु को अबकी बार भी उसी प्रकार पीछे हटा दिया जायगा जैसे पहले कई बार हटा चुके हैं।'

लाखी चली गई। चलते समय उसने मुड़कर एक आंसू और ढलकाया था।

योजना के अनुसार मानसिंह भी किले से बाहर लड़ने के लिये चला गया।

मृगनयनी ने दूसरे दिन अपनी चित्रशाला के उस अधूरे चित्र के कर्तव्य-दिशा वाले अंग में कुछ और रंग भरे। परन्तु चित्र अब भी अधूरा था।

[६६]

मुरेना के निकट आलमपुर के ऊँचे नीचे मैदानों में पहली टक्कर सिकन्दर के उत्तरी खण्ड से मानसिंह के दल की पहले हुई। मानसिंह का हाथी-दल सिकन्दर की सेना के हाथी-दल के सामने नहीं था परन्तु लड़ते-लड़ते इन दोनों दलों की मुठभेड़ हो गई। मानसिंह घोड़े पर था। उसको हाथी की अपेक्षा अपने घोड़े पर अधिक विश्वास था।

दोनों पक्षों के हाथी-समूह बिखर कर लड़ने लगे। परन्तु हाथी से हाथी टकराते कम थे, चीखते-चिघाड़ते अधिक थे। हाथियों के होदों पर से दोनो दल तीरों की वर्षा कर रहे थे। योधा भारी कवच, झिलमटोप और तवे चढ़ाये हुये थे, इसलिए एक दूसरे को बहुत कम हानि पहुँचा सके। करारी लड़ाई पैदलों और सवारों की हुई।

मानसिंह ने देखा, दिल्ली की सेना के एक अङ्ग में विचित्र आकार-प्रकार के सिपाही बेतरह लड़ रहे हैं। रङ्ग तामियां, माथे सकरे, आंखें छोटीं, नाक चिपटी—चिपटापन मानो कान तक जा रहा हो—मुंह चौड़ा जैसे बिना हँसी के हँस रहे हों। गाल चमड़े की सुराहियों जैसे फूले हुये और गाल की हड्डी उठी हुई, सिर कन्धों पर सटा हुआ मानो गर्दन हो ही नहीं, ठोड़ी के ऊपर बाल बहुत थोड़े। उसने इनका वर्णन कहीं पढ़ा था—हूण हैं, आज कल के मुगल, यशोधर्मन ने कभी पहले इनके पुरखों को ठोका था, आज मैं देखता हूँ। मानसिंह ने तुरन्त तोमरों के घुड़सवार दल को इन पर टूट पड़ने की आज्ञा दी।

तोमर टूट पड़े। मुग़ल पैदलों की सहायता के लिये तुर्क सवार आये, परन्तु तोमरों का वज्र प्रहार ही पड़ चुका था। मुग़ल सैनिक जान पर खेल कर लड़ने लगे, पर तोमर सवार आंधी की तरह टूटे थे। तुर्क सवार उन पैदलों की रक्षा करने नहीं आ पाये थे कि तोमर सवारों ने उनको लगभग बिछा डाला। तुर्क सवारों से मानसिंह का दल 'हर, हर, महादेव!' की पुकार लगाता हुआ जा भिड़ा। तुर्क सवारों ने मुक़ाबिला

किया; तोमर सवार जिन्होंने मुग़ल पैदलों की पांतों को तोड़ा था, दूसरी और से उन पर झपट पड़े। थोड़ी ही देर में तुर्क सवारों को पीछे हटना पड़ा। उनके साथ ही दिल्ली की सेना के अन्य पैदल सिपाही पीछे हटे। फिर दिल्ली की सेना लड़ते-लड़ते पीछे हटती ही गई। दिल्ली के हाथी-समूह ने जब अपनी सेना के एक बड़े अंश को पीछे हटते देखा तो वह भी लौट पड़ा। संध्या तक यही होता रहा—दिल्ली की सेना का यह बाजू हटता हुआ बीच वाले खंड से जा मिला और डट गया। मानसिंह ने अपनी सेना को बटोरा और एक सुरक्षित स्थान पर रात के लिये पड़ाव डाल लिया।

प्रातःकाल फिर युद्ध आरम्भ हुआ। अब दिल्ली की सेना बहुत सावधानी के साथ लड़ रही थी, क्योंकि पहले दिन उसकी काफ़ी हानि हो चुकी थी। सेना का संचालन सिकन्दर लोदी कर रहा था।

मानसिंह के खंड का सम्पर्क बीच वाली टुकड़ी से हो गया जिसका नायक अटल था। पीछे पठारें और जङ्गल रक्षा के लिये थे और उनके पीछे राई की गढ़ी। बायें हाथ की तरफ तोमरों का एक दल नरवर की ओर भेजी गई दिल्ली की सेना से टक्कर लेने की फ़िकर में था परन्तु यह टक्कर नहीं हुई। सिकन्दर ने रात में ही उस टुकड़ी के पास आदेश भेज दिया था कि लौट कर मानसिंह की पूरी सेना पर पीछे से छापा मारे।

दोपहर तक लड़ाई साधारण गति के साथ चलती रही। तीसरे पहर उसमें अचानक तेजी आ गई। मानसिंह के बायें बाजू से कतराकर नरवर जाने वाली टुकड़ी ने पीछे से धावा किया। वह पठारों और जङ्गलों में होकर आ गई थी।

मानसिंह ने अटल और अन्य सरदारों से कहा, 'तुम लोग केन्द्र को संभाले रहना। केन्द्र को फोड़कर तुर्क आगे न बढ़ने पावें, मैं निबटता हूं इन लोगों से।'

अटल और दूसरे सामन्त उत्साह के साथ केन्द्र को थामकर लड़ने ो। मानसिंह पैदलों और घुड़सवारों को लेकर पीछे से आने वालों पर पट पड़ा। हाथियों के दल को उसने इनके पीछे भेजने की आज्ञा दी।

मानसिंह के ि ये जङ्गल की लड़ाई कठिन पड़ रही थी तो दिल्ली । सेना के लिये और भी अधिक कठोर। दिल्ली की सेना को धीरे-धीरे छे हटना पड़ा। सन्ध्या तक मानसिंह ने उस सेना को बिलकुल हटा या परन्तु वह हटकर फिर सिकन्दर के खण्ड के सम्पर्क में आ गई। ानसिंह का हाथी–दल इसका पीछा न कर सका।

इस खण्ड को एक नये कोण से आता हुआ देखकर अटल का केन्द्रीय ल हिल गया। सिकन्दर ने जोर का आक्रमण किया। नये कोण से आने ाले दल ने भी धक्का पहुँचाया। मानसिंह के केन्द्र को उत्तर की ओर टना पड़ा। सिकन्दर सावधानी के साथ कुछ और बढ़कर रुक गया। ात में मानसिंह अटल वाले दल के साथ सम्पर्क स्थापित न कर पाया। विरा होते ही लड़ाई फिर शुरू हो गई। अटल के दल को थोड़ा और टना पड़ा। अब उसके लिये सिवाय ग्वालियर या राई जाने के और ुछ नहीं सूझ रहा था। राई की गढ़ी निकट थी। वहां से मानसिंह का म्पर्क हाथ लग सकता था इसलिये रात होते ही वह अपने दल के साथ ाई की गढ़ी में आ गया और वहाँ से लड़ने की योजना बना ली।

दिन में मानसिंह को दक्षिण की दिशा से सिकन्दर की एक बड़ी टुकड़ी से सामना करना पड़ा। यह टुकड़ी अर्द्ध गोलाकार सा बनाकर लड़ रही थी। एक सिरे पर लम्बी होकर अटल के दल से और दूसरे सिरे पर मानसिंह के दल से भिड़ रही थी। मानसिंह का केन्द्र पीछे जा चुका था इसलिये सिकन्दर ने अपने अर्द्ध गोलाकार में से एक टुकड़ी का लम्बा तीर सा बनाया। मानसिंह ने सिकन्दर की यह चाल परख ली और उसने दो बाजुओं में अपनी सेना को बाँट कर दोनों पक्षों को पीछे हटाने का प्रयास किया। परन्तु सिकन्दर का वह तीर राई की दिशा में

जङ्गल की तरफ़ काफ़ी धसकर फैल चुका था। रात हो जाने के कारण मानसिंह इसको पीछे न हटा सका।

तीन दिन के युद्ध में सिकन्दर की बहुत हानि हुई, परन्तु चौथे दिन उत्तर की दिशा में उसको गुन्जाइश दिखलाई पड़ गई और उसने एक दल चक्कर काटकर ग्वालियर के निकटवर्ती क्षेत्र को अधिकार में करने के लिये भेजा। मानसिंह को मालूम हो गया। उसको ग्वालियर के दक्षिण–पश्चिम, पनियार गाँव की ओर से सिकन्दर के उस उत्तरी बाज़ू और ग्वालियर के बीच में आना पड़ा। उसे जान पड़ा कहीं ऐसा न हो कि ग्वालियर घिर जाय और हमको बाहर से लड़ना पड़े। मानसिंह के उस तरफ़ मुड़ते ही सिकन्दर ने अटल की टुकड़ी को राई गढ़ी में घेर लिया। गढ़ी ऊँची पहाड़ी की चोटी पर थी। उसके दोनों ओर गहरी खोहें थीं। पूर्व की ओर गाँव और सांक नदी की तरफ़ खड़ी ऊँचाई थी। दक्षिण, उत्तर और पूर्व इस प्रकार सुरक्षित थे परन्तु पश्चिम की दिशा में गढ़ी के नीचे भूमि बहुत नीची न थी। उसने यहीं दृढ़ता के साथ सामना करने का निश्चय किया।

मानसिंह को अटल का कोई समाचार नहीं मिला। उसको विश्वास था कि पूरी टुकड़ी राई–गढ़ी में होगी परन्तु ग्वालियर की पूरी रक्षा का उपाय किये बिना वह राई गढ़ी की ओर नहीं जा सकता था; तो भी उसने सिकन्दर की उत्तर वाली टुकड़ी पर प्रचण्ड वेग के साथ छापा मारा। सिकन्दर की उस टुकड़ी को हानि के साथ पीछे हटना पड़ा। सिकन्दर राई गढ़ी के घेरे के लिये अपने एक दल को छोड़कर आगे बढ़ा। मानसिंह ने उसकी उत्तर वाली टुकड़ी को पीछे हटाया ही था कि सिकन्दर का प्रधान दल दक्षिण की दिशा से उसकी टक्कर में आ गया।

मानसिंह ने वेग के साथ सामना किया। सिकन्दर का आक्रमण भी विकट तेज़ी के साथ हुआ था। सिकन्दर ने ग्वालियर के किले और ग्वालियर के निकटवर्ती पर्वतों को घेरने का बहुत प्रयत्न किया परन्तु वह बार बार विफल हुआ। समुद्र की बड़ी और भारी लहरों की तरह उसके

सवार तोमरों पर टूटते और जैसे समुद्र की लहरें पहाड़ से टकरा-टकरा कर पीछे लौट लौट जाती हैं ऐसे ही उनको हट-हट जाना पड़ा।

रात होने पर मानसिंह ने देखा कि ग्वालियर के किले में पहुंच कर वहाँ से युद्ध का संचालन करना ज्यादा अच्छा होगा, इसलिये वह किले में ससैन्य चला गया। सिकन्दर ने ग्वालियर और मानसिंह की बिखरी हुई फौज को सवेरे तक घेर लेने की योजना बनाई थी परन्तु भोर होते ही उसने देखा कि सेना और पूरे सामान के साथ मानसिंह किले के भीतर चला गया है। उसको अपने कई पुराने अनुभवों का स्मरण था। इसी प्रकार मानसिंह को सिकन्दर के पिता बहलोल ने उन्नीस बीस वर्ष पहले घेरकर हराने का प्रयास किया था; और इसी तरह कई बार उसने स्वयं प्रयत्न किया था परन्तु प्रत्येक प्रयत्न पराजय में परिणत हुआ। वह उन अनुभवों को दुहराना नहीं चाहता था।

किले में घुसने के लिये या किले पर चढ़ जाने के लिये कोई भी साधन असम्भव था। पिछले बीस वर्षों में जो जो कोशिशें की गई थीं वे सब असफल हुई थीं। ढाई सौ हाथ की खड़ी ढाल के किले ने आक्रमण-कारियों के हजारों सिपाहियों के प्राण, उन प्रयत्नों में ले लिये थे।

उसने अपने प्रधान जासूस को बुलाया।

'कहाँ है वह सुरङ्ग ?' सिकन्दर ने पूछा।

दुबले छरेरे शरीर के जासूस ने,—उसके चेहरे या सिर पर सफेद बाल नहीं थे—कहा, 'जहाँपनाह पास के इन्हीं जङ्गलों पहाड़ों में कहीं है। मानसिंह से सिर्फ इतना ही निकाल पाया था। कल दिन में तलाश कर ली जावेगी।'

दिन निकलने पर मानसिंह और सिकन्दर की सेनाओं की कोई मुठ-भेड़ नहीं हुई। सिकन्दर ने चारों तरफ से ग्वालियर को घेर लिया परंतु दोनों पक्षों के सैनिक थकावट के मारे चूर हो रहे थे, इसलिये विश्राम

करते रहे। जासूसों ने सुरङ्ग का पता लगा लिया और सिकन्दर को जगह दिखला दी, परन्तु वह बन्द थी।

'इसको खोला जा सकता है'—सिकन्दर ने कहा,—'फिर दिन और रात में ग्वालियर पर हमला, ऊपर और नीचे, दोनों तरफ से किया जाय।'

सुरङ्ग को खोलने का प्रयत्न किया गया, कुछ दूर तक ढीले पत्थर मिले, उनको निकाल लिया गया, परन्तु उसके बाद ठोस चुनाई मिली जो सहज नहीं हिलाई जा सकती थी। सिकन्दर को निराश होकर लौटना पड़ा। रात में दिल्ली का शिविर सतर्कता के साथ विश्राम-मग्न होगया। सवेरे कोई नई तरकीब निकालूंगा, सिकन्दर सोच रहा था। आधी रात के लगभग सिकन्दर के शिविर की सतर्कता कुछ शिथिल पड़ गई। जोर का हल्ला हुआ। विश्राम मग्न सैनिक जाग पड़े। फड़फड़ा कर उठ बैठे, और हथियार पकड़ कर इधर उधर फ़ैल गये। धुंधले प्रकाश में तीर आ आकर छेदे डाल रहे थे। बहुत से सिपाहियों के मारे जाने के बाद सिकन्दर की सेना ग्वालियर की सेना के निकट आ पाई। तलवार का युद्ध होते होते फिर कई ओर से सिकन्दर की सेना पर तीरों की बौछारों पर बौछारें आने लगीं। सेना को कुछ पीछे हटना पड़ा। जब तक तितर-बितर सैनिकों को इकट्ठा करके व्यवस्था स्थापित की जावे तब तक लड़ाई के लिये वहाँ कोई रहा ही नहीं। रात के तीसरे पहर सिकन्दर ने देखा मानसिंह का कोई दस्ता किसी न किसी सुरङ्ग में होकर आया और नुक़सान पहुँचा कर लौट गया, जरूर कहीं कुछ सुरंगें और हैं। जिनका पता जासूसों को नहीं लगा था। पता दिन में लगाया जावेगा, उसने संकल्प किया।

[६७]

दिन भर छानबीन होती रही, परन्तु सुरङ्ग का पता नहीं चला। सिकन्दर ने सोचा राई गढ़ी को ही समाप्त करदें तो कुछ तो सन्तोष मिल जायगा।

ग्वालियर के घेरे को थोड़ा सा और आगे बढ़ाकर उसने राई गढ़ी पर ध्यान को केन्द्रित किया। अगर कोई सुरङ्ग है तो घेरे के बाहर होगी, इसलिये अब रात में छापे का डर नहीं रहेगा, उसने कल्पना की।

राई गढ़ी पर हमले पर हमले किये गये, परन्तु सफल नहीं हुये। गढ़ी की बुर्जों पर बड़े-बड़े पत्थरों के ढेर थे जो ऊपर से लुढ़काये जाकर आक्रमणकारियों को अपने साथ समेट ले ले जाते थे। तीरों की बौछार अलग हो रही थी।

उस रात सिकन्दर की सेना पर कोई छापा नहीं पड़ा। दूसरे दिन फिर सुरङ्ग की खोज की गई; कोई पता नहीं लगा। राई गढ़ी पर फिर आक्रमण किये गये परन्तु संध्या होने पर फिर वही विफलता हाथ लगी।

आधी रात के उपरान्त उसकी छावनी पर फिर छापा पड़ा। अबकी बार का बहुत तीक्ष्ण था। परन्तु सिकन्दर भी उसका धक्का ओढ़ने के लिये ज्यादा तैयार था। छापामार प्रचण्डता के साथ लड़ते-लड़ते पीछे हट रहे थे। सिकन्दर भोर तक छापामारों को किसी तरह भी अटकाये रहना चाहता था। उसके बहुत सिपाही हताहत हुये। भोर होते होते छापामार एक छोटे से दल को छोड़कर कहीं गायब हो गये। इस छोटे दस्ते का वे किसी भांति भी उद्धार नहीं कर सके और उनको विलीन हो जाना पड़ा। प्रकाश होते होते उस छोटे से दल में केवल एक बचा, बाक़ी सब लड़ते लड़ते मारे गये। जो बचा था वह भी बेतरह घायल था। सिकन्दर ने उसकी मरहमपट्टी करवाई परन्तु वह मरणासन्न हो चुका था।

सिकन्दर ने उसको पुचकारा। पूछा, 'तुम लोग किधर से आये थे?'

घायल ने क़िले की ओर संकेत किया।

सिकन्दर को प्रोत्साहन मिला। दूसरा प्रश्न किया, 'किसी सुरंग में होकर आये थे?'

आहत ने हामी भरी।

सिकन्दर को और प्रोत्साहन मिला। पुचकार और गहरी की।

'कहां खुली है वह सुरंग, मेरे जवान?'

आहत ने टूटे स्वर में बतलाया, 'बायें हाथ पर जो बावड़ी है, उसमें होकर।'

सिकन्दर प्रसन्न हो गया। तुरन्त कुछ सिपाहियों को खोज करने के लिये भेजा। सिपाही लौटकर नहीं आ पाये थे कि घायल का प्राणान्त हो गया।

सिपाहियों ने लौटकर बतलाया कि बायें या दायें हाथ की किसी भी बावड़ी में सुरंग का कोई चिन्ह-चाक नहीं है।

सिकन्दर ने मृत योधा की तरफ आंख फेरी। उसके चेहरे पर फीकी मुस्कान थी। मर चुका था इसलिये उससे अब और कुछ पाने की आशा न थी। सिकन्दर स्वयं बावड़ी में सुरंग के संदेह की जांच के लिये गया। वास्तव में वहां कहीं भी सुरंग का निशान नहीं था। लौट आया।

सहसा मृत सिपाही के चेहरे पर निगाह गई। उसकी मुस्कान मानो चिढ़ा रही हो।

सिकन्दर बोला, 'इसने धोका दिया। कमबख्त मरते मरते तक झूठ बोलते हैं!'

ग्वालियर के घेरे के पहरे-चौकियों का चौकस प्रबन्ध करके उसने राई गढ़ी पर भयंकर हल्ला बुलवाया।

हल्ले करते करते रात होने को आई, पर अन्त में वही ढाक के तीन पात। कुछ रात बीते गढ़ी के आसपास शान्ति हो गई।

लाखी ने लकड़ियों का एक बड़ा ढेर लगवा कर आग लगवा दी। दो घड़ी में ज्वाला गगन से बातें करने लगी। हू हू करके लौ ऊँचे और ज्यादा ऊँचे जाने लगी।

ग्वालियर में इसका प्रकाश दिखलाई पड़ा। मानसिंह ने उसको देखा मृगनयनी ने भी। दोनो उसके अर्थ को जानते थे। दो घडी पीछे वह प्रकाश कम हो गया। इसी समय मानसिंह की भेंट मृगनयनी से हुई।

'महाराज, राई गढ़ी, अटलसिंह और लाखी संकट में हैं।' मृगनयनी ने कहा।

मानसिंह दृढ़ था।

'इतना तो मालूम पड़ गया कि दोनो राई गढ़ी में हैं। उसके संकट का निवारण कल करूँगा। रात के चौथे पहर ऐसा प्रचण्ड आक्रमण करूँगा तुर्कों पर कि वे बच गये तो कभी नहीं भूलेंगे।'

'परन्तु आप अपने को सङ्कट में बहुत न डालना।'

'ह! ह!! ह!!! सङ्कट में घुसने के समय उसके छोटे और बड़े रूप का भी ध्यान रखना पड़ता है क्या!'

'अब चित्रशाला के उस अधूरे चित्र में अधिक रंग भरने का समय आ गया है।'

'मुझको एक क्षण के लिये मोह हो गया था, आगे नहीं होगा, नाथ। मैं बाहर साथ में न रह सकूँगी इसी का पछतावा है'

'सिकन्दर क़िले के बहुत निकट घेरे को समेटता लारहा है, यदि व्यूह को छेदकर उसकी सेना को नष्ट कर सका तब तो ठीक ही है, यदि ऐसा न हुआ तो घेरा अवश्य सिमट आवेगा, फिर करना तुम मनचाहा लक्ष्य वेध।'

राई गढ़ी से दिखलाई पड़ने वाला प्रकाश बिलकुल मन्द पड़ गया। आभा का एक बिखरा हुआ सा छपका मात्र क्षितिज पर रह गया था। मानसिंह अपनी योजना के संगठन में लगा।

राई गढ़ी के आस-पास घेरा डाले हुये सैनिकों को वह ऊँचा तीखा प्रकाश देखकर कुछ घबराहट हुई; जान पड़ता है राजपूतिनियों ने जौहर किया है और राजपूत हम लोगों पर अब टूटने वाले ही हैं। लौ के शांत हो जाने पर जब कहीं से कोई धावा नहीं हुआ और कान लगाने पर भी गढ़ी में कोई चहल-पहल नहीं सुनाई पड़ी तब जी में जी आया। फिर इतनी आग जलाने का मतलब? ठण्ड इतनी है नहीं कि तापने के लिये आग का इतना बड़ा झण्डा फहराया गया हो! कुछ बात जरूर है। सरदारों ने सलाह की।

कुछ मनचले रात में ही गढ़ी पर चढ़ जाने और भीतर जाकर गढ़ी का फाटक खोलकर, बाहर वालों को भीतर करके गढ़ी के घेरे को अविलम्ब समाप्त करने पर तुल गये। उन्होंने रस्सियों और नसेनियों का प्रबन्ध किया और गढ़ी पर चढ़ जाने की योजना में लग गये। भीतर आग के शान्त हो जाने पर लाखी ने अटल को बुला कर कहा, 'ग्वालियर में विदित हो गया होगा कि हम लोग सङ्कट में हैं।'

'वहां भी घेरा पड़ा होगा। देखें कल क्या होता है। महाराज शायद कल कुछ कर सकें।'

'आज रात ही में कुछ होगा।'

'दोनों पक्ष लड़ते-लड़ते थक गये हैं, रात में कुछ नहीं हो सकता।'

'आज की रात जागने की है।'

'मेरी आंखें तो टूटी पड़ रही हैं।'

'तुम सो जाओ। मैं जागूंगी।'

गांव के कुछ किसान जो शरण के लिये गढ़ी में आ गये थे, अटल के पास आये। उन्होंने प्रणाम नहीं किया—नियम हो गया था कि जितनी बार जागीरदार या गढ़पति के सामने कोई जाय, चाहे वह सैनिक हो या न हो, प्रणाम करे।

भाईचारे के अपने पन में एक किसान बोला, 'हम लोग कई रातों के जागे हैं, आज किसी और से चौकी का काम ले लो भैया, हम लोग सोयेंगे।'

भैया! रावसाहब भी नहीं कहा!!

अटल कभी नहीं भूला कि इन्हीं लोगों की क्रूरता के कारण उसको उतने दिनों उन नटों के साथ भटकते फिरना पड़ा था।

चटक कर बोला, 'इस तरह हमारे पास आया जाता है! बोलने तक का सऊर नहीं!!'

किसान नहीं समझे। सकपका गये।

उनका मुखिया बोला, 'तो जैसी कहो, करेंगे। बहुत थक गये हैं।'

अटल ने डपट दी,—'जाओ काम पर। तुम्हीं सबके लिये तो हम अपना प्राण ओंट रहे हैं।'

किसानों का विश्वास था कि अपनी जागीर की रक्षा के लिये लड़ रहा है। वहां से चुपचाप चले गये। लाखी को मालूम हुआ था कि ऐसे ठियें पर उनकी चौकी है जहां से शत्रु के ऊपर चढ़ आने की संभावना कम है।

उनके चले जाने पर लाखी ने अटल से कहा, 'तुम सो जाओ, मैं देखभाल के लिये जागती रहूंगी।'

वह बोला, 'हां, थोडा सा सो लूं, फिर तुम मुझे जगा देना और सो जाना।'

अटल जा लेटा और तुरन्त सो गया। लाखी ने तीरों भरा तरकस उठाया, कमर में तलवार बांधी, कन्धों और छाती पर तवे लगाये और चलदी।

सभी ठियों पर उसने कुछ न कुछ आलस्य पाया। सबको चेताकर वह उस स्थान पर पहुँची जहां उन किसानों की चौकी थी। किसान ऊंघ रहे थे, कुछ सो गये थे।

उसने उनसे धीरे से कहा, 'तुम लोग घर जाकर सो जाओ। मैं यहाँ थोड़ी देर ठहर कर पहरे को बदल दूंगी।'

किसान चौंक पड़े। पहरा देने का झूठा हठ करने लगे।

लाखी दृढ़ थी। उसने दुलार के साथ उनको विदा कर दिया।

किसान कहते गये, 'दोनों ही अपने गांव के हैं, पर कहां लाखी और कहां वह।'

गढ़ी में इस ठिये के नीचे एक बड़ा पेड़ था जिसकी गुम्मट और शाखें ऊपर तक आईं थीं। इसकी छाया में वे किसान पहरा देते देते सो उठे थे। लाखी उत्सुकता के साथ बैठ गई। उसकी आंखों में नींद या ऊब का लेश मात्र भी न था।

थोड़ी देर बैठी रह कर वह खड़ी हो गई। कंगूरों के झरोखों में होकर नीचे की ओर देखा। अतुल अन्धकार। निविड़ वन का कोई भी अंश नहीं दिखलाई पड़ रहा था। ऊपर तारे छिटके हुये थे। दूर की पहाड़ियां लम्बी तानें सोती सी जान पड़ती थीं। टेढ़ी तिरछी बहती हुई सांक नदी की पतली रेखा जरूर झांईसी मार रही थी। दूरी पर घेरा डालने वालों के डेरे की आग सुलग-सुलग कर राई गढ़ी के संकट को जगा-जगा दे रही थी। वैसे राई की डांग में नाहर इत्यादि जङ्गली जानवर रात में प्रायः बोला करते थे, परन्तु आक्रमणकारियों की रौंदा-रौंदी के मारे वे बहुत दूर खिसक गये थे। सिवाय झींगुरों की चींची के और कुछ नहीं सुनाई पड़ता था। सुनसान को छेदती हुईं कभी कभी गढ़ी के भीतर 'जागते रहो! जागते रहो!!' की पुकारें भर सुनाई पड़ जाती थीं।

लाखी को उन शून्य-वेधी पुकारों के ऊपर कंगूरों के नीचे सघन अन्धकार के पेट में कुछ खर-खराहट सुनाई पड़ी। दिखलाई तो कुछ पड़ नहीं रहा था कान लगाकर सुनने लगी। थोड़े से क्षण निस्तब्धता रही। लाखी ने अनुमान लगाया जङ्गल का कोई पशु होगा। दीवार से टिककर बैठ गई। नरवर की वह रात उसको याद आई। ऐसी ही रात थी।

इससे भी अधिक ऊँची दीवार। नटों की चक्की के पाटों के बीच में हम दोनो। थोड़ी सी भी चूकती कि सब समाप्त हो जाता। अब तो बहुत सुरक्षित हूँ।

नीचे फिर खरखराहट हुई। लाखी खड़ी हो गई। ध्यान लगाकर सुना। कुछ नहीं सुनाई पड़ा। लाखी को विश्वास हो गया जङ्गल का कोई जानवर छिपते लुकते पानी पीने के लिये नदी की ओर जा रहा है खरखराहट बढ़ी। लाखी का विश्वास और भी पुष्ट हुआ। फिर देर तक खरखराहट नहीं सुनाई पड़ी।

लाखी ने कल्पना की ग्वालियर में क्या हो रहा होगा। उजेले को देख लिया होगा उन सबों ने। कल राजा सहायता के लिये आयँगे, राई गढ़ी का उद्धार होगा और मैं फिर अपनी निन्नी से जा मिलूँगी। लाखी कई रात की जागी थी। नींद आ गई। दीवार के सहारे सिर लटक गया, उसके केश कलाप का तकिया सा बन गया। स्वप्न हुआ जैसे अरने भैंसों का झुण्ड पहाड़ की झाड़ी के पीछे से खड़बड़ाता—भड़भड़ाता हुआ भागा चला आ रहा हो और वह एक हाथ में कमान और दूसरे में तीर लिये हुये निशाना बाँधने की धुन में हो, डोरी पर तीर चढ़ाया और डोरी खिचती न हो। घबरा कर उसने आँख खोली और मीड़ी। कमान पर हाथ डाला और तरकस को टटोला, सब जहाँ के तहां थे। अरने तो वहाँ नहीं थे परन्तु बग़ल में थोड़ी दूर धम्म का शब्द सुनाई पड़ा। गर्दन मोड़ी तो कुछ लोग कँगूरों पर से प्राचीर पर उतरते दिखलाई पड़े। ये कौन हैं? उसके मन में प्रश्न उठा। क्या ये अपने है? इतने में कँगूरों पर एक सिर और दिखलाई पड़ा। वह आकाश की ओर ऊंचा हुआ। किसी ने दीवार के कक्ष पर पैर रक्खा और धम्म से नीचे उतर आया। फिर वह कँगूरों के झरखे में से बाहर की तरफ़ झाँका और धीरे से किसी ऐसी भाषा में बोला जिसको वह नहीं समझ सकी। ये अपने नहीं हैं, तुर्क हैं, उसको कोई सन्देह नहीं रहा। दूर की बुर्ज से सुनाई पड़ा, 'जागते रहो!'

लाखी ने आँख को गड़ाकर आक्रमणकारियों की गिनती करनी चाही। वह पेड़ की छाया के अन्धेरे में गठरीसी बन बैठी थी और वे थोड़ी ही दूर झुरमुट सी बांधे जल्दी कुछ खुस-फुस कर रहे थे। उनमें से एक दीवार से टिका बाहर से भीतर आने वालों को भीतर उतारने में सहायता कर रहा था।

लाखी ने अपना कर्तव्य एक क्षण भर के भीतर निश्चित कर लिया।

बहुत हौले से कमान और तरकस को कन्धे पर से उतारा। धीरे से मुड़ी। एक बाण प्रत्यंचा पर चढ़ाया और प्राचीर पर एक नये निकले हुये सिर का निशाना बांधकर छोड़ दिया। इधर तीर छूटा, उधर चीख निकली और नवागन्तुक भरभराकर पीछे के पीछे ही धम्म शब्द के साथ कुछ और चढ़ने वालों को अपने साथ लेता हुआ गहरे अन्धेरे में नीचे खड़ी हुई भीड़ को कुचलता हुआ समाप्त हो गया। वहां हल्ला-गुल्ला हुआ और यहाँ खड़ी हुई उस झुरमुट में चहल-पहल मच गई। फिर लाखी की कमान से और तीर सनसना कर छूटे और इस झुरमुट पर टूटे। कुछ लगे, जिन्होंने आहें-कराहें पैदा कीं, कुछ छाती के तवों से टकरा कर टन्ना गये। उस झुरमुट ने भी समझ लिया कि तीर कहां से आरहे हैं। वहाँ से भी लाखी पर तीरों की बौछार हुई। कुछ भन्नाते हुये निकल गये। कुछ तवों से टकरा कर झनझना गये। एक उसके कन्धे के नीचे से पसलियों के जोड़ के भीतर जा धसा। परन्तु लाखी ने तीर कमान को नहीं छोड़ा।

वह झुरमुट बिखर गई थी। लाखी को दो एक खड़े मालूम पड़े, कुछ डरे हुए से। जो खड़े थे उन पर लाखी ने अन्तिम तीर छोड़े। उन्होंने दीवार के कंगूरे पर चढ़ने की कोशिश की परन्तु रस्सी या नसेनी का पता न लगने के कारण फिर नीचे आ रहे।

लाखी खड़ी हो गई। उसने तलवार निकाली। खांसी आ गई और खांसी के साथ मुंह से रक्त की फुहार छूट पड़ी।

'इनको मार कर मरूँगी', उसने निश्चय किया। फिर खांसी, फिर वही फुहार। मुट्ठी में तलवार ढीली पड़ गई। लाखी ने सोचा हल्ला कर देना चाहिये। चिल्लाई। मुंह से और खून निकला। फिर चिल्लाई और दीवार से सटकर खड़ी हो गई। 'जागते रहो!' की पुकार लगाने वालों ने उसकी पुकार को सुन लिया। मशालें लेकर दौड़ पड़े।

आक्रमणकारियों में से एक तलवार लेकर लाखी की ओर झपटा। ऊपर आती हुई विपत्ति की उत्तेजना ने उसको बल दिया। तलवार वाली मुट्ठी कस गई। आक्रमणकारी ने जैसे ही उस पर वार किया वह धम्म से बैठ गई। सिर पर आई हुई तलवार की खड़ी नोक आक्रमण-कारी के पेट के निचले हिस्से में बैठकर, कलेजे तक पहुँच गई। वह चीखकर करवट के बल जा गिरा। मशाल वाले आ गये।

उन्होंने देखा लाखी बहुत घायल है, आक्रान्ता मरने के पल गिन रहा है और कुछ दूरी पर कइयों का ढेर सा लग रहा है। कुछ मरे हुये कुछ अधमरे। मशाल की रोशनी में उन्होंने कँगूरों से बँधे हुये कुछ रस्सों को देखा। पहले उन रस्सों को तुरन्त काट दिया फिर लाखी के पास आये।

लाखी के मुंह से कराह के साथ निकला, 'मेरे स्वामी को, स्वामी को बुलादो।'

'वहां लिये चलते हैं।' एक ने तुरन्त कहा।

वह बोली, 'नहीं, यहीं बुला लाओ। मुझको मत छुओ।'

उनमें से कुछ दौड़कर अटल को लिवा लाये और एक पानी ले आया।

अटल ने देखा लाखी के मुंह से खून बह रहा है और आंखें फट रही हैं। वह उससे लिपटने को हुआ। लाखी ने उठी हुई गदेली को हिलाकर वर्जित किया मानो रक्षा करने वाले नाग ने फन हिलाया हो।

'यह क्या हो गया !' फफकते हुये गले से अटल ने कहा।

'कुछ नहीं। एक भीख मांगती हूँ। दे दो !' लाखी के टूटते स्वरों में निकला।

अटल ने हाथ जोड़े।

'हिष्ट ! यह क्या !!' लाखी के रक्त-रञ्जित होठों में से एक पतली सी मुस्कान फूटकर वहीं विलीन हो गई।

अटल ने हाथ नीचे कर लिये।

और भी टूटे स्वर में वह बोली, 'ब्याह कर लेना। अपनी जात-पांत में......।'

फिर लाखी कुछ नहीं कह सकी। होठ बिर-बिराये, एक झटका खाया और वह मर्त्य लोक में जा मिली।

अटल ने मोटी उंगलियों जोर के साथ अपने आँसू पोंछ डाले।

भर्राये हुये स्वर में बोला, 'चिता बनाओ। तैयारी करो। यहीं चिता बनाओ। सबको जगाकर गढ़ी का कोना-कोना छान डालो, कहीं दूसरे कोनों से बैरी न घुसा आ रहा हो।'

उसी स्थान पर कुछ लोगों ने चिता चुन दी। बाकी ने गढ़ी भर को जगाकर सन्नद्ध कर दिया। जिन किसानों को लाखी ने विश्राम करने के लिये उस स्थान से हटा दिया था वे भी डरते-कांपते आ गये। कराल दृष्टि से अटल ने उन लोगों को देखा। पर उनसे कहा कुछ नहीं।

अटल ने लाखी के शरीर पर से गहने उतार कर एक ओर रख दिये। अब चाटे इनको जात-पांत। उसके मन में आया।

लाखी को चिता पर रख दिया गया और प्रज्वलित कर दी गई।

अटल की आँख में आधा आँसू भी नहीं था। आकृति भयंकर थी।

उसने चिता को हाथ जोड़े और मन में कहा, 'देखो, मैं आइ [illegible] मिलूँगा, बहुत जल्दी मिलूँगा।'

अटल अपने डेरे पर चला आया। वहां से चिता का प्रकाश दिखलाई पड़ता था। क्या इस प्रकाश को निन्नी ने भी देखा होगा ? उसके मनमें प्रश्न उठा। गले में कुछ अटकने को हुआ। उसने तुरन्त दबोच दिया। प्रकाश की ओर से मुंह को फेरकर उसने अपने दलपतियों को आज्ञा दी, 'एक पहर रात रहे फाटक खोलकर तुर्कों पर टूट पड़ना है।'

जिनको अपने प्राण प्यारे हों वे जा सोवें, जिनको तोमर, भदोरिया और गूजर नाम प्यारा हो केसरिया बाने पहिन लें। यदि शत्रु की पातों को चीर-फाड़कर निकल गये तो कल ग्वालियर में।'

[६८]

रात के सन्नाटे को केवल पहरे वालों की बोलियाँ हिलोड़ रही थीं। ग्वालियर क़िले के पश्चिमवर्ती गरगज नामक फाटक की टेड़ी-मेढ़ी छिपी राह से मानसिंह के पैदल सैनिक उतरे और गूजरी महल के पास वाले पूर्वीय फाटक से सवार और हाथी। दो दिशाओं से, सिकन्दर की फैली हुई फौज पर प्रचण्ड आक्रमण हुआ।

सिकन्दर इस तरह के आक्रमण के लिये तैयार न था। उसका ख्याल था कि किसी अज्ञात सुरङ्ग में से कुछ छापा-मार ही उपद्रव करते रहेंगे जो युद्ध हुआ उसकी सिकन्दर को आशंका न थी।

एक ओर से मानसिंह के हाथियों ने रौंदना कुचलना शुरू कर दिया, दूसरी ओर से सवारों ने तलवार बरसाई; तीसरी ओर से पैदलों ने तीरों का प्रलय रोप दिया।

सिकन्दर की पूरी सेना कांप गई, हिल गई और हटती हुई लड़ने लगी। वह बार-बार जमकर युद्ध करने पर तुलती और बार-बार उसको पीछे हटना पड़ता। मैदान में युद्ध हुआ, घाटियों-पहाड़ों पर हुआ परन्तु सिकन्दर की सेना के पैर न रुप सके। सिकन्दर की कुछ सेना ग्वालियर के दक्षिण की ओर हटी, कुछ राई की दिशा में और उनका एक अंग हाथियों से घिर गया जो लड़ते-लड़ते सवेरे के पहले ही नष्ट हो गया। मानसिंह ठण्डक के साथ युद्ध का संचालन कर रहा था। इधर से उधर आदेश ले जाने वाले और समाचार लाने वाले दूत सावधानी और तत्परता के साथ काम कर रहे थे। प्रातःकाल के लिये अभी कुछ देर थी।

सिकन्दर के पास राई की ओर से कुछ घुड़सवार दौड़े आये। उन्होंने बतलाया कि राई का घेरा डालने वाली फ़ौज पर कोई नया दुश्मन चढ़ आया है और बेतरह लड़ रहा है। सिकन्दर को वास्तविक स्थिति का पता नहीं लगा।

राई का फाटक रात के तीसरे पहर के लगभग खुल गया था। केसरिया बाना पहिने राजपूत तोमर, भदोरिये, गूजर सब–सिकन्दर की सेना पर सघन पांतों में टूट पड़े। घेरा छिन्न-भिन्न हो गया। परन्तु घेरे वालों का एक अङ्ग उस समय सचेत था जब लाखी ने सीढ़ीं और रस्सी के सहारे चढ़ने वालों का मुकाबिला किया। इस अङ्ग ने अटल के दल का लोहा लिया। घमासान युद्ध होने लगा। सिकन्दर को समाचार देने के लिये कुछ सवार दौड़े गये। इनमें से किसी को ज्ञात नहीं था कि अटल का दल कहाँ से आ टूटा।

अटल उस दल से बेतहाशा लड़ रहा था। घिर जाने के कारण तीर नहीं चला सकता था, दाँय और बाँय तलवार को बिजली की तरह कौंधा रहा था! जहाँ पिलता वही स्थान खाली हो जाता था। उसके साथी भी कम हठधर्मी के साथ नहीं लड़ रहे थे। वे सब लड़ते–लड़ते अपने घेरने वालों को पीछे ठेलते जा रहे थे। राई के इन लड़ने वालों को मृत्यु दुर्लभ ही नहीं, अप्राप्य भी लग रही थी।

प्रातःकाल की पौ फटी। उसकी रेखायें सांक नदी की लहरों पर मचलीं और एक तीर अटल की आँख में धसकर अटक गया। अटल गिर पड़ा। थक तो गया ही था इसलिये घाव ने बहुत कम क्लेश पहुँचा पाया। एक कल्पना झिलमिला गई,—'मैं ब्याह करूँगा, उसी के साथ, वहीं जहाँ वह गई है और मैं जा रहा हूँ।'

अटल समाप्त हो गया परन्तु उसके अनेक साथी अभी बाक़ी थे। वे लगन के साथ मौत को ढूंढ़ रहे थे परन्तु नहीं मिल रही थी। अटल का मरण देखकर तो और भी ताव खा गये। लड़ाई होती रही।

सूर्योदय होते ही सिकन्दर के हरकारों ने खबर दी कि नरवर की दिशा से मानसिंह की घुड़सवार सेना आ रही है। नरवर में सिकन्दर के आक्रमण की सूचना पहुँच गई थी, इसलिये दस हज़ार सवारों का एक दस्ता ग्वालियर की सहायता के लिये आ रहा था।

[६८]

रात के सन्नाटे को केवल पहरे वालों की बोलियाँ हिलोड़ रही थीं। ग्वालियर किले के पश्चिमवर्ती गरगज नामक फाटक की टेढ़ी-मेढ़ी छिपी राह से मानसिंह के पैदल सैनिक उतरे और गूजरी महल के पास वाले पूर्वीय फाटक से सवार और हाथी। दो दिशाओं से, सिकन्दर की फैली हुई फौज पर प्रचण्ड आक्रमण हुआ।

सिकन्दर इस तरह के आक्रमण के लिये तैयार न था। उसका ख्याल था कि किसी अज्ञात सुरङ्ग में से कुछ छापा-मार ही उपद्रव करते रहेंगे जो युद्ध हुआ उसकी सिकन्दर को आशंका न थी।

एक ओर से मानसिंह के हाथियों ने रोंदना कुचलना शुरू कर दिया, दूसरी ओर से सवारों ने तलवार बरसाई; तीसरी ओर से पैदलों ने तीरों का प्रलय रोप दिया।

सिकन्दर की पूरी सेना कांप गई, हिल गई और हटती हुई लड़ने लगी। वह बार-बार जमकर युद्ध करने पर तुलती और बार-बार उसको पीछे हटना पड़ता। मैदान में युद्ध हुआ, घाटियों-पहाड़ों पर हुआ परन्तु सिकन्दर की सेना के पैर न रुप सके। सिकन्दर की कुछ सेना ग्वालियर के दक्षिण की ओर हटी, कुछ राई की दिशा में और उनका एक अंश हाथियों से घिर गया जो लड़ते-लड़ते सवेरे के पहले ही नष्ट हो गया। मानसिंह ठण्डक के साथ युद्ध का संचालन कर रहा था। इधर से उधर आदेश ले जाने वाले और समाचार लाने वाले दूत सावधानी और तत्परता के साथ काम कर रहे थे। प्रातःकाल के लिये अभी कुछ देर थी।

सिकन्दर के पास राई की ओर से कुछ घुड़सवार दौड़े आये। उन्होंने बतलाया कि राई का घेरा डालने वाली फ़ौज पर कोई नया दुश्मन चढ़ आया है और बेतरह लड़ रहा है। सिकन्दर को वास्तविक स्थिति का पता नहीं लगा।

राई का फाटक रात के तीसरे पहर के लगभग खुल गया था। केसरिया वाना पहिने राजपूत तोमर, भदोरिये, गूजर सव–सिकन्दर की सेना पर सघन पांतों में टूट पड़े। घेरा छिन्न-भिन्न हो गया। परन्तु घेरे वालों का एक अङ्ग उस समय सचेत था जब लाखी ने सीढ़ीं और रस्सी के सहारे चढ़ने वालों का मुकाविला किया। इस अङ्ग ने अटल के दल का लोहा लिया। घमासान युद्ध होने लगा। सिकन्दर को समाचार देने के लिये कुछ सवार दौड़े गये। इनमें से किसी को ज्ञात नहीं था कि अटल का दल कहाँ से आ टूटा।

अटल उस दल से वेतहाशा लड़ रहा था। घिर जाने के कारण तीर नहीं चला सकता था, दाँय और वाँय तलवार को विजली की तरह कोंधा रहा था! जहाँ पिलता वही स्थान खाली हो जाता था। उसके साथी भी कम हठधर्मी के साथ नहीं लड़ रहे थे। वे सव लड़ते–लड़ते अपने घेरने वालों को पीछे ठेलते जा रहे थे। राई के इन लड़ने वालों को मृत्यु दुर्लभ ही नहीं, अप्राप्य भी लग रही थी।

प्रातःकाल की पौ फटी। उसकी रेखायें सांक नदी की लहरों पर मचलीं और एक तीर अटल की आँख में धसकर अटक गया। अटल गिर पड़ा। थक तो गया ही था इसलिये घाव ने वहुत कम क्लेश पहुँचा पाया। एक कल्पना झिलमिला गई,—'मैं व्याह करूँगा, उसी के साथ, वहीं जहाँ वह गई है और मैं जा रहा हूँ।'

अटल समाप्त हो गया परन्तु उसके अनेक साथी अभी वाक़ी थे। वे लगन के साथ मौत को ढूंढ़ रहे थे परन्तु नहीं मिल रही थी। अटल का मरण देखकर तो और भी ताव खा गये। लड़ाई होती रही।

सूर्योदय होते ही सिकन्दर के हरकारों ने खवर दी कि नरवर की दिशा से मानसिह की घुड़सवार सेना आ रही है। नरवर में सिकन्दर के आक्रमण की सूचना पहुँच गई थी, इसलिये दस हज़ार सवारों का एक दस्ता ग्वालियर की सहायता के लिये आ रहा था।

चक्की के पाटों के बीच में पिसना सिकन्दर ने पसन्द नहीं किया। शान्ति के साथ विचार करके उसने राई के जङ्गलों–पहाड़ों में चले जाने का निश्चय किया।

जब राई पर पहुँचा, उसने देखा कि लड़ाई समाप्त हो गई है, उसके बहुत से सैनिक और अनेक राजपूत हताहत पड़े हैं–मानो सारी दुश्मनी को भूलकर एक जगह आ सोये हों।

हताहतों का प्रबन्ध करके सिकन्दर राई की ओर और पठार के पीछे जा ठहरा। ग्वालियर और राई दोनों बच गये। सिकन्दर ने निश्चय किया, अन्तर्वेद से और अधिक सेना को बुलाकर उसके दो भाग करूँगा; एक ग्वालियर को घेरे रहे और दूसरा नरवर पर हमला करे, जिसमें एक दूसरे की मदद न कर सकें।

मानसिंह ने सूर्योदय के उपरान्त ग्वालियर के घेरे को समाप्त पाया। उसको राई की चिन्ता थी। ग्वालियर का प्रबन्ध करके राई गया। तब तक सिकन्दर ससैन्य हटकर बहुत दूर निकल चुका था।

अटल और उसके साथियों को केसरिया बानों में लिपटा हुआ रण-क्षेत्र में पड़ा पाया। उसका माथा ठनका। इन्होंने ऐसा क्यों किया? जौहर की आवश्यकता क्यों पड़ी? मैं आ तो रहा था, संकट के संकेत को देख लिया था। ये एक दिन और ठहरे रहते, क्यों इतने उतावले हो गये? गढ़ी सूनी जान पड़ रही है, शत्रु इसमें नहीं दिखलाई पड़ता। देखूँ क्या बात है।

मानसिंह ने गढ़ी का पता लगा लिया, फाटक खुले थे। उसमें थोड़े से किसान जन थे। भीतर गया। लाखी के कार्य और मरण का समाचार मिला। उस स्थान पर जहाँ चिता अब भी गरम थी, गया। चिता के समीप ही लाखी के गहने ज्यों के त्यों रक्खे हुये थे। उनमें मोतियों की वह माला भी थी जिसको शिकार में उसने गले में पहिनाया था। मानसिंह ने आह के साथ उन गहनों को बँधवा कर एक अङ्गरक्षक के सुपुर्द किया। राई गढ़ी की रक्षा का प्रबन्ध करके ग्वालियर लौट आया।

मृगनयनी ने लाखी के कार्य और मरण का वृत्तान्त और अपने भाई के शौर्य का संक्षिप्त वर्णन जब सुना, तब उसने छाती को वज्र की तरह कड़ा किया। हिलकियां गले के भीतर लहरों की थपेड़ों की तरह आईं परन्तु आगे न बढ़ सकीं।

मानसिंह ने लाखी के गहने सामने रख दिये।

बोला, 'इनमें मोतियों की वह माला भी है जिसे उस दिन शिकार में पहिनाया था।'

अब मृगनयनी रो पड़ी। चुपचाप रोती रही। देर में अपने को संयत कर पाया।

कहा, 'मोतियों की माला को उस चित्र के ऊपर टांगूंगी।'

मानसिंह उसको सान्त्वना देकर व्यवस्था करने के लिये चला गया। नरवर की सेना को लौटा दिया गया। वह सिकन्दर का सामना करने के प्रयत्नों में और भी अधिक तत्पर हो गया। दूतों ने उसको समाचार दिया कि सिकन्दर बराबर आगरा की ओर लौटता चला जा रहा है। अपनी व्यवस्था को दृढ़ करने के उद्देश्य से उसनें सिकन्दर का पीछा करना उचित नहीं समझा।

[६१]

सिकन्दर की सहायक सेना इटावे में थी। शीघ्र चम्बल पार करके उससे चम्बल की घाटियों पर आ मिली। सिकन्दर ने तुरन्त कूच किया विशाल सेना के दो बड़े-बड़े भाग किये। एक नरवर की ओर गया, व स्वयं उसका नायक था। दूसरा ग्वालियर पर आया। मानसिंह परिमि साधनों के कारण क़िले के बाहर बहुत दिनों युद्ध नहीं कर सकता था इसलिये उसने छापा मारों के कई दल दिल्ली की सेना को निरन्त सताते रहने के लिये छोड़ दिये और वह क़िले से युद्ध जारी रखने क योजना में लग गया।

सिकन्दर ने नरवर को जा घेरा। नरवर वाले अपने क़िले को अजे समझते थे। था भी। मांडू का कोई डर सिकन्दर को नहीं था। चन्देरे को जब चाहे तब दबा सकता था। उसको मालूम हो गया था कि मां के सुल्तान का शासन निर्बल पड़ गया है और राजपूतों के समूहों तथ तुर्क-पठानों के समूहों में द्वन्द्व चलता रहता है। नरवर को जीत लिया त चन्देरी सहज हो जायगी, मालवा पैरों तले आ जावेगा और ग्वालिय का भी दमन कर लूंगा, उसकी धारणा थी।

सिकन्दर की सहायता के लिये राजसिंह भी आ गया। उसको संसा में नरवर की बपौती के सामने और कुछ नहीं दिखता था। उत्तेजना दे के लिये उसका भाट निरन्तर साथ रहता ही था। उस समय तुर्क-पठान की राजनीति को प्रेरणा मुल्लों-मौलवियों से मिलती थी और अधिकां राजपूतों को भाटों से।

राजपूत इस उक्ति के सार के क़ायल थे—

गाजतें बचोगे, बचो काल जमराज हूतें;
नाहिन बचोगे कन्त कवि की आवज तें।

सिकन्दर और राजसिंह ने नरवर पर हमले पर हमले किये, परंतु नरवर के फाटक टस से मस न हुये। नरवर वाले आशा करते थे कि पहले

की भांति ग्वालियर से सहायता एक न एक दिन आ जायगी परन्तु उनको क्या मालूम था कि ग्वालियर के चारों ओर घेरा पड़ा हुआ है।

नरवर के घेरे को बारहवां महीना लग गया। सिकन्दर दांत किचकिचा कर नरवर के विनाश पर डटा हुआ था। उसको विश्वास था कि हथियारों से नरवर को न मिटा सका तो भूखों मारकर तो मिटा ही लूंगा।

और ऐसा ही हुआ।

नरवर के भीतर अन्न सामग्री बिलकुल चुक गई। कुछ दिन पेड़ों की छाल और पत्तों से काम चलाया। फ़िर असह्य हो गया।

लड़ने वाले मकरध्वज ताल पर एकत्र हुए। पानी पिया। गये जमाने के मकरध्वज का स्मरण किया और नित्य उदय और अस्त होने वाले सूर्य को नमस्कार किया। अपने मन्दिरों की ओर आंख फ़ेरी और भौंहें तानीं।

फ़िर ऐसी परिस्थिति में जो कुछ होता आया था, हुआ—चितायें चुनी गईं, स्त्रियों ने आत्माहुति की। लड़ने वाले किले का फाटक खोलकर तलवारें लिये हुये शत्रुओं की तलवारों पर टूट पड़े। सिकन्दर को विजय मिल गई। परन्तु उसके तारीख नवीस को भी उस दिन लिखना पड़ा कि नरवर ने आत्मसमर्पण भूखों मर कर ही किया।

सिकन्दर को विजय तो मिल गई परन्तु क्रोध बढ़ गया। राजसिंह से कहा, 'मैं नरवर का नक्शा जब बिल्कुल बदल दूंगा तब आप को जागीर में लगा दूंगा। चलना हो तो मेरे साथ भीतर चलो और हथौड़ों का काम देखो, वरना जब बुलाऊँ तब आना।'

राजसिंह उसके साथ किले में नहीं गया। वह समझ गया और भाट भी समझ गया, इसलिये उत्तेजित नहीं कर सका।

सिकन्दर किले के भीतर गया। किले के चारों खण्डों का चक्कर काट कर निरीक्षण किया। थोड़े से शैव और वैष्णव मन्दिर थे, प्रचुर संख्या में जैन मन्दिर। जैन मूर्तियां शान्त रस की अवतार, शान्ति

को प्रदान करने वाली। परन्तु विष्णु की मुस्कान, शिव की तेजस्विता और जैन तीर्थङ्करों की शान्ति-वरदता से उसको वास्ता ही क्या था ?

सिकन्दर ने नरवर में छः महीने रह कर मन्दिरों और मूर्तियों का ऐसा चकनाचूर किया कि कोई कह ही नहीं सकता था कि नरवर में कभी कोई मन्दिर या मूर्ति थी। सौन्दर्य और शान्ति के प्रतीकों का यह सारा विध्वन्स उसने अपनी निगरानी में कराया था। मानसिंह और ग्वालियर को न मिटा पाया तो उनके प्रिय प्रतीकों को तो चूर कर दिया! उसने अपनी क्रोधाग्नि को इस तरह बुझाने के प्रयत्न किये।

परन्तु उसने व्योपार करने वाले सेठ साहूकारों को नहीं सताया। उनके व्योपार की उसको जरूरत थी और सेठ साहूकारों को उसके टंकों की। किसानों को लगान किसी को भी देना था। उनकी गांव-पंचायतें थीं ही। अपने में सम्पूर्ण परन्तु एक दूसरे से अलग !

छः महीने के बाद उसने राजसिंह को बुलाया और किला तथा नरवर की जागीर उसे देकर ग्वालियर की ओर चल दिया। परन्तु दिल्ली में से निकले उसको डेढ़ साल से ऊपर हो गया था। क्रोध को नरवर में ठण्डा कर ही आया था, ग्वालियर को जीत लेने की आशा थी नहीं इसलिये ग्वालियर से अपनी सेना को समेट कर दिल्ली चला गया।

राजसिंह ने नरवर को प्राप्त करने के बाद कला को भी बुला लिया। किले के एक भाग में उसके पुराने और नये सैनिक आ बसे थे। बाकी उजाड़ पड़ा था। ढाई कोस के घेरे वाला इतना बड़ा किला ! कितनी ऊँचाई पर !! कितनी शताब्दियों बाद आज फिर से अपने घर आया !!! राजसिंह ने अपनी इस बड़ी सम्पदा को घुमा-घुमा कर दिखलाया।

उत्तरवर्त्ती पहला खण्ड ढोलाबाड़ा नाम से प्रख्यात था। राजसिंह ने बतलाया, 'ढोला हमारे पुरखे थे, इस फाटक से कूद कर उनको भागना पड़ा था। वह दूल्हा भी कहलाते थे। आज उनकी जगह में दूल्हा बन कर तुम्हारे साथ हूँ।'

'देखो इस फाटक के पास के कँगूरे, नीचे झुके हुये हैं। जब राजा नल ने इस स्थान को छोड़ा तब शोक के मारे ये कँगूरे झुक गये थे!'

और देखो यह राजा नल का मञ्च है और यह उनके बैठने की चटाई। राजा नल हमारे बहुत पुराने पुरखा होते हैं।'

क्या राजा नल इतने दरिद्र थे कि मोटे झोटे तख्त और इस सड़ियल चटाई पर बैठा करते थे? कला ने सोचा। जब वे दोनों किले के उस खण्ड में पहुँचे जिसमें दूर दूर तक मूर्तियों के टुकड़े और चूरे पड़े थे, तब कला चौंकी।

'उसने पूछा, 'वह क्या?'

राजसिंह ने सिकन्दर के विनाश कार्य का संक्षेप में वर्णन किया।

उसको लगा जैसे खण्डित मूर्तियाँ चुपचाप कोस कोस कर कह रही हों तुमने हमको क्यों नहीं बचाया? कला की आंखों में आँसू आ गये। गद्गद् स्वर में बोली, 'यह सब आपने क्यों होने दिया? कैसे होने दिया?'

राजसिंह सकपका गया। एक क्षण में सँभलकर उसने कहा,

'मैं नहीं था यहां उन दिनों, इसमें मेरा हाथ नहीं रहा।'

'तो आपने रोका क्यों नहीं?'

'मैं अकेला कर ही क्या सकता था? तुमको सँभालता या इसे देखता। अब, जो हुआ सो हो गया। मैं यहाँ बहुत से मन्दिर, महल बनवा दूंगा।'

'मैं यहाँ कभी नहीं आऊँगी। मैं नहीं जानती थी; कभी नहीं सोचा था। नष्ट हो जाने पर भी उन मूर्ति खण्डों में शान्ति थी—बिखरी हुई शान्ति। कला भ्रष्ट भी हो जाय, योगी पतित भी हो जाय तो भी उसमें बड़प्पन का कुछ अंश तो रहता ही है।' कला सोचती हुई उसके साथ चली गई।

[७०]

मृगनयनी की अवस्था ढल रही थी परन्तु सौन्दर्य बढ़ रहा था। ऊपर का लावण्य स्थिर हो गया और भीतर का बढ़ता हुआ सौन्दर्य आंखों में छा गया।

ललित कलाओं पर उसको अधिकार प्राप्त हो गया था, फिर भी उसने अभ्यास निरन्तर रक्खा। बैजू ने ध्रुवपद की एक नई परिपाटी तैयार करके मांज ली थी। इसके मांजने में उसको मानसिंह से सहायता मिली परन्तु मृगनयनी से उसकी भी अपेक्षा अधिक। ध्रुवपद इसके पहले भी कई नामों से गाया जाता परन्तु उसके चार अङ्ग—स्थायी अन्तरा, सञ्चारी और आभोग—इन तीनों के सहयोग से ही बने और निखरे। कई राग मृगनयनी के सुझाव, प्रेरणा और सहकारिता से बैजू ने बनाये, जैसे गूजरी, मालगूजरी, बहुलगूजरी और मंगलगूजरी।

विजय कहा करता था,—'काम ही सब कुछ है। काम करना ही मानव का धर्म है। काम करते करते ही मनुष्य स्वर्ग-लोक की भी प्राप्ति कर सकता है।

मानसिंह बतलाया करता था,—'मनुष्य अकेले अकेले काम करके सन्तोष और हर्ष को तो प्राप्त कर सकता है परन्तु काम से आनन्द तभी हाथ लग सकता है, जब उसको दूसरों के सहयोग से किया जाय।'

सिकन्दर या किसी भी आक्रान्ता की बला टल गई थी परन्तु वह जानता था कि यह बला फिर कभी सिर आ सकती है, इसलिये वह सेना के सँभालने-सुधारने में बहुत व्यस्त रहने लगा। कुछ समय निकाल कर वह गूजरी महल में भी आया करता था।

बैसाख-जेठ की ऋतु थी। वे दोनों गूजरी महल की छत पर थे। धुन्ध में लिपटी हुई-सी चाँदनी छिटकी हुई थी। मानसिंह ने आग्रह किया, 'कुछ गाओ।' तम्बूरा पास रक्खा हुआ था।

'क्या गाऊँ ?' मृगनयनी ने शान्त स्वर में पूछा।

'अपना कोई ध्रुवपद। मुझको बहुत अच्छा लगता है। नायक बैजू की गायकी में भी उतना मिठास नहीं मिलता जितना तुम्हारे गले में।'

'नायक नायक ही हैं। मैं तो उनकी शिष्य भर हूं।'

'शिष्य तो उनके बहुत से हो गये हैं जो इस नई परिपाटी को देश भर में फैलायेंगे। परन्तु तुम तो तुम्हीं हो।'

'मैं ध्रुवपद नहीं सुनाना चाहती, कुछ और गाऊंगी।'

'जो मन को भावे गाओ, मैं तो सुनना चाहता हूं।'

मृगनयनी तम्बूरा उठाकर गाने लगी—

मोरी तोहि लाज मुकुट वारे, मोरी तोहि;
चन्दा सूरज तोरी सेवा करत हैं,
विनति करत नौ लख तारे। मोरी तोहि—

मृगनयनी ने दुहरा-दुहरा कर इस पद को बड़े रस के साथ गाया। गायन की समाप्ति पर वे दोनो आकाश की ओर देखने लगे। चन्द्रमा और तारे आंखों में कांपते से जान पड़े।

एक सेविका ने सूचना दी, 'नायक बैजू आये हैं।'

बैजू को बिठलवा लिया गया। वे दोनो आंगन में जाकर उससे मिले।

बैजू की शिकायत थी,—'अब आप गायन की ओर कम ध्यान देनें लगे हैं। अधिक दीजिये।'

मृगनयनी बोली, 'मैं तो देती हूँ। इनको सेना, राजनीति इत्यादि के सम्भालने में लगा रहने दीजिये। आपके सङ्गीत विद्यापीठ को पूरी सहायता मिल रही है। और कोई आवश्यकता है ?'

बैजू ने आवश्यकता बतलाई,—'राजा को सङ्गीत का गहरा ज्ञान है। जब सामने होते हैं, तब अनेक नई-नई सूझें निकलती हैं। इनको सामने रहना चाहिये।'

'दुश्मन फिर सिर पर आ सकता है, इसलिये उसका सामना करने की तैयारी में सदा लगे रहना अधिक आवश्यक है।' मानसिंह ने कहा।

बैजू चिल्ला पड़ा,—'आप कहते क्या हैं! सब दुश्मन मर गये! सरस्वती की कृपा से अब कोई नया उत्पन्न नहीं होगा। आवेगा भी तो फिर वैसे ही भाग कर लौट जावेगा।'

'हठ मत करिये, नायक जी,' मृगनयनी विनय के स्वर में बोली।

'तो मेरा मन नहीं लगेगा।' बैजू ने कहा।

एक क्षण बाद मृगनयनी ने प्रश्न किया, 'आचार्य विजयजङ्गम कहते हैं कि आपने जो नये राग बना लिये सो बना लिये,अब नहीं बना सकते, क्या यह बात ठीक है?'

'विजयजङ्गम क्या जाने। वह तो ऐसा कहते ही रहते हैं।'

'और किसी किसी की कल्पना है कि गूजरी-टोड़ी राग जो आपने बनाया है उसकी कुछ रूप–रेखा गुजरात में पहले से है।'

'कौन मूर्ख कहता है?' आपने एक दिन टोड़ी-राग गाते हुये अन जाने एक तान लगाई, मैंने उसको मन में रख लिया और उसका विस्ता करके गुजरी टोड़ी बनाकर खड़ी कर दी। मूर्ख लोग क्या जाने।'

'तो अब नये राग कैसे बनेंगे? आपका मन कुछ हार खा गय है न?'

'नहीं तो। जब अकेले में सरस्वती जी की आराधना करता हूँ, त नई नई बातें भूमती–सी उमगती चली आती हैं। मन कभी नह हारेगा।'

मृगनयनी ने मानसिंह की ओर एक सूक्ष्म दृष्टि फेरी। बैजू ने ल नहीं किया। वह कुछ गुनगुना उठा था।

मानसिंह ने मुस्करा कर कहा, 'तो जब तक मैं तलवार द्वारा दुग की आराधना करता हूँ, आप नये-नये रागों के सृजन द्वारा सरस्वती क करिये।'

बैजू हंस पड़ा। बोला, 'हाँ, हाँ, ठीक हैं। ऐसा ही होगा।'

[७१]

नरवर के विनाश को हुये कई बरस हो गये थे, चन्देरी भी मालवा से कटकर नरवर के अधीन आ गई थी परन्तु नसीरुद्दीन को लगता था जैसे कुछ दिन ही हुये हों और जैसे कहीं कुछ हुआ ही न हो।

क्योंकि, उसका प्रण पूरा हो चुका था। परियों के बहीखाते में पूरे पन्द्रह हज़ार की गिनती दर्ज हो चुकी थी।

उतरते बैसाख के महीने में उसको फिर जलविहार की सूझी। सन्ध्या के पहले कालियादह झील पर क़नातों से घिरे हुये रङ्ग-बिरङ्गे वितानों के नीचे फिर परिस्तान का जमघट जुड़ा। अबकी बार हमेशा से बढ़कर रङ्ग-बिरङ्गे वस्त्र आभूषण, नई-नई भिन्नतायें, नये खेल-कूद का आयोजन। मदमस्ती फूटफूटकर वितानों के नीचे बहने लगी। रङ्गीन गुड़ियों की चटकमटक हिलोड़ें खाने लगीं।

ख्वाजा मटरू पास था। नसीर ने आदेश दिया, 'पानी में छुआ-छुअव्वल का खेल हो। उसके बाद नाच गाना।'

'जो हुकुम।'

'अच्छा ज़रा ठहरो। पहले थोड़ा नाच होजाय, फिर छुआछुअव्वल।'

'जो हुकुम, जहांपनाह।'

'मैं भी छुआछुअव्वल के खेल में शरीक हो जाऊंगा।' उसकी जलती हुई कामुकता ने प्रेरणा दी।

'जो हुकुम', ख्वाजा मटरू के मुंह से फिर निकला।

बड़े नखरों के साथ नाच गान हुआ। ऐसा कि अश्लीलता भी शर्मा गई होगी। नाच गान की समाप्ति होते-होते नसीर तकिये के सहारे पड़कर सो गया। अश्लीलता के इतने आकार-प्रकार उसके अनुभव में आ चुके थे कि अब कोई भी अश्लीलता उसको देर तक आकर्षण नहीं दे सकती थी।

परिस्तान जलविहार के लिये उत्कण्ठित था। परन्तु सुल्तान को जगावे कौन? किसमें इतनी हिम्मत? मटरू से आग्रह किया। उसको भी साहस नहीं हुआ।

मटरू ने एक मसनली के कान में कुछ कहा। वह कुछ दूर जाकर चिल्लाई—'सांप! सांप!! सांप!!!'

कई कण्ठों से यही ध्वनि बेभाव निकली।

नसीर भी जागकर चिल्ला पड़ा,—'सांप! सांप!! सांप!!! कहां है? कहां है?'

मटरू ने दौड़कर अर्ज की, 'जहांपनाह, मारा गया।'

नसीर ने आदेश दिया, 'दूर फेंक दो उसको! मगर झील में मत फेंकना। क़नात के बाहर फेंक दो। पहरे वाले उसको कहीं गाड़ देंगे।'

'फेंक दिया, जहांपनाह।' मटरू ने सान्त्वना दी।

नसीर ने चैन की सांस लेकर कहा, 'कल से जहां-जहां सांप मिलें सबको मरवाना शुरू कर दूंगा। अच्छा अब वह खेल हो।'

परियां पानी में कूद पड़ीं। नसीर भी उतर गया। खेल होने लगा। होते-होते तैरने वाली दूर जाने लगीं। परन्तु बहुत दूर नहीं। नसीर कुछ दूर निकल गया।

थोड़ी देर खेलने के बाद नसीर थक गया। दम फूल गई। हाथ पैर फेंकने लगा। मटरू ने किनारे पर से देखा। सोचा सुल्तान खिलवाड़ कर रहा है।

सुल्तान के हाथ पैर ढीले पड़ गये। चिल्लाया, 'बचाओ!' क़नात के बाहर सिपाहियों ने सुन लिया, परन्तु उनकी हिम्मत नहीं पड़ी। कौन अपना सिर और हाथ कटवाये, उन्होंने सोचा।

सुल्तान फिर चिल्लाया, 'बचाओ!!'

परियों को भी पुराना अनुभव याद आ गया। इनको बचाने में कहीं हम ही न डूब जावें। कोई भी उसकी तरफ नहीं बढ़ी। सब सोचती थीं, कोई न कोई आकर बचा लेगा।

मटरू इधर-उधर दौड़ धूप कर रहा था और चिल्ला रहा था।

'कमबख्तो ! बचाओ !!' उसका सारा प्रयास प्रदर्शन मात्र था। वह चाहता था सुल्तान देखले ख्वाजा कितना तत्पर है !

बचाने को कोई नहीं पहुँचा। सुल्तान डुब्ब से पानी के नीचे चला गया।

अब हायतोबा और चिल्ल-पुकार मची। परियां पानी में से निकल-निकलकर कपड़े पहिनने-सँभालने में लग गईं। बाहर रौरा बढ़ गया।

उस सारे रौरे के ऊपर दो शब्द गूंज रहे थे,—'सुल्तान डूब गये। सुल्तान डूब गये !!'

पहरेवालों का धीरज और डर समाप्त हो गया। क़नात को काट-कर भीतर धस पड़े। स्त्रियां इधर-उधर चिल्लाती, भागती फ़िर रहीं थीं, एक दूसरी से टकरा-टकरा जा रही थीं। सिपाहियों ने मटरू को पकड़ लिया।

नसीर के लड़के के पास समाचार पहुंचा। वह तुरन्त आया। पहला काम जो उसने किया वह था मटरू का वध। फिर उसने व्यवस्था की।

दूसरा काम जो उसने किया वह था परिस्तान का तितर-बितर करना।

तीसरा काम जो उसने किया वह था मेदिनीराय को बुलाकर राजपूतों द्वारा सरकश सरदारों का दमन और मालवा का शासन। मुल्ले मौलवियों को बुरा लगा, परन्तु उसने परवाह नहीं की। नसीर का लड़का महमूद खिलजी द्वितीय के नाम से प्रख्यात हुआ।

[३२]

मेवाड़ के सिंहासन को राणा सांगा ने पाया। महमूद बघर्रा दो वर्ष बाद उस कलेवे, भोजन, ब्यालू और रक्तपात को करते-करते मर गया। दक्षिण में कृष्णदेवराय ने विजयनगर को समृद्ध किया। सिकन्दर लोदी को उसके भाई जलाल ने परेशान किया। लड़ाई स्वाभाविक ही थी। लड़ाई हुई। जलाल हारा और भाग कर सिकन्दर के चिरशत्रु मानसिंह के पास सहायता के लिये ग्वालियर आया। मानसिंह अपने सैनिकों का इस तरह की लड़ाई में व्यर्थ व्यय नहीं करना चाहता था, इसलिये जलाल अपने अनेक साथियों को ग्वालियर में ही छोड़ कर गोंडवाने की तरफ़ भाग गया। वहां पकड़ा गया और आगरा भेज दिया गया। सिकन्दर ने वही किया जो ऐसी परिस्थिति में वहां होता आया था—अर्थात् सिकन्दर ने उसको प्राणवध का दण्ड दिया।

जलाल अपने जिन अनेक साथियों को ग्वालियर में छोड़ गया था, वे अपने को अनाथ पा रहे थे। दिल्ली जा नहीं सकते थे क्योंकि सिकन्दर उनका क़तल करवाये बिना न मानता, कहीं अन्यत्र उनके लिये ठिकाना न था।

मानसिंह ने उनको शरण प्रदान की। आश्वासन दिया, 'मेरा झगड़ा सुल्तानों और सुल्तानी शासन से है न कि मुसलमानों से। काम करो, राजभक्त रहो और हिन्दुओं के समान ही बर्ताव पाते हुये इज्जत के साथ जीवन को बिताओ।'

सिकन्दर को ग्वालियर की हार कभी नहीं भूली। उसने अबकी बार बहुत बड़ी तैयारी की। निश्चय किया—ग्वालियर की वही दुर्गति करूंगा जो नरवर की की थी। इस तैयारी की फिकर में वह मर भी गया।

मानसिंह ललित कलाओं के विकास और सैन्य संगठन के समन्वय में लगा हुआ था। उसको केवल एक चिन्ता थी—बड़ी रानी से पुत्र

विक्रमादित्य था। मृगनयनी से दो पुत्र राजसिंह और बालसिंह—राजे और बाले–राज्य कौन करेगा, एक या तीनों ? अथवा राज्य के तीन या दो बराबर-बराबर भाग किये जायें ? तीन या दो भाग कर देने से फिर ग्वालियर कितने समय तक आगरा दिल्ली के सामने टिक सकेगा ? यह समस्या उसको चिन्तित किये रहती थी। इस चिन्ता में कड़वापन उस समय और आ जुड़ता था जब सुमनमोहिनी इस समस्या के सुलझाने का हठ करने लगती थी। वह सोचता था बड़ी रानी को भय है कि मैं कहीं यकायक मर न जाऊँ तो गूजरी रानी उपद्रव करवा उठेगी, क्योंकि उसको राज्य का अधिकांश, मान्यता और अपनी श्रद्धा दिये हुये था। मेरे मरने की सोचती है यह ! मेरे मरने की !! यह कड़वापन उसको बहुत अखर–अखर जाता था।

एक दिन सुमनमोहिनी ने इस प्रसङ्ग को अनिश्चय के कुहासे में से निकाल कर निस्संशयता के स्पष्ट प्रकाश में ले आने का दृढ़ संकल्प किया।

अवसर पाते ही उसने मानसिंह से कहा, 'दिल्ली का सुलतान फिर चढ़ आने की तैयारी कर रहा है।'

'समाचार आ गया है। वह मर गया।'

'वह मर गया तो दूसरा आवेगा।'

'सामना करेंगे। जीवन है ही इसके लिये।'

'आपकी सारी उमर अथक परिश्रम करते–करते ही बीती है। अब तो कुछ विश्राम मिलना चाहिये। भजन–पूजन को भी कुछ अधिक समय।'

'काम करने वाला मरने से कुछ घण्टे पहले ही बुड्ढा होता है। मैं तो किसी बात में भी शिथिल नहीं पड़ा हूँ, और भजन–पूजन भी करता रहता हूँ।'

'इन कुमारों से भी कुछ काम लीजिये, नहीं तो निकम्मे पड़ जावेंगे।'

'सिखला रहा हूँ।'

[३२]

मेवाड़ के सिंहासन को राणा साँगा ने पाया। महमूद बघर्रा दो वर्ष पीछे उस कलेवे, भोजन, ब्यालू और रक्तपात को करते-करते मर गया। दक्षिण में कृष्णदेवराय ने विजयनगर को समृद्ध किया। सिकन्दर लोदी को उसके भाई जलाल ने परेशान किया। लड़ाई स्वाभाविक ही थी। लड़ाई हुई। जलाल हारा और भाग कर सिकन्दर के चिरशत्रु मानसिंह के पास सहायता के लिये ग्वालियर आया। मानसिंह अपने सैनिकों का इस तरह की लड़ाई में व्यर्थ व्यय नहीं करना चाहता था, इसलिये जलाल अपने अनेक साथियों को ग्वालियर में ही छोड़ कर गोंडवाने की तरफ़ भाग गया। वहां पकड़ा गया और आगरा भेज दिया गया। सिकन्दर ने वहा किया जो ऐसी परिस्थिति में वहां होता आया था—अर्थात् सिकन्दर ने उसको प्राणवध का दण्ड दिया।

जलाल अपने जिन अनेक साथियों को ग्वालियर में छोड़ गया था, वे अपने को अनाथ पा रहे थे। दिल्ली जा नहीं सकते थे क्योंकि सिकन्दर उनका क़तल करवाये बिना न मानता, कहीं अन्यत्र उनके लिये ठिकाना न था।

मानसिंह ने उनको शरण प्रदान की। आश्वासन दिया, 'मेरा झगड़ा सुल्तानों और सुल्तानी शासन से है न कि मुसलमानों से। काम करो, राजभक्त रहो और हिन्दुओं के समान ही वर्ताव पाते हुये इज्जत के साथ जीवन को विताओ।'

सिकन्दर को ग्वालियर की हार कभी नहीं भूली। उसने अवकी बार बहुत बड़ी तैयारी की। निश्चय किया—ग्वालियर की वही दुर्गति करूँगा जो नरवर की की थी। इस तैयारी की फिकर में वह मर भी गया।

मानसिंह ललित कलाओं के विकास और सैन्य संगठन के समन्वय में लगा हुआ था। उसको केवल एक चिन्ता थी—बड़ी रानी से पुत्र

विक्रमादित्य था। मृगनयनी से दो पुत्र राजसिंह और बालसिंह—राजे और बाले—राज्य कौन करेगा, एक या तीनों ? अथवा राज्य के तीन या दो बराबर-बराबर भाग किये जायें ? तीन या दो भाग कर देने से फिर ग्वालियर कितने समय तक आगरा दिल्ली के सामने टिक सकेगा ? यह समस्या उसको चिन्तित किये रहती थी। इस चिन्ता में कड़वापन उस समय और आ जुड़ता था जब सुमनमोहिनी इस समस्या के सुलझाने का हठ करने लगती थी। वह सोचता था बड़ी रानी को भय है कि मैं कहीं यकायक मर न जाऊँ तो गूजरी रानी उपद्रव करवा उठेगी, क्योंकि उसको राज्य का अधिकांश, मान्यता और अपनी श्रद्धा दिये हुये था। मेरे मरने की सोचती है यह ! मेरे मरने की !! यह कड़वापन उसको बहुत अखर-अखर जाता था।

एक दिन सुमनमोहिनी ने इस प्रसङ्ग को अनिश्चय के कुहासे में से निकाल कर निस्संशयता के स्पष्ट प्रकाश में ले आने का दृढ़ संकल्प किया।

अवसर पाते ही उसने मानसिंह से कहा, 'दिल्ली का सुल्तान फिर चढ़ आने की तैयारी कर रहा है।'

'समाचार आ गया है। वह मर गया।'

'वह मर गया तो दूसरा आवेगा।'

'सामना करेंगे। जीवन है ही इसके लिये।'

'आपकी सारी उमर अथक परिश्रम करते-करते ही बीती है। अब तो कुछ विश्राम मिलना चाहिये। भजन-पूजन को भी कुछ अधिक समय।'

'काम करने वाला मरने से कुछ घण्टे पहले ही बुड्ढा होता है। मैं तो किसी बात में भी शिथिल नहीं पड़ा हूँ, और भजन-पूजन भी करता रहता हूँ।'

'इन कुमारों से भी कुछ काम लीजिये, नहीं तो निकम्मे पड़ जावेंगे।'

'सिखला रहा हूँ।'

'यदि नरवर का क़िला किसी कुमार के हाथ में होता तो यों ही न निकल जाता। क्या फिर हाथ आ सकेगा?'

'प्रयत्न कर रहा हूँ।'

'यदि हाथ में आ जाय तो किसी कुमार को सौंप देंगे?'

'वे दोनो तो छोटे-छोटे ही हैं। बड़े कुमार विक्रमादित्य को भेज दूंगा, यदि नरवर हाथ लग गया तो।'

'छोटों को क्यों नहीं? क्या वे दोनो इतने प्यारे हैं कि ग्वालियर में रहें और विक्रम नरवर में रहे?'

'इसको कहते हैं—सूत न कपास, कोरी से लट्ठमलट्ठा!'

'गूजरी महल में सूत और कपास सभी कुछ है! साफ़ क्यों नहीं कह देते कि राजसिंह या बालसिंह में से किसी को ग्वालियर का राज्य दिया जायगा और विक्रम को नरवर या ऐसे ही कहीं के जङ्गल और पहाड़ की जागीर?'

'अभी तो मैं हूँ और बहुत दिन जिऊँगा।'

'भगवान करें आप सहस्र वर्ष जियें और राज्य करें, मैं कल ही मर जाऊँ और आपके दस हज़ार ब्याह और हों।'

बड़ी रानी के गले में हिलकी आ गई और मानसिंह को हँसी। बड़ी रानी की हिलकी बन्द हो गई, आंसुओं में से चिनगारियां फूट पड़ीं।

बोली, 'आपको स्पष्ट कर देना चाहिये। जिसको राज्य देना हो अभी से कह दीजिये।'

'जो योग्य होगा, वही राज्य करेगा। अभी से विष को बोने की अटक ही क्या है? विक्रम मुझको कितना प्यारा है, उसको वह जानता है। आप नहीं जानतीं।'

'परन्तु आपको जितना मैं जानती हूँ उतना विक्रम नहीं जानता।'

'और आप यह भी नहीं जानतीं कि उन तीनों में परस्पर कितना स्नेह है !'

'हां आ ! इन सब बातों को गूजरी रानी अधिक अच्छा जानती हैं। क्या ग्वालियर के तीन टुकड़े किये जायेंगे ?'

मानसिंह ने शान्त मुस्कान के साथ उत्तर दिया, 'आज तो टुकड़े हो नहीं रहे हैं।'

उस शान्त मुस्कान के नीचे मानसिंह के हृदय में बहुत कुढ़न थी।

[७२]

कुछ दिन पीछे मृगनयनी ने मानसिंह से कहा, 'चलिये चित्रशाला के उस चित्र को दिखलाऊं।'

उत्कण्ठा के साथ मानसिंह ने पूछा, 'हो गया पूरा ?'

उसने उत्तर दिया, 'पूरा तो नहीं हुआ थोड़ी सी कसर है। पर कुछ आगे बढ़ गया है।'

मानसिंह उसके साथ चित्रशाला में गया। उस चित्र के नृत्य वाले अङ्ग में कुछ रंग और भर दिये गये थे। दूसरा अङ्ग काफी भर दिया गया था परन्तु उसमें थोड़ी सी कसर और थी।

कला वाले अङ्ग के उपर लिखा था, 'कला' और दूसरे अङ्ग के ऊपर लिखा था 'कर्तव्य'। उसको मानसिंह ने पहिले लिखा नहीं देखा था। 'कर्तव्य' वाले अङ्ग के ऊपर एक खूंटी से लाखी वाली मोतियों की माला टँगी हुई थी। झिझरियों के प्रकाश में झिलमिला रही थीं।

मृगनयनी ने मानसिंह के हाथ में एक पत्र दिया। मानसिंह ने पढ़ा। उसमें लिखा था—राजसिंह और बालसिंह गद्दी या जागीर के अधिकारी नहीं होंगे। वे अपने बड़े भाई की आज्ञा का पालन करते हुए केवल अपने कर्तव्य का निर्वाह करेंगे। इस लेख की एक प्रतिलिपि महारानी-सुमनमोहनी के पास आज ही भेज दी गई है।

पत्र को पढ़कर राजा ने आश्चर्य के साथ मृगनयनी की ओर देखा।

उसके चेहरे पर मुस्कान थी।

मृगनयनी के केश-कलाप में कुछ रजत-रेखाओं की लहरें प्रकट हो चुकी थीं, लगता था जैसे बेला-चमेली की रेखायें स्वास्थ्य के हिमलों में जगमगा रही हों।

शरीर का सौन्दर्य आत्मा के सलोने पन को और भी अधिक पा [illegible] था।

उसको स्मरण हो आया—स्त्री का गौरव, सौन्दर्य, महत्व स्थिरता में है जैसा उस नदी का जो बरसात के मटमैले, तेज्र प्रभाव के बाद शरद में नीले जल वाली, मन्थर गति-गामिनी हो जाती है—दूर से बिल्कुल स्थिर, बहुत पास से प्रगतिशालिनी।

मानसिंह की आँखें सजल हो गईं।

'यह तुमने क्या किया ?' मानसिंह के काँपते हुये होठों से धीरे से निकला।

चित्र के 'कर्तव्य' वाले अङ्ग की ओर उँगली उठाती हुई वह बोली, 'यह।'

मृगनयनी की मुस्कान और खिली। मानसिंह की आँखें और सजल हुईं।

मानसिंह के मुंह से और भी धीरे से एक वाक्य निकला, 'अब तो चित्र का यह अङ्ग पूरा हो जाना चाहिये। उसको अधूरा क्यों छोड़ा जा रहा है ?'

मृगनयनी ने कहा, 'संकल्प और भावना जीवन-तखड़ी के दो पलड़े हैं। जिसको अधिक भार से लाद दीजिये, वही नीचे चला जायगा। संकल्प कर्तव्य है और भावना कला। दोनों के समान समन्वय की आवश्यकता है। न तो अभी कला का अंश पूरा हुआ है और न कर्तव्य का। तखड़ी के दोनो पलड़े तुले हुये हैं न इस चित्र में?'

मृगनयनी की दृष्टि लाखी के मुक्ता-हार पर गई। आँखें थोड़ी सी झलझला आईं।

मानसिंह ने भी देखा।

और भी दबे स्वर में बोला, 'कर्तव्य वाले अङ्ग में अब कौनसी कसर रह गई है, देवी ?'

मोतियों की माला और सम्पूर्ण चित्र पर दृष्टि घुमाती हुई मृगनयनी ने कर्तव्य वाले अंश पर उँगली रखकर कहा, 'प्रजा के सुख की, देश की स्वाधीनता की।'

मानसिंह ने मृगनयनी को छाती से लगा लिया। मृगनयनी ने उसके कन्धे पर अपना सिर टिका दिया। उजली; बड़ी आँखें मानसिंह की झुकी हुई बरौनियों से उलझ गई और दोनों के अश्रुविन्दु एक दूसरे से जा मिले।

मानसिंह के काँपते हुये होठों से धीमे धीमे शब्द निकले—

'कला और कर्तव्य का समन्वय इस कसर को किसी दिन अवश्य पूरा करेगा।'

फिर उन दोनों की दृष्टि मोती-माला की ओर गई।

वह दमक रही थी।

(समाप्त)

परिशिष्ट

आदरणीय विद्वर श्री अयोध्यानाथ जी शर्मा ने हमें कृपापूर्वक सुझाव दिया कि वर्मा जी के उपन्यासों में जो जनपदीय (बुन्देलखण्डी) शब्द प्रयुक्त होते हैं, उपन्यास के अन्त में पाठकों की सुविधा के लिये उनका संक्षिप्त विवरण दे दिया जाया करे। प्रख्यात पुरातत्ववेत्ता आदरणीय श्री डाक्टर वासुदेवशरण जी अग्रवाल ने तो इतना अनुग्रह किया कि 'मृगनयनी' के जनपदीय शब्द बीनकर हमें लिख भेजें; जो यहां दिये जा रहे हैं। श्री अग्रवाल जी के प्रति तो हम अत्यधिक आभारी हैं हीं; श्री शर्मा जी के आदेश-पालन में इस बार हम बिन-प्रयास सफल हुए हैं, अन्य उपन्यासों में सप्रयास और साभार उसका पालन करेंगे।

प्रकाशक—

एरच—एक पुरवा जिसे हिरण्यकश्यप की राजधानी कहा जाता है। पुरवे के आसपास दूर दूर तक खण्डहर हैं, जहां से पुरजन ईंटें उखाड़ ले आते हैं। मकान बनाने के लिये ईंट पकाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

गुदनोटा—अतिथियों का सत्कार न करने के लिये, परम्परा में बुन्देलखण्ड का एक बदनाम गांव। (भूमिका पृष्ठ ५)

छया—छपका पड़ गया था, बिखर कर चिपट गया था। (पृष्ठ ८)

हुमकना—हुंकार भरने में जितने बल का प्रयोग करना पड़ता है उतने बल और उत्साह के साथ करना। (पृष्ठ १०)

आसें—यौवन की प्रारम्भिक अवस्था में होठों पर उगने वाले बाल। (पृष्ठ १३)

आवरा—संस्कृत आवरण का अपभ्रंश, ढकने वाली चादर। (पृष्ठ १५)

चिलचिलाना—चमकना। (पृष्ठ १५)

झकूटा—छोटी झाड़ी (पृष्ठ १४)

झूम—हिलन-डुलन (पृष्ठ १५)

पतोखी—रात में बोलने वाली एक चिड़िया (पृष्ठ १६)

झीम—उन्निद्र व्यक्ति का निद्रा नियन्त्रण के प्रयत्न में झूम जाना। (पृष्ठ १८)

चड़ाका—किसी चीज के चटक कर टूटने का शब्द। (पृष्ठ १८)

टुंग—संस्कृत तुङ्ग का अपभ्रंश पहाड़ की गोल चोटी (पृष्ठ २१)

वीधना—उलझ जाना (पृष्ठ २२)

पंगत—पंक्ति का अपभ्रंश दावत (पृष्ठ २२)

भदूने—ढेर (पृष्ठ २२)

रायसा—वीरों के या सतियों के यश-गीत (पृष्ठ २६)

बक नहीं फटता—बोल नहीं निकलता (पृष्ठ २७)

मठा मूसल की धमकना—मट्ठा किसानों का विशेष पेय है और मूसल से धान आदि कूटी जाती है। दोनों का कोई मेल नहीं खाता; अतः बेमेल बातें करना। (पृष्ठ ३३)

ततूरी—धूप के कारण भूमि के गरम हो जाने पर पैर के तलुवे को जो ताप लगता है वह ततूरी। (पृष्ठ ३५, ५०)

टौरिया—छोटी पहाड़ी। (पृष्ठ ३७)

बिलाव—बिल्ली का पुल्लिग (पृष्ठ ३७)

निखरना, सखरना—साफ़ होना (पृष्ठ ३७)

लोरना—पानी में मौज के साथ लोटना-पोटना, तैरना (पृ० ४७)

मकुरना—क्षुब्ध होकर मुंह डाल लेना • (पृष्ठ ४८)

अचार—वृक्ष विशेष (पृष्ठ ५०)

करधई—बुन्देलखण्ड के पहाड़ों पर सघनता के साथ जमने वाला मजबूत और कटीला पेड़। (पृष्ठ ५०)

खांदी—दो पहाड़ियों के बीच की गहराई। (पृष्ठ ५०)

कोलना—छेद करना। (पृष्ठ ५४)

अथाई—उगाहने का समानार्थवाची। (पृष्ठ ५६)

बेड़िया—नट वर्ग की एक उपजाति (पृष्ठ ६१)

खांद—पशु-पद-चिह्न। (पृष्ठ ५७)

ठठना - घुसकर थम जाना (पृष्ठ ५८)

असवल—अहमदाबाद जिस स्थान पर बना है उसका पुराना नाम

दुन्द—संस्कृत द्वन्द्व का अपभ्रंश, झगड़ा (पृष्ठ ७७)

बन्धिया—बंधी, खेत की ऊँची मेंड़। (पृष्ठ ८१)

निखरना—दृष्टि केन्द्र में साफ़ साफ़ आजाना। (पृष्ठ ८४)

डिंडकार—डकारना, बड़े पशु के गले की ऊँची पैनी आवाज़। (पृष्ठ ८४)

आंसना—गड़ना। (पृष्ठ ८६)

ढा—ऊँचा किनारा (पृष्ठ ९१)

थूमि—संस्कृत स्तम्भ का अपभ्रंश, थूमा; थूमीं, स्त्रीलिंग। (पृष्ठ ९१)

शहना—लगान वसूल करने वाला सरकारी नौकर। (पृष्ठ ११?)

उसार—घर को काम (पृष्ठ १२१) ढोरों की उसार, पशुशाला का काम। (पृष्ठ १२१)

मानना—स्वीकार करना, इक़बाल करना। (पृष्ठ १३४)

छेवला—पलाश वृक्ष। (पृष्ठ १४२)

कोंचना—कुरेदना, चुभना (पृष्ठ १४६)

कुटवार -गांव की पंचायत के आदेशों का पालन कराने वाला गांव में रहने वाला पदाधिकारी। (पृष्ठ १५०)

वक—वाक्य या या वच् का अपभ्रंश। (पृष्ठ १५४)

भ्यात—भाई वन्द; भ्यात भाइयों का सामूहिक रूप (पृष्ठ १६३)

सकेलना—इकट्ठा करना } कृषि कार्य के } (पृष्ठ १७४)
बगोड़ना—क्रम के साथ फैलाना } किसानी शब्द }

हुरकनी—वेश्या। (पृष्ठ १७६)

कानी के टेंट पर सिन्दूर की बिन्दी—कानी स्त्री जिसकी एक आँख बाहर निकली हुई सी फूली हो, कुरूप समझी जाती है। अपने को रूपवती बनाने के लिये यदि ऐसी स्त्री माथे पर सिन्दूर की बिन्दी लगा ले तो वह और भी कुरूप दीखने लगेगी। (पृष्ठ १८१)

खिसारा—खीसों वाला (जङ्गली सुअर के लिये व्यवहृत होता है) (पृष्ठ १८४)

लगान—हाँके के शिकार में हकाई के पहले ही हथियारबन्द शिकारी नियुक्त स्थानों पर जा बैठते हैं। इस कार्य-क्रम का नाम 'लगान' है—जङ्गली पशुओं की शिकार के लिये किसी पूर्व निश्चित स्थान पर शिकारी का जा बैठना। (पृष्ठ १८८)

आड़ें-ओटें—छिपाव के स्थान। (पृष्ठ १८९)

रमतूला—रणतूर्य या रम्मट से मिलता-जुलता बाजा। (पृष्ठ १९०)

ठठकर रह जाना—तीर या भाले की नोक का घुस कर थम जाना। (पृष्ठ १९२)